वराहमिहिरविरचिता

बृहत्संहिता



व्याख्याकार

पं. अच्युतानन्द झा

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१५६

वराहमिहिरकृता

बृहत्संहिता

'भट्टोत्पलविवृति' समन्वित 'विमला' हिन्दीव्याख्यायुता

(पूर्वार्द्धा)

M.Katyayana

व्याख्याकारः

शर्मोपाह्व पं० अच्युतानन्द झा

ज्योतिषाचार्य-साहित्याचार्य-पोष्टाचार्याद्युपाधिविभूषितः

प्राक्कथनलेखकः

प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः

सङ्कायप्रमुखचरः

संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 0542-2420404
E-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

संस्करण **2014**
भाग 1-2) मूल्य : 800.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002

प्राक्कथन

बृहत्संहिता : एक दृष्टि

वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम्।

यह सूक्ति ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व एवं उसके निर्दुष्ट स्वरूप को पारिभाषित करती है। ज्योतिष वेदपुरुष का निर्मल चक्षु है। यहाँ केवल चक्षु ही नहीं; अपितु 'निर्मल चक्षु' कहा गया है। साधारण चक्षु की दृष्टि भी सामान्य होती है तथा मलिन चक्षु की दृष्टि अस्पष्ट एवं धूमिल होती है। निर्मल (दोषरहित) चक्षु ही किसी भी वस्तु को यथार्थ रूप में देख सकता है तथा उसका यथार्थ प्रतिपादन कर सकता है। इसीलिये इसे वेदपुरुष का निर्मल चक्षु कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र भी देखने का ही कार्य करता है। 'गणित' और 'वेध' नामक इसकी दो आँखें हैं। गणितागत परिणाम भी दृश्य होते हैं एवं वेधोपलब्ध परिणाम भी दृश्य होते हैं। जब दोनों दृष्टियों से प्राप्त परिणामों में साम्यता हो जाती है तो ज्योतिष शास्त्र का आकल्मषत्व तथा नेत्रों का निर्मलत्व—दोनों ही प्रमाणित हो जाता है। सर्वविदित है कि ज्योतिष वेध द्वारा गणितागत परिणामों का परीक्षण कर उसे पुष्ट करता है; इसीलिये कमलाकर भट्ट ने निःसङ्कोच यह उद्घोष कर दिया कि 'इस शास्त्र में दृष्ट विरुद्ध मुनि द्वारा कहा गया सिद्धान्त मान्य नहीं है।'[१] ज्योतिष अपनी प्रामाणिकता के लिये स्वयं को ही उत्तरदायी मानता है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में आचार्य लगध ने इसे 'कालविधान' शास्त्र कहा है।[२] काल की अवधारणा एवं उनके भेदों का प्रतिपादन ज्योतिष शास्त्र ने ही किया है। काल के प्रमुख नियामक सूर्य और चन्द्रमा हैं, जो ज्योतिष शास्त्र के साक्षी माने जाते हैं।[३]

इनकी गतियों के परिणामस्वरूप या इनसे उत्पन्न काल ही हमारे उपयोग में आते हैं। यद्यपि इनके अतिरिक्त पृथ्वी, बृहस्पति और नक्षत्रों के आधार पर भी कालगणना की जाती है, जो कि हमारे दैनिक व्यवहार में हैं। इन सभी कालमानकों, इनसे उत्पन्न कालमानों तथा उनके भेदोपभेदों को पारिभाषित करने का एकमात्र श्रेय ज्योतिष शास्त्र को ही जाता है। वेदाङ्ग होने के कारण इसकी प्राथमिकता एवं प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध है। यह वेदविज्ञान है; अतः जब हम विज्ञान की चर्चा करते हैं तो सर्वप्रथम दृष्टि के

---

१. सुयुक्ता न मुन्युक्तिरप्यत्र शास्त्रे भवेत् कार्यवर्षस्य या हग्निरुद्धा। (सि० त० वि०)

२. वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।। (वे० ज्यो०)

३. अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तत्र केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।।

समक्ष ज्योतिष शास्त्र ही आता है। यद्यपि आज 'विज्ञान' शब्द कुछ विशिष्ट विषयों का ही परिचायक-मात्र रह गया है। भारतीय विद्याओं में विशिष्ट ज्ञान-प्रतिपादक शास्त्र को 'विज्ञान' कहा गया है। दोनों में से हम किसी भी अर्थ को ग्रहण करें तो ज्योतिष शास्त्र ही कनिष्ठिकाधिष्ठित होगा। आज का 'विज्ञान' शब्द इंगलिश के 'साइन्स' (Science) शब्द का रूपान्तर है। आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत—गणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, ऋतु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिकी, रसायन आदि विषय परिगणित हैं। इन विज्ञानों के विकास का इतिहास सत्रहवीं शताब्दी के बाद का ही है; किन्तु आज से सहस्राब्दी पूर्व भारतीय विद्याओं में गणित, भूगोल, खगोल, कृषि आदि विषयों का विवेचन देखने को मिलता है। यह भी सत्य है कि आज आधुनिक विज्ञान की सभी शाखायें अनुसन्धान एवं विविध प्रयोगों द्वारा अहर्निश विकासोन्मुख हैं तथा भारतीय ज्ञान-विज्ञान का विकास समुचित अनुसन्धान एवं प्रयोगों के अभाव के कारण शताब्दियों से अवरुद्ध है। सिद्धान्त के क्षेत्र में तो कुछ कार्य हुये भी; किन्तु संहिता के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। ग्यारहवीं शताब्दी के बाद भी ज्योतिष के खगोल-विज्ञान में प्रगति हुई है; किन्तु वह भी विगत शताब्दी से अवरुद्धप्राय है। खगोल के साथ-साथ अन्य विज्ञान की शाखाओं का भी अवलोकन करना चाहें तो हमें एकमात्र अन्तिम प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में आचार्य वराहमिहिर-विरचित 'बृहत्संहिता' ही उपलब्ध होती है। आचार्य वराहमिहिर ने १०७ प्रकरणों में अतिसंक्षेप में लगभग ९८ विषयों का प्रतिपादन किया है, जो अपने-आपमें अद्वितीय संकलन है, जो कि त्रिस्कन्ध ज्योतिष के मर्मज्ञ आचार्य वराहमिहिर-जैसे दैवज्ञ से ही सम्भव था। उसके बाद इस स्तर की कोई अन्य रचना प्रकाश में नहीं आई। यद्यपि आचार्य वल्लालसेन ने भी इसी प्रकार के संकलन का एक सराहनीय प्रयास अपने ग्रन्थ 'अद्भुतसागर' में किया है; परन्तु बृहत्संहिता की महत्ता आज भी अद्वितीय है। संहिता स्कन्ध के प्रतिनिध ग्रन्थ के रूप में बृहत्संहिता की ही प्रतिष्ठा है। इस ग्रन्थ के महत्त्व-प्रतिपादन के पूर्व ज्योतिष शास्त्र का संक्षिप्त परिचय उन जिज्ञासु पाठकों के लिये देना उचित समझता हूँ, जो कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र को यथार्थ रूप में जानना चाहते हैं।

भारतीय ज्योतिष (जिसे आज 'वैदिक ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है) मुख्यत: तीन भागों में विभक्त है—सिद्धान्त, संहिता एवं होरा।

सिद्धान्त ज्योतिष—काल की सूक्ष्मतम इकाई त्रुटि से लेकर महत्तम इकाई (प्रलयकाल) तक कालगणना, विभिन्न प्रकार (सौर-चान्द्र-सावन आदि) के कालों के भेद, ग्रहों की गतियों का निरूपण, पृथ्वी एवं ग्रहों की अन्तरिक्ष में स्थिति का विवेचन, अङ्कगणित, बीजगणित, दिक्-देश-काल का विवेचन तथा इनके साधनोपयोगी यन्त्रों का वर्णन, ग्रहगणित से सम्बन्धित उदय-अस्त-युति-ग्रहण आदि का विवेचन सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत आता है।

संहिता—संहिता का परिचय देते हुये आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है कि 'अनेक प्रकार के विषयों से परिपूर्ण ज्योतिष तीन स्कन्धों में प्रतिष्ठत है, जिसमें (सिद्धान्त और होरा के विषयों को छोड़कर शेष) समग्र विषयों का विवेचन किया गया हो, उसे 'संहिता' कहते हैं।' वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुये 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है।

संहिता का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

होरा—जनसामान्य से सम्बन्धित होने के कारण यह लोकप्रिय स्कन्ध है। प्राणी के आधानकाल से प्रसवकाल तक तथा प्रसव से अवसानकाल तक जीवन के सभी शुभाशुभ पक्षों का विवेचन इस स्कन्ध के अन्दर किया गया है। आधानकालिक अथवा जन्मकालिक ग्रहों की स्थिति के आधार पर उनके परिणामों का विवेचन किया गया है।

इस प्रकार त्रिस्कन्ध ज्योतिष ब्रह्माण्डीय तथा मानवसम्बन्धी अनेक समस्याओं का विश्लेषण करता है। कुछ आचार्यों ने मुहूर्त्त और शकुन को पृथक् स्कन्ध कहकर पञ्च स्कन्धात्मक ज्योतिष शास्त्र बतलाया है; किन्तु यह समीचीन नहीं है; क्योंकि विभिन्न शकुन और पशु-पक्षियों की चेष्टाओं का निरूपण, अङ्गविद्या तथा वास्तु आदि का निरूपण संहिताओं में उपलब्ध है; अत: इनकी पृथक् सत्ता को स्वीकार करना संहिता को खण्डित करना होगा।

इन तीनों स्कन्धों के प्रतिपाद्य विषय आज के विज्ञान की अनेक आवश्यकताओं की पूर्त्ति पुराकाल से करते आ रहे हैं। आज विज्ञान के विकास ने इन भारतीय विद्याओं की महत्ता को परिपुष्ट किया है।

विगत कुछ वर्षों से जनमानस वास्तुशास्त्र की ओर उन्मुख हुआ है; जबकि संहिताओं में वास्तुशास्त्र का विशद विवेचन किया गया है। शास्त्रों की रचना मानवमात्र के कल्याण की दृष्टि से होती है। आवश्यकता है, उनके अवलोकन एवं मनन की। संहिताओं के अन्तर्गत अनेक विषय ऐसे हैं, जिनकी आवश्यकता जनसामान्य को होती है। उदाहरण के रूप में मौसम विज्ञान को ही लिया जा सकता है। आज करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद भी मौसम विज्ञान २४-३६ घण्टे पूर्व ही वृष्टि, आँधी और तूफान की पूर्व-सूचना दे पाता है; जबकि भारतीय ज्योतिष ग्रह-नक्षत्रों की गति-स्थिति के आधार पर लगभग वर्ष भर की मौसमसम्बन्धी भविष्यवाणी कर देता है। त्रुटियाँ दोनों ही पक्षों में होती हैं। दोनों ही विधाओं में भविष्यवाणियाँ शत-प्रतिशत सत्य नहीं होती हैं! इस त्रुटि का कारण संहिता शास्त्र बतलाता है—सद्य: होने वाले परिवर्तनों को। इन परिवर्तनों को 'सद्यो वृष्टिलक्षण' के नाम से प्रतिपादित किया है। आधुनिक विज्ञान भी इन तात्कालिक

परिवर्तनों के आधार पर अपनी भविष्यवाणियों में सुधार करते रहते हैं। आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि 'यदि दैवज्ञ प्रतिदिन आकाशलक्षण तथा वृष्टिलक्षण का अवलोकन सावधान चित्त से करता रहे तो उसकी भविष्यवाणी मुनियों की वाणी की तरह सदैव सत्य होगी।'[१]

यद्यपि मौसम विज्ञान अत्यन्त दुरूह है; फिर भी संहिताओं से इसे अत्यन्त सरल ढंग से सामान्य कृषक के भी समझने-योग्य बतलाया गया है; ताकि कृषक मौसम के ज्ञान से अपनी कृषि को सुरक्षित रख सके। भारतीय मनीषियों ने कृषि को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। कृषि के साथ वायु-वृष्टि का सम्बन्ध होने से दोनों पर गहन विचार किया है। कृषि के लिये वृष्टि आवश्यक होती है; इसलिये दोनों का महत्त्व बतलाते हुये कहा है कि—

'समस्त कृषि वृष्टि के आधीन है। प्राणी मात्र का जीवन भी वृष्टि (जल) पर ही आश्रित है। अत: सर्वप्रथम वृष्टि का ज्ञान करना चाहिये।'[२]

इतना ही नहीं; कृषि की प्रशंसा में अन्न के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया है कि—कानों में, गलें में तथा हाथों में भले ही रत्नजटित स्वर्ण आभूषण हों; किन्तु यदि अन्न नहीं होगा तो उपवास ही करना पड़ेगा।'[३] अर्थात् क्षुधा की शान्ति केवल अन्न से ही होगी, स्वर्ण और रत्नों से नहीं। अन्न का साधन एकमात्र कृषि है। इसीलिये शास्त्रकारों ने कृषि तथा गाय और बैलों के संरक्षण पर विशेष बल दिया है। कृषि की गुणवत्ता, बीज का संरक्षण, फलों का उत्पादन, वृक्षों और फसलों के रोगों का निदान और चिकित्सा आदि ऐसे अनेक विषय हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध प्राणीमात्र से है और संहिताओं में उनका विशद् प्रतिपादन किया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्तरिक्षसम्बन्धी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का भी विवेचन संहिताग्रन्थों में मिलता है। कभी-कभी कुछ घटनायें आज के वैज्ञानिकों को भी आश्चर्यचकित कर देती हैं। इस प्रकार की अनुत्तरित जिज्ञासाओं की भी चर्चा संहिताओं में यत्र-तत्र मिल जाती है। उदाहरण के रूप में एक घटना का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। जब अन्तरिक्षयात्री 'नील आर्मस्ट्रांग' चन्द्रतल पर अवतरण करने जा रहा

---

१. दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे।। (बृ० सं०, गर्भल०-३)

२. वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलञ्च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।। (कृ० पा०-२.१)

३. कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि।
उपवासस्तथापि स्यादन्नाभावेन देहिनाम्।। (कृ० पा०-१.५)
अन्नं हि धान्यसञ्जातं धान्यं कृष्या विना न च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्।। (कृ० पा०-१.७)

था तो उस समय चन्द्रमण्डल पर क्षणिक प्रकाश दिखलाई दिया, जिसको देखकर आश्चर्यचकित नील आर्मस्ट्रांग ने पृथिवी पर स्थित अन्तरिक्ष अनुसन्धान केन्द्र को इसकी सूचना दी। सभी के लिये लिए यह क्षणिक प्रकाश एक रहस्य था। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख पैट्रिक मूरे ने भी अपनी पुस्तक Guide to the Moon में किया है कि 'जब मैंने अपने दूरदर्शक से चन्द्रमा को देखा तो कुछ क्षण के लिए चन्द्रविम्ब नीले प्रकाश से युक्त दिखाई दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे नीले बल्ब के प्रकाश में चन्द्रमा को देख रहा हूँ; किन्तु यह दृश्य कुछ ही क्षणों के बाद समाप्त हो गया तथा चन्द्रमा अपने वास्तविक स्वरूप में दिखाई देने लगा।'[१]

इस तरह के क्षणिक परिवर्त्तन निश्चय ही आश्चर्योत्पादक हैं; किन्तु इन विचित्र घटनाओं से संहिताकार भी अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने बड़े ही सहज भाव में लिख दिया है कि 'चन्द्रविम्ब पर कभी पीला, कभी नीला, कभी हरा क्षणिक प्रकाश होता रहता है।'[२] इन प्रकाश-परिवर्तनों के प्रभावों का भी उल्लेख किया है; परन्तु इस प्रकार के प्रकाशों का कारण आज भी एक रहस्य ही बना हुआ है। संहिताग्रन्थों को देखने से प्रतीत होता है कि आधुनिक युग में भी अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर गहन शोध के अपार अवसर उपलब्ध हैं। इनके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है; यतः संहिताग्रन्थ स्वयं में ही प्रमाण हैं।

वराहमिहिर

आचार्य वराहमिहिर ज्योतिष शास्त्र के प्रतिनिधि आचार्य हैं। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों पर अद्वितीय कार्य किया है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिस प्रकार भगवान् वराह ने रसातल से पृथ्वी को उबार कर बाहर लाया, उसी प्रकार कालप्रवाह में निमग्न ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध को इन्होंने उबारा। अपने मानक ग्रन्थ 'पञ्च-सिद्धान्तिका' में इन्होंने सौर, पैतामह, वसिष्ठ, रोमक और पौलिश सिद्धान्तों का संग्रह किया तथा उनकी गुणवत्ता को परख कर उन पर अपनी टिप्पणी भी दी; जो इस प्रकार है—'पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है। उसी के आसन्न रोमक भी है; किन्तु सौर सिद्धान्त इससे भी शुद्ध (स्पष्टतर) है। अन्य दो (पैतामह और वसिष्ठ) अत्यन्त (प्राचीन होने से) भ्रष्ट हो गये हैं।

---

१. The Moon is shining down from a slightly misty sky with a lovely shimmering blueness like an electric glimmes, utterly unlike anything I have never seen before.

२. विलग्नमध्यो नीलाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः।
मध्यच्छिद्रविलीनाभो भयं कारयते महत्।।
हरितो पीतये विद्यात् पशूनां चाप्युपद्रवम्।
पीतवर्णो गजान् हन्ति पीतो व्याधिकरस्तथा।। (अद्भुतसागर)

संहिता स्कन्ध में बृहत्संहिता या वाराही संहिता उल्लेखनीय है। अद्यावधि उपलब्ध संहिताओं में बृहत्संहिता की अप्रतिम प्रतिष्ठा है। संक्षेप में अधिकाधिक विषयों का समावेश इस ग्रन्थ में आचार्य ने किया है।

इसी प्रकार होरास्कन्ध में वराहविरचित 'बृहज्जातक' की प्रतिष्ठा है। आचार्य भट्टोत्पल ने वराह की दोनों कृतियों—बृहत्संहिता और बृहज्जातक पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका लिखी है, जो 'भट्टोत्पल' के नाम से ही जानी जाती है।

आचार्य वराहमिहिर का जन्म अवन्ती (उज्जैन) के पास कापित्थक नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता कर नाम आदित्य दास था। ये सूर्य के उपासक थे। इसके आधार पर ये मगद्विज कुल में उत्पन्न थे। ये सभी सूचनायें वराहमिहिर द्वारा लिखित बृहज्जातक के एक पद्य[१] के आधार पर प्राप्त होती हैं। आज के पुरातात्त्विक साक्ष्य भी अवन्ती के पास ही इनके जन्मस्थान की पुष्टि करते हैं। इन्होंने अपने कुल एवं जन्म-स्थान का तो उल्लेख किया है; किन्तु जन्मकाल का उल्लेख नहीं किया है। अत: पञ्चसिद्धान्तिका[२] में उल्लिखित शक ४२७ के आधार पर इनका जन्मसमय शक ४०७-४१२ (सन् ४८५-४९०) के बीच माना जाता है। ज्योतिर्विदाभरण में जिस वराहमिहिर का उल्लेख है, वे कोई अन्य हो सकते हैं अथवा काल्पनिक भी हो सकते हैं; क्योंकि विक्रमादित्य के नवरत्नों में जिन आचार्यों के नाम हैं, उनकी एक कालावधि में उपस्थिति सम्भव नहीं है। स्वयं ज्योतिर्विदाभरण के लेखक ने अपनी ही लेखनी से अपने-आपको सन्देह के घेरे में डाल दिया है। अत: नि:संशय ही पञ्चसिद्धान्तिका के वराहमिहिर ज्योतिर्विदाभरण में उल्लिखित वराहमिहिर से सर्वथा भिन्न हैं।

इनके तिरोधान का काल सन्दिग्ध है। एक अज्ञात लेखक के आयुष्य विवरण के आधार पर इनका देहावसान शक ५०९ में हुआ।[३] निश्चित तिथि ज्ञात न होने पर भी कृतियों के आधार पर यह निश्चित ही है कि पाँचवी शताब्दी के ये मूर्धन्य खगोलशास्त्री थे। इनके ज्ञान तथा इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों के आधार पर इनके विषय में श्रुति है कि इन्होंने विदेशों में भ्रमण करके भी ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ये विदेशों में भ्रमण नहीं किये थे; अपितु इनके समय तक देश और विदेशों में ज्ञान का आदान-प्रदान हो चुका था। इनके

पूर्ववर्ती साहित्य में भी विदेशी शब्दों के उल्लेख मिलते हैं।[४] आचार्य वराहमिहिर

---

१. आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोध: कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसाद:।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार।।
(बृ० जा० उप०, अ०-९)

२. सप्ताश्वि वेदसङ्ख्यम्।

३. नवाधिकपञ्चशतङ्ख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवङ्गत:।। (भारतीय ज्योतिष)

४. द्रष्टव्य—भारतीय ज्योतिष।

विदेश गये थे या नहीं? यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्त्वपूर्ण यह है कि वे खुले मस्तिष्क वाले, उदार दृष्टिकोण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत मनीषी थे। उनकी यह उदारता एक पद्य से ज्ञात होती है, जिसका भाव यह है कि 'जिसके पास सम्यक् (संशयरहित पुष्ट) ज्ञान होता है, वह ऋषि के समान पूज्य होता है (वहाँ जाति का पन्थ बाधक नहीं होता) और इस प्रकार का ज्ञान यदि किसी विप्र में हो तो फिर कहना ही क्या है?'[१] यहाँ 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग हीनार्थ-बोधक नहीं है; अपितु शास्त्रों में वैदिक (आर्य) संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृति के अनुयायियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि आचार्य वराहमिहिर किसी भी देश, किसी भी जाति एवं किसी भी व्यक्ति से ज्ञानार्जन में परहेज के पक्षधर नहीं थे।

बृहत्संहिता

उपलब्ध संहिताओं में बृहत्संहिता सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं सुव्यस्थित है। इसमें संगृहीत विषयों को देखने से प्रतीत होता है कि आचार्य वराहमिहिर ने यत्र-तत्र से महत्त्वपूर्ण विषयों का सङ्कलन कर भावी पीढ़ी के लिये गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान की प्रभूत सामग्री प्रदान की है। आज आवश्यकता है—बृहत्संहिता के प्रत्येक अध्याय पर पृथक्-पृथक् कार्य (अनुसन्धान) करने की; तभी इस ग्रन्थ की सार्थकता अद्यतन के युग में सिद्ध होगी तथा ज्योतिष शास्त्र को एक नया आयाम प्राप्त हो सकेगा। आचार्य अत्यन्त दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने काल में ही अनुमान लगा लिया था कि भविष्यत् काल में ज्योतिष शास्त्र अल्पज्ञों एवं पाखण्डियों के हाथों में जाकर अपनी प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगा सकता है। इसीलिये उन्होंने इस शास्त्र के अध्येताओं की अर्हता का प्रतिपादन किया है।

सांवत्सर सूत्राध्याय के १५ पद्यों में आचार्य ने केवल दैवज्ञों का लक्षण निरूपित किया है। उन लक्षणों से युक्त व्यक्ति को ही ज्योतिष शास्त्र पढ़ना चाहिये अथवा जिसे ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन की जिज्ञासा हो, उस व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने अन्दर उन गुणों को धारण करना चाहिये।

दैवज्ञ-लक्षण बताने के बाद २२-३९ पद्यों में दैवज्ञों की प्रशंसा तथा पाखण्डियों की निन्दा की गई है। किसी भी शास्त्र को उपयुक्त, जिज्ञासु एवं प्रबुद्ध व्यक्ति के हाथ में देने से उसका विस्तार होता है; अन्यथा शास्त्र की हानि होती है। आचार्य ने लिखा है—'संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।' विना संहिताओं के सम्यग् अध्ययन के व्यक्ति दैवचिन्तक नहीं हो सकता। प्रकृति और भावी घटनाओं को जानने के लिये अन्तरिक्ष में प्रतिक्षण हो रहे परिवर्तनों पर दृष्टि रखना आवश्यक है। अतः आचार्य ने सर्वप्रथम पात्रता-निर्धारण के अनन्तर सूर्यादि ग्रहों, अगस्त्य तारा तथा सप्तर्षि मण्डल

१. म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यग् ज्ञानं प्रतिष्ठितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।। (बृ० सं०-२.३०)

के चार (सञ्चरण) एवं उनके परिणामों को पारिभाषित किया। तदनन्तर पृथ्वी का (भूगोल का) वर्णन 'कूर्मचक्र' के अन्तर्गत किया है, जिसके आधार पर भूमण्डल पर किसी प्रकार के प्रकृतोत्पातों के क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। तदनन्तर 'नक्षत्रव्यूह' नामक अध्याय में नक्षत्रों के प्रभावक्षेत्र का उल्लेख किया, जो अपने-आपमें अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण है। जैसे कि यदि मृगशिरा नक्षत्र पर कोई दुष्प्रभाव ग्रहचार अथवा अन्तरिक्षोत्पात द्वारा पड़ता है तो उसके प्रभावक्षेत्र में आने वाले सभी प्रभावित होंगे। मृगशिरा का प्रभावक्षेत्र बृहत्संहिता के आधार पर इस प्रकार है—सुगन्धियुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न पदार्थ, पुष्प, फल, रत्न, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस पीने वाले, गायक (सङ्गीतज्ञ) का भी तथा सन्देहवाहक।[१]

इसी प्रकार सभी नक्षत्रों के प्रभावक्षेत्रों का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर 'ग्रहभक्ति' अध्याय में ग्रहों से सम्बन्धित भूभाग का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार प्रारम्भिक अध्यायों में प्राकृत उत्पातों से प्रभावित होने वाले पदार्थों तथा क्षेत्रों का उल्लेख करने के अनन्तर भूस्थ एवं आन्तरिक्ष उत्पातों तथा आकाशीय परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है। २१वें अध्याय से २८वें अध्याय तक वायु और वृष्टि का विवेचन किया गया है, जो अपने-आपमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं कृषि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। २९ से ३९ अध्यायों तक भूमि एवं आन्तरिक्षोत्पातों का उल्लेख है। ३८वाँ अध्याय 'रजोवर्षणाध्याय' नाम से निर्दिष्ट है। यद्यपि यह अध्याय सभी संस्करणों में नहीं है; किन्तु है महत्त्वपूर्ण। 'रजोवर्षण' नाम ही इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त कर रहा है। इसमें आकाश से धूलि की वृष्टि का वर्णन है। कुछ लोगों ने भ्रमवश इसमें भूमि से उड़ने वाली धूलि का वर्णन ही मान लिया है, जो कि उपयुक्त नहीं है। आज आधुनिक विज्ञान के समक्ष भी यह धूलि (Cosmic dust) रहस्य बनी हुई है। ४० से ५२ अध्याय तक प्रकीर्ण विषय हैं, जिनमें ५१वाँ अध्याय अङ्गविद्या का है। इसमें शरीर के अवयवों के लक्षणों का निरूपण किया गया है।

५३वें अध्याय से बृहत्संहिता का उत्तरार्ध माना जाता है। सम्भवतः पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का विभाजन आदरणीय गुरुवर्य स्व० पं० अवधविहारी त्रिपाठी जी द्वारा सम्पादित एवं वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित बृहत्संहिता के गवेषणापूर्ण संस्करण के आधार पर ही माना गया है। उत्तरार्ध वास्तुविद्या से प्रारम्भ होता है। ५३ से ६० अध्याय तक वास्तुविद्या का विवेचन है, जिसमें प्रासाद-निर्माण तथा उन पर वज्रलेप (प्लास्टर) की भी महत्त्वपूर्ण चर्चा की गई है। साथ ही ५४वें अध्याय में भूगर्भस्थ जल के स्रोत का भी उल्लेख किया गया है, जो 'दकार्गल' या 'उदकार्गल' नाम से जाना जाता है। आवासीय क्षेत्र में जल के स्रोत तथा पर्यावरण की दृष्टि से वृक्ष

---

१. मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहङ्गाः।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुकाः लेखहराश्च ॥ (बृ० सं०-१५.३)

की आवश्यकता होती है। इसीलिये वास्तुविद्या के साथ इनका भी उल्लेख है। विशेषता यह है कि 'वृक्षायुर्वेद' नाम से वृक्षों में होने वाली व्याधियों एवं उनके उपचार की विधि भी उक्त अध्याय में बताई गई है। ६२ से ६७ अध्याय तक पशु-पक्षियों के लक्षण, ६८ से ७० तक स्त्री-पुरुषों के लक्षण एवं ७१ से ७९ तक स्त्री-पुरुषों एवं राजचिह्नों से सम्बन्धित विविध विषयों का निरूपण किया गया है।

८० से ८३ तक रत्नों के लक्षण, ८४ में दीपज्वाला-लक्षण, ८५वें में दन्तकाष्ठलक्षण तथा ८६ से ९६ तक शकुन एवं पशु-पक्षियों की चेष्टाओं का विवेचन है। ९७ से १०५ अध्यायों तक ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्धित परिणामों के उल्लेख के अनन्तर १०६ तथा १०७ अध्यायों में ग्रन्थ का उपसंहार किया गया है।

यदि हम इन विषयों का सूक्ष्मेक्षण करते हैं तो पाते हैं कि प्रत्येक अध्याय एक स्वतन्त्र एवं अनुसन्धानयोग्य विषय को स्वयं में समाविष्ट किये हुये है। एक ग्रन्थ में इतने विषयों का संकलन वस्तुतः गागर में सागर के समान ही है। आचार्य वराहमिहिर ने इतने विषयों को संगृहीत कर आगे कार्य करने के लिये सामग्री उपलब्ध कराई है। आज आवश्यकता है—बृहत्संहिता को भाषान्तर के साथ सर्वसुलभ कराने की; ताकि आधुनिक वैज्ञानिकों के साथ संयुक्त रूप से इस दिशा में शोधकार्य को प्रोत्साहित किया जा सके। बृहत्संहिता का वास्तविक उपयोग तभी संम्भव है, जब पारम्परिक और आधुनिक विज्ञानवेत्ता समवेत प्रयास कर इसमें निहित विज्ञान को प्रयोग के आधार पर परिवर्धित कर प्रकाशित करें और व्यवहार में लायें।

आचार्य भट्टोत्पलकृत विवृति से समन्वित बृहत्संहिता के हिन्दी रूपान्तरणसहित पुनः प्रकाशन पर अतिशय प्रसन्नता का अनुभव करते हुये आशा करता हूँ कि आधुनिक वैज्ञानिक भी बृहत्संहिता के मनन में अभिरुचि लेंगे तथा सम्बन्धित विषयों में शोध एवं परीक्षणों द्वारा प्राचीन ज्ञान-परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना सक्रिय योगदान करेंगे।

अन्त में पुनः श्री अच्युतानन्द झाकृत हिन्दी टीका से समन्वित बृहत्संहिता के वर्त्तमान प्रकाश्यमान संस्करण के प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के स्वत्वाधिकारी गुप्तबन्धुओं को मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाओं से विभूषित करते हुये कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार अनवरत रूप से माँ भारती की सेवा में सतत प्रयत्नशील रहेंगे एवं जिज्ञासुओं को लाभान्वित कराते रहेंगे।

वैशाख शुक्ल-३
संवत्-२०६२

प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय
सङ्कायप्रमुखचरः
संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः

भूमिका

तिष्ठन्तीं शववक्षसि स्मितमुखीं हस्ताम्बुजैर्बिभ्रतीं
मुण्डं खड्गवराभयानि विजितारातिव्रजां भीषणाम्।
मुण्डस्रक्प्रविकाशमानविपुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनीं
नत्वेमां किल भूमिकां वितनुते नन्दोऽच्युतादिः कृती।।

परमेश्वर के सम्बन्ध में शास्त्रों में प्रतिपादित है कि 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' अर्थात् यह परमात्मा छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। इस अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक परमात्मा के निःश्वासभूत, प्राणियों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक—इन तीनों प्रकार के दुःखों का अपहरण करने वाला और चतुर्वर्ग-प्राप्ति का अतिशय सुन्दर मार्गप्रदर्शक वेद है।

प्राचीन तथा आधुनिक इतिहासों के द्वारा यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि उपलब्ध पुस्तकों में सबसे प्राचीन वेद है। इसको अपौरुषेय कहते हैं अर्थात् किसी मनुष्य ने इसको नहीं बनाया, किन्तु प्राणियों के हित के लिये सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने त्रिकालज्ञ महर्षियों के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में इसे प्रकाशित किया।

यहाँ पर मनु—

वेदोऽखिलो कर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।

श्लोकवार्तिक में—

श्रेयःसाधनता ह्येषा नित्यं वेदात्प्रतीयते।
ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्नेन्द्रियगोचरः।।

और भी—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।

ब्राह्मणों को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

यहाँ पर मनु—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।

इसके व्याकरण आदि छः अङ्ग हैं, जैसे—व्याकरण मुख, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कान, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका और छन्द पैर है।

श्रीमान् भाष्कराचार्य—

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पं करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

वेदपुरुष का नेत्ररूप होने के कारण ज्यौतिष शास्त्र सभी अङ्गों में उत्तम गिना जाता है, क्योंकि अन्य सभी अङ्गों से समन्वित प्राणी भी नेत्ररहित होने पर कुछ नहीं कर सकता।

यहाँ पर भास्कराचार्य—

वेदचज्ञुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः।।

काश्यप के मत से इस शास्त्र के सूर्य आदि अट्ठारह महर्षि प्रणेता हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः।।

लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तकाः।।

किन्तु पराशर के मत से ज्यौतिःशास्त्रप्रवर्त्तक उन्नीस हैं—

विश्वसृड् नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः।।

पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्यौतिःप्रवर्त्तकाः।।

पराशर के मत से ज्यौतिश्शास्त्र में गुरु और शिष्य की सम्बन्ध-परम्परा इस प्रकार है—

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम्।।

नारायणो वसिष्ठाय रोमेशायोऽपि चोक्तवान्।
व्यासो शिष्याय सूर्योऽपि मयारुणकृते स्फुटम्।।

पुलस्त्याचार्यगर्गोऽत्रिरोमकादिभिरीरितम् ।
विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे।।

मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम्।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यच्चातिदुर्लभम्।।

इस वेद के नेत्ररूप ज्यौतिष शास्त्र के सिद्धान्त, गणित, फलित—ये तीन स्कन्ध हैं।

सिद्धान्त उसको कहते हैं, जिसमें त्रुटिकाल से लेकर प्रलय के अन्त तक के काल की गणना हो; सौर, सावन, चान्द्र, नक्षत्र आदि मानों का भेद प्रतिपादित हो, ग्रहों के

सञ्चार का ज्ञान-प्रकार हो, दो प्रकार का (व्यक्त-अव्यक्त) गणित हो, उत्तरसहित प्रश्न हो; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का वर्णन हो और यन्त्रादि का वर्णन हो। सिद्धान्तशिरोमणि द्वारा यही परिभाषा मान्य है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधः।।

'गणितस्कंन्ध' उसको कहते हैं, जिसमें व्यक्त-अव्यक्त आदि अनेक प्रकार के गणित वर्णित हों। यह स्कन्ध सिद्धान्तस्कन्ध के अन्तर्गत ही पाया जाता है।

'फलितस्कन्ध' के मुख्य पाँच भेद हैं—जातक, ताजिक, मुहूर्त्त, प्रश्न एवं संहिता।

जिसमें जन्मकाल के द्वारा प्राणियों के जीवनसम्बन्धी सब तरह के फल कहे गये हैं, उसको 'जातक' कहते हैं। वस्तुतः जन्मकाल के ज्ञान के विना प्राणियों का जीवन अन्धकार में रहता है—

यस्य नास्ति किल जन्मपत्रिका या शुभाशुभफलप्रदायिनी।
अन्धकं भवति तस्य जीवितं दीपहीनमिव मन्दिरं निशि।।

ताजिकविभाग से वर्षफल, मासफल आदि का ज्ञान होता है।

पूर्वापर सन्दर्भ देखने से यह निश्चित होता है कि यवनों ने ताजिक शास्त्र में विशेष उन्नति की; अतः ज्यौतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों में यवनाचार्य का भी नाम आता है। ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व समय में अत्रत्य ज्यौतिषी लोग वर्षफल आदि अन्य प्रकार से बनाते थे। नीलकण्ठाचार्य ने यवनों से ताजिक शास्त्र का अध्ययन करके 'ताजिकनीलकण्ठी' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें योगों के नाम फारसी शब्दों में इक्कवाल, इन्दुवार आदि हैं। इन शब्दों को बदल कर संस्कृत शब्दों के द्वारा योगों के नाम नहीं लिखे; अतः यह भी सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में विद्वानों में गुणग्राहकता अत्यधिक थी।

मुहूर्तविभाग में जातकर्म, अन्नप्राशन आदि सकल मुहूर्तों का वर्णन है।

प्रश्नविभाग में मूकप्रश्न आदि का वर्णन है।

संहिताविभाग फलित ज्यौतिष का प्रधान अङ्ग है। इसमें ग्रहचार आदि फलों के अतिरिक्त वायसविरुत, शिवारुत, मृगचेष्टित, श्वचेष्टित, गवेङ्गित, अश्वेङ्गित, हस्तिचेष्टित, शाकुन आदि विषयों का फल भी लिखा है; अतः इसको फलित का एक प्रधान अङ्ग मानना पड़ेगा।

इस विभाग के अन्तर्गत यह 'बृहत्संहिता' नामक ग्रन्थ अनुपम है, जिसको आदित्यदास के पुत्र, त्रिस्कन्ध ज्यौतिष शास्त्र में पारङ्गत श्री वराहमिहिराचार्य ने बनाया।

इस समय एतद्देशीय सम्पूर्ण संस्कृत विद्यालयों में यह बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ

परीक्षा में पाठ्यत्वेन निर्धारित है; परन्तु इसके मूल श्लोकों के अत्यन्त कठिन होने के कारण अर्थज्ञान के लिये विशेष प्रतिभा की आवश्यकता है। इसकी संस्कृत में भट्टोत्पल्लीय टीका बहुत अच्छी है; किन्तु इस टीका द्वारा सर्वसाधारण के लिए मूल श्लोकों का अर्थ जानना कठिन था; अतः जनसाधारण के उपकारार्थ मैंने इस ग्रन्थ की सरल परिशुद्ध हिन्दी टीका की है। आशा है कि पण्डितगण इस 'विमला' हिन्दी टीकायुत अनुपम ग्रन्थ को देखकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

काशी के प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थान चौखम्बा संस्कृत सीरीज एवं 'चौखम्बा विद्याभवन' के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू जयकृष्णदास जी ने तत्परतापूर्वक शीघ्र ही इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया; अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अवसान में सविनय करबद्ध प्रार्थना यही है कि अनवधानवश अथवा मुद्रणदोष से कहीं त्रुटि रह गई हो तो पक्षपातरहित बुद्धि से पण्डितगण उसे सुधार कर मुझे भी सूचित करें, जिससे कि पुनः अग्रिम संस्करण में उसको ठीक कर उन सज्जनों के सामने उपस्थित कर सकूँ। कहा भी है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

दुर्जनगण अनेक प्रकार से प्रार्थना करने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ सकते हैं, अतः उनसे प्रार्थना करना व्यर्थ है; क्योंकि—

खलो मृगयते दोषं गुणपूर्णेषु वस्तुषु।
वने पुष्पफलाकीर्णे पुरीषमिव सूकरः।।

संवत्-२०१५ — विदुषां वशंवदः
वसन्तपञ्चमी — **श्री अच्युतानन्द झा**

विषयानुक्रमणी

॥ श्रीः॥

वराहमिहिरकृता

बृहत्संहिता

'भट्टोत्पलविवृति' समन्वित 'विमला' हिन्दीव्याख्यायुता

अथ शास्त्रोपनयनाध्यायः

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥१॥

❁ विमला ❁

संसार की उत्पत्ति का कारण—'अग्नौ हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।' (मनु)। विश्व की आत्मा—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (श्रुति)। आकाश का स्वाभाविक आभूषण और द्रवित सुवर्ण के समान अनेक किरणों से शोभायमान श्री सूर्य भगवान् सर्वोत्कृष्टता से वर्त्तमान हैं।।१।।

❁ भट्टोत्पलविवृति ❁

ब्रह्माजशङ्कररवीन्दुकुजज्ञजीवशुक्रार्कपुत्रगणनाथगुरून् प्रणम्य।
यः संग्रहोऽर्कवरलाभविवृद्धबुद्धेरावन्तिकस्य तमहं विवृणोमि कृत्स्नम्।।१।।

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषं
तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-
दित्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते।।२।।

वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले
ग्रहर्क्षगणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले।
भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धास्ततः
करोमि विवृतिप्लवं निजधियाऽहमत्रोत्पलः।।३।।

कानीह शास्त्रे सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते—वाच्यवाचकलक्षणः सम्बन्धः। वाच्योऽर्थो वाचकः शब्दः। अथवोपायोपेयलक्षणः सम्बन्धः। उपायस्त्विदं

शास्त्रमुपेयं ज्ञानम्। अथवा आब्रह्मादिविनिःसृतं वेदाङ्गमिति सम्बन्धः। अनेन शास्त्रेण च यद्ग्रहनक्षत्रोत्थानां शुभाशुभानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां फलज्ञानं तदभिधेयम्। जगतः शुभाशुभकथनं प्रयोजनं सम्यग्ज्ञानान्मोक्षावाप्तिरिति च प्रयोजनम्। किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते—श्रोतृणां सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनकथनाच्छास्त्रविषये श्रद्धा जायत इति। तथा चोक्तमत्रार्थे—

सिद्धिः श्रोतृप्रभृतीनां सम्बन्धकथनाद्यतः।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बन्धः पूर्वमुच्यते।।
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित्।
यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत्।।
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते।।

तस्मात् सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि वक्तव्यानि। कस्याऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकार इत्युच्यते—द्विजस्यैव। यतस्तेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च। कानि तान्यङ्गानीत्युच्यते—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः।
छन्दसां लक्षणं चैव षडङ्गो वेद उच्यते।।

सतामयमाचारो यच्छास्त्रप्रारम्भेष्वभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति। तदयमप्यावन्तिकाचार्यमगधद्विजवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिःशास्त्रसंग्रहकृद् गणितस्कन्धहोरास्कन्धौ संक्षिप्तौ कृत्वा संहितास्कन्धं संक्षिप्तं चिकीर्षुरशेषविघ्नोपशान्तये भगवन्तं तत्प्रधानं सूर्यमादावेव प्रणनाम—जयतीति।

भगवान् सविता श्रीसूर्यो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कीदृशः? जगतः प्रसूतिः। प्रसूयते उत्पद्यतेऽस्माज्जगदिति जगतः प्रसूतिः। यतस्तद्वशाद् वृष्टेः सम्भवस्ततोऽन्नं ततः प्रजा इति। तथा च भगवान्मनुः—

अग्नौ हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा।। इति।

विश्वात्मा विश्वस्य जङ्गमस्य स्थावररूपस्य चात्मा प्राणरूपेण हृदयान्तरस्थितः। तथा च श्रुतिः—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चे'ति।

जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य सूर्य एवात्मा। सहजभूषणं नभसः। नभस आकाशस्य सहजभूषणमकृत्रिममलङ्करणम्। यतो दृश्याकाशभागस्थेऽर्के सुतरां तस्य विराजनात् सहजं भूषणम्। **द्रुतकनकसदृशेति**। द्रुतं गलितं कनकं सुवर्णं द्रुतकनकस्य सदृशास्तत्तुल्या दशशतसंख्या ये मयूखाः किरणास्तेषां या माला प्रचयस्तयार्चितो व्याप्त इति। एवमिष्टदेवतासङ्कीर्तनात् कायवाङ्मनोभिः प्राधान्याद्धर्मः, धर्मेण चाधर्मनिवृत्तिः, तन्निवृत्तौ विघ्नोपशमस्तदुपशमादविघ्नेन शास्त्रपरिसमाप्तिरिति।।१।।

नन्वन्येषु ज्योतिःशास्त्रेषु सत्सु किमिदं प्रारब्धमिति पौनरुक्त्यपरिहारार्थमाह—

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥२॥

प्रथम मुनि (ब्रह्माजी) द्वारा कहे गये विस्तृत ग्रन्थ का सत्य अर्थ देख कर उसको ही संक्षेप और विस्तार से रहित रचना के द्वारा स्पष्ट रूप से कहने के लिए प्रस्तुत हुआ हूँ।।२।।

मननाद् ज्ञानान्मुनिः। प्रथमश्चासौ मुनिश्च प्रथममुनिर्ब्रह्मा, तेन यत्कथितमुक्तमवितथं सत्यरूपं विस्तरग्रन्थमतिविस्तीर्णशास्त्रं तस्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थमभिधेयमवलोक्य विचार्याहं नातिलघ्वीभिः स्वल्पाभिर्न चातिविपुलाभिर्विस्तीर्णाभी रचनाभिर्वाच्यपदसन्निवेशैर्मध्यरचनाभिः स्पष्टं स्फुटतरमभिधातुं वक्तुं समुद्यतः प्रवृत्त इति। यतः संक्षिप्तस्य ग्रन्थस्य ग्रहणधारणे सुखम्। तथा च हस्तिवैद्यककारो वीरसोमः—

समासोक्तस्य शास्त्रस्य सुखं ग्रहणधारणे।। इति।।२।।

अधुना मुनिविरचितस्य स्वरचितस्य च शास्त्रस्य साम्यमाह—

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥३॥

जो प्राचीन मुनि के द्वारा विरचित है, वही यथार्थ है; मनुष्य का लिखा हुआ नहीं— ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; यतः मन्त्रात्मक से भिन्न शास्त्र में अर्थ की तुल्यता रहने के कारण केवल अक्षरमात्र का भेद रहने पर क्या विशेषता हो सकती है? अर्थात् कुछ भी नहीं।।३।।

इदं यच्छास्त्रं मुनिभिर्ब्रह्मादिभिर्विरचितं निबद्धं तत्साधु श्रेष्ठमिति। इतिशब्दो निश्चयार्थे। मुनीनामतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षादविशिष्टमाविर्भूतप्रकाशत्वात्। यतस्तच्चिरन्तनं मुनिभिः प्रागेव विरचितं तेन साधु न मनुजग्रथितं मनुष्यरचितत्वान्न साधु साम्प्रतं रचितत्वान्न शोभनमिति। एवमाशङ्क्याह—**तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रक इति** । तुल्ये सदृशेऽर्थेऽभिधेयेऽक्षराणां वर्णानां भेदादन्यत्वात्। तत्रामन्त्रक इति मन्त्रवर्जिते का विशेषोक्तिः किं विशेषवचनम्। एतदुक्तं भवति—मुनिकृतान्येव शास्त्राणि दृष्ट्वा तदर्थ एव नात्यल्पैर्नातिबहुभिः पदसन्निवेशैरुच्यत इत्यक्षराणां मात्राभेदो नार्थानाम्। मन्त्रार्थो वेदार्थोऽन्यैः शब्दैस्तदर्थप्रतिपादकैर्निबद्धो वेदवत्कार्यकरो न भवतीत्यत उक्तममन्त्रक इति।।३।।

अधुना मुनिकृतानां महत्त्वं च स्वशास्त्रस्य चाल्पत्वं प्रदर्शयितुमाह—

क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति पितामहप्रोक्ते ।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृतेः ॥४॥

जैसे ब्रह्माजी द्वारा रचित ग्रन्थ में 'क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृत्' और मनुष्यकृत् ग्रन्थ में 'कुजदिनमनिष्टम्' ऐसा लिखा है। इसमें मात्र पाठभेद के अतिरिक्त मनुष्यकृत से मुनिकृत में क्या विशेषता है? अर्थात् कुछ भी नहीं।।४।।

क्षितितनयस्याङ्गारकस्य दिवसः वारः। दिवसे वारो दिवसवारः। पितामहप्रोक्ते कमलजकथिते शास्त्रे न शुभकृदित्युक्तिः। न शुभं फलं करोतीति न शुभकृत्। भौमवारः सर्वकर्मणामशुभकृदिति कमलजकथिते शास्त्र उक्तिः। मदीये पुनः कुजदिनमनिष्टम्। 'कु'शब्देन भूरित्युच्यते; ततो जातः कुजस्तस्य दिनं वारस्तच्चानिष्टमशोभनं सर्वकर्मणामित्युक्तिः। तस्मान्नृकृतेर्मनुष्यरचितस्य शास्त्रस्य दिव्यकृतेर्देवरचितस्यार्थस्यात्रास्मिन्नर्थे को विशेषः किमन्तरमिति भवन्त एव विचारयन्तु। अनेनर्षिकृतानां महत्त्वं स्वशास्त्रस्य संक्षिप्तत्वं प्रकाशितं भवतीति। अथवा नृदिव्यकृते इति पाठे नृकृते दिव्यकृतेऽत्रास्मिन् शास्त्रे को विशेष इति।।४।।

एवं स्वग्रन्थकरणे निर्दोषतां संस्थाप्य सकलमुनिनिबद्धशास्त्रसंग्रहकरणहेतुं दर्शयितुमाह—

आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः ॥५॥

ब्रह्मा आदि मुनियों के द्वारा कहे गये शास्त्रों में अतिविस्तार देखकर क्रम से संक्षेप में इस शास्त्र को बनाने के लिये यह मेरा उत्साह है।।५।।

ब्रह्मादिभ्यो यद्विनिःसृतं निर्गतं ग्रन्थविस्तरं विस्तीर्णशास्त्रं तच्चालोक्य दृष्ट्वा। अथवा तस्माद् ग्रन्थविस्तरादालक्ष्य क्रमशः क्रमेण समासतः संक्षेपेणैतच्छास्त्रं क्रियमाणम्। एवशब्दो निश्चयार्थे। मुनिभिः पारम्पर्येण संक्षिप्तीकृतमहमपि संक्षिप्तीकरोम्यतोऽस्माद्धेतोर्ममोत्साहः शृङ्गार इति। तथा च भगवान् गर्गः—

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम्।
वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम्।।
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधनम्।
वेदानामुत्तमं शास्त्रं त्रैलोक्यहितकारकम्।।
मत्तश्चान्यानृषीन् प्राप्तं पारम्पर्येण पुष्कलम्।
तैस्तदा स्रष्टृभिर्भूयो ग्रन्थैः स्वैः स्वैरुदाहतम्।। इति।।५।।

अस्मिन् शास्त्रे जगतः शुभाशुभकथनं तात्पर्यं तस्य च जगतः कुत उत्पत्तिरस्त्येतत्प्रदर्शयितुमाह—

आसीत्तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्धैमे ।
स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ॥६॥

यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था। वहाँ अन्धकार के विषयभूत जल में तेजोमय एक सुवर्ण का अण्ड उत्पन्न हुआ। उसके दो टुकड़े स्वर्ग और पृथ्वीरूप हुये। इन टुकड़ों में से सूर्य-चन्द्ररूप दो नेत्र वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये।।६।।

किलशब्दोऽत्रागमप्रदर्शनार्थः। इदं जगत्किल तम आसीत्। अन्धकारमभूत् तस्मिं-

स्तमस्यपां मध्ये हैमे सौवर्णेऽण्डे तैजसे तेजोमये स्वर्भूशकले यस्याण्डस्यैकं शकलमेकं खण्डं स्वर्गो द्वितीयं भूः। तथाभूते ब्रह्मा पितामहोऽभवद् जज्ञे। कीदृशो ब्रह्मा? अर्कशशिनयनः। अर्क आदित्यः शशी चन्द्रः। एतौ नयने नेत्रे यस्य स विश्वकृद्विश्वस्रष्टा। एतदुक्तं भवति—तमोभूतेऽस्मिन् जगति भगवानव्यक्तः प्रजासिसृक्षुरादावपः ससर्ज, तासु च वीर्यमुदसृजत्। ततस्तदण्डं सौवर्णं सहस्रांशुसन्निभमभवत्, तस्मिन्नभ्यन्तरे ब्रह्मा जज्ञे, ततः स भगवांस्तत्र परिवत्सरमुषित्वा स्वयमेव ध्यानात्तदण्डं द्विधाऽकरोत्। ताभ्यां शकलाभ्यामेकं स्वर्गो द्वितीयं भूरिति निर्ममे। स ब्रह्मा सोमसूर्यनेत्रः सर्वलोकपितामहो विश्वकृदिति स्मृतिकाराः। तथा च भगवान्मनुः—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तं व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः।।
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ।।
सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्।।
तदण्डमभवद् हैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते।।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्।। इति।।६।।

अत्रैव पक्षान्तराण्याह—

कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य।
कालं कारणमेके स्वभावमपरे परे जगुः कर्म ।।७।।

जगत् की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं; जैसे कि कपिल मुनि प्रधान (मूलप्रकृति), कणाद द्रव्य आदि पदार्थ, कोई काल, दूसरे स्वभाव और मीमांसक कार्य को जगत् की उत्पत्ति का कारण मानते हैं।।७।।

कपिलः सांख्याचार्यो जगतः कारणं प्रधानमाह कथयति। सत्त्वरजस्तमसां त्रयाणां

गुणानां सुखदुःखमोहलक्षणानां प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थानां साम्यावस्था प्रधानमुच्यते। प्रधानमव्यक्तं प्रकृतिरिति पर्यायाः प्रकृतेर्महान् भवति महान् बुद्धिरध्यवसाय इति पर्यायाः। तस्या बुद्धेः सत्त्वाधिकाया धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति धर्माः। तस्या एव तमोऽधिकाया अधर्मोऽज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यमित्यध्यवसायो निश्चयः यथा पुरुष एवायं गौरेवायमश्व एवायमिति। ततो महत्तत्त्वादहङ्कारो भवति। अभिमान इत्यर्थः। यथाहं कुलजोऽहं सुरूपोऽहमीश्वर इत्यादि। अहङ्कारात् षोडशको गणो भवति। तद्यथा—एकादश करणानि सत्त्वाधिकादहङ्कारात्। तानि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि। श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिकेति। पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। वाक्पाणिपादपायूपस्थं चेति। एकादशं मनस्तच्च सङ्कल्पात्मकम्। सङ्कल्पोऽभिलाषः स्पृहेति पर्यायाः। तमोऽधिकादहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि भवन्ति। तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। एभ्यः पञ्चभ्यः पञ्च महाभूतानि भवन्ति आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि। तेभ्यः शरीरिणां शरीराणि। यतः पञ्चमहाभूतमयानि शरीराणि। एवं प्रधानं चिद्रूपस्य पुरुषस्य विश्वं भोगार्थं मोक्षार्थं च सृजति। भुक्तभोगस्य वैराग्योत्पादनं मोक्षावाप्तिरिति। तथा च कपिलाचार्यः—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।।
अध्यवसायो धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।।
अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
ऐन्द्रियमेकादशकं तन्मात्रपञ्चकश्चैव।।
सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।।
बुद्धीन्द्रियाणि कर्णत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थं कर्मेन्द्रियाण्याह।।
सङ्कल्पकमत्र मनस्तच्चेन्द्रियमुभयथा समाख्यातम्।
अन्तस्त्रिकालविषयं तस्मादुभयप्रचारं तत्।।
रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दास्तु पञ्चानाम्।।
स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च।।
युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।। इति।

द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्येति। कणभुक् कणादोऽस्य विश्वस्य द्रव्यादीन् पदार्थान् कारणमाह। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्याः षट्पदार्थाः। तत्र द्रव्यं नवविधम्।

तद्यथा—आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि पञ्च महाभूतानि। आत्मा मन: कालो दिक् चेति। तथा च तद्वाक्यम्—

खादीन्यात्मा मन: कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रह:। इति।

द्रव्याश्रिताश्चतुर्विंशतिर्गुणा:। के ते? उच्यन्ते। तत्रात्मगुणा नव विशेषगुणा:। तद्यथा—बुद्धिरिच्छा सुखं दु:खं प्रयत्न: संस्कार: पुण्यं पापं द्वेषश्चेति। तथा च—

'बुद्धीच्छासुखदु:खप्रयत्नसंस्कारपुण्यपापानि। द्वेषश्चे'ति।

नवामी गुणास्त्वनित्या: सुखदु:खादिभुजां कदाचिद् भवन्ति कदाचिन्न भवन्ति। एते विशेषगुणा:। महाभूतानां खादीनां पञ्च यथाक्रमं शब्दादयो गुणा: समाश्रिता:। तथा संख्या परिमाणं पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे स्नेहो द्रवत्वं गुरुत्वं च। एते चतुर्विंशतिर्गुणा:। पञ्चविधं कर्म। उत्क्षेपणमधिक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनं चेति। सामान्यं जाति:। सा च द्विविधा परमपरं च। सामान्यं परं सत्ताख्यं महाविषयत्वात्। यतो द्रव्यादयस्त्रय: पदार्था: सत्तया व्याप्ता:। अपरं द्रव्यगुणकर्मत्वादि। नित्यद्रव्यवृत्तय उक्ता विशेषा:। नित्यानि द्रव्याण्यात्माकाशपरमाणुप्रभृतीनि। अपृथक्सिद्धानामाधाराधेयभाव: सम्बन्ध: समवाय इति। एतेषां षण्णां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानं नि:श्रेयसस्य मोक्षस्य हेतु:। साधर्म्यं सादृश्यं वैधर्म्यं वैलक्षण्यं भेदो विशेष इति साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानमवबोधो नि:श्रेयसस्य मोक्षस्य हेतु:। एवमेते द्व्यणुकादिक्रमेण कार्यं निर्वर्तयन्ति। चतुर्विधा: परमाणव: क्षितिजलाग्निवायूनाम्। द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकमारभ्यते त्रिभि: परमाणुभिस्त्र्यणुकमारभ्यत इति क्रमेण स्थूलकार्यस्य द्रव्यस्योत्पत्ति:। एवं जगत्सम्भव:।

कालं कारणमेक इति च। केऽपि कालकारणिका: पौराणिका: कालं कारणमाहुरुक्तवन्त:। कालस्य लक्षणम्—

नित्यमेकं विभुं द्रव्यं परिमाणं क्रियावताम्।
व्यापारव्यतिरेकेण कालमेके प्रचक्षते।।
आदित्यग्रहतारादिपरिस्पन्दमथापरे।
भिन्नमावृत्तिभेदेन कालं कालविदो विदु:।। इति।

एवं जगत: काल: कारणं प्रजा: सृजति स एव संहरति। तथा च तद्वाक्यम्—

काल: सृजति भूतानि काल: संहरति प्रजा:।
काल: सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रम:।। इति।

यथा कालेन बलिरिन्द्र: कृत: कालेन ततो निवर्तित: काल एव पुनरेवं कर्तेति।

स्वभावमपर इति। अपरे अन्ये लौकायतिका: स्वभावं जगत: कारणमाहु:। स्वभावादेव जगद्विचित्रमुत्पद्यते स्वभावतो विलयं याति। तथा च तद्वाक्यम्—

क: कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च।
माधुर्यमिक्षो: कटुतां च निम्बे स्वभावत: सर्वमिदं प्रवृत्तम्।। इति।

परे जगुः कर्मेति। परे अन्ये मीमांसका जगतः कर्म कारणं जगुरुक्तवन्तः। शुभाशुभकर्म प्राणिनां पुण्यापुण्यरूपं जगतः कारणं शुभेन कर्मणा शुभफलभोगी जायते अशुभेन विपरीतमिति। तथा च—

पूर्वजन्मार्जितं यच्च कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
तदेव सर्वजन्तूनां सृष्टिसंहारकारणम्।। इति।।७।।

एवमनेकजन्मकारणेषूक्तेषु किं जगत्कारणं निश्चितमित्यत्र निषेधमाह—

तदलमतिविस्तरेण प्रसङ्गवादार्थनिर्णयोऽतिमहान्।
ज्योतिःशास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयोऽत्र मया ॥८॥

जगत् की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत रूप से विचार करना व्यर्थ है; क्योंकि इस विषय का वर्णन करने में भी अनेक अन्य अतिविस्तृत विषयों की आवश्यकता होगी। अतः इस प्रसङ्ग को छोड़ कर प्रस्तुत ज्योतिष शास्त्र के अङ्गों का वर्णन करने का ही यहाँ मैने निर्णय किया है।।८।।

अलमिति वारणपक्षहेतुर्दृष्टान्तैर्दर्शनान्तराणि निवर्त्य कारणनिश्चयः। स चेह प्रस्तुतः, कुतो जगदुत्पत्तिरिति। प्रसङ्गादतिविस्तरेण वादः प्रसङ्गवादः, प्रसङ्गवादे अतिमहानतीवार्थस्य निर्णयो विचारो य आरब्धस्तस्यालं भवतु। अनेनास्माकं न किञ्चित् प्रयोजनम्। यतो मया एतस्मिन् शास्त्रे ज्योतिःशास्त्राङ्गानां निर्णयो वक्तव्यः। ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रं ग्रहनक्षत्रयोगेन जगतः शुभाशुभसम्भवात्। ज्योतिःशास्त्रे यान्यङ्गानि गणितहोराशाखाख्यानि तेषां निर्णयो निश्चयो वक्तव्यः कथनीयः। यद्यपि गणितहोरास्कन्धौ प्रागेवोक्तौ तथाप्यत्राङ्गत्वेनोदाहृतौ। पुरुषलक्षणादौ जातकं समागमादिषु गणितमिति। अथवा तदुक्तस्यात्र फलकथनं क्रियत इति।।८।।

अथ ज्योतिःशास्त्रस्वरूपं तत्र संज्ञान्तराण्याह—

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कार्त्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः ॥९॥

अनेक भेदों से युत ज्यौतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध (संहिता, तन्त्र, होरा) हैं। इनमें से जिसमें सम्पूर्ण ज्यौतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको 'संहिता' कहते हैं। जिसमें गणित द्वारा ग्रहगति का निर्माण किया गया हो, उसको 'तन्त्र' कहते हैं। इनके अतिरिक्त जातक, फल, मुहूर्त आदि का निर्णय जिसमें हो, उसको 'होरा' स्कन्ध कहते हैं।।९।।

ज्योतिःशास्त्रं कीदृशम्। अनेकभेदविषयम्। भेदो विशेषः। अनेको बहुप्रकारो भेदोऽनेकभेदः। अनेकभेदो विषयो यस्य तद्भिद्यतेऽस्मादिति भेदः। यथा श्वेतवर्णयोगात् कृष्णो वर्णो भिद्यते। एवं बहुप्रकारो भेदः स्कन्धत्रयमध्यनिर्दिष्टस्तस्य विषयं गोचरं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं

स्कन्धत्रयेण गणितहोराशाखाख्येनाधिष्ठितं व्याप्तम्। **तत्कार्त्स्न्योपनयस्येति**। तस्य ज्योतिःशास्त्रस्य कार्त्स्न्येन निरवशेषेणोपनयः कथनं यस्मिन् शास्त्रे तच्छास्त्रं संहितेति मुनिभिर्गर्गादिभिर्नाम सङ्कीर्त्यते कथ्यते। तथा च भगवान् गर्गः—

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः। त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः।।

स्कन्धेऽस्मिन्निति। अस्मिन् ज्योतिःशास्त्रे ग्रहाणामादित्यादीनां या गतिर्गमनं प्रतिराशौ सञ्चरणं सा येन ज्ञायते तद् गणितं तस्य च तन्त्रमिति संज्ञा। असौ गणितस्कन्धस्तन्त्राभिधानः। **होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथित इति**। प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चीयते सा होरा। अन्यो द्वितीयोऽङ्गविनिश्चयः। होराख्यः कथित इति। होरास्कन्धो द्वितीयः। **स्कन्धस्तृतीयोऽपर इति**। अपरस्तृतीयोऽयं स्कन्धो वक्ष्यमाणः शाखाख्य इति।।९।।

अथ स्कन्धत्रयविभागमाह—

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः।
होरागतं विस्तरशश्च जन्म यात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम्।।१०।।

मैंने करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) में ताराग्रहों (भौमादि पञ्च ग्रहों) के वक्र, मार्ग, उदय आदि का वर्णन किया है तथा होरा (बृहज्जातक, बृहद्विवाहपटल आदि) ग्रन्थों में जन्म, यात्रा, विवाह आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।।१०।।

ताराग्रहा भौमादयस्तेषां वक्रं प्रतीपगमनम्। यथा भौमादिको ग्रहो मेषस्थो मीनं याति स प्रतीपगतित्वाद्वक्रित इत्युच्यते। अनुवक्रं स्पष्टगतित्वम्। वक्रां गतिं त्यक्त्वा पुनः स्पष्टां गतिमाश्रितोऽनुवक्रित इत्युच्यते। अस्तमयस्तेषामेव ग्रहाणां सूर्यवशेन भवति। यः कश्चिच्चन्द्रादिको ग्रहः सूर्यसमीपवर्ती भवति स च रविकरनिकराभिभूतो गगने लोकानामालोकं नायाति तदास्तमित इत्युच्यते। तथा च स एव ग्रह आदित्यमण्डलाद्विप्रकृष्टो यदा भवति तदा नभसि दृश्यते स चोदित इत्युच्यते। एवं वक्राऽनुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणाम्। आदिग्रहणात् परस्परं ग्रहाणां युद्धं चन्द्रेण नक्षत्रैश्च सह समागमो ज्ञेयः। एतदप्युपलक्षणार्थम्। मध्यगतिस्तिथिनक्षत्रच्छेदः स्फुटगतिस्त्रिप्रश्नश्चन्द्रार्कग्रहणे उदयास्तमयौ शृङ्गोन्नतिः समागमस्ताराग्रहसंयोग इत्येते मया करणे पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्ताः कथिताः सर्व एव। तथा **होरागतं विस्तरशश्च जन्मेति**। विस्तरशो विस्तरेण प्रदर्शनेन जन्म जातकं होरागतं होराशास्त्रसम्बन्धं यात्राविवाहैः सह पूर्वमादावेवोक्तं कथितम्। एतदुक्तं भवति—बृहज्जातकं बृहद्यात्रा बृहद्विवाहपटलं च मयादावेव विरचितमिति।।१०।।

अथात्र वक्ष्यमाणे स्कन्धेऽनुपयोगिकं त्यक्त्वा यत्सारं तद्वक्ष्यामीत्येतदाह—

प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च।
सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये।।११।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः।।१।।

शिष्यों के द्वारा किये गये प्रश्नों के प्राचीन मुनियों के द्वारा दिये गये उत्तर, अनेक प्रकार के कथाप्रसङ्ग, सूर्य आदि ग्रहों की उत्पत्ति आदि थोड़े उपयोगी विषयों को छोड़कर प्राणियों के हित के लिये समस्त प्रयोजनों से युत साररूप विषयों का इस ग्रन्थ में वर्णन करता हूँ।।११।।

इति 'विमला' टीकायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ॥१॥

प्रश्नो यथा। हिमवदादौ स्थितो गर्गादिको मुनिः शिष्येण क्रौष्टुकिपूर्वेण पृष्टः—भगवन्! ज्योतिःशास्त्रं ज्ञातुमिच्छामि किं स्वरूपं केनोत्पादितं किं तेन करणमित्यादि। प्रतिप्रश्नो यथा। गर्गादिको मुनिः शिष्यवचनं श्रुत्वाह—यत्त्वयाऽहं पृष्टस्तत्ते वक्ष्यामीति। तथा च प्रश्नः—

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानातीर्थसमाश्रिते।।
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराजिते।
सिद्धगन्धर्वसङ्कीर्णे देवर्षिगणसेविते।।
हुताग्निहोत्रमासीनमाश्रमे देवदर्शनम्।
वृद्धगर्गं द्विजश्रेष्ठं मुनिभिः परिवारितम्।।
अभिगम्य समीपस्थो विनयात् संश्रितव्रतः।
क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ प्रश्नं लोकानुकम्पया।।
भगवन् मुनिशार्दूल सर्वज्ञानविशारद।
ज्यौतिषं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि नः।।
ज्यौतिषं ज्ञानमुत्पन्नं कथमेतदनुत्तमम्।
केन वा पूर्वमेवोक्तमृषिणा दैवतेन वा।।
किमस्य कारणं लोके परिज्ञानाच्च किं फलम्।
नामतश्चानुपूर्वेण ब्रूहि मे मुनिसत्तम।।

इति मुनिप्रश्नः। तथा च प्रतिप्रश्नः—

एवमुक्तस्तु मुनिना वृद्धगर्गो महातपाः।
प्रोवाच तानृषीन् सर्वान् क्रौष्टुकिप्रमुखस्थितान्।।
श्रूयतां स्वर्ग्यमायुष्यं धर्म्यं पुण्यं यशस्करम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं द्विजानां पावनं परम्।।
कालज्ञानमिदं पुण्यमाद्यं हि ज्ञानमुत्तमम्।
सिसृक्षुणा पुरा वेदानेतत्सृष्टं स्वयम्भुवा।।
वेदाङ्गमाद्यं वेदानां क्रियाणां च प्रसाधकम्।
ज्योतिर्ज्ञानं द्विजेन्द्राणामतो वेद्यं विदुर्बुधाः।।

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् ।
ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेत्ति स तु वेत्ति परां गतिम्।।
चन्द्रनक्षत्रताराणां ग्रहाणां भास्करस्य च।
ज्योतिषामपि यज्ज्योतिर्ज्योतिषामपि पावनम्।।
तद्भावभाविनं युक्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
तस्मात्पूर्वमधीयीत ज्योतिर्ज्ञानं द्विजोत्तमः।।
धर्मसूत्रं ततः पश्चाद्यज्ञकर्मविधिक्रियाम्।
यज्ञाश्चायुष्यहोमाश्च चूडोपनयनादि च।।
साम्राज्यं पौर्णमास्यं च पितृदैवततर्पणम्।
सर्वारम्भाश्च जगतो लोके च विविधाः क्रियाः।।
न ज्यौतिषं विना तासां प्रवृत्तिरुपलभ्यते।
आप्यायनं च देवानां यज्ञाः प्रोक्ताः क्रियाश्रयाः।।
यज्ञार्थमपि च प्रोक्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
न ते च सम्प्रवर्तन्ते कालाज्ञानात् कथञ्चन।।
यज्ञक्रिया अहोरात्रं क्रियाश्चान्या जगद्धिताः।
तस्मात् पुण्यं समं वेदैर्यज्ञचक्षुः सनातनम्।।
स्वर्ग्यमध्येयमव्यग्रैर्ब्राह्मणैः शंसितव्रतैः।
ततः कालप्रसिद्ध्यर्थं राशयः पूर्वमीरिताः।।
अहोरात्रविभागश्च तिथीनां च क्रियाविधिः।
सोमसूर्यविलग्नानामृक्षाणां चापि निश्चयः।।
आदानयोगभोगाश्च विसर्गाश्चार्कसोमयोः।
दिनर्तुपक्षमासानां चन्द्रार्काणां विनिश्चयः।।
कर्मोपभोगमानानां लेख्यप्रश्नविधिस्तथा।
एवमाद्याः समस्ताश्च क्रिया ज्यौतिषसंश्रिताः।। इति।

एवमादिकाः प्रतिप्रश्नाः। तथान्यान् **कथाप्रसङ्गानिति**। आख्यायिका कथा तत्र प्रसङ्गः प्रसक्तिः। यथा भगवता पराशरेण पुष्करस्थाने कथा कृता। पुरा खलु सुरासुराणां महति महायुद्धे विग्रहे विपरीतविग्रहे भार्गवप्रयुक्ताभिचारोपहतवीर्यप्रभावाः सुराः शत्रुविक्रमोपहततेजसः स्वयम्भुवं शरणमभिजग्मुः। शुक्र एव वो गतिरित्यादिष्टाः सुराः शुक्रमभिसमेत्याऽऽनतास्ते देवाः पवित्रैर्मन्त्रैराद्यैरभिष्टुतवन्तः। सर्वरत्नधनधान्याधिपत्यं यज्ञभागं चास्मै दत्त्वा पैतामहा ऋषयो देवताश्च वरमभियाचयाम्बभूवुः। अनेकविधप्रयुक्तस्याद्यधर्मस्य परन्तपस्य यथा न स्यान्नाशस्तथा भगवान्नो विधत्ताम्। यथा च नो बृहस्पतिरुपाध्यायस्तथा भगवानपि भवत्विति। शुक्रः परमपीत्युक्त्वा देवान् शान्तिस्वस्त्ययनादिभिः पुनस्तेजसाभिवर-

यामास। न हि वेदमन्त्रकर्मणां यथावत्प्रयुक्तानां किञ्चिदप्यसाध्यं पश्यामस्तेषां शुद्धाशुद्ध-मन्त्राचार्यप्रतिग्रहीतृदेशकालकरणद्रव्यसाधनसामग्र्यम्। इतरथा हि मिथ्या हीनमन्त्रप्रयोगा यजमानस्यैवाभिचाराय भवन्ति। पुरा खलु सुराधिपत्यमाजिहीर्षुरतिप्रवृद्धवीर्योत्सेकाद्वृत्रः पुरन्दरमभिचचार। अथैनं कर्मविधिसमाप्ताविन्द्रशत्रुवृद्धिवचनसुरापराधिनमिन्द्र एव शत्रु-मभिवृद्धो वृत्रमभिजघान। एवमनियतकर्मारम्भाः शतशः सुरा विलयं जग्मुः। अतो विधिहीन-कर्मारम्भादनारम्भ एव श्रेयान्। तत्राऽभिचारकर्माऽथर्ववेदमन्त्रोपदिष्टैरुपकल्पयेदित्यादि।

एवमादिकाः प्रश्नाः प्रतिप्रश्नाः कथाप्रसङ्गाः स्वल्पोपयोगाः प्रायो न कुत्रचिदुपयुज्यन्ते। आचार्येण यद्यपि रोहिणीयोगादिष्वीषत्कथाप्रसङ्गः प्रदर्शितस्तथापि न दोषः। यत आचार्येण सहृदयहृदयाह्लादकं शास्त्रं कृतं तावन्मात्रेण तेषां चित्तरञ्जनं भवति।

तथा **ग्रहसम्भवांश्चेति**। ग्रहाणामादित्यादीनां सम्भवा उत्पत्तयः। कुतः सूर्यादय उत्पन्ना इति। तथा च भगवान् पराशरः—

'हिमवति हिमावदातेऽवनिधरवरशिखरविपरिवर्तितमिव विवस्वन्तं भगवन्तं पराशरमभिसङ्गम्य विनयावनतः कौशिकोऽभ्युवाच—भगवन्! सर्वात्मा कालगतिविधाता सूर्यस्तस्य चरितमभिशुश्रूषामहे। द्वादश च श्रूयन्ते। एक एव तपन् दृश्यते। शीतोष्णवर्षा-भ्रानिलानां कथमस्मात् प्रादुर्भावः। कथं चर्त्तवस्तन्मानमनुवर्तते। मार्गप्रमाणवर्णसंस्थानादि शुभाशुभफलमखिलमभिव्याहर्तुमर्हसी'ति।

तमुवाच भगवान् पराशरः—पुरा खल्वपरिमितशक्तिप्रभाववीर्यायुरारोग्यसुखैश्वर्यधर्म-सत्त्वशुद्धतेजसः पुरुषा बभूवुः। तेषां क्रमादपचीयमानसत्त्वानामुपचीयमानरजस्तमस्कानां लोभः प्रादुरभवत्। लोभात् परिग्रहं परिग्रहाद् गौरवं गौरवादालस्यमालस्यात्तेजोऽन्तर्दधे। अथ भगवान् परमर्षिरचिन्त्यः पुरुषो नारायणः स्ववेद्यमाद्यमात्मानं द्वादशधा कश्यपाददिते-र्जनयामास। येनानन्तं पुनर्जगदभवत्। यान् द्वादशादित्यानाचक्षते। इन्द्रो विष्णुर्विवस्वा-न्मित्रोंऽशुमान् धाता त्वष्टा पूषा वरुणोऽर्यमा भगः सवितेति। अथ सवितारं पितामहोऽतितुष्टाव वरार्हं चैनं वरयाञ्चकार। यथा द्वादशादित्येभ्यस्त्वामुपस्थास्यतीति। मत्तो योगस्तेजो रुद्रात् स्वयमग्नीषोमौ वायुरमृतं मर्त्यं चेति। चन्द्रस्य पराशरमुनिना सम्भवो नोक्तः।

राहोर्यथा—अथ भगवन्तमनिलबलसमीरितप्रोद्धतहुतवहप्रभाभासुरमवितथदर्शनमु-दासीनमाश्रमस्थमभिसंक्रम्य कौशिको विनयात् पराशरमुवाच—भगवन्! सकलभुवन-विलयोद्भवस्थितिविकरणौ कथमुपसृज्येते सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति को वा ग्रहो ग्रहणप्रयोजनं फलं वा किमस्य ग्रहणे नियतमनियतं चेति।

तमुवाच भगवान् पराशरः—पुरा पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिरकालयाञ्चाकोपाद्दारुणं यमकालान्तकोपमं सुतमदात्। यं राहुरित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्गरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधा-द्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजय-

मर्कचन्द्रसम्भक्षणं च वरमभिवरयामास। तस्मै भगवानमरगुरुः स्वयम्भूः प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्तस्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वाऽन्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहुः। ततो हरिररिविमथनं चक्रमुपरि परिक्षिप्यास्य शिरश्छित्त्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं कुर्वन् जगतः शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसीति।

भौमस्य यथा—अथ भगवान् जगदादिसर्ग एव प्राक् प्रजापतिः सिसृक्षयेश्वरः करेण क्रोधात् स्वतेजसोऽभिनिष्यन्दमग्निं तेजस एव जुहाव। अथ तदग्नितोऽवनिमुपसृतमुर्व्यग्निसर्वतेजोभिः सम्भृतमुदतिष्ठद्यं प्रजापतिं प्राजापत्यं भौममिति मन्यन्ते। स स्वयम्भुवो नियोगादृक्षचक्रमनुचरन्नशेषग्रहसामान्यचाराद्वक्रानुवक्राभ्यां चराचरं जगद्विशिष्टाविशिष्टेन कर्मणा युनक्तीति।

बुधस्य यथा—प्रागसुरसुरसन्निपातेऽसुरगुरुमाययाभिमुह्यन्तः सुराः स्वयम्भुवमभिसङ्गम्योचुः। भगवन्निद्राभिभूताः स्मः। स्वपतां नो द्विषद्विघातहेतुमभिध्यायस्वेति। स्वयम्भुवा ग्रहपतिरपां तेजः सोमोऽभिध्यायोक्तः। सुतस्ते त्रिभुवनोद्भावनविलयनगोपायनप्रजापतिर्भविता। सकलविबुधगणान् बुधोऽभिरक्षते। ततो जगदभिगुप्त्यर्थं गतिवर्णचारमार्गास्तमनोदयप्रवासैर्जगतः शुभाशुभकरो भवतीति।

बृहस्पतेर्यथा—अथामरवरगुरुमधिकृत्य गुरुर्भगवान् पराशरः शिष्येणाभिनन्दितः सुरगुरुचरितमखिलमभिप्रणम्य गुरुमेवोवाच। आदिसर्ग एव पितामहोऽङ्गिरसं मनसाभिजज्ञे। अङ्गिरसोऽभिमुखाद् ब्रह्मधामैव त्रिभुवनगोप्ता प्रजापतिर्भगवान् बृहस्पतिरजायत। तमुत्पन्नमात्रमेव स त्रैलोक्याधिपतिः पिनाकभृत् सुरवरगुप्तर्थं वरार्हं वरयामास। पितामहमिव त्वां प्रभाप्रभावर्द्धिसिद्धियोगज्ञानमन्त्रब्रह्मकर्माण्युपस्थास्यन्ति। गुरुरपि च सुराणां जगति शुभाशुभकारी त्वमेव भवितेति।

शुक्रस्य यथा—प्राग्भगवन्तममलतपसमनेकर्षिगणपरिवृतमशक्तदृशमपगतसंशयमुपेत्य संशयात् कौशिकः पराशरं विनयादवोचत्। भगवन्! दितिसुतगुरुचरितमिति यदग्रे भगवानुवाच तत्संशयो नः कथममरवरवपुषस्तस्यायत्ताः प्रजाभावाभावास्तमुवाच भगवान् पराशरः। प्रागादिसर्गे च भगवतस्त्रिलोचनस्य शम्भो रोरूयमाणस्य पितामहो भव इति यन्नामाकरोत्तस्यापो मूर्तिः सा भृगुकन्यका यस्यामुशना यं शुक्रं जनयामास स पुराऽयुतवर्षकेण कणधूम्रव्रतेन त्रिभुवनगुरुं पिनाकिनमाराध्य सकलधनपतित्वममरवरवपुः प्रज्ञाप्रभावतपःश्रुततेजोऽधिकत्वमसुरगुरुमर्कवर्षनिग्रहं प्रजापतित्वं च लेभे। तस्य भगवतश्चरितमुदयास्तमयर्क्षमार्गवर्णवीथीमण्डलैरुपदिशन्तीति।

सौरस्य यथा—अथ भगवतः पुरा आदियुग एवातिभासुरमभितपतो विवस्वतस्तेजसाऽभिव्यथ्यमानेषु भूतेषु स्वयं स्वयम्भूर्भगवन्तं विवस्वन्तमुवाच। अलमतितेजसा। न देवदेवा अपि तत्तेजसः परमं बलमतिसोढुं समर्थाः। किमङ्ग पुनः प्रजाः। प्रजापतिनेत्यादिष्टो रविरतितेजोनिवारणादतिक्रुद्धः स्वभावात् क्रोधमेवापत्यं जनयामास यं शनैश्चरमित्याचक्षत इति।

अगस्त्यस्य यथा—अथ भगवन्तममितयशसं पराशरं कौशिकोऽभ्युवाच। भगवन्! याम्यायां दिशि ज्योतिष्मद्ग्रहरूपमुदितमालक्ष्यते नक्षत्रग्रहमार्गव्युत्क्रान्तचरितं न वेद्मि। किं तत्किमर्थं वा प्राचीं दिशमपहाय दक्षिणेन प्रावृट्कालान्तोदितं शरत्कालान्तोदितं वा कतिपयाहान्यदृश्यं भवति। तन्नो भगवन्! वक्तुमर्हसीत्येवमुक्तो भगवानुवाच—श्रुतपूर्वस्ते पृथिव्यां मेरुमन्दरातिरिक्तप्रभावः शैलराड् विन्ध्यो नाम। स स्ववीर्यबलसमुच्छ्रायविशेषमन्विष्यमाणो दिव्यं वर्षसहस्रमुग्रं तपस्तेपे। स पितामहादहन्यहनीषुपातप्रमाणमुच्छ्रायेण वर्द्धस्वेतीप्सितं वरं लेभे। तस्यातिवृद्ध्या दिवसकर आवृतस्तेनान्धमिव जगदभवत्। ततो देवर्षिगन्धर्वोरगयक्षरक्षांसि पितामहमभिजग्मुः। भगवन्! विन्ध्यवृद्ध्या जगदवसीदत इत्यूचुः। ततः स्वयम्भुवा अगस्त्यनामा महर्षिरनेकवर्षसहस्रसम्भृततया ध्यात उक्तश्च। त्वमेकः शक्तो विन्ध्यातिवृद्धिनिवर्तनं कर्तुं कृते चास्मिन् कर्मणि नभसि विराजिष्यसे। दर्शनादेव ते जगति सर्वविघ्नविनाशो भविष्यति। एवमस्त्विति कृत्वा महर्षिरगमद्विन्ध्यसकाशम्। उवाचैनमनन्तरं मे प्रयच्छ तीर्थयात्रां करिष्यामि। अनागते च मयि त्वया न वर्द्धितव्यम्। इत्येवमुपश्रुत्य तपःप्रभावविस्तरस्याभिज्ञो महर्षेर्विन्ध्याचलश्चलच्छिखरपादो भयविषादविक्लवमतिरुवाच। भगवन्! बृहदसङ्कीर्णमविषममनेकतरुगणोदकमेकदेशमार्गमायोजयिष्यामि येन भगवान् यास्यतीत्येवमुक्तो महर्षिश्चुकोप। क्रोधरक्तान्तनेत्रोऽवदत्। ममाज्ञाक्षोभात् कदाचित् सर्वथैव न भविष्यसीति। ततः शैलस्तत्प्रभावभयभीतः स्वभावमुपगतोऽनागते भगवति न वृद्धिं यास्यामीति। ततो महर्षिर्दक्षिणां दिशमगमत्। स एषोऽगस्त्यः शैलवृद्धिव्याघातनिमित्तं न प्रत्येति दक्षिणस्यामुदेति तस्यामेवास्तं गच्छतीति।

केतोः केतुचारोक्ता एवोत्पत्तिः। तथा च भगवान् गर्गः—

जातस्तूशनसः शुक्रः सूर्यपुत्रः शनैश्चरः।
पुत्रः सोमस्य तु बुधो भूमेरङ्गारकः स्मृतः।।
पुत्रमङ्गिरसः प्राहुर्बृहद्वाक्यं बृहस्पतिम्।
राहुः स्वर्भानुपुत्रः स्यात् पुत्रः केतुर्विभावसोः।।
मनसा ब्रह्मणा ख्यातावुभौ सोमदिवाकरौ। इति।

ग्रहसम्भवानेतानपि स्वल्पोपयोगान् सन्त्यज्य त्यक्त्वा। तथा अन्यान्यपि फल्गून्यसाराणि यान्ययुक्तिमद्भिर्गणितगोलबाह्यैर्विरुद्धान्यभिहितानि। यथा भुवनप्रविभागे भूमेर्महाप्रमाणत्वं दर्पणोदराकारतां च कथयन्ति। मेरोश्च महाप्रमाणं वृत्तत्वं तत्पृष्ठासक्तो ध्रुवश्च ग्रहनक्षत्राणि चावलम्बमानानि। तथा च भगवान् पराशरः—

सप्तषष्टिसहस्राण्यशीतियोजनकोट्यो भूर्यत्पृथिवीमण्डलं परमस्मादगम्यं तमः। तन्मध्ये हिरण्मयो मेरुश्चतुरशीतियोजनसहस्रोच्छितः षोडश चाधस्तात् त्रिगुणविस्तारायामो यं स्वर्गमाचक्षते। तन्मध्येनार्कचन्द्रौ ज्योतिश्चक्रं च पर्येति। तथा च—

मेरोरर्धविभागे सूर्यश्चन्द्रो द्वितीयके त्वटते।
ग्रहनक्षत्रतारकासहितौ द्वौ कृतैककालविभागौ।।

इति गोलकशास्त्रे निश्चयः। तस्य छायां निशामिच्छन्ति कुशलाः। एवमादिकं बहुप्रकारमस्माकं गोलज्ञानेन सिद्ध्यति। तथा च—

मेरोरर्धप्रमाणेन सूर्यस्य गतिरुच्यते।
भगणस्याथ पञ्चाशदादित्यादुपरि स्थिता।।
भगणात् सप्तषष्टिस्तु सोमस्य गतिरुच्यते।
अध्यर्धं तु गतेः सोमाद्भार्गवस्य गतिः स्मृता।।
बृहस्पतिर्बुधश्चैव प्राजापत्यः शनैश्चरः।
केतवश्च ग्रहाः सर्वे ज्ञेयाः सोमसमा गतौ।।
निमेषान्तरमात्रेण योजनानां शतं शतम्।
पर्येति भगवानर्को भावयन् भूतभावनः।।
अन्ते निम्नोन्नता मध्ये कूर्मपृष्ठोपमा मही।
त्रिगुणाद् भूपरीणाहादष्टभागो दिगन्तरम्।।

एवमादिकानि वाक्यानि निरुपपत्तिकानि गोलविरुद्धान्यसाराणि सन्त्यज्य यत्सारभूतं श्रेष्ठं लोकप्रत्यक्षजननं भूतार्थं सत्यार्थं दृष्टप्रत्ययं सकलैः समग्रैः परिपूर्णैरर्थैरनाकाङ्क्षैः प्रवक्ष्ये कथयिष्य इति।।११।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ॥१॥

अथ सांवत्सरसूत्राध्याय:

एवं स्वशास्त्रस्य स्वरूपप्रदर्शनेनोत्कर्षं प्रदर्श्याधुना कीदृग् ज्योति:शास्त्रेऽधिकारीत्यतोऽधिकारिस्वरूपं प्रदर्शयितुमाह—

अथात: सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्याम: ॥१॥

इसके बाद इस अध्याय में सांवत्सरसूत्र (ज्यौतिषी का लक्षण) कहते हैं।।१।।

अथात इत्ययं समुदाय:। अथातोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्याम: कथयिष्याम:। अथवाऽथशब्दो मङ्गलार्थ:। अतोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं विविधैरर्थैरा शास्त्रपरिसमाप्तेर्व्याख्यास्याम: कथयिष्याम:। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सर:। सूत्र्यते अर्थो येन तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थ:।।१।।

तच्चाह—

तत्र सांवत्सरोऽभिजात: प्रियदर्शनो विनीतवेष: सत्यवागनसूयक: सम: सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोष:। प्राय: शरीरकारानुवर्त्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति ॥२॥

कुलीन, देखने में प्रिय, नम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग–द्वेष से रहित, दृढ़ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वाङ्गपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त ज्यौतिषी होना चाहिये; क्योंकि शरीर की आकृति के अनुरूप ही दोष–गुण होते हैं।।२।।

तत्र सांवत्सर इति। तत्र तस्मिन् ज्योति:शास्त्रे सांवत्सरो दैवज्ञ: कीदृश:। संवत्सरो वर्षं तत्र शुभाशुभज्ञानार्थं य: कृतो ग्रन्थ: स सांवत्सरस्तमधीते वेद वा य: सोऽपि सांवत्सर:। स चाभिजात: कुलीन: सांवत्सरकुलप्रसूत इति केचित्। यदि तत्कुलेऽपि जातो वक्ष्यमाणगुणलक्षणयुक्तो न भवति तत्किं तेन। तस्मात् सांवत्सरकुले निरवद्ये जातेनाऽन्यस्मिन् प्रधानकुले वा सांवत्सरकुलाच्च येन विद्या सागमा अधीता सोऽत्राभिजातो विवक्षित:। प्रियदर्शनो दृश्यमान: सुखजनको विनीतवेष उद्भटो वेष: शरीरालङ्करणं यस्य। आचार्येणान्यत्राप्युक्तम्—'सांवत्सरस्तस्य विनीतवेष:' इति।

सत्यवाक् अवितथभाषी। अनसूयक: अनिन्दक:। गुणेषु दोषाविष्करणमसूया। असूया कुत्सा। न असूयकोऽनसूयक:। समो रागद्वेषरहित:। शत्रौ मित्रे च तुल्यस्नेह इत्यर्थ:। सुसंहतोपचितगात्रसन्धि: सुसंहता अतिसंलग्ना उपचिता मांसला गात्रेषु बाहु-

हस्तोरुजानुगुल्फपादेषु सन्धयो यस्य। अविकलोऽव्यङ्गः परिपूर्णावयवः। चारुकरचरण-नखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गः। करौ हस्तौ। चरणौ पादौ। नखाः कररुहाः। नयने चक्षुषी। चिबुकमधराधोभागः। दशना दन्ताः। श्रवणौ कर्णौ। ललाटं मुखपृष्ठभागः। भ्रुवौ नयनोपरि रोमलेखे। उत्तमाङ्गं शिरः। एतानि चारूणि दर्शनीयानि यस्य। प्रशस्त-लक्षणयुक्तानीत्यर्थः। वपुष्मान् वपुः शरीरं शोभनं विद्यते यस्य। रूपवानित्यर्थः। गम्भीरो-दात्तघोषः गम्भीरः सानुनाद उदात्त उद्भटो घोषः शब्दो यस्य। मेघमृदङ्गसमध्वनिरित्यर्थः। हि यस्मादर्थे। प्रायो बाहुल्येन शरीराकारानुवर्तिनः। शरीरस्याकारः शरीराकारस्तमनुवर्तन्ते शरीराकारानुवर्तिनः। के ते गुणा दोषाश्च भवन्ति। शरीरस्य सादृश्यं गुणा दोषाश्चानुवर्तन्ते। निर्दोषं शरीरं गुणा अनुवर्तन्ते। सदोषं शरीरं दोषाश्चानुवर्तन्त इति। तथा चोक्तम्—

'यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति' इति।।२।।

अथ गुणानाह—

तत्र गुणाः—शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः स्व-तन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभावः पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिता-होराग्रन्थार्थवेत्तेति ॥३॥

दैवज्ञों के गुण कहते हैं—पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, निर्मल चित्त वाला, सभी में निर्भय, सहपाठियों से पराजय को नहीं पाने वाला, चेष्टाओं को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र-पाठ-विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या)—इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ विना पूछे भी शान्तिकर्म बताने वाला और ग्रहों की गणित, संहिता, होरा—इनके ग्रन्थों के अर्थ को जानने वाला दैवज्ञ होना चाहिए।।३।।

तत्र गुणा इति। तत्र तस्मिन् सांवत्सरे शरीरे वा गुणाः। के ते? तद्यथा शुचिः शास्त्रोक्तशौचानुष्ठाता परस्वदेवधनाद्यलुब्धश्च। दक्षश्चतुरः शीघ्रकारी। प्रगल्भः सभायां वक्तुं शक्तः। वाग्मी प्रशस्ता शास्त्रार्थानुसारिणी वाग्यस्य। प्रतिभानवान् प्रतिभा एव प्रतिभानम्, तद्विद्यते यस्यासौ प्रतिभानवान्। पृष्टः सन् पौर्वापर्येण शास्त्रं स्मृत्वोत्तरं ददातीत्यर्थः। देशकालवित् देशवित्सर्वदेशेषु व्यवहारज्ञः। मध्यदेशादिष्वार्यदेशेषु यच्चेष्टितं तज्जानाति। कालस्वरूपज्ञः पूर्वाह्णमध्याह्नाऽपराह्णादिषु कालेषु घर्मवर्षशीतसाधारणकालेषु चेदं क्रियते इदं न क्रियत इति जानाति। अथवा देशमानूपजाङ्गलमरुभूमीत्यादिकं

हस्त्यश्वखरोष्ट्रनावादिषु मनुष्यगम्यं जानाति। कालं यात्रादाविदं योग्यमिदमयोग्यमिति जानाति। अथवा देशविद्यथा—कश्मीरादिषु हिमप्रधानेषु बहुव्रीहिसम्भवं दृष्ट्वोत्पातं न वक्ति मध्यदेशादौ वक्ति। कालविद्यथा—

चित्रगर्भोद्भवा: स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।
पत्राङ्कुरलतानां च विकारा: शिशिरे शुभा:।। इति।

सात्त्विको निर्मलचित्त:। भयहर्षशोकादिभिरनभिभवनीय:। न पर्षद्भीरु:। परिषदि सभायामभीरुस्त्यक्तभय:। सहाध्यायिभिरनभिभवनीया। सह सार्द्धमध्ययनं पठनं कृतं यैस्ते सहाध्यायिनस्तै: सहाध्यायिभि: समानतन्त्रैरनभिभवनीयो ज्ञेय:। कुशल: शिक्षित इङ्गितज्ञ:। अव्यसनी गीतवाद्यनृत्यस्त्रीद्यूतद्युनिद्रादिषु व्यसनेष्वसक्त:। शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञ:। उत्पातप्रतीकारार्थं वेदोक्तमन्त्रपाठविनियोगानुष्ठाता शान्तिकविद्याभिज्ञ:। आयुर्धनादिष्वधिकरणं पौष्टिकविद्या तदभिज्ञ:। कृत्यावेतालोत्थापनमारणोच्चाटनविद्वेषणवशीकरणस्तम्भनचालनादिकमभिचारविद्या तदभिज्ञ:। स्नानविद्यासु नित्यनैमित्तिककाम्यक्रियाङ्गास्वभिज्ञ:। पुष्यस्नानादिषु वेत्ता। आभिमुख्येन जानातीत्यभिज्ञ:। विबुधार्चनव्रतोपवासनिरत:। विबुधा देवास्तेषामर्चनं पूजा आवाहनस्नानमाल्यानुलेपनधूपोपहारवाद्यगेयनृत्यस्तोत्रपाठादिका तस्यामभिज्ञ:। व्रतानि कृच्छ्रपराकचान्द्रायणप्रभृतीनि। उपवास: अभोजनम्। यथा—एकादश्यां न भुञ्जीतेत्यादि, एतेषु निरत: सक्त:। स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभाव:। स्वतन्त्रं ग्रहगणितं तत्रार्कचन्द्रग्रहणग्रहसमागमयुद्धानामनागताभिधायकत्वाद्यन्त्राणां कूर्ममयूरचापशङ्खघण्टापुरुषादीनां काष्ठादिविरचितानां स्वयमेव कालव्यञ्जकत्वाद्यदाश्चर्यं कुतूहलं तेनोत्पादितो जनित आत्मन: प्रभाव उत्कर्षो येन। पृष्टाभिधायी परिपृष्टस्यार्थस्याभिधायको वक्ता। नापृष्टस्य किन्त्वन्यत्र देवात्ययात्। दिव्यान्तरिक्षभौमेषूत्पातेषु यद्भाव्यशुभं स दैवात्ययस्तन्निवारणाय शान्त्यादिकमपृष्टेनाप्यभिधातव्यं वक्तव्यम्। ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवेत्ता। ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्तिकायां संहितायां फलग्रन्थे होरायां जातकादौ ग्रन्थार्थवेत्ता ग्रन्थज्ञोऽर्थज्ञश्च। सूत्रार्थपाठकस्तदर्थविदित्यर्थ:।।३।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता ।।४।।

ग्रहगणित के प्रसंग में पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर, पैतामह—इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घटी, पला, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता ज्यौतिषी को होना चाहिये।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में युगों का प्रमाण—तैंतालीस लाख बीस हजार सौरवर्ष (४३२००००) सन्ध्या सन्ध्यांशसहित चारो युग (एक महायुग) का मान है। इसके

दशमांश ४३२००० को चार से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित कृतयुग का मान = १७२८०००, तीन से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित त्रेता का मान = १२९६०००, दो से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित द्वापर का मान = ८६४००० और एक से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित कलियुग का मान = ४३२००० होता है।

सौरवर्ष-प्रमाण—मेष से लेकर मीनपर्यन्त जितने सायनकाल में रवि भोग करता है, वह सौरवर्षकाल होता है। यह वर्षादि ३६५/१५/३०/२२/३० होते हैं।

अयनज्ञान-प्रमाण—मकरादि छः राशियों में यदि सूर्य हो तो उत्तरायण और कर्क आदि छः राशियों में हो तो दक्षिणायन होता है।

मकर-कुम्भ के सूर्य में शिशिर ऋतु, मीन-मेष के सूर्य में वसन्त ऋतु, वृष-मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म ऋतु, कर्क-सिंह के सूर्य में वर्षा ऋतु, कन्या-तुला के सूर्य में शरत् ऋतु और वृश्चिक-धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है।।४।।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्ता भवन्ति। के ते? पौलिशरोमकवासिष्ठ-सौरपैतामहाः, पुलिशसिद्धान्तः, रोमकसिद्धान्तः, वासिष्ठसिद्धान्तः, सूर्यसिद्धान्तः, ब्रह्म-सिद्धान्त इति। एतेषु सिद्धान्तेषु पञ्चसु वेत्ताऽभिज्ञः। युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाम-मुहूर्तनाडीविनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवस्य कालस्य वेत्ता। युगानां कृतत्रेताद्वापरकलीनां प्रमाणज्ञः। यथैतावद्भिः सौरैर्वर्षैः कृतयुगं भवति, एतावद्भिस्त्रेता, एतावद्भिर्द्वापरम्, एता-वद्भिः कलिरिति। तद्यथा—खखखदन्ताब्धयः कलियुगपरिमाणं तदेव द्विगुणं द्वापरप्रमाणं त्रिगुणं त्रेताप्रमाणं चतुर्गुणं कृतयुगप्रमाणं भवति। एतैः सर्वैरेकीकृत्य चतुर्युगप्रमाणं भवति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

> खचतुष्टयरदवेदा ४३२०००० रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
> सन्ध्यासन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादीनि।।
> युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता।
> द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति।।

तथा च पुलिशसिद्धान्ते दिव्येन मानेन पठ्यन्ते—

> अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात् कृतादीनाम्।
> अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुगं तदेकत्वम्।। इति।

तद्यथा—४८००। ३६००। २४००। १२००। एते दिव्येन मानेनातः षष्टिस-मधिकशतत्रयेण गुणिता जाताः १७२८००० कृतम्। १२९६००० त्रेता। ८६४००० द्वापरम्। ४३२००० कलिः। एवं युगानां वेत्ता।

यावता कालेनार्को द्वादशराशिकं भचक्रं मेषादिमीनान्तं भुङ्क्ते, तद्वर्षं तेन सौरवर्षप्रमा-णेन युगसंख्यानम्। एवं रविराशिभोगो मासः। द्वादशभिर्मासैर्वर्षमिति। तथा च ब्रह्म-सिद्धान्ते—'नृवत्सरोऽर्काब्दः' इति।

अयने दक्षिणोत्तरे षड्भि: सूर्यमासैरुत्तरमयनं षड्भिर्दक्षिणमिति। तत्र मकरादिराशिषट्कस्थेऽर्क उत्तरमयनं कर्क्यादिराशिषट्कस्थे दक्षिणमिति।

ऋतव: षड् भवन्ति शिशिरादय:। ते च मासद्वयात्मका:। तद्यथा—मकरकुम्भस्थेऽर्के शिशिर:। मीनमेषस्थे वसन्त:। वृषमिथुनस्थे ग्रीष्म:। कर्कटसिंहस्थे वर्षा:। कन्यातुलास्थे शरत्। वृश्चिकधन्विस्थिते हेमन्त इति। तथा चाचार्य:—

उदयगयनं मकरादावृतव: शिशिरादयश्च सूर्यवशात्।
द्विभवनकालसमाना दक्षिणमयनं च कर्कटकात्।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

द्वौ द्वौ राशी मकरादृतव: षट् सूर्यगतिवशाद्योज्या:।
शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद: सहेमन्ता:।। इति।

मासश्चैत्रादिक:। स च रविराशिभोगस्त्रिंशद्दिनात्मक:। पक्षो मासार्धं पञ्चदश दिनानि। अहोरात्रं षष्टिर्घटिका:। यामोऽहोरात्राष्टमभाग:। दिनस्य चतुर्थभागो रात्रेश्च। मुहूर्तोऽह्न: पञ्चदशांश:, रात्रेश्च पञ्चदशभाग:। नाडी घटिकाऽहोरात्रषष्ट्यंश:। विनाडी विघटिका घटिकाषष्ट्यंश:। प्राण: श्वासनिर्गमप्रवेशौ। त्रुटिश्चक्षुर्निमेषद्वयम्। त्रुट्याद्यवयवस्तदर्धम्। आदिग्रहणात् त्रुटिचतुर्थभागमपि। एवमादिकस्य वेत्ता।

तथा च भगवान् पराशर:—यावता कालेन विकृतमक्षरमुच्चार्यते स निमेष:। निमेषद्वयं त्रुटि:। त्रुटिद्वयं लव:। लवद्वयं क्षण:। दश क्षणा: काष्ठा। दश काष्ठा: कला। दश कला नाडिका। नाडिकाद्वयं मुहूर्त:। त्रिंशन्मुहूर्ता दिनमिति। एवं कालस्य वेत्ता। तथा क्षेत्रस्य वेत्ता। तत्र कालक्षेत्रयो: साम्यम्। तद्यथ—काले षट् प्राणा विघटिका। विघटिकानां षष्ट्या घटिका। घटिकानां षष्ट्या दिनम्। दिनानां त्रिंशता मास:। मासैर्द्वादशभिर्वर्षं भवति। अथ क्षेत्रे। षष्ट्या तत्पराणां विलिप्ता भवति। विलिप्तानां षष्ट्या लिप्ता। लिप्तानां षष्ट्या भाग:। भागानां त्रिंशता राशि:। राशिद्वादशकं भगण इति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

प्राणैर्विनाडिका षड्भिर्घटिकैका विनाडिकाषष्ट्या।
घटिकाषष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता मास:।।
मासा द्वादश वर्षं विकलालिप्तांशराशिभगणान्त:।
क्षेत्रविभागस्तुल्य: कालेन विनाडिकाद्येन।।

तथा च पौलिशे—

षट् प्राणास्तु विनाडी तत्षष्ट्या नाडिका दिनं षष्ट्या।
एतासां तत्त्रिंशन्मासस्तैर्द्वादशभिरब्द:।।
षष्ट्या तु तत्पराणां विकला तत्षष्टिरपि कला तासाम्।
षष्ट्यांशस्ते त्रिंशद्राशिस्ते द्वादश भचक्रम्।।

तथा चार्यभट:—

वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत् स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवस: षष्टिश्च विनाडिका नाडी।।
गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणा:।
एवं कालविभाग: क्षेत्रविभागस्तथा भगणात्।।४।।

अन्यदप्याह—

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञ:।।५।।

सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र—इन चारो मासों को और अधिकमास, क्षयमास— इनके उत्पत्ति-कारणों को जानने वाला ज्योतिषी होना चाहिये।।५।।

विशेष—सूर्य के एक अंश भोग्य काल को एक सौर दिन, सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक एक सावन दिन, नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय तक एक नाक्षत्र दिन और एक तिथि भोग्य काल को चान्द्र दिन कहते हैं।

अधिमास और क्षयमास का लक्षण—शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमा तक एक चान्द्र मास होता है। यदि इस चान्द्र मास में रवि की संक्रान्ति न हो तो अधिक मास एवं दो संक्रान्ति हो तो क्षयमास होता है। क्षयमास कार्तिक आदि तीन महीने में ही होता है तथा जिस वर्ष में क्षयमास होता है, उस वर्ष में दो अधिमास पतित होते हैं।

चतुर्णां च मानानामिति। त्रिंशद्भागपरिकल्पनया यावता कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते तत्सौरं दिनम्। तत्त्रिंशता मास:। एवं राशिभोगेन संक्रान्त्यवधिर्यो मास एतत्सौरं मानम्। सर्वेषां ग्रहनक्षत्राणां स्वोदयात् पुन: स्वोदयं यावत्तत्सावनं दिनम्। तत्त्रिंशता मास इति। एवं सावनं मानम्। नाक्षत्रं मानं चन्द्रनक्षत्रभोग:। यावता कालेन नक्षत्रमेकं चन्द्रमा भुङ्क्ते तन्नाक्षत्रं दिनम्। तत्र च दिनानां सप्तविंशत्या मासो भवति। एवं नाक्षत्रं मानम्। अमावास्यान्तात् प्रतिपत्प्रभृत्यर्काच्चन्द्र: प्रतिदिनमग्रगो भूत्वा प्रतिपदाद्यान् पञ्चदश तिथीन् निर्वर्तयति यावत्पौर्णमास्यन्तम्। तथा च कृष्णपक्षप्रतिपत्प्रभृत्यर्कसमीपं क्रमेण गत्वा अमावास्यान्तं निर्वर्तयतीति चान्द्रं मानम्। एवं तिथिरेव चन्द्रदिनम्। त्रिंशत्तिथयो मास इति। तथा च पुलिशसिद्धान्ते—

सावनमकृतं चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य।
सौरं भूदिनराशिं शशिभगणदिनानि नाक्षत्रम्।।

सावनमकृतं स्वयमेव सिद्धं यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्त एव सौरमानेनाब्दा:। यदस्माकं सौरमानं तत्पुलिशाचार्यसावनम्। तत्र चतुर्युगाब्दा: ४३२००००। एत एव द्वादशहता: सावनमासा: ५१८४००००। एतावत्यश्चतुर्युगेणार्कसंक्रान्तय:। एतास्त्रिंशद्गुणा: सावनमानदिनानि १५५५२०००००। एतावतश्चतुर्युगेणार्को भागान् भुङ्क्ते, तत्र यावता

कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते स सावनमानदिवसः सिद्धः—'चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्ये'ति। तद्यथा—

परिवर्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते।

इति रविभगणाः ४३२००००।

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियैश्चन्द्रः।

इति चन्द्रभगणाः ५७७५३३३६।

अर्कचन्द्रभगणानामन्तरम् ५३४३३३३६।

एतान् सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य त्रिंशता सङ्गुण्य दिनरूपा भवन्ति। ते च दिनीकृत्य जाताः १६०३०००००८० चतुर्युगेणैतावन्तश्चान्द्रेण मानेन दिवसा भवन्ति। यदेव चान्द्रं मानं सैव तिथिः।

सौरं भूदिनराशिमिति। भूदिनराशिश्चतुर्युगभगणाः। तस्यानयनमहर्गणविधिनैव। तच्च प्रदर्श्यते। सावनमासानामेतेषां ५१८४०००० चतुर्युगाधिमासका उच्यन्ते—

अधिमासकाः षडग्नित्रिकदहनच्छिद्रशररूपाः।

न्यासः १५९३३३६ एतान् संयोज्य जाताः ५३४३३३३६। एत एव रविचन्द्रसमागमा उत्पन्नाः। यत उक्तम्—

भगणान्तरशेषं यत्समागमास्ते द्वयोर्ग्रहयोः।। इति।

अत एव त्रिंशता गुणिता जाताः १६०३०००००८०। एते चन्द्रमानदिवसा उत्पन्नाः। एतेषां चतुर्युगोनरात्राः के ते उच्यन्ते—

तिथिलोपाः खवसुद्विकदस्राष्टकशून्यशरपक्षाः २५०८२२८०।

एतान् संशोध्य जातम् १५७७९१७८००। एष भूदिनराशिश्चतुर्युगाहर्गणः। तावन्तश्चतुर्युगेण दिवसाः सौरेण मानेन भवन्ति। अस्माकं सावनं तत्पुलिशाचार्यस्य सौरमानम्। अर्द्धरात्रादर्द्धरात्रं यावत्सौरेण मानेन दिनमुदयादुदयं वा।

शशिभगणदिनानि नाक्षत्रमिति। तत्र शशिभगणाः ५७७५३३३६। एते त्रिंशद्गुणिताः सन्तो दिनीकृताः १७३२६०००८०। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसाः। अत्र नक्षत्रभोगदिनं चन्द्रभगणत्रिंशद्भागो दिनम्। एवं यावता कालेन चन्द्रो द्वादश भागान् भुङ्क्ते तावता कालेन नाक्षत्रं दिनम्। भगवद्वसिष्ठादिभिश्चन्द्रनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रदिनमभिहितम्, किन्तु तैर्नक्षत्रमानैः सप्तविंशत्या दिनैर्मासोऽभिहितः। एवं पुलिशाचार्यस्य नाक्षत्रं मानं वसिष्ठादिभिः सह भिन्नम्। अस्य सर्वमानेषु त्रिंशद्दिनात्मको मास' इति प्रतिज्ञा। पराशरादीनां यत्सौरं मानं तस्यानेन सावनमिति संज्ञा कृता सावनस्य सौर इति। अथैतानेव पठति—

दस्रार्थबाणतिथयो लक्षहताः १५५५२००००० सावनेन ते दिवसाः।
वियदष्टखचतुष्कत्रिखषोडश १६०३०००००८० चान्द्रमानेन।।

वसुसप्तरूपनवमुनिनगतिथयः शतगुणाश्च १५७७९१७८०० सौरेण।
आर्क्षेण खाष्टखत्रयषड्दस्रगुणानिलशशाङ्काः १७३२६०००८०।।

अथ चन्द्रभगणाः सप्तविंशत्या गुणिता वसिष्ठादिमतेन नाक्षत्रं मानम्—

पक्षसप्तखशून्याब्धिगुणगोऽर्थशरेन्दवः १५५९३४००७२।
चतुर्युगार्क्षाण्येतानि कथितानि पुरातनैः।। इति।

तथा च भट्टबलभद्रः—

रव्यंशभोगोऽहोरात्रः सौरश्चान्द्रमसस्तिथिः।
चन्द्रनक्षत्रभोगश्च नाक्षत्रः परिकीर्तितः।।
स्वसावनो ग्रहर्क्षाणामुदयादुदयावधिः।
नक्षत्रमाने मासः स्यात् सप्तविंशतिवासरैः।।
शेषमानेषु निर्दिष्टो मासस्त्रिंशद्दिनात्मकः।
इष्टाः सर्वेषु मानेषु समा द्वादशमासिकाः।। इति।

अन्यच्च नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यतो नक्षत्रपरिवर्त्ता नियता एव, एषामगतित्वात्। नक्षत्रपरिवर्तेभ्यो ग्रहभगणान् संशोध्य प्रत्येकस्य ग्रहस्य सावनं मानं भवति। यतो नक्षत्रग्रहौ यदैकत्र स्थितौ भवतस्तदा नक्षत्रमगतित्वात्तत्रैव तिष्ठति। ग्रहः स्वस्वगतिवशेन प्रतिदिनं नक्षत्रादग्रगो भूत्वोदयास्तमयौ करोति। भूम्यासन्नो दृष्टिपथं यातीति यावत्। तेन नाक्षत्रं मानं सावनसाधकम्। तथा च पुलिशसिद्धान्ते पठ्यन्ते नक्षत्रपरिवर्त्ताः—

खखाष्टमुनिरामाश्विनेत्राष्टशररात्रिपाः १५८२२३७८००।
भानां चतुर्युगेणैते परिवर्त्ताः प्रकीर्तिताः।।

एभ्यः सूर्यभगणान् संशोध्य जाताः सावनदिवसा इति १५७७९१७८००। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

रविभगणोना भानां सावनदिवसाः कुदिवसा वा।

तथा च—

नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।। इति।

अधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः। अधिमासकसम्भवः सौरमासचान्द्रमासयोरन्तरात्। यथाऽहर्गणे क्रियमाणे पूर्वं सौरो वर्षगणो भवति। तस्मिन् मासीकृते वर्त्तमानवर्षगतमासंसंयुक्ते त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य चान्द्रो मासगणो भवति। तेन सौरमासचान्द्रमासानामन्तरमधिमासकाः। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—'शशिमासाः सूर्यमासोना अधिमासाः' इति।

अथावमसम्भवः प्रदर्श्यते—शशिमानसावनमानयोरन्तरादवमोत्पत्तिः। चान्द्रं मानं

यावत्सावनमानेन मीयते तावत्प्रतिवर्षं षड्दिनान्यधिकतराणि न पूर्यन्ते तान्येवोनरात्रवाच्यानि तिथीनां न्यूनताऽवमानि तत्र तिथ्यानयने कर्म। अर्कोनस्य चन्द्रस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य खयमस्वरै७२०र्भागे हते भुक्ततिथयो लभ्यन्ते। शिष्टस्य षष्टिगुणस्य चन्द्रार्कस्फुटभुक्त्यन्तरं भागहार:। तच्च कदाचिन्न्यूनं कदाचिदधिकं भवति। तेन मध्यमभुक्त्योरन्तरेणोत्पत्ति: प्रदर्श्यते। तद्यथा—अर्कमध्यमभुक्ति: ५९। चन्द्रमध्यमभुक्ति: ७९०। अनयोरन्तरं सप्तशतमेकत्रिंशदधिकम् ७३१। अत्र खयमस्वरान् ७२० विशोध्यैकादश ११ अवशिष्यन्ते, तान्यवमशब्दवाच्यानि। तानि चानुदिनं तिथिप्रमाणादधिकमग्रतोऽर्काच्चन्द्रो भूत्वा तिथिलोपं करोति तदेवावमरात्रसंज्ञम्। एवं शशिदिवसानां सावनदिवसानां चान्तरमवमानि। तथा च ब्राह्मे—'शशिसावनदिवसान्तरमवमानि' इति। एवमत्र ज्ञानं यथा—सौरचान्द्रमानयोरन्तरमधिमासका: शशिसावनयोरन्तरमवमानि। अत्र पुलिशाचार्य:—

चान्द्रै: सावनवियुतै: प्रचयस्तैरपचयोऽर्कदिनहीनै:।

चतुर्युगचन्द्रदिवसानां सावनदिवसान् संशोध्य चतुर्युगाधिमासकदिवसा भवन्ति। तेषां त्रिंशता भागमपहृत्य चतुर्युगाधिमासका:। तैरेव चन्द्रदिवसैरर्कसावनदिनहीनैर्यदवशिष्यते तावन्ति चतुर्युगेणापचयदिनानि भवन्ति। ऊनरात्रा इत्यर्थ:। सावनमासस्य चन्द्रमानेन सहान्तरे कृते यदतिरिच्यते तदधिमासकाख्य:। चन्द्रमानात्सौरं यदूनं तदूनरात्रा:। तद्यथा—चतुर्युगे चन्द्रदिवसानामेतेषां १६०३०००० ८० सावनमानाहानीमानि १५५५२००००० संशोध्य जातं ४७८०००८० सावनमानादेतावन्ति चतुर्युगे चन्द्रदिनान्यतिरिच्यन्ते। एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तं १५९३३३६ एतावन्तश्चतुर्युगेणाधिमासका:। अथवा सावनदिनानां चन्द्रदिनानां च त्रिंशता भागमपहृत्य मासा: कार्यास्तेषामन्तरेऽधिकमासका:।

अथोनरात्रार्थं चान्द्रमानदिवसानामेतेषां १६०३००००८० सौरमानदिनान्येतानि १५७७९१७८०० संशोध्य जातं २५०८२२८० एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्रा:। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिता:।

अथ संवत्सरस्य प्रदर्श्यते। तत्र सावनमानेन स्वानि संवत्सरदिनानि ३६०। अस्मिन्नेव सावनसंवत्सरे चन्द्रदिनानि ३७१/२८००८०/४३२००००। एतेषामुत्पत्तिमग्रत: प्रदर्शयिष्याम:। अत्र सावनमानाहानीमानि ३६० संशोध्य जातं ११/२८००८०/४३२००००। एतावन्ति दिनानि प्रतिसंवत्सरे प्रचयो भवति।

अथ संवत्सरप्रचयदिनानि प्रकारान्तरेणानीयन्ते त्रैराशिकेन। न्यास: ४३२००००। ४७८०००८०। १। अत: फलं तदेव।

अथ कियता कालेनाधिमासक: पततीति त्रैराशिकेन प्रदर्श्यते। न्यास:—११/२८००८०/४३२००००। ३६०। ३०। अत्राद्यो राशि: सवर्णीकृतो जात: ४७८०००८०। यस्मादाद्यो राशिश्चतुर्युगाब्दैर्गुणित: सवर्णीभूतस्तस्मादन्त्योऽपि राशिश्चतुर्युगाब्दैरेवं गुणितो जात: १२९६००००००। अथ भागहारराशिशेष: ४७८०००८०। गुण्यराशिना

षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितः १३२७७८। एष भागहारराशिः। अथ भाज्यभाजकराशी जातौ १२९६०००००। १३२७७८। एतौ पुनरपि द्वाभ्यामपवर्तितौ जातौ ६४८०००००। ६६३८९। भाज्यस्य भाजकराशिना भागमपहृत्यावाप्तम् ९७६/४३३६/६६३८९। एतावद्भिः सावनदिवसैर्गतैरधिमासः पतति। वर्षद्वयं मासाष्टकं षोडशदिवसा दर्शिताऽवशेषसहिताः। अनेन कालेन भवति। एतेषामेव दिवसानां प्रकारान्तरेणानयनं त्रैराशिकेन १५९३३३६। १५५५२००००००। १। फलम् ९७६/१०४०६४/१५९३३३६। अत्रावशेषच्छेदौ चतुर्विंशत्याऽपवर्तितौ जातौ ४३३६/६६३८९। एवमधिमासकोत्पत्तिः प्रदर्शिता।

अथापचयाः प्रदर्श्यन्ते। तत्र चतुर्युगचन्द्रदिनानामेतेषां १६०३०००००८०। सूर्यदिवसानेतान् १५७७९१७८०० संशोध्य जातम् २५०८२२८०। एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्राः। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिताः।

अथ संवत्सरस्य प्रदर्श्यन्ते। तत्र वक्ष्यमाणविधिना चन्द्रसंवत्सरे सौरमानदिनानि ३५४/१६३४३८८/४४५२७७८। एतानि चन्द्रसंवत्सरस्वदिनेभ्यः ३६० संशोध्य जातम् ५/२८१८३९०/४४५२७७८। अत्रावमशेषच्छेदौ द्वाभ्यामपवर्तितौ। एतावन्तः संवत्सरेणोनरात्रा भवन्ति। एतेषां त्रैराशिकेन प्रकारान्तरेणानयनम्। न्यासः—१६०३०००८०। २५०८२२८०। ३६०। अत्राद्यो भागहारराशिर्गुणकारराशिना षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितो जातः ४४५२७७८। अनेन राशिना चतुर्युगोनरात्राणां भागमपहृत्यावाप्तम् ५/२८१८३९०/४४५३७७८। एतावन्त ऊनरात्राः संवत्सरेण भवन्ति पूर्वानीतेषु संविदिता इति। अथ कतिभिर्दिवसैरूनरात्रपातो भवतीति तथा त्रैराशिकेन तत्प्रदर्श्यते। न्यासः—५/२८१८३९०/४४५२७७८। ३६०। १। अत्राद्यो राशिः सवर्णीकृतः २५०८२२८०। यस्मादनेन ४४५२७७८ राशिना गुणितो आद्यो राशिः सवर्णीभूतस्तस्मादनेनैव राशिनान्त्यो राशिरेष १ गुणितो जातः ४४५२७७८। एष भाज्यो राशिः। अथास्य भाजकराशेः २५०८२२८० गुण्यराशिनानेन ३६० भागमपहृत्यावाप्तम् ६९६७३। अनेन भाज्यस्याऽस्य राशेः ४४५२७७८ भागमपहृत्यावाप्तम् ६३/६३२७९/६९६७३। एतावद्भिश्चान्द्रमानदिवसैरूनरात्रः पतति। अस्यैवोनरात्रस्यानयने त्रैराशिकेनापरः प्रकारः। २५०८२२८०। १६०३०००८०। १। अतः फलम् ६३। अत्रावशेषच्छेदौ षष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैरपवर्तितौ जातौ ६३२७९/६९६७३। एतावन्त एव ऊनरात्रदिवसाः पूर्वानीतेषु संविदिता इति। तथा चाचार्यः—

युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रम्।
अवमविहीनं सावनमैन्दवभब्दान्वितं त्वार्क्षम्।। इति।

एवमधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।। इति।।५।।

अन्यत् कीदृशो दैवविदित्याह—

षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित् ।।६।।

प्रभव आदि साठ संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा—इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति (प्रवर्तन) और छेद (निवृत्ति) का ज्ञान भी दैवज्ञ को होना चाहिये।।६।।

षष्टिवर्षाणि षष्ट्यब्दः। स च पुनः पुनर्भवति। तस्य प्रतिपत्तिः प्रवर्तनं कस्मिन् काले षष्ट्यब्दस्य प्रारम्भो भविष्यति। एतच्च बृहस्पतिचारे वक्ष्यत्याचार्यः—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रवृत्तो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः।। इति।

छेदस्तस्यैव षष्ट्यब्दस्य निवृत्तिः। तज्जानातीति छेदवित्। तन्मध्ये च तत्र द्वादशयुगानि भवन्ति।

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः।। इति।

एतेषामाचार्यो बृहस्पतिचारे गणितविधानं वक्ष्यति। वयमपि तत्रैव व्याख्यास्यामः। एषामपि प्रतिपत्तिच्छेदवित्। अत्र च सावनमानेन वर्षपतिर्भवति। तत्र चानयनमाचार्येणोक्तम्। तथाऽहर्गणानयनम्—

सप्ताश्विवेदसंख्यं शक्रकालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सोमदिवसाद्ये।।
मासीकृते समासे द्विष्ठे सप्ताहतेऽष्टयमपक्षैः २२८।
लब्धैर्युतोऽधिमासैस्त्रिंशद्घ्नस्तिथियुतोऽधःस्थः ।।
रुद्रघ्नः समनुशरो ५१४ लब्धोनो गुणखसप्तभि७०३र्द्युगणः।
रोमकसिद्धान्तेऽयं नातिचिरे पौलिशेऽप्येवम्।। इति।

अतो वर्षाधिपानयनम्—

मुनियमयमद्वि२२२७युक्ते द्युगणे शून्यद्विपञ्चयमभक्ते २५२०।
प्रतिराशि खर्तुदहनैर्लब्धं वर्षाणि यातानि।।
तानि प्रपन्नसहितान्यग्निगुणान्यश्विवर्जितानि हरेत्।
सप्तभिरेवं शेषो वर्षाधिपतिः क्रमात् सूर्यात्।।

तत्राहर्गणस्य षष्टिशतत्रयेण भागे हते यच्छेषं तानि दिनानि प्रवृत्तस्याब्दपतेर्गतानि तान्येव षष्ट्यधिकाच्छतत्रयात् संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनान्येवाब्दपतिर्भविष्यति।

एवमब्दपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ। मासपतेरपि सावनेनैव मानेन प्रवृत्तिनिवृत्ती भवतः। तस्य चानयनमाचार्येण तत्रैवोक्तम्। तथा च—

त्रिंशद्भक्ते मासाः प्रतिपत्सहिता द्विसंगुणा व्येकाः।
सप्तोद्धतावशेषो मासाधिपतिस्तथैवार्कात्।।

तत्र त्रिंशता भागे हृते यदवशिष्यते तावन्त्येव दिनानि तस्य मासपतेः प्रवृत्तस्य

गतानि। तानि च त्रिंशतः संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनानि स एव मासपतिर्भवति। एवं मासाधिपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ जातौ। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

षष्टिशतत्रयभक्तात् कल्पगताहर्गणतात्फलं त्रिगुणम्।
सैकं सप्तविभक्तं सावनवर्षाधिपोऽर्कादिः।।
द्युगणात्त्रिंशद्भक्ताद्यल्लब्धं द्विगुणितं सरूपं तत्।
सप्तविभक्ते शेषः सावनमासाधिपोऽर्कादिः।।

दिनपतिहोराधिपत्योराचार्याणां निश्चयो नास्ति। केषाञ्चिदौदयिको वारपतिः। अन्येषां माध्याह्निकोऽन्येषामास्तमयिकोऽन्येषामार्द्धरात्रिक इति। तथा चाचार्यः—

द्युगणाद्दिनवाराप्तिर्द्युगणोऽपि हि देशकालसम्बन्धः।
लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये।।
रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहितः।
यवनानां निशि दशभिर्गतैर्मुहूर्तैश्च तद्गुरुणा।।
लङ्कार्द्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः।
भूयः स एव चार्कोदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्।।
देशान्तरसंशुद्धिं कृत्वा चेन्न घटते तथा तस्मिन्।
कालस्यास्मिन् साम्यं तैरेवोक्तं यथा शास्त्रम्।।
मध्याह्नं भद्राश्वेष्वस्तमयं कुरुषु केतुमालानाम्।
कुरुतेऽर्द्धरात्रमुद्यन् भारतवर्षे युगपदर्कः।।
उदयो यो लङ्कायां योऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे।
यमकोट्यां मध्याह्नं रोमकविषयेऽर्द्धरात्रं च।।
अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्काः।
अयनर्त्वार्क्षगतिनिशाः समं प्रवृत्ता युगस्यादौ।।
अन्यद्रोमकविषयाद् देशान्तरमन्यदेव यवनपुरात्।
लङ्कार्द्धरात्रसमयादन्यत् सूर्योदयाच्चैव।।
सूर्यस्यार्द्धास्तमयात् प्रतिविषयं यदि दिनाधिपं ब्रूमः।
तत्रापि नाप्तवाक्यं न च युक्तिः काचिदप्यस्ति।।
सन्ध्या क्वचित्क्वचिदहः क्वचिन्निशा दिवसपतेः क्वचित्क्वचित्।
स्वल्पे स्वल्पे स्थाने व्याकुलमेवं दिनपतित्वम्।।
होरावार्त्ताप्येवं यस्माद्धोरा दिनाधिपस्याद्या।
तस्यापरिनिष्ठाने होराधिपतिः कथं भवति।।
अविदित्वैवं प्रायो दिनवारे जनपदः प्रवृत्तोऽयम्।
स्फुटतिथिविच्छेदसमं युक्तमिदं प्राहुराचार्याः।। इति।

एवं स्थिते सति दिनवार औदयिक इत्यस्माकं मतम्। यस्माद्भट्टब्रह्मगुप्तेनोक्तम्—

जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्ट्यादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्माद् दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात्।।

तत्र च विशेषः—

दिनवारादिः पश्चादुज्जयिनीदक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
देशान्तरघटिकाभिः प्राक् पश्चाद्भवति रव्युदयात्।। इति।

दिनाधिपस्तु सावनेनैव मानेन भवति, किन्तु देशे देशे स्वदेशान्तरघटिकाभिश्चरार्द्ध-कालयुक्ताभिर्वियुक्ताभिर्वा क्वचित्सूर्योदयाद्दिवागते काले क्वचित्सूर्योदयात्पूर्वं दिनप्रवृत्तिः।

तद्यथा—उज्जयिनीयाम्योत्तररेखायाः प्राग्भागे स्वदेशान्तरघटिकाभिः सूर्योदयात्परतो वारप्रवृत्तिर्भवति। रेखापश्चिमभागे स्वदेशान्तरतुल्याभिर्घटिकाभी रात्रिशेषाभिर्वारप्रवृत्तिरिति। एवं विषुवद्दिने चरदलाभावादन्यकाले चरदलं स्वधिया योज्यं यथासम्भवम्। तत्रायं प्रयोगः—स्वदेशमध्याह्नघटिकाः पञ्चदशभ्यो विशोध्यावशेषघटिकाभिस्ताभी रेखाप्राग्भागे मध्याह्नात् प्राग् वारादिः स्वदेशे नित्यं वक्तव्यः। रेखापश्चिमभागे मध्याह्नादूर्ध्वं तावतीभिरेव घटिका-भिरिति। तथा च भट्टबलभद्रः—

उज्जयिनीतस्तु गता या रेखा दक्षिणेन लङ्कायाम्।
उत्तरतस्तु सुमेरोर्ज्ञेया देशान्तराख्या सा।।
स्वदेशरेखान्तरयोजनानां षष्ट्या हतानां स्फुटभूहतानाम्।
ज्ञेयः स लब्ध्या घटिकादिकालो देशान्तराख्यः सततं स्वदेशे।।
चरार्द्धतत्कालयुतौ गतायां दिवा सुराहे दिनपादिवेला।
रेखादिभागे च परे निशायां कालेन शेषेण महेन्द्ररात्रौ।।
रेखादिभागे त्रिदिवेशरात्रौ कालान्तरोनश्चरखण्डशेषः।
काले नते तत्क्षणदावशेषे न्यूने चरार्द्धे तु दिवागते स्यात्।।
रेखापरार्द्धे तु कृतान्तराले चरार्द्धकालाभ्यधिके दिनस्य।
काले प्रयाते त्रिदशाह्नि वेला तदूनतायां क्षणदावशेषे।।

एवं यस्मिन् काले वर्तमानस्य दिनपतेः प्रवृत्तिस्तस्मिन् कालेऽतीतस्य निवृत्तिरिति। एवं दिनपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ।

अथ होराधिपत्यानयने तत्र यावतीनां घटीनां वारपतेरारम्भात्प्रभृति दिनगतानां रात्रि-गतानां वा कालहोरा ज्ञातुमिष्यते ता घटिका अभीष्टकाले गता एकीकृत्य यावत्यो भवन्ति ता द्विगुणाः कार्याः। ततस्तासां पञ्चभिर्भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमो दिनपात्प्रभृतीष्टे काले होराधिपो भवति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदधः पञ्चभ्यो विशोधयेत्। ततो द्वावप्यूर्ध्वाधः-स्थितावङ्कावर्द्धीकृत्योर्ध्वस्थो वर्तमानहोरापतेर्गतः कालः। अधःस्थितो यस्तावत्कालः स एव होराधिपतिः। तथा च भट्टबलभद्रः—

प्रारम्भकालाद्दिनपस्य याते काले यमघ्नेऽर्थहृते तु लब्धिः।
शराहता चन्द्रयुताद्रिभक्ता शेषस्तु होराधिपतिर्द्युपादेः।।

तथा चास्मदीयवचनम्—

वारपतेरारम्भात्कालाद्द्विगुणाच्छरैर्हताल्लब्धम्।
पञ्चघ्नं रूपयुतं मुनिभक्तं वारपात् स होरेशः।।

तत्र होराधिपतेर्नाडिकाद्वयं सार्द्धभागं परिकल्प्य प्रवृत्तिनिवृत्त्योः परिकल्पना कार्या। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

दिनगतघटिका द्विगुणाः पञ्चहृता वान्यमतमेतत्।। इति।

तथा चाऽऽचार्यः—

सप्तोद्धृते दिनेशस्त्रिगुणो व्येको युतश्च होराभिः।
पञ्चघ्नः सप्तहृतो विज्ञेयः कालहोरेशः।। इति।

अत्राऽहर्गणाद्यो दिनपतिस्ततोऽस्यानयनं कार्यम्। एवं वर्षाधिपादीनामयं गणनाक्रमः। वर्तमानवर्षाधिपाच्चतुर्थोऽन्यस्मिन् वर्षे भवति। मासाधिपाद् मासपतिस्तृतीयः। होराधिपाद्धोरापतिः षष्ठः। दिनपतिर्निरन्तर इति। तथा चाऽऽचार्यः कक्षाक्रममुक्त्वाऽऽह—

मासाधिपा यथोर्ध्वं चन्द्रात् सौरादधश्च होरेशाः।
ऊर्ध्वक्रमेण दिनपाश्च पञ्चमा वर्षपाः स्पष्टाः।। इति।

तथा च—

वर्षाधिपश्चतुर्थो मासाधिपतिस्तथा तृतीयोऽन्यः।
होराधिपश्च षष्ठो निरन्तरं दिवसनाथः स्यात्।।

एवं होराधिपतिप्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ।।६।।

अथान्यदप्याह—

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः ।।७।।

दैवज्ञ को अनेक शास्त्रों में कहे गये सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में कुशल होना चाहिये अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है? कौ नहीं? इसका विचार करने में योग्य होना चाहिये।।७।।

सौरमानं रविराशिभोगः। अनया कल्पनया यावता कालेनार्को राशिद्वादशकं भचक्रं भुङ्क्ते तावान् कालो रविमानेन वर्षं भवति। द्वादश राशयो द्वादशमासा एव। एतच्च सौरं मानं सावनदिनानां पञ्चषष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति घटिकापञ्चदशकेन सार्द्धेनाधिकम्।

सावनं मानं स्वोदयात् स्वोदयं यावत् षष्ट्यधिकेन दिनशतत्रयेण भवति। नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रभोगः। तच्च कदाचित् षट्षष्टिघटिका भवन्ति कदाचिच्चतुष्पञ्चाशत्। अत्रापि मध्ये सञ्चरति।

चान्द्रं तिथिभोगः। तस्यापि नक्षत्रवदूनाधिकता। एतदसदृशत्वं मानानाम्। सदृशत्वं

चैककार्यकरणद्वारेण। तच्चैककार्यकरणं ग्रहगतिसाधनं नाम। तद्यथा—प्रथमं तावन्नक्षत्र-परिवर्त्ता इष्टग्रहभगणोना यावत्क्रियन्ते तावदिष्टग्रहस्य सावनदिवसा भवन्ति। ते च नक्षत्र-परिवर्त्ताः सूर्यभगणोना भूदिनसंज्ञास्तावत् स्थाप्याः। तत्रेष्टकाले कल्पाब्दा ये गता रवि-परिवर्ताः सौरमानोत्पन्नास्ते च द्वादशगुणिता वर्त्तमानकाले चैत्रसिताद्यतीतमाससंयुक्ता रविमानेनैव मासा भवन्ति। ततस्तस्मिन् मासगणे त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य त्रिंशता सङ्गुण्य वर्त्तमानमासगततिथीः संयोज्य चान्द्रो दिनगणो भवति। स च त्रैराशिकोपलब्धैस्तिथिलोपैर्विहीनः सावनोऽहर्गणो भवति। स चेष्टग्रहभगणगुणः सावनदिन-हृतः फलं भगणादिको ग्रहः। स च स्फुटीकृतो जातकादावुपयुज्यत इति।

एवं सर्वमानानामेककार्यत्वं नाम सादृश्यम्। अथवा पुलिशसिद्धान्तानुसारेण प्रद-र्श्यते। तत्र सदृशत्वविज्ञाने सूत्रम्—

युगवत्सरैः प्रयच्छति यदि मानचतुष्टयं किमेकेन।
यदवाप्तं ते दिवसा विज्ञेयाः सावनादीनाम्।।

युगवत्सरैः यदि माने माने पठितदिवसा लभ्यन्ते तदैकस्मिन् संवत्सरे कियन्तः स्युरिति त्रैराशिके न्यासः ४३२००००। १५५५२०००००। १। अतः फलम् ३६०। एवं ज्ञातं यथा सावनमानवर्षे एतावद्भिः सावनमानदिवसैर्वर्षमिति।

न्यासः ४३२००००। १६०३००००८०। १। अतः फलम् ३७१/२८००८०/ ४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्तश्चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४२२००००। १५७७९१७८००। १। फलम् ३६५/१११७८००/ ४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्तः सौरमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३२००००। १७३२६००८०। १। फलम् ४०१/२८००८०/४३२ ०००० सावनवर्षेणैतावन्तो नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३२००००। १५५९३४००७२। १। फलम् ३६०/४१४००७२/ ४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चान्द्रमानेन चातुर्युगदिवसानाम् १६०३००००८० एतेषां त्रिंशता भागमपहत्या-वाप्तम् ५३४३३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण चान्द्रमानेन मासा भवन्ति। एतेषां द्वादश-भिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४४५२७७८। एतावन्ति चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन वर्षाणि भवन्ति। तत्र न्यासः ४४५२७७८।१६०३००००८०। १। फलम् ३६०। एतावन्तश्चान्द्रमानवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १५५५२०००००। १। फलम् ३४९/११८०४०८/४ ४५२७७८। चान्द्रवर्षेणैतावन्तः सावनमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १५७७९१७८००। १। फलम् ३५४/१६३४३८८/४ ४५२७७८। एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण सौरदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १७३२६०००८०। १। फलम् ३८९/४६९४३८/४४ ५२७७८। एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १५५९३४००७२। १। फलम् ३५०/८६७७७२/४४ ५२७७८। एतावन्ति चान्द्रवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगसौरमानदिवसानामेतेषां १५७७९१७८०० त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५२५९७२६०। एतावन्तश्चतुर्युगेण सौरमानमासा भवन्ति। तेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४३८३१०५। एतेषां चतुर्युगेण वर्षाणि भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १५७७९१७८००। १। फलम् ३६०। एतावन्तः सौरेण वर्षेण सौरमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १५५५२००००००। १। फलम् ३५४/३५८०८३०/४३८३१०५। सौरवर्षेणैतावन्तः सावनमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १६०३००००८०। १। फलम् ३६५/३१६६७५५/४३८३१०५। एतावन्तः सौरवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १७३२६०००८०। १। फलम् ३९५/१२७३६०५/४३८३१०५। एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४३८३१०५। १५५९३४००७२। १। फलम् ३५५/३३३७७९७/४३८३१०५। एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसाः १७३२६०००८०। एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासाः। एतेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४८१२७७८। एतावन्ति चतुर्युगनाक्षत्रमानवर्षाणि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १७३२६०००८०। १। फलम् ३६०। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १६०३००००८०। १। फलम् ३३३/३४५००६/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति चान्द्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १५५५२००००००। १। फलम् ३२३/६७२७०६/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सावनमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १५७७९१७८००। १। फलम् ३२७/४१३९३९४/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सौरमानदिनानि भवन्ति।

न्यासः ४८१२७७८। १५५९३४००७२। १। फलम् ३२४। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्राणामेतेषां १५५९३००७२ सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमासाः पूर्वानीतेषु नाक्षत्रमानमासेषु संविदिताः। एतेषां तुल्यत्वाद्वर्षाणि तुल्यान्येव। वर्षाणां तुल्यत्वात्सर्वमानेषु त्रैराशिकमपि तुल्यम्। अत्र तात्पर्यार्थः—सौरमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव वर्षे चान्द्राणि त्रीणि शतानि एकसप्तत्यधिकानि किञ्चिदधिकदिनानि आयान्ति। तस्मिन्नेव सावनदिनानि त्रीणि शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि सपादान्यायान्ति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानि चत्वारि शतान्येकाधिकानि किञ्चिदधिकान्यायान्ति।

तथा चान्द्रमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां शतत्रयमेकान्नपञ्चाशदधिकं सपादं भवति। तस्मिन्नेव सावनदिनानां शतत्रयं चतुष्पञ्चाशदधिकं सावशेषं भवति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानां शतत्रयमेकान्ननवत्यधिकं भवति।

तथा सावनं वर्षं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां चतुष्पञ्चाशदधिकं शतत्रयमेकान्नपञ्चाशद्घटिकाधिकं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रं पञ्चषष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां त्रिचत्वारिंशद्घटिकाधिकं भवन्ति। तस्मिन्नेव शतत्रयं पञ्चनवत्यधिकं दिनानां नाक्षत्रमानं भवति।

तथा नाक्षत्रं वर्षं स्वमानेन दिनानां षष्ट्यधिकं शतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रदिनानां शतत्रयं त्रयस्त्रिंशदधिकं भवति। तस्मिन्नेव शतत्रयं त्रयोविंशत्यधिकं दिनानां सौरं मानं भवति। तस्मिन्नेव सावनं दिनं दिनानां शतत्रयं सप्तविंशत्यधिकं भवति। एवं प्रत्येकं स्वमानेन षष्टिशतत्रयं दिनानां भवत्येव तत्सदृशत्वम्। एवं सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशत्वं च ज्ञातम्।

अथ योग्यायोग्यत्वं प्रतिपाद्यते। सौरं मानं क्व योग्यं क्व वाऽयोग्यं तेन यन्निश्चीयते तदुच्यते। तद्यथा—युगानि कृतयुगादीनि तथा वर्षाणि विषुवद्द्वयमयनद्वयमृतवो दिनप्रमाणं चेति। अत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा चान्द्रेण तिथयः करणान्यधिमासकोनरात्रामावस्यान्तं पौर्णमास्यन्तम्। तत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा सावनं यज्ञव्रतोपवासचिकित्सांसूतकप्रायश्चित्तग्रहगतौ योग्यत्वं नान्यत्र। नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यद्वशात् क्रियते तत्तत्र योग्यं नान्यत्र। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

सौरेणाब्दा मासास्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसाः।
दिनमासाब्दपमध्या न तद्दिनाऽर्केन्दुमानाभ्याम्।।
मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः।
चारैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारश्च लोकस्य।।
युगवर्षविषुवदयनर्त्वहर्निशावृद्धिहानयः सौरात्।
तिथिकरणाधिकमासोनरात्रपूर्वक्रियाश्चान्द्रात् ।।
यज्ञसवनप्रमाणग्रहगत्युपवाससूतकचिकित्साः ।
सावनमानाज्ज्ञेयाः प्रायश्चित्ताः क्रियाश्चान्याः।।

नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।। इति।

केचित्तु चन्द्रनक्षत्रभोगेण रूपसन्नाख्यो यो व्रतविशेषस्तत्रोपयोगित्वमाहुर्नाक्षत्रमानस्य। तथा च भगवान् गर्गः—

सावनैन्दवसावित्रैर्दिनमाससमात्मकैः ।
व्यवहारो भसत्रेषु भमानेन प्रकीर्तितः।। इति।

एवं सौरादीनां मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादने पटुः कुशलः।।७।।

अन्यदप्याह—

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितां-शकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः।।८।।

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य—इनको जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।८।।

सिद्धान्तभेदेऽपीति। सिद्धान्ताः पौलिशादयः, तेषां भेदः असादृश्यम्, तस्मिन्नपि प्रतिपादने कुशलः शक्तः। अतिगणितपटुत्वात्। यथा—अमुकसिद्धान्तस्याऽमुकसिद्धान्तेन सह ग्रहाणामेतावदन्तरममुकेनापि सहैतावदन्तरमिति।

एवं ग्रहणसमागमादीनामपि। तथा चाऽऽचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायामेव प्रदर्शितम्। तथा च—

खार्कघ्नेऽग्निहुताशनमपास्य रूपाग्निवसुहुताशकृतैः।
हत्वा क्रमाद्दिनेशो मध्यः केन्द्रं सविंशांशम्।।

इति पौलिशे। तथा च—

रोमकसूर्यो द्युगणात् खतिथिघ्नात्पञ्चकर्तुपरिहीणात्।
सप्ताष्टकसप्तकृतेन्द्रियोद्धृतात् मध्यमः सूर्यः।।

तथा—

द्युगणेऽर्कोऽष्टशतघ्ने विपक्षवेदार्णवेऽर्कसिद्धान्ते।
स्वरखाश्विद्विनवयमोद्धृते क्रमाद्दिनदलेऽवन्त्याम्।। इत्यादि।

एवं सिद्धान्तत्रयेणार्कमानीयान्तरं बोद्धव्यमिति। तथायनयोर्दक्षिणोत्तरयोर्या निवृत्ति-र्निवर्तनं तस्यामपि प्रतिपादने कुशलः। यथा—अमुकसिद्धान्तेऽर्कस्यैतावद्भिर्दिनैरेतावती-भिर्घटिकाभिरयनचलनममुकसिद्धान्ते एतावतीभिर्दृष्ट्याऽमुकस्मिन् दिने एतावतीभिर्घटिकाभिश्च दृश्यते तत्प्रतिपादने च कुशलः। एतच्चाऽऽचार्येणैव प्रतिपादितम्। तथा च पञ्चसिद्धान्ति-कायाम्—

आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदाऽऽसीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः।।

तथा च वक्ष्यति—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।।
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः।।

तथा च दृष्टिवेधमाचार्य एव वक्ष्यति—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमये सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति।। इति।

कथं प्रतिपादने कुशलः। प्रत्यक्षं दृश्यमानं पीठयन्त्रादिभिः कालयन्त्रैर्यथा लोकाः प्रतिपद्यन्ते। अपिशब्दः समुच्चये। तथा सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां च प्रतिपादने कुशलः। यथा स्वदेशसममण्डलाख्या लेखा विषुवल्लेखेत्यर्थः। तया योऽसौ ग्रहाणां सम्प्रयोगः सम्प्रवेशस्तत्र येऽभ्युदितांशका अभिमुखेनोद्गताः शेषा वांशकाः। स्वाहोरात्रवृत्ते ये दिनभागा दिनगतघटिकाः शेषघटिका वेत्यर्थः। यथास्मिन्निष्टदिने भगवतो भास्करस्य एतावतीभिर्दिनगतघटिकाभिः सममण्डलप्रवेशो भवति तावतीभिश्च शेषाभिः। तासां प्रतिपादने कुशलः।

अर्कस्य सममण्डलप्रवेशकाल आचार्येण तत्रोक्तः। तथा च—

इष्टोत्तरगोलापक्रमांशकज्यां खभास्कराभ्यस्ताम्।
हृत्वाक्षजीवया तच्चापादुदयेन तत्कालः।।
तस्मिन् दिनकृत् कुरुते सममण्डलसंश्रयं दिनाद्ये वा।
तावच्छेषे परतो न तुलादिषु विद्यते चैतत्।।

मेषस्थः सूर्यः प्रथमेऽह्नि सममण्डलरेखायामेवोदितस्तस्यामेवास्तमयं याति, क्रान्त्य-भावात्। ततः प्रतिदिनं यथा यथाऽर्कस्य क्रान्तिसम्भवो भवति, तथा तथा दिनगते काले सममण्डलप्रवेशो भवति। यावति दिनगते काले तावति दिनशेषेऽपि भवति। एवं यावत्क-न्यान्तं तावद्भवति सममण्डलप्रवेशो राशिषट्केऽर्कस्य। तुलादिष्वेतन्न सम्भवति। एवं मेषादिराशिषट्के स्थितस्य सममण्डलप्रवेशो भवति, न तुलादिराशिषट्के स्थितस्य। तत्र प्रविष्टस्याभिज्ञानमिदम्—

कृतदिग्ग्रहणे वृत्ते रेखां पूर्वापरां यदा छाया।
प्रविशति सम्यक् शङ्कोः सममण्डलगस्तदा सूर्यः।।

तत्र च काले शङ्क्वानयनम्—

उत्तरगोलेऽर्कज्या काष्ठान्तगुणा ध्रुवज्यया भक्ता।
ताः शङ्कुलिप्तिकाख्यास्ताभिः सममण्डले छाया।।

सममण्डलज्ञस्य फलम्—

सममण्डललेखासम्प्रवेशवेलां करोति योऽर्कस्य।
तत्प्रत्ययं च जनयति जानाति स भास्करं सम्यक्।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विषुवत्कर्णेन गुणा विषुवच्छायोद्धृतोत्तरा क्रान्तिः।
यद्यूनाक्षज्याभ्यः शङ्कुः सममण्डलस्थेऽर्के।।

एवमेतेषां सर्वेषां सिद्धान्तभेदादीनां छायया तात्कालिकया यन्त्रैश्च चक्रधनुस्तुयगोलयष्टिशङ्कुघटिकाकपालकर्तरीपीठैः कालपरिच्छेदकैस्तथा दृग्गणितसाम्येन दृष्टेर्गणितस्य च यत्साम्यं सादृश्यमेकरूपता तेन प्रतिपादने कुशलः शक्तः। गणितेनोपलभ्यच्छायां यन्त्रैर्दृष्ट्या समीकरोतीत्यर्थः।।८।।

तथाऽन्यदप्याह—

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः ॥९॥

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।९।।

सूर्योदय आदित्यादयो ग्रहाः। आदित्यचन्द्रभौमबुधजीवशुक्रसौराः। तेषां कः शीघ्रः को मन्द इत्यस्मिन् कारणेऽभिज्ञः। तत्र च सर्वग्रहेभ्यश्चन्द्रमाः शीघ्रस्ततो मन्दो बुधस्ततः शुक्रस्ततोऽर्कस्ततः कुजस्ततो गुरुस्ततः शनिरिति। तथा सर्वग्रहेभ्यो मन्दः शनैश्चरस्ततो गुरुः शीघ्रस्ततः शुक्रस्ततो बुधस्ततश्चन्द्रमा इति। यस्य तु भूमेरासन्नो भ्रमः सोऽन्यस्माच्छीघ्रः। यस्य दूरः स मन्दः। यस्य च महती भुक्तिः स शीघ्रो यस्याल्पा स मन्द इति। तथा चाऽऽचार्यः—

चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भगणस्याधःशनिगुरुभूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्राः।
कक्ष्याक्रमेण शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्त्या।।

तथा चाऽऽचार्यभटः—

भानामधःशनैश्चरबृहस्पतिकुजार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
तेषामधश्च भूमिर्मेढीभूता खमध्यस्था।।

तत्र यस्य भूमिनिकटभ्रमः सोऽल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयत्यतः शीघ्रः। यस्य दूरे

स महता कालेनातो मन्दः। यतो भूम्यासन्नस्याल्पो भ्रमस्तत्र च राशिभागा अल्पा एव भवन्ति। दूरस्थितस्य च महान् भ्रमस्तत्र च राशिभागा एव महान्तस्तेन चन्द्रमाः स्वल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयति महता कालेन सौरः। तथा चाऽऽचार्यः—

तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेम्यां महदेवं संस्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्।।
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलाधःस्थः।
ऊर्ध्वस्थस्तुल्यजवोऽपि संस्थितस्तथा न महदर्कसुतः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पमल्पेन।
पूरयतीन्दुर्महता कालेन महाशनैश्चारी।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

मण्डलमल्पमधःस्थात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्रः।
उपरिष्टात् सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी।।
अल्पे हि मण्डलेऽल्पा महति महान्तश्च राशयो ज्ञेयाः।
अंशाः कलास्तथैव विभागतुल्याः स्वकक्ष्यासु।। इति।

तथा च याम्योत्तरादिगतिः। मेषादितः कन्यान्तं यावद्यो ग्रहो याति स उत्तरां गतिमाश्रितो भवति। तुलादितो मीनान्तं यावद्यो ग्रहो याति स दक्षिणां गतिमाश्रितो भवति। तथा चाऽऽचार्यभटः—

मेषादेः कन्यान्तं समुदगयनमण्डलार्धमुपयातम्।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव।।

एतत्सूर्यस्य दक्षिणोत्तरगतिकारणमुक्तम्। चन्द्रादिकस्तु पुनः सूर्यभ्रमणप्रदेशानुसारेण स्वभ्रमप्रदेशात् स्वविक्षेपवशेन दक्षिणेनोत्तरेण वा याति। एतदुक्तं भवति—आदित्यस्य विक्षेपाभावात् क्रान्तिरेव स्वक्रान्तिः। चन्द्रादीनामर्कवत्क्रान्तिं कृत्वा तस्या विक्षेपेण सहैकदिक्केन योगः कार्यो भिन्नदिक्केन वियोगः। एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति यस्य च क्रान्तिरुत्तरा स उत्तरां गतिमाश्रितो भवति, यस्य दक्षिणा स दक्षिणाम्। अथवा मकरादौ राशिषट्के स्थित उत्तरां गतिमाश्रितो भवति कर्कटादौ राशिषट्के दक्षिणाम्। यस्मादुत्तरायणस्थो ग्रहः प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति दक्षिणायनस्थो दक्षिणाम्। एवं ग्रहाणां याम्योत्तरा गतिः।

अथ नीचोच्चा ग्रहाणां गतिः। तत्र स्वभ्रमणप्रदेशात् कदाचिद् ग्रह उपरि स्थितो भवति कदाचिदधःस्थः। यत्र मध्यमो ग्रहो भवति तत्कक्ष्यामण्डलम्। यत्र स्फुटग्रहो भवति तत्प्रतिमण्डलम्। अर्कचन्द्रौ मन्दप्रतिमण्डले भ्रमतः। ताराग्रहाः शीघ्रप्रतिमण्डले भ्रमन्ति। तत्र कक्ष्यामण्डलादुपरि स्थितो ग्रहो यदा भवति तदा द्रष्टुरतिदूरस्थो भवत्य-तिदूरत्वात्

स्वल्पबिम्बो दृश्यते स चोच्चां गतिमाश्रितो भवति। यदा कक्ष्यामण्डलादध:स्थितो भवति तदा भूमेरासन्नत्वान्महान् प्रमाणो दृश्यते स नीचां गतिमाश्रितो भवति। तत्र च ग्रहे स्फुटीक्रियमाणेऽन्त्यकर्ण: प्रथमे केन्द्रपदे भवति चतुर्थे वा तदा ग्रह उच्चां गतिमाश्रितो भवति। अथ यदा द्वितीयतृतीयपदस्थो भवति तदा नीचां गतिगाश्रितोऽत एव त्रिज्यायां कोटिफलं धनमृणं वा क्रियते येन प्रतिमण्डलप्रापी स्फुटकर्णो भवति। तथा चाऽऽचार्य:—

शीघ्रान्मध्यविहीनाद्राशित्रितये गतैष्यदंशज्या।
भुजकोटी तत्परत: षड्भ्य: पतिते स एव विधि:।।
स्वपरिधिगुणिते भाज्ये खर्तुगुणैस्ते विपरिणते तच्च।
कोटिफलं व्यासार्धे मृगकर्क्यादौ चयापचय:।।

तद्भुजकृतियोगपदैरिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

तद्गुणिते ज्ये भांशैर्हते फले कोटिफलयुता त्रिज्या।
आद्यन्तयोर्विहीना पदयोर्द्वितृतीययो: कोटि:।।
तद्भुजफलकृतियोगान्मूलं कर्ण........................इति।।

एवमादिषु कारणज्ञाने अभिज्ञ:। अभि मुख्येन जानातीत्यभिज्ञ:।।९।।

अन्यदप्याह—

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्णादेशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा ।।१०।।

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को बताने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।।१०।।

सूर्याचन्द्रमसोरर्कशशिनोर्ग्रहणे उपरागे ग्रहणादि ग्रहणप्रारम्भं जानाति। एतावति स्वदिनगते काले ग्राह्यग्राहकबिम्बसम्पर्क:। तथा मोक्षकालं जानाति। एतावति गते काले मोक्ष:। ग्राह्यमण्डलं सकलं ग्राहकस्त्यजति। तथा कालं जानाति। प्रग्रहणमोक्षयोरन्तर एतावान् काल:। तथा दिक्। अमुकस्यां दिशि प्रग्रहणममुकस्यां निमीलनममुकस्यां मध्यग्रहणममुकस्यामुन्मीलनममुकस्यां मोक्ष इति। प्रमाणं यथा—खण्डग्रहण एतावद्बिम्बं छिन्नं भवति। मध्यग्रहणकालिके तिथ्यन्ते स्फुटप्रग्रहणस्थित्यर्धं विशोध्य ग्रहणादिर्भवति, तत्रैव मौक्षकालिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। स्थित्यर्धद्वयस्य योग: स्थितिकाल:। विमर्दो निमीलनोन्मीलनयोर्मध्यकाल:। तावन्तं कालं ग्राह्यबिम्बं सकलं ग्राहक: सञ्छाद्य तिष्ठति स विमर्दकाल:। तथा वर्णो ग्रहणे ग्राहकगृहीतस्य बिम्बस्य। स धूम्रकृष्णताम्रकपिल इति। एतत्सर्वं गणितस्कन्धनिर्दिष्टम्। वलनविक्षेपवशेन परिलेखेन प्रग्रहणादीनां दिग्ज्ञानम्। मध्यग्रहणपरिलेखकरणात् प्रमाणज्ञानम्। निमीलिनोन्मीलनविमर्दार्द्धयोर्योगे विमर्दकाल:। वर्णो तथा—

आद्यन्तयोः स धूम्रः कृष्णः खण्डग्रहेऽर्धतोऽभ्यधिके।
ग्रासे स कृष्णताम्रः सर्वग्रहणे कपिलवर्णः।। इति।

एवमादिकानामादेशानामनागतानामेष्याणामादेष्टा कथयिता। तथा अनागतानां ग्रहसमागमानां ग्रहयुद्धानां चादेष्टा। समागमस्ताराग्रहाणां चन्द्रमसा सहैकराशिगतानां भवति। भौमादीनामेकराशिगतानां दक्षिणोत्तरसंस्थानवशेन युद्धं भवति।

तत्र समागमे युद्धे चैतत्परिज्ञानम्। यथा—अमुको ग्रह उत्तरे। अमुको दक्षिणे भविष्यति। तयोश्चान्तरमेतावन्तो हस्ता एवमेतावन्त्यङ्गुलानि वा भेदः समागमो वा भविष्यतीति। एतदपि गणितसिद्धम्। ग्रहयोर्विक्षेपौ कृत्वा ततस्तयोर्विक्षेपयोरेकदिक्कयोरन्तरं कार्यं भिन्नदिक्कयोर्योगः। ततस्तस्मादन्तराद्योगाद्वा ग्रहमानैक्यार्धं विशोधयेत्। यदि न शुद्ध्यति तदा भेदसमागमः। अधःस्थेन ऊर्ध्वस्थो ग्रहश्छाद्यते। अथ शुद्ध्यति तदा संशोध्य यदवशिष्यते तद्ग्रहान्तरं स्फुटं भवति। तच्च लिप्तारूपं तस्य षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं भागास्त एव हस्ताः शेषं चतुर्विंशत्यां सङ्गुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तान्यङ्गुलानि। तत्र यस्य दक्षिणो विक्षेपः स दक्षिणभागस्थो यस्योत्तरः स उत्तरविभागस्थः। द्वयोरेकदिक्कयोर्यस्याधिकः स तत्रस्थः। इतरोऽन्यत्र स्थितः। तत्र फलानि वक्ष्यत्याचार्यः। तथा चोक्तम्—

भागैः कराः परस्परमेषां युद्धं समागमः शशिना।
रविणास्तमय उदक्स्थो ग्रहो जयी दक्षिणे शुक्रः।। इति।

एतेषामप्यनागतानामादेष्टा।।१०।।

अन्यदप्याह—

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः ॥११॥

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।११।।

एकमेकं प्रत्येकं प्रत्येकस्य ग्रहस्य भ्रमणयोजनानि प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनानि तेषां परिच्छेदे परिच्छित्तौ विज्ञाने कुशलः शक्तः। यथा—अमुको ग्रह एतावद्भिर्योजनैर्भूगोलादुपरि भ्रमति। ग्रहयोजनकर्णं जानातीत्यर्थः। तथा कक्ष्याप्रमाणपरिच्छेदकुशलः। अमुकस्य ग्रहस्यैतावन्ति कक्ष्यायोजनानि। मध्यमो ग्रहो यत्र भ्रमति तद्वृत्तपरिज्ञानमित्यर्थः।

तच्च कक्ष्याकर्णपरिज्ञानं पुलिशादिषु पठ्यते। तत आनीयास्माभिरिह प्रदर्श्यते। तत्र तावद्योजनप्रमाणज्ञानम्—

योजनमष्टौ क्रोशाः क्रोशश्चत्वारि करसहस्राणि।
हस्तः शङ्कुद्वितयं द्वादशभिः सोऽङ्गुलैः शङ्कुः।।

अथ ग्रहाणां चतुर्युगाध्वयोजनप्रमाणम्—

युगमासाधिकमासाः सभमासा योजनीकृताः सोऽध्वा।
प्राग्यायिनां ग्रहाणां तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ताः।।

यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्ति सावनमानेन चतुर्युगवर्षाणि भवन्ति। तानि च—

परिवर्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते ४३२००००।

एतानि चतुर्युगवर्षाणि द्वादशगुणानि ५१८४००००। एते सावनेन चतुर्युगमासाः। एत एव साधिमासकाः कर्तव्याः।

अधिमासकाः षडग्नित्रिकदहनच्छिद्रशररूपाः १५९३३३६।

एतैर्युक्ता जाताः ५३४३३३३६। एते चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन मासा भवन्ति। एते भमाससहिताः कर्तव्याः। भमासाश्चात्राधिका ग्रहीतव्याः। चतुर्युगेण चान्द्रमासेभ्यो यावन्तोऽतिरिच्यन्त इति। तत्र चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिनानि।

आर्क्षेण खाष्टखत्रयरसयुग्मगुणानिलशशाङ्काः १७३२६०००८०।

एतेषां त्रिंशता भागमपहत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासा भवन्ति। एत एव चन्द्रभगणाः। चन्द्रभगणेनैकेन नाक्षत्रमानमासो भवति। तस्मान्नाक्षत्रमानमासानां चन्द्रमासाः संशोध्याः। संशोध्य जाताः ४३२००००। एतावन्तश्चतुर्युगेण चन्द्रमासेभ्यो नक्षत्रमासा अतिरिच्यन्त इति। तस्मादेतान् भमासान् सूर्यमासाधिमाससंयोगेऽस्मिन् ५३४३३३३६ संयोज्य जाताः ५७७५३३३६। एवं युगमासाधिकमासभमासयोगतश्चन्द्रभगणा उत्पन्नाः। तस्माद्वक्ष्यति—

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै५७७५३३३६श्चन्द्रः।

अथैते चन्द्रभगणा योजनीकार्याः। कथमित्यत्रोच्यते—चन्द्रकक्ष्यायां पञ्चदशभिर्योजनैरेकैका लिप्ता भवत्यतश्चन्द्रभगणानां लिप्ताः कृत्वा पञ्चदशभिर्गुणयित्वा योजनसंख्यात्वमाप्नुवन्ति। वक्ष्यति च—'पञ्चदशहता योजनसंख्ये'ति।

तत्र युगमासाधिकमासभमासयोगोऽयं ५७७५३३३६ द्वादशहतो जातः ६९३०४००३२। एते चतुर्युगेण चन्द्रराशयः। एते त्रिंशद्गुणाः २०७९१२००९६०। एते चतुर्युगेण चन्द्रभागाः षष्ट्या गुणिताः १२४७४७२०५७६००। एताश्चतुर्युगेण चन्द्रलिप्ताः। एताः पञ्चदशहता जाताः १८७१२०८०८६४०००। एतावन्ति योजनानि प्रत्येकस्य ग्रहस्य चतुर्युगाध्वा। आचार्यः पठिष्यति च—

वेदरसाष्टवियद्वसुखरविनगाष्टेन्दवः सहस्रघ्नाः १८७१२०८०८६४०००।

एतावन्ति योजनान्येकेन ग्रहेण स्वकक्ष्यास्थेन पूर्वां दिशमाक्रमता चतुर्युगेण गन्तव्यानीति। तद्युक्तम्—'प्राग्यायिनां ग्रहाणामि'ति।

तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ताः। अत्र तावदाकाशकक्ष्याप्रमाणं क्रियते। तत्र चतुर्युगाध्वयोजनानीमानि १८७१२०८०८६४०००। एतान्यष्टाधिकेन चतुर्युगसहस्रेण कल्प इत्यष्टाधिकेन सहस्रेण गुणितानि जातानि १८८६१७७७५१०९१२०००। इयमाकाशकक्ष्या। अस्या अभ्यन्तरं सविता वितमस्कं करोति। एषा च पठ्यते—

खत्रयसूर्यनवाम्बरचन्द्रबाणमहीधरसप्तमहीध्रा:　।
चन्द्ररसाष्टकमङ्गलचन्द्रा मार्गमिदं नभसः प्रवदन्ति।।

अथ ग्रहभगणाः—

परिवर्त्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतै४३२००००र्भास्करो युगं भुङ्क्ते।
रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै५७७५३३३६श्चन्द्रः।।
वेदाश्विवसुरसाङ्कलोचनदस्रै२२९६८२४रवनिसूनुः।
अम्बरगगनवियन्मुनिगुणविवरनगेन्दुभिः १७९३७००० शशिसुतश्च।।
आकाशलोचनेक्षणसमुद्रषट्कानलै३६४२२०र्जीवः ।
अष्टवसुहुतवहानलयमखनगै७०२३३८८र्भार्गवश्चापि।।
कृतरसशरर्त्तुमनुभिः १४६५६४ सौरो बुधभार्गवौ दिवाकरवत्। इति।

एतैर्भागमपहृत्य यथाक्रमं कक्ष्याप्रमाणानि। तद्यथा—

रविकक्ष्या खखार्थरूपाग्निगुणाब्धयः ४३३१५००
चन्द्रकक्ष्या शून्यखखजिनाग्नयः ३२४०००
भौमकक्ष्या मुन्यग्निनन्दषट्काब्धिरूपवसवः ८१४६९३७
बुधशीघ्रकक्ष्या भवरदाब्धिदिशः १०४३२११।
बृहस्पतिकक्ष्या वेदर्त्वगार्थमुनिविश्वार्थाः ५१३७५७६४
शुक्रशीघ्रकक्ष्या रदर्त्वब्धिषडङ्गाश्विनः २६६४६३२
सौरकक्ष्या गोऽग्न्यगशशिमुनिरसागार्काः १२७६७१७३९
रविकक्ष्या सविकला षष्ठिहता नक्षत्रकक्ष्या।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—अर्को भषष्ट्यंश इति। सा च रविखखगोऽष्टनवतत्त्वानि २५९८९००१२। तथा च पुलिशाचार्यः—

आकाशशून्यतिथिगुणदहनसमुद्रै४३३१५००र्बुधार्कशुक्राणाम्।
इन्दोः सहस्रगुणितैः समुद्रनेत्राग्निभि३२४०००श्च स्यात्।।
भूसूनोर्मुनिरामच्छिद्रर्त्तुसमुद्रशशिवसुभिः ८१४६९३७।
रुद्रयमाग्निचतुष्कव्योमशशाङ्कै१०४३२११र्बुधोच्चस्य।।
जीवस्य वेदषट्कस्वरविषयनगाग्निशीतकिरणार्थैः ५१३७५७६४।
शुक्रोच्चस्य यमानलषट्कसमुद्रर्त्तुरसदस्रैः २६६४६३२।।
भ्रमणोऽर्कजस्य नवशिखिमुनीन्दुनगषट्कमुनिसूर्यैः १२७६७१७३९।
रविखवियन्नववसुनवविषयेक्षणयोजनै२५९८९००१२र्भकक्ष्यायाः।।

अथ कर्णानयनम्

तत्रादौ तदुपयोगिनीनां चान्द्रीणां कलानामानयनमाह—

इष्टग्रहकक्ष्याभ्यो यल्लब्धं चन्द्रकक्ष्यया भक्त्वा।
ता मध्यमा ग्रहाणां सौरादीनां कलाश्चान्द्र्यः।।

इष्टग्रहकक्ष्यायोजनानां चन्द्रकक्ष्यायोजनैर्भागमपहृत्यावाप्तं लिप्तास्तस्यैव ग्रहस्य चान्द्र्यो भवन्ति। कक्ष्यामहत्त्वविवक्षया सौरादीनामित्युक्तम्। सौरादीनां मध्यमग्रहाणां चान्द्र्यः कला भवन्ति। तत्र कर्मणो लाघवार्थं सर्वग्रहाणां भाज्यभाजकराशी चन्द्रकक्ष्यायोजनैर-पवर्त्तनीयौ तत्र सर्वग्रहस्य भाज्यो राशिश्चन्द्रभगणा भवन्ति। भाजकराशिः स्वभगणा इति। तत्रैतत्कर्म जातम्। चन्द्रभगणानां यस्यैव ग्रहस्य सम्बन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कलाश्चान्द्र्यो भवन्ति। एवं दर्शितविधिना सर्वग्रहाणामागताश्चान्द्र्यः कला लिख्यन्ते।

रवेः १३/१५९३३३६/४३२००००।

चन्द्रस्य १।

भौमस्य २५/३३२७३६/२२९६८२४।

बुधस्य ३/३९४२३३६/१७९३७०००।

जीवस्य १५८/२०६५७६/३६४२२०।

शुक्रस्य ८/१५७४२३२/७०२२३८८।

शनेः ३९४/७१२०/१४६५६४।

(खकक्षायाः ५८२१५३६२६८८)।

अथ चान्द्रीभिः कलाभिर्ग्रहकक्ष्याकर्णानयनमाह—

पञ्चदशहता योजनसङ्ख्या तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भः।
योजनकर्णोऽधः स्याद्भूयोजनकर्णविधिना वा।।

एताश्चान्द्र्यः कलाः पञ्चदशगुणिता योजनत्वं गच्छन्ति योजनभूताश्च क्रमेण लिख्यन्ते।

रवेः २००/२३०००४०/४३२००००।

चन्द्रस्य १५।

भौमस्य ३३७/३९७३६२/२२९६८२४।

बुधस्य ४८/५३२४०४०/१७९३७०००।

गुरोः २३७८/१८४८८०/३६४२२०।

शुक्रस्य १२३/२५४६३१६/७०२२३८८।

शनेः ५९१०/१०६८००/१४६५६४।

नक्षत्राणाम् १२०३१/२०४१२/२१६००।

(खकक्षायाः ८७३२३०४४०३२०)।

एतानि प्रतिकक्ष्यं ग्रहाणां लिप्तायोजनानि। तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भ इति। एतैः सर्वकक्ष्यायोजनैरर्द्धविष्कम्भो व्यासार्द्धं ३४३७/९६७/१३०९ गुणितः प्रतिकक्ष्यं कर्णार्द्ध-योजनानि भवन्ति। तत्र व्यासार्द्धं ३४३७/९६७/१३०९ पूर्वानीतैराकाशकक्ष्यालिप्तायो-जनैरेतैः ८७३२३०४४०३२० गुणितं जाताः ३००१९३८१०६५२४०६४। एतदा-काशकक्ष्याकर्णार्द्धम्। भूवृत्तयोजनाष्टशतीं खनित्वा यः प्रदेशो भवति तस्मात्प्रदेशादेतावत्सु

योजनेष्वाकाशकक्ष्योपरि भवति। सर्वेषामेव कक्ष्याकर्णार्द्धानां तस्मादेव प्रदेशात् प्रवृत्तिर्ज्ञातव्या। एतत्पुलिशसिद्धान्ते पठ्यते—

कृतर्त्तुशून्यवेदाश्विपञ्चर्त्तुखनिशाकराः।
वस्वग्निरन्ध्रेन्दुखखगुणाः ३००१९३८१०६५२४०६४ कर्णार्द्धमाम्बरम्।।

अथ तदेव व्यासार्द्धं पूर्वानीतैर्नक्षत्रकक्ष्यालिप्तायोजनैरेतैः १२०३१/२०४१२/२१६०० गुण्यम्। तत्र गुण्यो राशिर्गुणकारश्च सवर्णीकृतो नक्षत्रकक्ष्यां जाता रविखवियन्त्रववसुनवविषयेक्षणयोजनानीति २५९८९००१२।

इयं नक्षत्रकक्ष्या व्यासार्द्धेन सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणनीया व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ खखषड्भूयम २१६०० हतेनानेन २८२७४४०० विभज्यते यस्मात् परस्परच्छेदवधो भागोपहारो भवति। तदर्थं गुणकारभागहारराश्योरनयोः ४५०००००। २८२७४४००। परस्परं वर्तने कृते जातम् ७२००। अनेनाप्तं गुणकारम् ६२५। अनेन नक्षत्रकक्ष्या गुणिता। एवं जाताः १६२४३१२५७५००।

अथ छेदेनानेन ७२०० छिन्नाद्भागोपहाराल्लब्धेनानेन ३९२७ भागो हर्तव्यः। लब्धम् ४१३६२६८३। एतन्नक्षत्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

अथ शनैश्चरकक्ष्यालिप्तायोजनानि ५९१०/१०६८००/१४६५६४ सवर्णीकृतानि ८६६३०००४० व्यासार्द्धेन च सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणितानि ३८९८३५० १८००००००० सर्वग्रहाणां भाज्यो राशिः। अयं व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ गुणितैर्यस्यैव ग्रहसम्बन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कक्ष्याकर्णार्द्धं लभ्यते तस्मात् सर्वग्रहाणां कक्ष्यालिप्तायोजनानि सवर्णीकृतान्ययमेव ८६६३०००४० राशिर्भवति।

अस्य राशेः सर्वेषामेव सवर्णीकृतं व्यासार्द्धं गुणकारो ग्रहभगणहतो व्यासार्द्धच्छेदोऽयं १३०९ भागोपहारः। १३०९ अनेन गुणिता भगणाः सर्वेषां लिख्यन्ते यस्मात्ते भागोपहारा भविष्यन्ति। तद्यथा—रवेः ५३५४८८००००।

चन्द्रमसो नोपयुज्यते तत्कक्षायाः सविकलायाः पञ्चदशयोजनानि यस्माल्लिप्ता।

भौमस्य ३००६५४२६१६।
बुधस्य २३४७९५३३०००।
गुरोः ४७६७६३९८०।
शुक्रस्य ९१९२३०५८९२।
सौरस्य १९१८५२२७६।

अत्र भाज्यराशेरस्य सर्वग्रहाणाम् ३८९८३५०१८००००००० आदित्यभागोपहारेणानेन ५३५४८८०००० भागमपहृत्यावाप्तम् ६८९३७८। एतदादित्यकर्णार्द्धम्।

व्यासार्द्धमेतत् ३४३७/९६७/१३०९। कक्ष्यालिप्तायोजनैः पञ्चदशभिर्गुणितम् ५१५६६। एतच्चन्द्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

एवं सर्वेषां भाज्यराशेः स्वभाजकेन भागमपहृत्यानीताः सर्व एव। तद्यथा—

अर्ककर्णो वस्वागाग्निनन्दाष्टरसाः ६८९३७८।
चन्द्रकर्णः षडर्तुशरैकार्थाः ५१५६६।
भौमकर्णो नेत्रनेत्रर्त्त्वङ्गनन्दार्काः १२९६६२२।
बुधशीघ्रकर्णः शशिगुणखाङ्गाष्टयः १६६०३१।
बृहस्पतिकर्णो वस्वष्टषट्षण्मुनिरूपवसवः ८१७६६८८।
शुक्रशीघ्रकर्णो वस्वष्टखाब्धिनेत्राऽब्धयः ४२४०८८।
सौरकर्णो रूपाब्धिशरनन्दैकगुणनखाः २०३१९५४१।
नक्षत्रकर्णो रामाष्टर्त्त्वश्विरसविश्वेवेदाः ४१३६२६८३।

तथा च पुलिशाचार्यः—

वसुमुनिगुणान्तराष्टकषट्कै६८९३७८र्दिननाथशुक्रसौम्यानाम्।
द्वादशदलषट्केन्द्रियशशाङ्कभूतै५१५६६रजनिकर्तुः।।
दस्राश्विषट्करसनवलोचनचन्द्रै१२९६६२२र्धरणिसूनोः।
रूपत्रिशून्यषट्काष्टि१६६०३१भिर्मितं तद्बुधोच्चस्य।।
अष्टवसुरसषण्मुनिशशाङ्कवसुभि८१७६६८८स्तु जीवस्य।
वसुवसुशून्याब्धिद्विकवेदै४२४०८८रपि भार्गवोच्चस्य।।
एकार्णवार्थनवशशिदहनखदस्रै २०३१९५४१ रविसुतस्य।
त्रिवसुरसद्विरसानलशशिवेदैर्ऋक्षकर्णार्द्धम् ४१३६२६८३।। इति।

भूयोजनकर्णविधिना वैतत्सूत्रखण्डकं प्रकारान्तरप्रदर्शनायातो न व्याख्यातम्।

एवं कर्णकक्ष्याप्रमाणेष्वभिज्ञः। तथा प्रतिविषयं प्रतिदेशं योजनपरिच्छेदकुशलः। परिच्छेदो ज्ञानम्। यथा—इतः समुद्र एतावद्योजनसङ्ख्यस्तस्माद्देशादयं देश एतावन्ति योजनानि तत्र कुशलः शक्तः। तद्यथा—अभीष्टदेशद्वयाक्षभागानामन्तरं कृत्वा यद्भवति तेन स्वराश्विखशरान् ५०२७ सङ्गुण्य खर्त्वग्नि३६०भिर्विभजेत्, लब्धमिष्टदेशयोरन्तरयोजनानि। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

अक्षांशकुपरिधिबधान्मण्डलभागाप्तयोजनैर्विषुवति।
नतभागयोजनैः ख उपरि सूर्योऽन्यदनुपातात्।।

अथवाक्षद्वयान्तरभागैस्त्रैराशिकेन योजनानयनम्। यद्येकेन भागेन नवयोजनानि नवभागोनानि भवन्ति, तदाभीष्टभागैः किमिति लब्धं योजनानि। एतदेवाचार्यो 'दृश्ये चक्रस्यार्द्धे' इत्यादिना ग्रन्थेन वक्ष्यति। एवं प्रतिविषयं योजनपरिच्छेदकुशलः।।११।।

अथान्यदप्याह—

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः ।।१२।।

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चरखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।।१२।।

भूभगणेति। भूमेः संस्थानाभिज्ञः। भूमेः संस्थानं जानाति। यथा—भूर्गोलकाकारा खमध्यस्थिता नक्षत्रपञ्जरमध्यगता च ध्रुवतारकद्वयप्रतिबद्धा तिष्ठति। अयस्कान्तद्वयाकृष्टोऽन्तरे लोहपिण्ड इव। स च भूगोलः समन्तात्तरुनगनगरसरित्समुद्रादिभिर्व्याप्तः। तस्योपरि मध्यभागे मेरौ देवास्तले दैत्या इति। एवमियं भूर्गोलकाकारा खमध्यगा तिष्ठति।

नन्विदमत्याश्चर्यमुच्यते यथा खस्थो भूगोल इति यावदल्पस्यापि मूर्तिमत्पदार्थस्याऽऽकाशे स्थितिर्न दृश्यते किमिति पुनर्महाप्रमाणया भुवो नगनगरद्वीपगजरथतुरङ्गाद्यनेकाश्चर्याकुलीकृतायाः। नैतद्योग्यं स्वरूपत्वात्। यथाऽग्निर्दहनात्मको वायुश्च प्रेरणात्मकः। उदकं च क्लेदनात्मकम्। न विषयेण कश्चित्प्रयोजकः। एवमियं भूर्धारणात्मिका न धारणा तस्मात् खेऽस्थिरा नेयं सर्वं धारयति। अथ पतत्येव तिष्ठतु का नः क्षतिरिति चेत् तदपि न। यतो लोष्टादयः शिशुभिरुपरि क्षिप्ता भुवमासादयन्तो दृश्यन्ते। मन्दं क्षितिः पतति चेद् मान्द्यमेवैतदतिगुरुत्वाद् भूमेः। अथावश्यं तथापि क्व पततु। अध इत्याह—किमिदमधो नाम? प्रतियोगिसापेक्षश्चाधःशब्दः। यथा स च विशेषाणामपादानं चाधो भूरुपरि वियदेवमस्याः सर्वाधोभूताया भुवः किमधः। खमिति चेत्, तर्हि सर्वतो युगपत्प्रसङ्गः। तत्रोपरिपार्श्वपतने निरस्ते दृष्टिविरोधात्। अधश्च निरस्तमेव। अधःपतनाद्यदाधारविशेषः प्रकल्प्य इत्यभिप्रायेण तदपि न शक्यते वक्तुं तस्यापि मूर्तिमत्त्वादन्योऽन्यस्तस्याथ इत्यनवस्थाप्रसङ्गः। अत्रोच्यते—स्वशक्त्याऽसौ तिष्ठति तत्प्राथम्यादेव स्वशक्तिः कथं भुवो न परिकल्प्यते। भूमेश्चावश्यं शक्तिः परिकल्पयितुं बुध्यते। अन्यथा सर्वतोऽपि परस्परमधोभावेन सत्त्वानामवस्थितिरेव न स्यात् समुद्रादीनां च। तस्मान्मूर्तिमदाधाररहितो विशिष्टशक्तियुक्तो भूगोलः खे तिष्ठतीत्युपपन्नम्। तथा चाऽऽचार्य एवाऽऽह—

पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः।।
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिश्चितः सर्वः।
विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधःस्थिता दैत्याः।।
सलिलतटासन्नानामवाङ्मुखी दृश्यते यथा छाया।
तद्वद्गतिरसुराणां मन्यन्ते तेऽप्यधो विबुधान्।।
गगनमुपैति शिखिशिखा क्षिप्तमपि क्षितिमुपैति गुरु किञ्चित्।
यद्वदिह मानवानामसुराणां तद्वदेवाधः।।

तथा च पौलिशे—

वृत्ता चक्रवदचला नभस्यपारे विनिर्मिता धात्रा।
पञ्चमहाभूतमयी तन्मध्ये मेरुरमराणाम्।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

शशिबुधसिताककुजगुरुशनिकक्ष्यावेष्टितो भकक्ष्यान्तः।
भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपातः।।
खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः।
खे भगणर्क्षाग्रस्थावुपर्यधश्च ध्रुवौ तेषाम्।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः।।
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्विविधैः सत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः।।
मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयः सर्वतो वृत्तः।।
स्वर्मेरुस्थलमध्ये नरको बडवामुखं च जलमध्ये।
असुरसुरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थिता नियताः।।

तथा च वसिष्ठसिद्धान्ते—

जगदण्डखमध्यस्था महाभूतमयी क्षितिः।
भावाय सर्वसत्त्वानां वृत्तगोल इव स्थिता।। इति।

एवं भूमेः संस्थानं जानाति।

तथा च भगणस्य नक्षत्रचक्रस्य भ्रमणसंस्थानं च जानाति। यथा भपञ्जरो ध्रुवयोर्नियमितः प्रवहाऽनिलेन भ्राम्यमाणो लङ्कास्थानामुपरिष्टाद् भूलग्नो देवासुराणां परिभ्रमति इति च। देवानां प्रदक्षिणगो दैत्यानामप्रदक्षिणगोऽन्येषां भूस्थानामक्षवशादुन्नमति ध्रुव उत्तरेण नमति। तथा चाऽऽचार्यः—

मेरेः सममुपरि वियत्यक्षो व्योम्नि स्थितो ध्रुवोऽधोऽन्यः।
तत्र निबद्धो मरुता प्रवहेण भ्राम्यते भगणः।।

यदुक्तमाचार्याऽऽर्यभटेन—

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।। इति।

अत्रायं परिहारः—

भ्रमति भ्रमस्थितेव स्थितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या न खात् पुनः स्वनिलयमुपेयुः।।
अन्यच्च भवेदभूमेरह्ना भ्रमरहंसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति।।

अर्हत्प्रोक्तेऽर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरोदयौ किल तौ।
यद्येवमर्कसूत्रात् किं ध्रुवसूत्रं भ्रमत्यह्ना।।

तथा च पौलिशे—

तस्योपरि ध्रुवः खे तद्बद्धं पवनरश्मिभिश्चक्रम्।
पवनक्षिप्तं भानामुदयास्तमयं परिभ्रमति।।

तथा चाऽऽचार्यभटः—

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तम्।
लङ्कासमपश्चिमगं भमण्डलं सग्रहं भ्रमति।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

ध्रुवयोर्मध्ये सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्।।
अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपञ्जरो ध्रुवो नमति।
लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे।।

एवं भगणभ्रमः।

संस्थानं तथा। नक्षत्रध्रुवकात् क्रान्तिज्यां कृत्वा तस्याश्चापभागाः कार्यास्तेषां विक्षेपेणैकदिक्केन सह योगो भिन्नदिक्केन सह वियोगः कार्यः। एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति भागरूपा। तावद्भिर्भागैर्विषुवल्लेखातो याम्येनोत्तरेण वा नक्षत्रयोगतारकः क्रान्तिवशेन संस्थितः। एवं भगणं भ्रमणसंस्थानज्ञः। आदिग्रहणादर्कसंस्थानमन्यदेशानां भ्रमणव्यस्तत्वं च जानाति। एतच्चाऽऽचार्येणैवोक्तम्। तथा च—

प्रोद्यतरविरमराणां भ्रमत्यजादौ कुवृत्तगः सव्यम्।
उपरिष्टाल्लङ्कायां प्रतिलोमश्चामरारीणाम्।।
मिथुनान्ते च कुवृत्तादंशचतुर्विंशतिं विहायोच्चैः।
भ्रमति हि रविरमराणां समोपरिष्टात्तदाऽवन्त्याम्।।
नष्टच्छायाप्येवं छायोदक् तत्प्रभृत्युदक्स्थानाम्।
तद्वद्दक्षिणगानां मध्याह्ने दक्षिणा छाया।।
मेषवृषमिथुनसंस्थे दिनं रवौ कर्कटादिगे रात्रिः।
यैरुक्ता विबुधानां मेरुस्थानां नमस्तेभ्यः।।
येष्वेवोदङ्मेषाद्याति स्थानेषु सन्निवृत्तोऽपि।
तेष्वेव कथं दृश्यः पुनर्न दृश्यश्च तत्रस्थः।।
दृश्ये चक्रस्यार्धे त्रयः खमध्यात्तु राशयस्तेषाम्।
नवतिस्तानि च खण्डान्युदयात् परिकल्पनीयानि।।

एकैकांशो नवभिर्नवभागोनैश्च योजनैर्भवति।
स च दक्षिणोत्तराणां प्रत्यक्षः खेऽप्ययं मध्यात्।।
एवं च नवत्यंशैरष्टौ दृष्टानि योजनशतानि।
तत्प्रामाण्यादेशे मध्याह्ने द्रष्टुरुदयो यः।।
उज्जयिनी लङ्कायाः सन्निहिता योत्तरेण समसूत्रे।
तन्मध्याह्नो युगपद्विषमो दिवसो विषुवतोऽन्यः।।
योजनशतानि भूमेः परिमाणं षोडश द्विगुणितानि।
एतापयति मेरुमध्याद्विषुवस्थोऽर्कः क्षितिं चैवम्।।
षडशीतिं पञ्चशतीं त्रिभागहीनं च योजनं भित्वा।
क्षितिमध्यमुदगवन्त्या लङ्काया योजनाष्टशतीम्।।
प्रतिविषयमुदक्तुङ्गो हरिजाद्यावद्ध्रुवः खमध्यात्तु।
दिनकृदपि नमति विषुवति दक्षिणतस्तावदेवांशैः।।
त्रिशतीं त्रिसप्ततियुतां गत्वोदग्योजनत्रिभागं च।
उज्जयिनीतो विघटति पर्याप्तोऽयं भगणगोलः।।
षष्टिर्नाड्यस्तस्मिन् सकृदुदितो दृश्यते दिवसनाथः।
परतः परतो बहुतरमाषण्मासादिति सुमेरौ।।
योजनपञ्चनवांशान् त्र्यधिकां च चतुःशतीमुदगवन्त्याम्।
गत्वा न धनुर्मकरौ कदाचिदपि दर्शनं व्रजतः।।
तस्मादेव स्थानाद्द्व्यशीतियुक्तां चतुःशतीं गत्वा।
दृष्टिपथं नो यान्त्यलिमृगघटचापधराः कदाचित्।।
षडशीतिं पञ्चशतीं त्र्यंशोनं योजनं च तत एव।
गत्वाऽन्त्यं चक्रार्द्धं नोदेत्याद्यं न यात्यस्तम्।।
लङ्कास्था भूलग्ना नभसो मध्यस्थितां च मेरुगताः।
ध्रुवतारामीक्षन्ते तदन्तरालेऽन्तरोपगताः।।
सकृदुदितः षण्मासान् दृश्योऽर्को मेरुपृष्ठसंस्थानाम्।
मेषादिषु षट्सु चरन् परतो दृश्यः स दैत्यानाम्।।
मेषस्तेषां नित्यं लग्नं त्र्यंशश्च भूमिपुत्रस्य।
त्रिंशद्भागनवांशद्वादशभागाश्च तस्यैव।।
विषुवल्लेखाधस्ताल्लङ्का तस्यां समो भगणगोलः।
त्रिंशन्नाड्यो दिवसस्त्रिंशत्तस्यां सदा च निशा।।
सलिलेन समं कृत्वा तुङ्गं फलकं यथादिशं दृष्ट्वा।
दक्षिणकोट्यां शङ्कुं फलकप्रमितं व्यवस्थाप्य।।
ऋजुशङ्कुबुध्नविन्यस्तलोचनो नामयेत्तथा शङ्कुम्।
भवति यथा शङ्क्वग्रं ध्रुवतारादृष्टिमध्यस्थम्।।

पतितेन भवति वेधो लङ्कायामूर्ध्वगेन तु सुमेरौ ।
विनतेन चान्तराले फलकच्छेदार्धसूत्रसमे।।
तत्रावलम्बको यः सोऽक्षज्या तस्य शङ्कुविवरं स्यात्।
विषुवदवलम्बकोऽसौ याम्योत्तरदिक्प्रसिद्धिकरः।।
स्वप्रत्ययेन सन्तो विज्ञायैवं वदन्ति भूमध्यम्।
सकलमहीमानं वा रसमिव लवणाम्भसाल्पेन।। इति।

एवमादिग्रहणाज्ज्ञेयम्।

तथाक्षावलम्बाभितः। अक्षो ध्रुवोन्नतिः। एतावद्भिर्भागैः स्वदेशे हरिजादुच्छ्रितो ध्रुवो दृश्यते। अथवेष्टदिने कीदृशोऽक्षः। तत्र गणितविधिना स्वदेशाक्षभागानुत्पाद्य तेषु क्रान्तिभागानुत्तरान् शोधयेत्। दक्षिणान् क्षिपेत्। एवमिष्टदिनाक्षो भवति। तथा चाऽऽचार्यः—

विषुवद्दिनसममध्यच्छायावर्गात्सवेदकृतरूपात् ।
मूलेन शतं विंशं विषुवच्छायाहतं छिन्द्यात्।।
लब्धं विषुवज्जीवा चापमतोऽक्षोऽथवैवमिष्टदिने।
मेषाद्यपक्रमयतस्तुलादिषु विवर्जितः स्वाक्षः।।

अवलम्बकः। यावद्भिर्भागैः स्वदेशसममण्डलरेखातो ध्रुव उत्तरेण नमति सोऽवलम्बकः, इष्टदिनावलम्बको वा, तत्राभीष्टाक्षभागा नवतेः संशोध्याः शेषा अवलम्बकांशा भवन्ति। तथा चाऽऽचार्यः—

विषुवज्ज्यायामार्धवर्गविश्लेषमूलमवलम्बकः।

तथा—

चरखण्डकपक्षांशज्याघ्नमहर्व्यासमुद्धरेत्खजिनैः ।
द्विःकृत्वा तद्वर्गात्क्रान्तिज्याकृतियुतान्मूलम्।।
तेन विभजेत् स्थितज्यां व्यासार्द्धगुणामवाप्तमक्षज्या।
नवतेरक्षोनायाः क्रमशो ज्या लम्बको भवति।।

अहर्व्यासो द्युव्यासः स्वाहोरात्रविष्कम्भः। ग्रहस्येष्टक्रान्तित्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणमित्यर्थः। तथा चाऽऽचार्यः—

क्रान्तित्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणं दिनव्यासः।। इति।

चरदलकालः। राशीनां मेषादीनां चरखण्डकालः। स्वदेशनिरक्षदेशदिनरात्र्योरन्तरमित्यर्थः।

विंशतिरष्टिः सार्द्धपादोनाः सप्त चाजपूर्वाणाम्।
विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्चरविनाड्योऽर्द्धैः।।

एवं चरदलज्ञानम्। एतैर्गणितविधिना स्फुटरवेरिष्टदिनचरदलसाधनं कार्यम्। राश्युदया

राशीनां मेषादीनां निरक्षदेशे स्वदेशेष्वेवोदयप्रमाणचषकाः। तथा चाऽऽचार्यः—

वसुमुनिपक्षा व्येकं शतत्रयं चिद्विकाग्नयश्चाङ्काः।
परतस्त एव वामाः षडुत्क्रमात्ते तुलाद्यर्द्धे।।
चरदलकालक्षीणास्त्रयस्त्रयः संयुताः प्रतीपैस्तैः।
उदयर्क्षतुल्यकालेन यान्ति तत्सप्तमाश्चास्तम्।।

छाया। स्वदेशे विषुवति द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोरिष्टकाले वा। सलिलकृतसमायामवनौ विषुवद्दिवसमध्याह्ने द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोश्छाया विषुवती भवति इष्टदिने गणितविधिना सिद्ध्यति। तथा चाऽऽचार्यः—

अपमोनयुताक्षज्यां त्रिज्यातत्कृतिविशेषमूलेन।
छिन्द्याद्द्वादशगुणितां लब्धा माध्याह्निकी छाया।।

इष्टच्छायानयनम्—

तत्कालचरविनाडीद्विदशांशं द्विष्ठमजतुलाद्येषु।
षड्घ्नीभ्यो नाडीभ्यो जह्यात् संयोजयेच्चापि।।
तज्ज्या स्थितज्यया संयुता विसंयोजिताजतुलाद्येषु।
अविशोधनेन जीवा षड्घ्नीनामेव कर्तव्या।।
एवं कृत्वा हन्याद्द्युव्यासेनावलम्बघ्नेन।
छिन्द्यात् खखाष्टवस्वश्विभिः फलं शङ्कुलिप्ताख्यम्।।
तत्कृतिविनाकृतानां खखवेदसमुद्रशीतरश्मीनाम्।
पदमर्कघ्नं शङ्क्वङ्गुलाख्यलिप्तोद्धृतं छाया।।

नाडीकरणम्। इष्टकाले शङ्कुच्छायां दृष्ट्वा कालानयनं छायातो जानाति कालाच्च छायानयनम्। तथा चाऽऽचार्यः—

षड्घ्नेऽथ स्वद्युमिते छिन्ने सद्वादशैर्विमध्याह्नैः।
छायाङ्गुलैर्गतास्ता नाड्यः प्राक् पृष्ठतः शेषाः।।
छायाऽऽर्की नाडीभिर्दिनमानं षड्घ्नमुद्धरेत्तत्र।
लब्धं द्वादशहीनं मध्याह्नच्छायया सहितम्।।

सा विज्ञेया छायेति च। तत्क्षेत्रं कालाज्जानाति क्षेत्राच्च कालम्। यथैतावतीनां दिनगतघटिकानां रात्रिगतानां वा किं लग्नं तस्य लग्नस्य कियत्यो राशिभागलिप्ता इति। एतत्कालात् क्षेत्रम्। तथा चास्मदीयवचनम्—

तात्कालिकार्कराशेर्भोगकलास्तत्प्रमाणसङ्गुणिताः ।
खखवसुशशिभिर्लब्धं विशोधयेत् प्रश्नचषकेभ्यः।।
संयोज्यं भुक्तमिते तत्परतः शोधयेत् स्वराश्युदयान्।
यावन्तः संशुद्धास्तावन्तो राशयः क्षेप्याः।।

सूर्ये शेषं विभजेदशुद्धचषकैः खरामसङ्गुणितम्।
लब्धं भागादि रवौ प्रक्षिप्य तथा कृते लग्नम्।।
रात्रिगते षड्भयुतादर्कादि्दनवत्प्रसाधयेल्लग्नम्।
दिनलग्ने यद्विहितं तद्विपरीतं निशाशेषे।।

एतत्कालात् क्षेत्रम्। क्षेत्राच्च कालम्। इष्टकाले तात्कालिकं लग्नं दृष्ट्वार्कं च इदं लग्नं कियतीनां घटिकानां दिनगतानां रात्रिगतानां रात्रिशेषाणां वा। एतज्जानाति लग्नार्कयोरन्तराद् घटिकानयनं करोति। तथा चास्मदीयवचनम्—

सूर्यादभुक्तभागैर्लग्नाद्भुक्तैः प्रसाधयेल्लब्धिम्।
तद्योगे राश्युदयान् तदन्तरस्थान् क्षिपेत्कालः।।

तथा—

ऊनो लब्धेः कालस्तमेव भक्त्वार्कराशिमानेन।
प्राग्वल्लब्धं सूर्ये दत्त्वा लग्नं भवेत्तदन्तरकम्।।
तद्राशिमानगुणितं खखाष्टरूपैर्विभाजितं कृत्वा।
लब्धं कालं विन्द्यादिति ....।।

एवं क्षेत्रकालकरणमेवमादिष्वभिज्ञ इति।।१२।।

अथ तन्त्रज्ञस्य विशेषलक्षणमाह—

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति ।।१३।।

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार के चोद्य (सयुक्तिक) प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये।।१३।।

इत्थम्भूतस्य शास्त्रस्य यो वक्ता प्रतिपादकः स तन्त्रज्ञो भवति गणितज्ञ इत्यर्थः। कीदृशस्य शास्त्रस्य निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य। यथा कनकं स्वर्णं स्वभावनिर्मलं भवति। तच्च निकषसन्तापाभिनिवेशैरधिकतरं निर्मलं भवति। निकषं निर्घर्षणं पाषाणतले। सन्तापोऽग्नौ परितापनम्। अभिनिवेशो यन्त्रच्छेदनसङ्घट्टनमेतैः सुवर्णमधिकतरममलं भवति। शास्त्रस्य निकषं निर्घर्षणं भूयोभूयोऽन्वेषणम्। सन्तापश्चित्तपरितापश्चमत्कारस्तत्रैवैकाग्रता। अभिनिवेशो यत्नो व्यासक्तिः। एतैरमलीकृतस्य निःसन्देहभूतस्य कीदृशो वक्ता नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारः। नानाप्रकाराश्च ते चोद्याः, प्रश्नानां भेदाः प्रश्नभेदाः। अभिधेयस्यार्थस्य प्रतिपक्षोद्भवेनानुपपत्त्योपपादनं चोद्यम्। यथा केनचिच्चोद्यः कृतः। यथा यो दक्षिणस्यां दिशि कन्यास्थे सवितर्यतीवस्फुटरूपस्तारको दृश्यते स ध्रुवः। उत्तरस्यां दिशि योऽतिसूक्ष्मरूपः सोऽगस्त्यः। तस्य गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा भूगोलमध्ये मेरुस्तत्र चाक्षभागा नुवतिर्ध्रुवो-

न्नतिरेवाक्षोऽतो दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवो न दृश्यते यतस्तत्र भूगोलमध्यम्। अगस्त्य उत्तरस्यां न दृश्यते यतः स खमध्यात् स्वक्रान्त्या दक्षिणे गतो ध्रुवकविक्षेपवशात्। अनधिगतस्यार्थस्याधिगमतापवचनम्। प्रश्नो यथा—नक्षत्रगणनया चित्रा प्रथमतः स्थिता तत्पश्चात् स्वाती कथं स्वाती पूर्वमुदयं याति पश्चाच्चित्रा। चित्रायामस्तमितायां पश्चात्स्वातिरस्तमेति। तस्या अपि गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा चित्रा दक्षिणविक्षिप्ता स्वातिरुत्तरतश्चित्राया अल्पमहःप्रमाणं स्वातेरतिमहत्। तेनैतत् सम्भवति। एवं नानाचोद्यप्रश्नभेदानामुपलब्धिर्नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिः। उपलब्धिरुपलम्भनं ज्ञानं वादिकृतप्रश्नानां परिहारः। तयोपलब्ध्या जनित उत्पन्नो वाक्सारो निश्चयो यस्य स तथाभूतः। अन्य एवं व्याचक्षते; यथा—नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्ध्या जनितो वाक्सारो यस्य कैर्निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्येति।।१३।।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा किं तदित्याह—

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः।
निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ज्ञेयः ।।१४।।

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को भी नहीं पढ़ाता; वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं।।१४।।

यो नरः प्रतिबद्धं शास्त्रोपनिबद्धमर्थं न गमयति न प्रतिपादयति सूत्राक्षराणां योऽर्थस्तं विहायाऽसारार्थं प्रतिपादयति। तथा हि—केनचित् सन्देहव्युदासार्थं पृष्टः सन्नेकमपि प्रश्नं न वक्ति न कथयति। तथा च शिष्येभ्यश्छात्रेभ्यो न निगदति न पाठयति। स कथं केन प्रकारेण शास्त्रार्थविद् ग्रन्थसद्भावो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एतदुक्तं भवति। एवंविधः स मूर्ख इति ज्ञेयो न पण्डितः।।१४।।

अथ मूर्खोपहासार्थमाह—

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम् ।।१५।।

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है, उसको नहीं समझकर जो मूर्ख उसका विरुद्ध अर्थ करता है, वह मानो ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उनकी स्तुति करता है।

यो नरो मनुष्योऽन्यथाऽन्येन प्रकारेण ग्रन्थसंस्थितोऽन्यथार्थं करोति। करणं गणितकर्म्म गुणकारभागहारादिकमन्यथास्थितमन्यथा करोति। यथा—

दिनकरवसिष्ठपूर्वान् विबुधमुनीन् भावतः प्रणम्यादौ।
जनकं गुरुं च शास्त्रे येनास्मिन्नः कृतो बोधः।। इति।

अत्र व्याख्या—दिनं सर्वत्र मानैर्यद्गण्यते। करौ हस्तौ। याभ्यां गणितकर्म क्रियते। वसिष्ठो धनधान्यतोऽर्थः प्रार्थयते। पूर्वा आद्यपुरुषाः। पितामहप्रभृतयो य एतान् दिनकरवसिष्ठपूर्वान्। विशेषेण बुधाः पण्डिता ये मुनयः ऋषयो ये तान्। तथा भावतो भा कान्ति-

विंद्यते येषु ते भावन्तो द्वादशादित्यास्तानपि भावत:। यतस्तदालोकात् सर्वेषामेव कर्म्मणां प्रवृत्ति: आदौ प्रथमत: प्रणम्य नमस्कृत्य। तथा जनानां लोकानां कं शिरो जनकं कीदृशं गुरुं च गौरवयुक्तं सर्वाङ्गप्राधान्यात्। येन केन नोऽस्माकमस्मिन् शास्त्रे बोध: कृत उत्पादित:। मूर्ध्ना विना सत्सु विद्यमानेष्ववयवेषु न किञ्चित् कर्तुं शक्यत इति।

तथा करणे। द्युगणेऽहर्गणे अष्टशतघ्ने अष्टौ च शतं चाष्टशतं तेन हते गुणिते। किं भूतेऽहर्गणे विपक्षा वेदार्णवा: प्रमाणं यस्य द्वाभ्यां हीना चतुश्चत्वारिंशदित्यर्थ:। तथा तस्मिन् अर्कसिद्धान्ते। अर्का द्वादश। सिद्धाश्चतुर्विंशतिरन्तेऽवसाने यस्य। यथासङ्ख्यं स्व-रखाश्विद्विनवयमाभ्यां क्रमादुद्धृते विभक्ते भगणादिविलिप्तान्तोऽर्को लभ्यते। एवमवन्त्या-मुज्जयिन्यां दिनदले मध्याह्ने नान्यदेशेष्वित्यर्थ:।

सोऽबुधो मूर्ख: पितामहं पितु: पितरमुपागम्य तत्समीपं गत्वा वैशिकेन वैश्यात्वेन नखदशनक्षतसीत्कारादिभिर्गुणैरार्यां मातरं स्तौति श्लाघयति। मूर्खोपहासमेतत्।।१५।।

अथ त्रिस्कन्धस्य वाक्प्रशंसार्थमाह—

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या ॥१६॥

जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो; छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो; ऐसे गुणसम्पन्न बताने वाले की वाणी कभी भी वन्ध्या (निष्फल) नहीं होती।।१६।।

तन्त्रे गणितस्कन्धे सुपरिज्ञाते सुष्ठु सवासनिके विदिते। तथा लग्ने तात्कालिके उदये छायाया: शङ्को: सम्बन्धिन्या अम्बुयन्त्रेण घटिकादिकेन च संविदिते सम्यग्ज्ञाते। कालं ज्ञात्वा स्फुटतरे कृत इत्यर्थ:।

तथा होरार्थे जातकार्थे सुरूढे सुस्थिरे सति। आदेष्टुरुपदेशकर्तुर्भारती वाग् वन्ध्या निष्फला न भवति। तस्य वाग् मुनेरिव सत्या भवतीत्यर्थ:।।१६।।

उक्तं चाऽऽचार्यविष्णुगुप्तेन। तथाऽऽह—

अप्यर्णवस्य पुरुष: प्रतरन् कदाचि-
दासादयेदनिलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य
गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥१७॥

तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है; पर काल-पुरुष संज्ञक ज्यौतिषशास्त्ररूप महासमुद्र को ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता।।१७।।

अपिशब्द: सम्भावनायां वर्तते। अर्णवस्य समुद्रस्य दुस्तरस्यापि पुरुषो मनुष्य:

प्रतरन्नुल्लङ्घयन्ननिलवेगवशेन वायुरयहेतुना परं पारमासादयेत्प्राप्नुयात्। अस्य पुनः कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य कालरूपः पुरुषः स चाख्या नाम यस्यासौ कालपुरुषाख्यः, स च महार्णवस्तस्य ज्योतिःशास्त्रविस्तीर्णसमुद्रस्यानृषिरमुनिर्मनसा चित्तेनापि पारं नासादयेत्। अनेन ज्योतिःशास्त्राऽऽनन्त्यं प्रदर्शितं भवति।। १७।।

अथ स्कन्धद्वये के भेदास्तदर्थमाह—

होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबल-परिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृति-धातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्यो-मरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसा-दीनां च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तत्काल-प्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम् ।।१८।।

होराशास्त्र में भी राशि (मेष, वृष, मिथुन आदि—इनके स्वरूप), होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, राशियों के बलाबल-परिग्रह। सूर्य आदि ग्रहों के दिग्बल, स्थानबल, कालबल, चेष्टाबल—इनके द्वारा बल का विचार। गर्भाधान, जन्मकाल—इनमें विस्मयजनक विश्वास का आदेश अर्थात् नालवेष्टित, कोशवेष्टित, यमल आदि सन्तान हुई है—यह बताकर शास्त्रों में विश्वास पैदा कराना। शीघ्र मरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहयोग, नाभसयोग—इन सबों का फल। आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति, अनूक (पूर्वजन्म)—इनका विचार। तात्कालिक प्रश्नों के शुभ-अशुभ कारण। लग्न के आश्रित शुभ-अशुभ सूचक कारण। विवाह आदि (उपनयन, चूड़ाकरण, गृहप्रवेश) कर्मों के ज्ञान के कारण—ये सब विषय होते हैं। इन पूर्वोक्त विषयों का विचार वराहमिहिर-विरचित बृहज्जातक और विवाहपटल—इन दोनों पुस्तकों में अच्छी तरह वर्णित है।।१८।।

होराशास्त्रे जातकशास्त्रे के भेदाः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। चशब्दः प्रकारार्थे। न केवलं तन्त्रे वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्या उक्ताः। यावद्धोराशास्त्रेऽपि तथा भेदाः। तद्यथा—राशिर्मेषादिकस्तस्य स्वरूपं मत्स्यो घटीत्यादि स चाष्टादशशतलिप्तात्मकः। होरा तदर्द्धं तस्या मार्तण्डेन्द्वोरिति लक्षणमुक्तम्। द्रेष्काणस्त्रिभागस्तस्य द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवाधि-पानामिति लक्षणमुक्तम्। नवांशको नवभागस्तस्याजमृगेति लक्षणमुक्तम्। द्वादशभागो द्वादशां-शस्तस्य भवनसमांशकेति लक्षणमुक्तम्। त्रिंशद्भागस्त्रिंशांशस्तस्य कुजरविजेत्यादि लक्षण-मुक्तम्। बलाबलपरिग्रहो राशीनामेव होरास्वामिगुरुज्ञेत्यादिनोक्तः। तथा ग्रहाणामादित्यादीनां दिग्बलं दिक्षु बुधाङ्गिरसाविति। स्थानबलं स्वोच्चसुहृदिति। कालबलं निशि शशिकुजसौरा इति। चेष्टाबलमुदगयने रविशीतमयूखाविति। एताभिर्दिक्स्थानकालचेष्टाभिः। अनेकप्रकाराणां बहुविधानां बलानां वीर्याणां निर्धारणं विचारः। यथा चन्द्रसितौ क्षेत्र इति शुभग्रहदर्शनं नैसर्गिकबलमित्येवमादिकानाम्। प्रकृतिर्वातपित्तश्लेष्मात्मकत्वम्। मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः

पित्तप्रकृतिरित्यादि । धातुः वसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवस्ते चोक्ताः स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगित्यादि। द्रव्यं ताम्रादि। ताम्रं स्यान्मणिहेम इत्याद्युक्तम्। जातिर्ब्रह्मणादिर्विप्रादितः शुक्रगुरू इत्युक्ता। चेष्टा विनियोगः। राजानौ रविशीतगू इति । आदिग्रहणात् सत्त्वादिगुणत्रयं चन्द्रार्कजीवा इति। कटुकादिरसषट्कं देवादिस्थानानि वस्त्राणि देवाम्ब्वग्नीत्यादिनोक्तानि। एवमादिकः। परिग्रहः स्वामित्वम्। तथा निषेको गर्भाधानं यथास्तराशिर्मिथुनं समेतीत्यादि। जन्मकालो गर्भमोक्षसमयः पितुर्जातः परोक्षस्येत्यादिकः। तत्र च विस्मापनप्रत्ययादेशः। विस्मयजननानां प्रत्ययानां नालवेष्टितकोशवेष्टितानां द्वित्रादीनां भुजांघ्रिशिरसां जन्मकथनं तदीयस्य पितुश्च सन्निधानमसन्निधानं गर्भमोक्षलक्षणं द्वारदिक्परिज्ञानं गृहशय्यासूतिकासहजव्रणादिपरिज्ञानम्। सद्योमरणमरिष्टाध्यायः सन्ध्यायामित्यादि। आयुर्दायो जीवितप्रमाणम्। मययवनमणित्थमिति। दशा ग्रहाणामायुषं आधिपत्यम्। उदयरविशशाङ्केत्यादि। अन्तर्दशा मध्यवर्तिनो दशा एकर्क्षगोऽर्द्धमिति। अष्टकवर्ग औत्पादिकानां फलानां परिज्ञानं स्वादर्क इत्यादि। राजयोगाः प्राहुर्यवना इति। चन्द्रयोगाः सुनफादुरुधुराख्याः। हित्वार्कं सुनफानफेति। द्विग्रहयोगाः। तिग्मांशुर्जनयतीत्यादि। तथैककस्थैश्चतुरादिभिरिति। नाभसयोगा नवदिग्वसव इति। आदिग्रहणात् कर्माजीवाराशिशीलानि प्रकीर्णाध्यायानिष्टयोगाः। अर्थाप्तिः पितृमातृपत्नीति कर्माजीवाः। वृत्ता तामदृगिति राशिशीलानि। स्वर्क्षतुङ्गेति प्रकीर्णकः। लग्नात् पुत्रकलत्र इत्यनिष्टयोगाः। एतेषां फलानि तथा क्रियाश्रयाध्यायः। कुसलमकुलमुख्य इत्यादि। भावाध्यायः शूरस्तब्धेति। अवलोकनं दृष्टिफलाध्यायः। चन्द्रे भूपबुधाविति। निर्याणं मरणनिमित्तं मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेनेति। गतिर्देवलोकादिः। गतिरपि रिपुरन्ध्रेत्यादि। अनूकं प्राग्जन्म गुरुरुडुपतिशुक्राविति। तत्कालप्रश्ने पृच्छायां शुभाऽशुभानि। लग्नाश्रितानि निमित्तानि शुभाशुभफलसूचकानि। तथा चोक्तम्—

अपृच्छतः पृच्छतो वा जिज्ञासोर्यस्य कस्यचित्।
होराकेन्द्रत्रिकोणेभ्यस्तस्य विन्द्याच्छुभाशुभम्।।

इत्यादि तत्कालप्रश्नः।

विवाहादीनां च कर्मणां विवाहोपनयनचूडाकरणगृहप्रवेशानां करणं अज्ञातेत्यादि विवाहपटलम्। तत्रैव सप्तैते शशियोगाः सौम्यैः सह सर्वकर्मसिद्धिकरा इत्याद्युपनयादीनामतिदेशः कृत इति।।१८।।

अथ यात्रायां के भेदा इत्याह—

यात्रायां तु तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्त्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमङ्गलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णानां मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गोपलम्भोपायश्चेत्युक्तं चाचार्यैः ।।१९।।

यात्रा में तिथि, दिन, करण, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, योग, अङ्गस्फुरण, स्वप्न, विजय,

जीतने की इच्छा रखने वाले राजा का विजयनिमित्तक स्नान, ग्रहों के यज्ञ, गणयाग (गुह्यकपूजन = यात्रा के सात दिन पूर्व से गुह्यकपूजन), अग्निलिङ्ग (हवनकालिक अग्नि का लक्षण), हाथी-घोड़े की चेष्टा, सेनाओं (प्रधान राजपुरुषों) के बोलने से उनकी चेष्टा (उत्साह-अनुत्साह), वायु, मेघ, वृष्टि आदि के लक्षण, षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, संश्रय)—इनके ग्रहों के वश सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, उपाय (साम, दाम, भेद, दण्ड) की भी सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, मंगल-अमंगल, शकुन, सेनाओं के निकास की भूमि, अग्नि का वर्ण, मन्त्री, चर, दूत, वनवासियों का कालानुसार प्रयोग, शत्रु के किले का लाभ—इन सबों का विवरण होता है।।१९।।

यात्रायां यज्ञेऽश्वमेधिकायां देवपुरुषाकारावन्यमतेनोक्तावतः सोऽध्यायो न गृहीतः। तिथयो नन्दादिकास्तासां शुभाशुभं नन्दाभद्राजयेत्यादि। दिवसग्रहणेन वार उच्यते। उदगयने रोगेत्यादि तत्फलमुक्तम्। करणानि ववादीनि तेषां फलं गरवणिजेत्यादि। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि तेषां गमने फलं दिशि बहुलाद्या इत्यादि। मुहूर्तास्त्रिंशच्छिवादिकास्तेषां लक्षणं फलानि च शिवभुजगेति लक्षणं नक्षत्रफलवदिति फलानि। विलग्नं तात्कालिकं यात्रालग्नं द्विपदवशगाः सर्व इत्याद्युक्तम्। योगा योगाध्यायोक्ता देहः कोश इत्यादि। अथात्रैव पृच्छाकाले उक्ताः। तस्मान्नृपः कुसुमरत्नफलाग्रह इति। अथवा शुभाशुभफलयोगा जातके उदाहृता इति। यथा होरागतः स्वभवने यदि सूर्यपुत्र इति। तेषामपि फलानि तत्रैव। देहस्पन्दनलक्षणं दक्षिणपार्श्वं स्पन्दनमिति। स्वप्नं स्वप्नाध्याये दुकूलमुक्तामणिस्तदिति। विजयस्नानं विजिगीषोर्नृपस्य विजयार्थं स्नानं क्षीरैकतरुनगार्णवेत्यादि। ग्रहयज्ञो ग्रहाणां यागः। ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये इति। गणयागो गुह्यकपूजनं यात्रार्वाक्सप्ताहादिति। अग्निलिङ्गान्यग्निलक्षणानि होमकाले उच्छ्रायः स्वयमुज्ज्वलार्चिरिति। हस्तिनां गजानामिङ्गितं चेष्टितं दन्तमूलपरिणाहदीर्घतामित्यादि। अश्वानां तुरगाणां चेङ्गितं बलावकिरणेति। सेनाप्रवादः सैनिकानां प्रधानराजपुरुषाणां प्रवदनं व्याहरणं संग्रामे वयममरद्विजप्रसादादित्यादि। चेष्टा उत्साहोऽनुत्साहो वा विद्विष्टप्रवरनरा इति। आदिग्रहणाद्वातमेघवृष्ट्यादीनां लक्षणानि। प्रोत्क्षिप्तेत्यादि वातलक्षणम्। पृथुघनमनुलोममित्यादि मेघलक्षणम्। सप्ताहान्तर्बलभयकरीत्यादि वृष्टिलक्षणम्। एवमन्येषामपि। तथा ग्रहाणां बलाबलवशात् षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसंश्रयाणां षण्णां गुणानां भावः षाड्गुण्यं तेषां ग्रहवशात् सिद्ध्यसिद्धी ज्ञातव्ये स्वर्क्षेशदशापयोरित्याद्युक्ताः। उपायाश्चत्वारः सामदामभेददण्डाख्याः। तेषामपि सिद्ध्यसिद्धी साम्नः शुक्रबृहस्पती इत्याद्युक्ताः। मङ्गलामङ्गलानि सिद्धार्थकादर्शेत्यादिमङ्गलानि, कर्पासौषधादीन्यमङ्गलानि, प्रस्थानसमये शुभाशुभसूचकानि तथा शकुनमन्यजन्मान्तरकृतमिति। तथा सैन्यनिवेशभूमयः सैन्ये सेनायां निवेशार्थं शुभाऽशुभभूमयस्तासां लक्षणानि स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मेति शुद्धाः। नेष्टा विपर्ययगुणेत्यशुभाः। अशुभा अग्निवर्णा उपस्थाग्निकर्मणि शुभाशुभाः शुक्लेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरा इति। तथा अन्याश्रितान्यपि शुभाशुभनिमित्तानि सर्वाणि सन्ति। चरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः। प्रयोगः प्रयुञ्जनं; कस्मिन् काले मन्त्री रिपोः सकाशं प्रयुज्यते। तथा च शत्रोर्वधाय सचिवं शुभदैवयुक्तमाज्ञापयेदिति।

कस्मिन् काले चराणां गूढपुरुषाणां प्रयोगा: कस्मिन् काले दूतादे:। बुद्ध्वा शक्तिं स्वपरबलयोरित्यत्र प्रयोजनमुक्तम्। कस्मिन् काले आटविकादेर्बलस्य प्रयोग:। अर्कादाटविकमित्यादि प्रयोजनमुक्तम्। एतेषां यथाकालं प्रयोगा:। परदुर्गोपलम्भोपाय: परस्य शत्रोर्दुर्गे उपलम्भनं लाभो ग्रहणमित्यर्थ:। तत्रोपायो यथा लभ्यते दुर्गस्तस्य च केतूल्कार्कज इत्युपलम्भनमुक्तम्। इत्येवं प्रकार: उक्तमाचार्यै:।।१९।।

किं तदित्याह—

जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये।
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥२०॥

भगणों से युक्त होराशास्त्र (स्कन्धत्रयात्मक ज्यौतिषशास्त्र) लोक में विस्तृत की तरह, बुद्धि में अङ्कित की तरह और हृदय में खचित की तरह है। उसका आदेश कभी भी निष्फल नहीं होता।।२०।।

यस्य शास्त्रं ग्रन्थं सभगणं भगणज्ञानेन सहितं संयुक्तं गणितेनेत्यर्थ:। अनेन स्कन्धत्रयं प्रतिपादितं भवति। कीदृशं शास्त्रं जगति लोके प्रसारितं विस्तारितमिव मतौ बुद्धावालिखितं चित्रितमिव हृदये निषिक्तं प्रक्षिप्तमिव तस्य दैवज्ञस्याऽऽदेशा उक्तयो निष्फला न भवन्ति, सत्यरूपा भवन्तीत्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—त्रिस्कन्धज्ञस्य मुनिरिव वाणी सत्यरूपा भवति।।२०।।

अथ संहिताप्रशंसार्थमाह—

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति ॥२१॥

संहितासम्बन्धी नि:शेष तत्त्वार्थ को जानने वाला दैवचिन्तक (पूर्वकृत कर्म को जानने वाला) होता है।।२१।।

संहितापारगो नि:शेषज्ञाततत्त्वार्थ:। स दैवचिन्तको भवति। दैवस्य प्राक्तनकर्मविपाकस्य शुभाऽशुभस्य चिन्तको भवति स्मरणशील इत्यर्थ:।।२१।।

यत्रैते संहितापदार्था: ॥२२॥

जिसमें वक्ष्यमाण विषय का वर्णन होता है, उसका नाम 'संहिता' है।।२२।।

यत्र यस्यां संहितायामेते वक्ष्यमाणा: पदार्था:।।२२।।

के त इत्याह—

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभि: फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:। सप्तर्षिचार:। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्का-

दिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मे-न्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्र-वातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनी-राजनखञ्जनकोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृककवाकु-कूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेद-वस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्त-काष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगव-लोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेह-प्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभिः फलानि भवन्ति॥२३॥

सूर्य आदि ग्रहों के सञ्चार, उस सञ्चार में होने वाला ग्रहों का स्वभाव, विकार, प्रमाण (विम्ब का परिमाण), वर्ण, किरण, द्युति (किरणकान्ति), संस्थान (ऊर्ध्वाधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान), अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, चार (नक्षत्र में चलन)—इनके फल, नक्षत्र-विभाग द्वारा बने हुये कूर्मचक्र से देशों का शुभाशुभ फल, अगस्त्य मुनि का सञ्चार; सप्तर्षियों (वशिष्ठ आदि सात ऋषियों) के सञ्चार, ग्रहों की भक्ति (देश, द्रव्य, प्राणियों के आधिपत्य), नक्षत्रों के व्यूह (द्रव्य, जनों के आधिपत्य), ग्रह-शृङ्गाटक (एकर्क्षस्थित तारा-ग्रहों के शृङ्गाटक आदि स्थितिवश शुभाशुभ फल), ग्रहयुद्ध, ग्रह-समागम, ग्रह के वर्षपति होने पर उसका फल, गर्भ-लक्षण, रोहिणी योग, स्वाती योग, आषाढ़ी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता का लक्षण, वृक्षों के फल-फूल की उत्पत्ति के द्वारा सांसारिक शुभाशुभ का ज्ञान, परिधि (प्रतिसूर्य का लक्षण), परिवेष, परिघ (सूर्य के उदय-अस्तकाल में तिर्यक् स्थित मेघ-रेखा का लक्षण), वायु, उल्कापात, दिग्दाह का लक्षण, भूकम्प, सन्ध्या की लालिमा, गन्धर्व-नगर का लक्षण, धूलि का लक्षण, निर्घात-लक्षण, अर्घकाण्ड, अन्न की उत्पत्ति, इन्द्रध्वज और इन्द्रधनुष का लक्षण, वास्तुविद्या, अङ्गविद्या (अङ्गस्पर्श से प्राणियों के शुभाशुभ फल जानने वाली विद्या), वायसविद्या (काकचेष्टित), अन्तरचक्र, मृगचक्र (मृगचेष्टित), श्वचक्र (घोड़ों की चेष्टा), वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, वृक्षायुर्वेद (वृक्षों की चिकित्सा), उदकार्गल (जल की उपलब्धि), नीराजन (मन्त्रों के द्वारा शुद्ध जल से पवित्र करना), खञ्जन-लक्षण, उत्पातों की शान्ति, मयूरचित्रक, घृत, कम्बल, खड्ग, पट्ट, मुर्गा, कूर्म, गौ, अजा, कुत्ता, अश्व, हरित, पुरुष, स्त्री, अन्तःपुर की चिन्ता,

पिटक, मोती, वस्त्रच्छेद, चामर, दण्ड, शय्या, आसन—इनका लक्षण, रत्नपरीक्षा, दीप-लक्षण, दन्त-काष्ठ आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का लक्षण, संसार के प्रत्येक पुरुष और राजाओं में पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षण का विचार एकाग्र चित्त होकर दैवज्ञ को करना चाहिये। अकेला दैवज्ञ सदा शुभाशुभ फल का निर्णय करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता; अतः प्रचुर धन देकर सन्तुष्ट किये हुये दैवज्ञ के साथ इस शास्त्र को जानने वाले और चार दैवज्ञों की नियुक्ति राजा को करनी चाहिये। उन चार दैवज्ञों में से एक को पूर्व और अग्निकोण की, दूसरे को दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण की, तीसरे को पश्चिम और वायव्य कोण की तथा चौथे को उत्तर और ईशान कोण की परीक्षा करनी चाहिये; क्योंकि उल्कापात आदि (उल्कापात, गन्धर्वनगर, केतु) निमित्त दिखाई देने के साथ ही लुप्त हो जाते हैं। इनके आकार, वर्ण, स्निग्धता, प्रमाण (हस्त आदि प्रमाण), ग्रह-नक्षत्रों के अभिघात आदि के द्वारा शुभाशुभ फलज्ञात होते हैं।।२३।।

एतत्सुबोधं तथापि मन्दबुद्धिहिताय व्याख्यायते। **दिनकरादीनामिति**। दिनकर आदित्यस्तदादीनां ग्रहाणां रविशशिराहुभौमज्ञगुरुसितसौरिकेतूनां चाराः। चरणं चारः। गति-वशेन शुभाशुभकथनम्।

तेषु चारेषु च तेषामेव ग्रहाणां प्रकृतिः स्वभावः। विकृतिर्विकारः। प्रमाणं विम्बस्य। वर्णः सितादिकः। किरणा रश्मयः। तेषामेव द्युतिः कान्तिः। संस्थानमाकारः। ऊर्ध्वाधोगामित्वं तोरणदण्डादिसंस्थानम्। अस्तमनोदयौ रविसन्निकर्षविप्रकर्षाभ्याम्। मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमाः शुक्रचारोक्ताः। मार्गान्तरं मार्गमध्यम्। वक्रं प्रतीपगतित्वं ताराग्रहाणाम्। अनुवक्रं पुनः स्पष्ट-गतित्वम्। ऋक्षग्रहसमागमो नक्षत्रैः सह ग्रहाणां संयोगः। चारो नक्षत्रेषु विचरणं संस्थिति। आदिग्रहणाद्दक्षिणोत्तरमध्यगमनम्। योगतारकाशकटभेदश्च नक्षत्राणाम्। एवमादिभिस्तेषां तेषु चारेषु फलानि भवन्ति। तथा नक्षत्रकूर्मविभागेन नक्षत्रसप्तविंशत्या कूर्माकारस्थित्या भारतवर्षे नवधा विभक्तेन नक्षत्रत्रयेण देशेषु फलानि। अगस्त्यस्य मुनेश्चारः। सप्तर्षीणां वसिष्ठपूर्वाणां चारः। ग्रहाणां भक्तयो देशद्रव्यप्राणिनामाधिपत्यम्। नक्षत्राणां व्यूहो द्रव्य-जनाधिपत्यम्। ग्रहशृङ्गाटकं ताराग्रहाणामेकर्क्षगतानां शृङ्गाटकादिसंस्थानैः शुभाशुभज्ञानम्। ग्रहयुद्धम्। ऊर्ध्वाधोभावेन दक्षिणोत्तरसंस्थानेन च ग्रहाणाम्। समागमश्चन्द्रेण सह संयोगः। ग्रहाणां वर्षाधिपतित्वेन फलानि। गर्भाणां प्रावृट्कालपरिज्ञानार्थं लक्षणम्। रोहिण्याश्चन्द्रमसा सह संयोगः समागमः। एवं स्वातियोगः पूर्वाषाढायोगश्च। सद्योवर्षलक्षणम्। कुसुमलतानां लक्षणं वृक्षादीनां फलकुसुमप्रवृद्ध्या लोके शुभाऽशुभज्ञानम्।

तथा परिधेः प्रतिसूर्यस्य च लक्षणम्। परिघस्य सूर्योदयास्तमययोस्तिर्यक्स्थिताया मेघरेखाया लक्षणम्। पवनस्य वायोरुल्कापातदिग्दाहलक्षणानि। क्षितिचलनं भूकम्पः। सन्ध्यारागः सन्ध्ययो रक्तत्वम्। गन्धर्वनगरं खपुरं तल्लक्षणम्। रजसां पांशूनां लक्षणम्। निर्घातलक्षणम्। अर्घकाण्डं राशिवशेन द्रव्याणां समर्घत्वं महार्घत्वं च। क्रीत्वा स्थापितानां येन विक्रयकाले लाभालाभौ ज्ञायेते तदर्घकाण्डम्। सस्यजन्म सस्यजातकम्। इन्द्रध्वजस्य

शक्रकेतोस्तथा इन्द्रचापस्येन्द्रधनुषो लक्षणम्। वास्तुविद्या गृहाणां लक्षणम्। अङ्गविद्या यया प्राणिनामङ्गस्पर्शनेन शुभाऽशुभं ज्ञायते। वायसविद्या काकचेष्टितम्। अन्तरचक्रं शाकुने। मृगचक्रं मृगचेष्टितम्। तत्रैव श्वचक्रं श्वचेष्टितम्। वातचक्रमष्टासु दिक्षु प्रवहतो वातस्य लक्षणम्। प्रासादलक्षणं देवगृहाणां रचना। प्रतिमालक्षणं सुरस्थानादिप्रमाणम्। प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा सुरप्रतिमानामेव। वृक्षायुर्वेदस्तरूणां चिकित्सा। उदगार्गलं जलोपलब्धिः। नीराजनं नीरेण जलेन मन्त्रपूतेनाजनं क्षेपणस्पर्शनमिति नीराजनम्। खञ्जनकानां पक्षिणां लक्षणा-लक्षणम्। उत्पातशान्तिः। उत्पातानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुपशमनम्। घृतकम्बलं पुष्यस्नानम्। मयूरचित्रकं यस्मिन्नध्याये निःशेषसंहितार्थं संक्षेपेणाभिधीयते तन्मयूरचित्रकम्। खड्गपरीक्षा खड्गलक्षणम्। पट्टपरीक्षा पट्टानां नृपमुकुटादीनां लक्षणम्। कृकवाकुः कुक्कुटः। कूर्मः प्रसिद्धजलप्राणी। गौः प्रसिद्धा। अजश्छागः। अश्वस्तुरगः। इभो हस्ती। एतेषां लक्षणानि। पुरुषस्त्रीलक्षणानि। अन्तःपुरचिन्ता अन्तःपुरे स्त्रीणां रक्तानां विरक्तानां च चेष्टितम्। पिटकानां लक्षणम्। उपानच्छेदो मूषकादिभक्षणेनोपानहां छेददर्शनाच्छुभाशुभफलम्। एवं वस्त्राणामम्बराणां छेदः। चामराणां बालव्यजनानां दण्डानां यष्टीनां च द्विजातिक्रमेण लक्षणं परीक्ष्योच्यते। शयनाऽऽसनलक्षणम्। रत्नानां वज्रादीनां परीक्षा। दीपस्य लक्षणम्। दन्तकाष्ठादीनां यान्याश्रितानि तदायत्तानि शुभाशुभानि निमित्तानि चिह्नानि। आदिग्रहणात् कर्तुरपि यानि शुभाशुभानि फलानि। जगतः सर्वजनानां सामान्यानि साधारणानि। यथा रोहिणीशकटमर्कनन्दनः। प्राजापत्ये शकटे भिन्न इत्यादिकानि। तथा प्रतिपुरुषं पुरुषे पुरुषे प्रतिपुरुषं यानि शुभाशुभानि। तद्यथा—

चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम्।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात् सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च।। इत्यादि।

पार्थिवे राजनि च शुभाशुभानि। यथा कृष्णा रेखा सवितरीति तानि च प्रतिक्षणं क्षणं क्षणम्। न अन्यकर्मा अनन्यकर्मा तेनानन्यकर्मणा एकचित्तेनाभियुक्तेन तत्परेण दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण चिन्तयितव्यानि। न तानि निमित्तान्येकाकिना केवलेनावधारयितुं लक्षयितुं शक्यानि। तस्मात् सुभृतेन दैवज्ञेन सुष्ठु कृत्वा यो नृपेण भृतः, अतिप्रभूतार्थदानेन परितोषितः। तेन दैवज्ञेनान्ये परे तद्विदः कालविदो यथानिर्दिष्टाः कर्त्तव्या अवधार्याः। तत्र तस्मिन्निमित्तज्ञाने ऐन्द्री पूर्वा। आग्नेयी च पूर्वदक्षिणदिगाशा। एकेनावलोकयितव्या द्रष्टव्या। याम्या दक्षिणा नैर्ऋती दक्षिणपश्चिमाऽन्येन द्वितीयेनावलोकयितव्या। एवमनेन प्रकारेण वारुणी पश्चिमा। वायव्या पश्चिमोत्तरा। तृतीयेनावलोकयितव्या। उत्तरा सौम्या। ऐशानी पूर्वोत्तरा चान्येन चतुर्थेनावलोकयितव्या। इतिशब्दः प्रकाराय। यस्माद्धेतोरुल्कापातादीनि निमित्तानि, आदिग्रहणादुल्कागन्धर्वनगरकेतुदर्शनानि गम्यन्ते। एतान्युल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमाश्वेवापगच्छन्त्यदर्शनं यान्ति। तस्याश्चोल्काया आकार आकृतिः। यथा प्रेतप्रहरणेति। वर्णः श्वेतादिः। स्नेहः सुस्निग्धता। प्रमाणं हस्तादि। दिगुत्तरादिका ग्रहर्क्षोपघातः, ग्रहाणामर्कादीनामृक्षाणामश्विन्यादीनां चोपघात उपहननम्। आदिग्रहणात् कस्मिंस्थाने केनाव-

यवेन पतिता:। एवमादिभिस्तस्या: फलानि शुभाशुभानि भवन्तीति।।२३।।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा तच्चाह—

कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥२४॥

सब प्रकार से कुशल, होराशास्त्र और गणित में प्रवीण ज्यौतिषी की पूजा जो राजा नहीं करता, वह नाश को प्राप्त होता है।।२४।।

कृत्स्नानि निरवशेषाणि यानि ज्योति:शास्त्राङ्गानि तथोपाङ्गानि तत्रैव पठितानि पुरुषलक्षणस्त्रीलक्षणवस्त्रोपानच्छेदरत्नलक्षणदीपदन्तकाष्ठलक्षणादीनि। एतदुक्तं भवति—ग्रहनक्षत्रराशीनाश्रित्य यदुक्तम्—'तान्यङ्गानि परिशिष्टान्युपाङ्गानि' इति। तथा च भगवान् गर्ग:—

अधिकृत्य ग्रहर्क्षादि जगतो येन निश्चय:।
तदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्गं शेषमुच्यते।। इति।

एतेषां कृत्स्नानां निरवशेषाणामङ्गानामुपाङ्गानां कुशलस्तज्ज्ञ:। तथा च होरायां जातके गणिते ग्रहगणिते च नैष्ठिकं निष्ठालग्नं षडङ्गं तत्पारगन्तारमित्यर्थ:। एवंविधं दैवज्ञं यो राजा नृपो न पूजयते नार्चयति स नाशं विनाशमुपगच्छति प्राप्नोति।।२४।।

अन्यद्दैववित्प्रशंसार्थमाह—

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहा:।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥२५॥

वन में रहने वाले, ममत्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले भी ग्रह-नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञों से पूछते हैं।।२५।।

येऽपि तपस्विनो वनमरण्यं समाश्रिता वसन्ति। निर्ममा निरहङ्कारा:। निष्परिग्रहा दारवर्जिता:। निर्गत: परिग्रहो येभ्यस्तेऽपि तथाभूता ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां गतौ गमने कोविदं तज्ज्ञं परिपृच्छन्ति शुभाशुभं ज्ञातुमिच्छन्ति च। अपिशब्द: सम्भावनायां यतस्तेषां ज्योति:शास्त्रेण न किञ्चित्प्रयोजनं तापसत्वात्।।२५।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभ:।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥२६॥

दीपहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाश की तरह ज्यौतिषी से हीन राजा शोभित नहीं होता हुआ अन्धे की तरह मार्ग में घूमता रहता है।।२६।।

यथा रात्रिर्निशाऽप्रदीपा प्रदीपरहिता न शोभामाप्नोति तमसावृतत्वात्। यथा नभ आकाशमनादित्यं सूर्यरहितं सान्धकारं न शोभामाप्नोति। तथा तेन प्रकारेण सांवत्सरो दैवज्ञ-

रहितो राजा न शोभते। न केवलं यावत्सर्वत्र च संशयत्वाद्भ्रमति यथान्धो नेत्रहीनोऽध्वनि पथि परिभ्रमति।।२६।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥२७॥

यदि ज्यौतिषी न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि समस्त विषय उलट-पलट हो जायँ।।२७।।

मुहूर्त्ताः शिवादिकाः। तिथयः प्रतिपदादिकाः। नक्षत्रमश्विन्यादि। ऋतवः शिशिरादयः। अयने उत्तरदक्षिणे। तथा तेनैव प्रकारेण एतानि सर्वाणि आकुलानि अज्ञातानि। स्युर्भवेयुः। अथवाऽऽकुलानि नष्टागमानि स्युर्यदि सांवत्सरो दैवविन्न स्यान्न भवेत्।।२७।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः।
जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥२८॥

अतः जय, यश, श्री, भोग और मङ्गल की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्यौतिषि के पास जाकर अपना भविष्य पूछे।।२८।।

तस्मात् पूर्वोक्ताद्धेतो राज्ञा नृपेणाधिगन्तव्योऽधिगमनीयः। विद्वान् पण्डितः। सांवत्सरो दैववित्। अग्रणीः प्रधानः। कीदृशेन राज्ञा। जयं शत्रुविजयं यशः कीर्तिं श्रियं लक्ष्मीं भोगान् उपभोगान् श्रेय आरोग्यं समभीप्सता आप्राप्तुमिच्छता।।२८।।

अन्यदप्याह—

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥२९॥

सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दैवज्ञहीन देश में निवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जहाँ पर नेत्रस्वरूप दैवज्ञ निवास करते हैं, वहाँ पाप का निवास नहीं होता।।२९।।

भूतिं समृद्धिमिच्छता प्रार्थयता नरेण पुंसा। असांवत्सरिके देशे दैवज्ञवर्जिते देशे स्थाने न वस्तव्यं न निवसनीयम्। हि यस्माद्यत्र यस्मिन् देशे एष दैवविच्चक्षुर्भूतः प्रकाशकः स्यात् तस्मिन् देशे पापमेनो न विद्यते न भवति, तत्पुण्यशरीरावृतत्वात्।।२९।।

अथ दैववित्प्रशंसार्थमाह—

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥३०॥

ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता एवं ज्यौतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।।३०।।

संवत्सरमधिकृत्य कृतं शास्त्रं सांवत्सरं तत्पठनशील: सांवत्सरपाठी। दैवविद् नरकेषु नोपपद्यते, नरकान् न प्राप्नोति। यतो दैवचिन्तक: कालविद् ब्रह्मलोके धातृभवने प्रतिष्ठां स्थितिं लभते।।३०।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः ॥३१॥

जो द्विज ज्यौतिषशास्त्र-सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है, वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला तथा आदरणीय होता है।।३१।।

एतज्ज्योति:शास्त्रं ग्रन्थत: पाठेनार्थतो व्याख्यानात् कृत्स्नं निरवशेषं यो द्विजो ब्राह्मणो जानाति वेत्ति स श्राद्धे पितृतर्पणे अग्रभुक् प्रथमभोजी भवति। स च पूजितोऽर्चित:। पङ्क्ति-पावन:। यस्यां पङ्क्त्यामुपविशति तां पवित्रीं करोति।।३१।।

अन्यदप्याह—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ॥३२॥

जिन म्लेच्छ यवनों के पास यह शास्त्र रहता है, वे भी जब ऋषि की तरह पूजित होते है, तब दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात? अर्थात् उनकी पूजा तो निश्चित ही होती है।।३२।।

हि यस्मादर्थे यवना: किल म्लेच्छजातयस्तेषु यवनेष्विदं ज्योति:शास्त्रं सम्यक् स्फुटतरमागमत: स्थितं यत: पूर्वाचार्येभ्यस्तै: प्राप्तम्। तथा च—

यद्दानवेन्द्राय मयाय सूर्य: शास्त्रं ददौ सम्प्रणताय पूर्वम्।
विष्णोर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो ज्ञानामृतं यत्परमाससाद।।
पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद् गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत्।
प्रकाशयाञ्चक्रुरनुक्रमेण महर्द्धिसन्तो यवनेषु तत्ते।। इति।

तेऽपि ऋषिवन्मुनिवत्पूज्यन्ते अभ्यर्च्यन्ते किं पुनर्यो द्विजो ब्राह्मणो दैवविद्दैवज्ञ इति।

अथाप्रष्टव्यानाह—

कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः।
कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ॥३३॥

इन्द्रजाल विद्या से अपने शरीर को छिपाकर गुप्त रूप से प्रश्नकर्ता का अभिप्राय समझकर बताने वाले और कर्णपिशाची-सिद्धि से प्रश्न आदि बताने वाले ज्यौतिषी को सब जगह नहीं पूछना चाहिये, क्योंकि वह दैवज्ञ नहीं होता है।।३३।।

कुहकेनेन्द्रजालेन प्रसेनादिकेन आवेशेन देवतादिदेहप्रवेशेन पिहितः प्रच्छन्नोऽदृश्यशरीरः। कुत्रचित्सुषिरे भित्त्यादिके अभ्यन्तरस्थितयाऽव्यक्तया वाचा सम्भाषते। एतैः कुहकावेशपिहितैः। तथा कर्णोपश्रुत्या कश्चिन्मन्त्रविशेषं जपतः कर्णे यथेष्टं कथयति लोके कर्णपिशाचिकेति प्रसिद्धा। अथवा प्रष्टारो यत्रोपविष्टाः स्थितास्तन्मध्ये आत्मीयं शिशुं विसृज्य तेषां कथां परस्परं क्रियमाणामाकर्ण्य पितुर्वक्ति। यथा यस्येदमभिज्ञानं तस्य भवता इदं वक्तव्यमिति हेतुना तर्केणाशयं बुद्ध्वा।

केचित् कुहकावेशपिहितकर्णोपश्रुतिहेतुभिरिति पठन्ति तथापि न कश्चिद्दोषः। एवमादिभिर्यः कृतादेशः। आदेशः कृतो येन। सर्वत्र न क्वचित्प्रष्टव्यो यतः स दैवविज्ज्योतिःशास्त्रवेत्ता न भवति।।३३।।

अथाज्ञं प्रत्याह—

अविदित्वैव यच्छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥३४॥

जो मनुष्य ज्यौतिष-शास्त्र को विना जाने अपने-आपको दैवज्ञ कहकर व्रत, उपवास आदि बताता है; उस पङ्क्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूचक जानना चाहिये।।३४।।

यः शास्त्रमविदित्वा अज्ञात्वैव दैवज्ञत्वं ज्यौतिषिकत्वं प्रपद्यते अङ्गीकरोति दैवज्ञत्वमाख्यापयति। स पङ्क्तिदूषकः पंक्तिं दूषयति अपवित्रीं करोति। पापः पापात्मा। नक्षत्रसूचको नक्षत्रपिशुनः। ज्ञेयो ज्ञातव्य इति।।३४।।

([1]नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः।
स व्रजन्त्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिना ॥

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत, उपवास आदि को जो मनुष्य करता है, वह उस ऋक्षविडम्बी (नक्षत्रसूचक) के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है।)

यद्येतेषां कदाचिदज्ञानां वचनं सत्यरूपं भवति तान् प्रत्याह—

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम्।
आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ॥३५॥

जिस तरह पुरद्वार में स्थित मृत्खण्ड के समीप की हुई याचना कभी-कभी पूरी हो जाती है, उसी तरह मूर्खों का आदेश भी कभी-कभी सत्य हो जाता है; परमार्थतः कभी भी सत्य नहीं होता।।३५।।

नगरद्वारे पुरद्वारे यो लोष्टो मृत्खण्डस्तस्योपयाचितं प्रार्थितं यद्वद्यथा सत्यं स्यात्। सत्यरूपं भवेत्। तथा कदाचित्काकतालन्यायेन तद्वदज्ञानां मूर्खाणां य आदेशो वार्ताकथनं सत्यमिव विभाव्यते प्रतिभाति।।३५।।

---

१. शलोकोऽयं प्रक्षिप्त इव प्रतिभाति, भट्टोत्पलविवृतावव्याख्यातत्वात्।

अविदग्धसांवत्सरं प्रत्याह—

सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः।
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ्महीक्षिता ॥३६॥

सम्पत्ति पाने के लोभ से जो आदेश करता है और ज्यौतिष-शास्त्र से भिन्न कथा में जिसका स्नेह है (ज्यौतिष-शास्त्र को ठीक तरह से न जानने के कारण अन्य कथा में प्रेम रखता है) ऐसे शास्त्र के एकदेश को जानने से मत्त ज्यौतिषी का राजा द्वारा त्याग कर देना चाहिये।।३६।।

यो दैववित्सम्पत्त्या योजितादेशः। सम्पत्त्या अर्थदानेन योजित आदेशो येन। यथा पूर्वमेवं मया अमुकस्य कथितमेतत्स देववदैश्वर्यं प्राप्स्यति। तदिति ज्योतिःशास्त्रमुच्यते। तद्विच्छिन्ना ज्योतिःशास्त्रवर्जिता अन्या कथा प्रिया यस्य सः। यतस्तत्र तस्याज्ञानत्वम्। शास्त्रैकदेशमेकं प्रकरणं ज्ञात्वा तेनैव मत्तः सदर्पस्तादृग्भूतो दैवविन्महीक्षिता राज्ञा त्याज्यस्त्यक्तव्यः।।३६।।

नैवंविधमात्मसात्कुर्यादित्याह—

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥३७॥

जय की इच्छा रखने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता—इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा माननी चाहिये।।३७।।

यस्तु सम्यक् स्फुटतराः सागमाश्च। होरागणितसंहिताः। त्रिस्कन्धं ज्योतिःशास्त्रं विजानाति। स च नरेन्द्रेण राज्ञा जयैषिणा विजयमाकाङ्क्षता प्राप्तुमिच्छताऽभ्यर्च्यः सम्पूज्यः। स्वीकर्त्तव्य आत्मसात्कार्य इति ।।३७।।

विदग्धसांवत्सरिको हितकृद्भवतीत्याह—

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः ॥३८॥

देश-काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े भी नहीं कर सकते।।३८।।

राज्ञः करिणां हस्तिनां सहस्रं दशशतानि न तत्कार्यं कुर्वन्ति तथा वाजिनामश्वानां चतुर्गुणं चत्वारि सहस्राणि न तत् कार्यं कुर्वन्ति यथा देशकालज्ञो दैवचिन्तकः सांवत्सरिक एक एव कार्यं करोति। देशकाललक्षणं प्रागेव व्याख्यातम्। तथा च भगवान् पराशरः—

'यथा मन्त्रमुखोऽग्निरग्निमुखा देवास्तथा दैवज्ञमुखो राजा राजमुखाश्च प्रजाः। तस्मात्तद्विज्ञानाद्यत्नत्वाच्छ्रेयसो नरपतिरिहामुत्र च श्रेयोऽर्थी विजिगीषुरेनमधिगच्छेत्। कुलीनमनहंकृतमस्तब्धमशठमप्रमत्तमविषयमव्यङ्गमविहतप्रशस्तलक्षणं वेदवेदाङ्गेतिहासपुराणधर्म-

शास्त्रावदातं शुचिं शरण्यं सत्यवादिनमक्रोधिनमग्निदेवद्विजगुरुवृद्धाचार्यपूजाभिरतमनुगामिनमाचार्यं शिष्य इवाभ्युपेत्य नावजानीयाद्रहसि चैनं पृच्छेद्यथास्य दैवं परे न विद्युः। नास्य पृष्टानर्थान्नतिक्रमेदि'ति।

तथा च—

हिंसादम्भानृतस्तेयद्विष्टानिष्टविवर्जितम्।
नरेन्द्रहितमक्रोधं श्रेष्ठं कालविदं विदुः।।
भूतभव्यभविष्यस्य कालस्य ज्ञानपारगम्।
अहीनाङ्गगुणोपेतं गुरुभक्तं प्रियंवदम्।।
यथाङ्गिरसमाचार्यमधिगम्य शतक्रतुः।
त्रैलोक्यराज्यं कृतवांस्तद्वत्कालविदं नृपः।। इति।।३८।।

अथाधुना तिथिनक्षत्रश्रवणात् फलमाह—

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥३९॥

चन्द्र के नक्षत्र संवाद सुनने से बुरे स्वप्न, बुरे चिन्तन, बुरे दर्शन, बुरे कर्म—इन सबों का शीघ्र नाश होता है।।३९।।

दुःस्वप्नं दुष्टस्वप्नम्। दुर्विचिन्तितमनभिमतमध्यातम्। दुष्प्रेक्षितममङ्गलं यद्दृष्टम्। दुष्कृतानि दुष्टानि च यानि कर्माणि कृतानि। एतानि सर्वाणि शशिनश्चन्द्रमसो भसंवादं भेन नक्षत्रेण सह संवादं श्रुत्वा क्षिप्रमाश्वेव विनाशं क्षयं व्रजन्ति। तिथिनक्षत्रं श्रुत्वा सर्वपापानि नश्यन्तीत्यर्थः। तथा चोक्तम्—

श्रुत्वा तिथिं भग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम्।
आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च दुःस्वप्नघातं प्रियतां च लोके।। इति।।३९।।

आप्तज्यौतिषिकं प्रत्याह—

न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥४०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सरसूत्रं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये दैवज्ञ जिस तरह राजा का हित करता है, उस तरह उसके माता-पिता, स्वजन और मित्र भी नहीं करते।।४०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां सांवत्सरसूत्रनामाध्यायो द्वितीयः ॥२॥

भूपते राज्ञः। सबलस्य बलसहितस्य। स्वयशोऽभिविवृद्धये आत्मीयकीर्तिवृद्ध्यर्थम्। आप्तः शास्त्रज्ञाततत्त्वार्थः। दैवविद्दैवज्ञो यथा हितमिच्छति श्रेय आकाङ्क्षते। तथा न पिता जनक इच्छति न जननी माता न स्वजनो बन्धुजनो न सुहृन्मित्रं तथा हितमिच्छतीति।।४०।।

आवन्तरचित्ते सांवत्सरसूत्रमहोदधौ।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रे स्वाप्तये विवृतिप्लवम्।। इति।।४०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
सांवत्सरसूत्रनामाध्यायो द्वितीयः ॥२॥

अथादित्यचाराध्यायः

अथादित्यचारो व्याख्यायते। तत्र तावत्परमतेनायनयोर्लक्षणमाह—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥१॥

यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी; नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती।।१।।

यदुक्तं पराशरतन्त्रे—'श्रविष्ठाद्यात् पौष्णान्तं चरतः शिशिरः। वसन्तः पौष्णान्ताद्रोहिण्यन्तम्। सौम्याद्यात् सार्पार्द्धं ग्रीष्मः। प्रावृट् सार्पार्द्धाद्धस्तान्तम्। चित्राद्यादिन्द्रार्द्धं शरद्धेमन्तो ज्येष्ठार्द्धाद्वैष्णवान्तमि'ति।

तत्र रवेरादित्यस्याश्लेषार्द्धात् सार्पान्त्यपादद्वयाद्दक्षिणमयनं तथा धनिष्ठाद्यं वासवप्रारम्भमुत्तरमयनं नूनं निश्चितं कदाचिदुत्पातवशादासीदभूत्। येन पूर्वशास्त्रेषु पाराशरादिषूक्तं कथितम्। नूनमनुमाने वा।।१।।

अधुना स्वमतमाह—

साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥

इस समय कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम 'विकार' है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते हैं।।२।।

साम्प्रतमिदानीं युक्तं वा। सवितुरादित्यस्य। कर्कटकाद्यं कुलीरप्रथममेकमयनं मृगादितो मकरादितश्चान्यद् द्वितीयमुत्तरमयनम्। एवं कथितस्यार्थस्य यद्यभावोऽन्यथात्वं स्यात्तद्विकृतिर्विकारः। तत्र च प्रत्यक्षपरीक्षणैर्दृश्यमानैर्व्यक्तिः स्पष्टता भवति। विकृतेरुपलम्भनमित्यर्थः।।२।।

तत्र च परीक्षणमाह—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥३॥

सूर्य के उदय-अस्तकाल में दूरस्थ चिह्न के वेध से अयन-गति की परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् दूर स्थित वृक्ष आदि के सामने सूर्य के उदय-अस्त देखकर परीक्षा करनी

चाहिये। फिर दूसरे दिन वहाँ ही स्थित होकर परीक्षा करे कि सूर्य वृक्ष से दक्षिण या उत्तर तरफ जा रहा है। जिस तरफ सूर्य खिसकता हो उसी अयन में सूर्य को कहना चाहिये अथवा महामण्डल में छायाप्रवेश और निर्गमचिह्न से अयन जानना चाहिये।

उदाहरण—जल से समान की हुई भूमि पर इष्ट त्रिज्या व्यासार्ध से एक वृत्त बनाकर उसमें दिग्ज्ञान करके पूर्वापरा रेखा अंकित करे और वृत्तमध्य में शङ्कु-स्थापन करे। जिस दिन मेषादि में रवि स्थित होता है, उस दिन उदय-अस्तकाल में शङ्कु की छाया ठीक पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद में मिथुनान्त कालपर्यन्त शङ्कु की छाया धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से दक्षिण तरफ पड़ेगी। कर्कादि से कन्यान्त कालपर्यन्त धीरे-धीरे शङ्कु की छाया उत्तर तरफ जायगी। फिर तुलादि स्थित रवि में शङ्कु की छाया ठीक मेषादि में स्थित रवि की तरह पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद में धन्वन्त बिन्दुपर्यन्त धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से शङ्कु की छाया उत्तर तरफ पड़ेगी। फिर वहाँ से लौटकर मकरादि से मीनान्त तक शङ्कु की छाया धीरे-धीरे दक्षिण तरफ पड़ेगी। जिस समय दो दिन की वृत्तपरिधिस्थ छायाग्रबिन्दु एक जगह पड़े, उस दिन अयन की निवृत्ति समझनी चाहिये।।३।।

दूरे तिष्ठतीति दूरस्थम्। दूरस्थं तच्चिह्नं दूरस्थचिह्नं तेन वेधो दूरस्थचिह्नवेधस्तस्माद् दूरस्थचिह्नवेधात् सहस्रांशोरादित्यस्योदये उदयकालेऽप्ययनचलनमन्वेष्यं यतो मकरादावादित्यः प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति तथा कर्कटादिस्थितः प्रतिदिनं दक्षिणां दिशं यानि तेन दूरस्थितं वृक्षादिकमुदयेऽस्तमयेऽथवा सवितुश्चिह्नं कृत्वा द्वितीयेऽपि दिने तत्रैव स्थित्वा पुनरपि विचारः कार्यः किमयनचलननिवृत्तिर्जाता न वेति। एवं दिनसप्तकं यावद्गणितागतसंक्रान्तिकालाद्यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो बलात् प्राक् पश्चाच्चान्वेष्य किं स्फुटगणितागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या जाता किमादौ किं पश्चाद्वेति। तथा महत्यतिबृहन्मण्डले उदयास्तमयसमीप इत्यर्थः। छायाप्रवेशनिर्गमनेन वा यानि चिह्नानि उपलक्षणानि तैरपि। वाशब्दः प्रकाराय। एतदुक्तं भवति—समायावमनौ वृत्तमुत्पाद्य दिगङ्कितं कृत्वा शङ्कुं तन्मध्ये विन्यसेत्। तत्र विषुवद्दिने सूर्योदयास्तमययोः प्राच्यपररेखायां तस्य शङ्कोश्छाया पतति ततो यथायथाऽर्को मिथुनान्तं यावद्याति तथातथाऽर्कोदयकाले छाया दक्षिणेन याति प्राच्यपररेखायाः। अस्तमयेऽप्येवम्। ततः कर्कटादौ स्थितेऽर्के प्रतिदिनं छायोत्तरेण याति यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो धनुरन्तं यावत् प्रतिदिनमुत्तरेण याति ततो मकरादौ पुनः प्रतिदिनं दक्षिणेन याति यावन्मीनान्तम्। एवं मत्वा ततोऽयननिवृत्तावासन्नायां तस्मिन् मण्डले यस्मिन् प्रदेशे पूर्वाह्णे छाया प्रवशिति तत्र चिह्नं कार्यम्। यत्र चापराह्णे निर्गच्छति चिह्नं कार्यम्। पुनरपि द्वितीयदिने तथास्थितस्य शङ्कोश्छायाप्रवेशनिर्गमचिह्ने कार्ये। एवमन्वेष्यं प्रतिदिनं दिनसप्तकं यावत्। प्रथमदिनचिह्नकृतद्वितीयदिनचिह्नयोर्यदि साम्यमुत्पन्नं तदा तस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिरेवं तस्यां ज्ञातायां विचारयेत् किमयननिवृत्तिः करणागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या किमादौ किं पश्चाद्वेति। एवं प्राकृतायां वैकृतायां वायननिवृत्तावन्वेषणं कार्यमिति।।३।।

इदानीं वैकृते फलमाह—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम् ॥४॥

यदि मकर में नहीं प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौट जाय तो पश्चिम और दक्षिण दिशा में स्थित जनों का नाश करता है। यदि कर्क में प्रविष्ट नहीं होकर सूर्य उत्तर तरफ लौट जाय तो पूर्व और उत्तर दिशा में स्थित जनों का नाश करता है।।४।।

अर्क आदित्यो मकरमप्राप्य मकरमगन्त्वा यदि विनिवृत्तो व्यावृत्तस्तदा सापरां याम्यामपरया पश्चिमया सह दक्षिणां दिशं हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा कर्कटकं कुलीरमसम्प्राप्तोऽगतो यदि निवृत्तो भवति तदोत्तरामुदीचीं दिशं सैन्द्रीं सपूर्वां हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

यदा निवर्ततेऽप्राप्तो धनिष्ठामुत्तरायणे।
आश्लेषां दक्षिणेऽप्राप्तस्तदा विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

तथा च पराशरः—'यद्यप्राप्तो वैष्णवमुदग्मार्गं प्रपद्यते। दक्षिणमाश्लेषां वा महाभयाय।' इति।।४।।

अथाधिकतायां शुभमाह—

उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥५॥

यदि सूर्य उत्तर अयन को अतिक्रमण करके (मकर में प्रविष्ट होकर) उत्तर तरफ लौटे तो लोगों का कल्याण और धान्य की वृद्धि करता है। यहाँ पर उत्तरायण का ग्रहण उपलक्षण है; किन्तु दक्षिणायन में भी इसी तरह का फल कहना चाहिये अर्थात् कर्क में प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौटे तो भी लोगों का कल्याण और सत्य की वृद्धि करता है। प्रकृतिस्थित (गणितागत अयननिवृत्ति और पूर्वकथित वेधीय अयननिवृत्ति एक काल में) होने पर ही पूर्वकथित फल ठीक घटता है तथा विकारयुक्त गति होने पर सूर्य लोगों में भय उत्पन्न करता है।।५।।

उष्णांशुरादित्य उत्तरमयनमतीत्यातिक्रम्य मकरं प्राप्य पश्चाद्यदि व्यावृत्तो निवर्तितस्तदा क्षेमसस्यवृद्धिकरो भवति। लब्धपालनं क्षेमं करोति, लोके सस्यानां च वृद्धिकरो भवति। तस्य च दिनाधिक्यादुत्तरायणग्रहणमुपलक्षणार्थम्। दक्षिणमयनमप्येवं ज्ञेयम्। तथा प्रकृतिस्थः स्वभावस्थश्चाप्येवं क्षेमसस्यवृद्धिकृद्भवति। एतदुक्तं भवति—स्फुटगणितेन यस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिर्ज्ञाता तस्मिन्नेव दिने यदि छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्महति मण्डले दृष्ट्या दृश्यते तदा प्रकृतिस्थः। तथा च भगवान् वृद्धगर्गः—

अयने सुप्रभः स्निग्धः सेवते यदि भास्करः।
सुवृष्टिं च सुभिक्षं च योगक्षेमं च निर्दिशेत्।।

अनिवृत्ते समे वापि निवृत्तः शस्यते रविः।
हीने भयावहो लोके दुर्भिक्षमकरप्रदः।।

विकृतगतिर्भयकृदिति। विकृता सविकारा गतिर्यस्यासौ विकृतगतिः। तथाभूतो भयकृल्लोके भयं भीतिं करोति। अयननिवृत्तौ दृष्टायां पुनर्यदि प्रतीपगतित्वमर्कस्य दृश्यते तदा विकृतगतिर्ज्ञातव्या।

पराशरतन्त्रेऽर्कस्य पञ्चधा गतिरुक्ता। तथा च—

पञ्चविधां गतिमुदयास्तमययोरन्तरे भजत्यूर्ध्वाम्।
तिर्यङ्मण्डलमधो नक्षत्रानुयायिनीमपि च।।
तिर्यग्गच्छति काष्ठायामूर्ध्वं गच्छति चोदये।
प्रातराशामनुक्रम्य मध्यं गच्छति भास्करः।।
मध्याह्ने तापयंल्लोकान्मण्डलं कुरुते गतिम्।
भ्रष्टस्त्वपि च मध्याह्नादधो गच्छति भास्करः।।
अस्तं गच्छन्नपि रविर्नक्षत्रमनुगच्छति।
एषापि यदि सविकारा दृश्यते तथापि भयकृत्।। इति।।५।।

त्वष्टा नाम ग्रहस्तेनाच्छादनादर्कस्य यदशुभफलं तदाह—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ।।६।।

पर्व से भिन्न काल में त्वष्टा नाम का ग्रह सूर्यमण्डल को अन्धकारयुक्त करता हो तो सात (१५वें अध्याय में नक्षत्र-कूर्म के विभाग से नव देशों के नव राजाओं में से सात) राजाओं का नाश करता है और शस्त्र, अग्नि, दुर्भिक्ष—इनसे लोगों का नाश करता है।।६।।

त्वष्टा नाम ग्रहोऽर्कमण्डलं सूर्यबिम्बं पर्व विनाऽपर्वण्येव सतमस्कं तमसान्धकारेण संयुक्तं कुरुते स तु दृष्टः सप्त भूपान्नक्षत्रकूर्मोक्तानां नवानां नृपाणां मध्यात् सप्तसङ्ख्यान् भूपान् नृपान् निहन्ति घातयति। तथा शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः शस्त्रेण सङ्ग्रामेणाग्निना हुतवहेन दुर्भिक्षेण च जनांल्लोकान् निहन्ति। तथा च भगवान् पराशरः—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रहः।
आवृणोति तमः श्यामः सर्वलोकविपत्तये।। इति।।६।।

अथ तामसकीलकानामर्कमण्डलगतानां फलमाह—

तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वाऽर्के फलं ब्रूयात् ।।७।।

राहु के पुत्र तैंतीस संख्यक केतु हैं। ये तामस, कीलक आदि नाम से प्रसिद्ध हैं। इनको सूर्य (ग्रहणकालिक सूर्य) में देखकर वर्ण, स्थान और आकृति से फल कहना चाहिये।।७।।

राहुसुता: स्वर्भानुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्केतवस्तामसकीलकसञ्ज्ञास्तामसकीलक इति तेषां नाम। तान् तामसकीलकानर्केऽर्कमण्डले वर्णस्थानाकारै:, वर्णा: श्वेतादय:, स्थानं प्रवेशो बिम्बैकभाग:, आकार आकृतिर्ध्वाङ्क्षादिसदृशी, एतैर्वर्णस्थानाकारैर्दृष्ट्वा अवलोक्य लोके जनपदे शुभाऽशुभफलं ब्रूयाद् वदेत्।।७।।

अथ तेषां शुभाऽशुभलक्षणमाह—

ते चार्कमण्डलगता: पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्या: ।
ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपा: पापा: शशाङ्केऽपि ॥८॥

ये तामस-कीलकसंज्ञक राहुपुत्र सूर्यमण्डल में अशुभ और चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर शुभ फल देते हैं। पर ध्वांक्ष (काक), कबन्ध (छिन्नमस्तक पुरुष) या प्रहरण (खड्गादि) के समान उनकी आकृति दिखाई दे तो चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर भी वे पाप फल देते हैं।।८।।

ते तामसकीलकाश्चार्कमण्डले सूर्यबिम्बे गता: प्राप्ता: पापफला दुष्टफलप्रदा भवन्ति। चन्द्रमण्डले शशिबिम्बे गता: सौम्या: शुभफलप्रदा भवन्ति। ध्वाङ्क्ष: काक:। कबन्धश्छिन्नशिरा: पुरुष:। प्रहरणं खड्गादि। ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपास्तदाकृतय:। शशाङ्केऽपि चन्द्रमण्डलेऽपि दृष्टा: पापा: पापफला भवन्ति। अनिष्टदानेतान् वर्जयित्वा अन्यरूपाश्चन्द्रमण्डले शुभदा:। अपिशब्द: सम्भावनायाम्। चन्द्रमण्डले येऽशुभास्ते सूर्यमण्डलेऽतीवाऽशुभदा इति।।८।।

अथ तेषामुदयनिमित्तान्याह—

तेषामुदये रूपाण्यम्भ: कलुषं रजोवृतं व्योम ।
नगतरुशिखरामर्दी सशर्करो मारुतश्चण्ड: ॥९॥
ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहा:।
निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र चोत्पाता:॥१०॥

इन तामस-कीलक आदि के उदय होने से पहले विकारयुक्त जल, धूलि से व्याप्त आकाशमण्डल, पर्वत, वृक्ष, शिखर—इन सबों का नाश करने वाला मिट्टी के कणों से युक्त भयङ्कर वायु, ऋतु के विपरीत वृक्षों में फल-फूल, सूर्य की गर्मी से पशु-पक्षी आदि जानवरों में व्याकुलता, दिशाओं में जलन, निर्घात (पवन: पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति भवति तदा निर्घात इति), भूकम्प—ये उत्पात होते हैं।।९-१०।।

तेषामिति। तेषां तामसकीलकानामुदये दर्शने रूपाण्येतानि लक्षणानि दृश्यन्ते। तद्यथाऽम्भ: पानीयं निमित्तं विना कलुषमप्रसन्नम्। व्योम आकाशं रजोवृत्तं रजसा व्याप्तम्। तथा मारुतो वातश्चण्ड: पुरुषो वाति वहति। कीदृश:। नगतरुशिखरामर्दी। नगानां पर्वतानां तरूणां वृक्षाणां शिखराण्यग्राणि। आसमन्तात् मर्दयति लोडयति। सशर्कर: शकराभिर्मृत्कणिकाभि: सहित:।

तथा तरवो वृक्षा ऋतुविपरीताः। तेषां ऋतौ स्वकालकुसुमफलानामभावः। अनृतौ कुसुमफलान्युत्पद्यन्ते। तथा मृगा अरण्यपशवः। पक्षिणः खगाश्च। दीप्ताः सूर्याभिमुखदीप्तस्थाः परुषरवाश्च भवन्ति। दिशां दाहा दिग्दाहाश्चासकृद्दृश्यन्ते। अत्रास्मिंस्तामसकीलकोदये निर्घातः। निर्घातलक्षणं वक्ष्यति—

पवनः पवनाभिहता गगनादवनौ यदा समापतति।
भवति तदा निर्घातः..।। इति।

महीकम्पो भूकम्पः। आदिग्रहणाद्रजोनीहारोल्कापातगन्धर्वनगराणि गृह्यन्ते। एते उत्पाता भवन्ति।।९-१०।।

अथ तेषामुत्पातानां निष्फलमाह—

न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि।
तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥११॥

यदि केतु, तामस, कीलक, राहु—इनका उत्पात होने के बाद सात दिन के अन्दर दर्शन हो जाय तो पूर्ववर्णित उत्पात का कोई अलग फल नहीं होता। ये उत्पात इन केतु आदि के उदय के कारण होते हैं अर्थात् पूर्व में इन उत्पातों का दर्शन हो जाने से केतु आदि का दर्शन निश्चित होता है। यदि किसी समय किसी कारण से उत्पातों का दर्शन होने पर भी तामस, कीलक आदि का दर्शन न हो तो इन उत्पातों के अनुसार ही फल कहना चाहिये।

तेषामम्भःकलुषादीनामुत्पातानां पृथक् फलानि न भवन्ति। यदि शिखिनः केतोः। कीलकानां तामसकीलकानाम्। राहोः स्वर्भानोश्च दर्शनानि भवन्ति। अर्कचन्द्रयोरन्यतरस्य ग्रहणं भवतीत्यर्थः। एतेषां सप्ताहान्तरदर्शने उत्पाता निष्फला ज्ञेयाः। **तदुदयकारणमिति**। यतस्तामसकीलकानामुदयकारणमुदयनिमित्तानि सम्भवन्ति। अत एतेषां केत्वादीनां फलमेव ब्रूयाद् वदेत्। केतुतामसकीलकराहूणामित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—अम्भःकलुषादिभिरुत्पातैर्दृष्टैर्निश्चितं केत्वादीनामुदयो वक्तव्यः। अथ कदाचित्केत्वादीनां दर्शनं न भवति तदा अम्भःकलुषादीनामेव फलं वदेत्।।११।।

अथ तामसकीलकानां दर्शनवशात् फलमाह—

यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः।
तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥१२॥

क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः।
निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेणायान्ति परदेशम् ॥१३॥

तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः।
सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भववाष्परुद्धदृशः ॥१४॥

क्षामा जुगुप्समानाः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः।
स्वनृपतिचरितं कर्म न पुरा कृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥१५॥

गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः।
सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम् ॥१६॥

जिन-जिन देशों में सूर्यबिम्बस्थित तामस-कीलक आदि का दर्शन हो, उन-उन देशों में राजाओं को दुःख होता है। क्षुधा से पीड़ित मुनि लोग भी स्वधर्म एवं उत्तम चरित्रों से हीन होकर दुर्बल बालक को हाथ में लेकर दूसरे देश में जाते हैं। सज्जनों के धन को चोर अपहरण कर लेते हैं। अतः वे सज्जन दीर्घनिश्वास छोड़ने से संकुचित नेत्र वाले, खिन्न शरीर वाले और शोक से उत्पन्न अश्रुप्रवाह से बन्द नेत्र वाले होते हैं। अपना राजा और परराष्ट्र से पीड़ित दुर्बल मनुष्य निन्दा करते हुये पूर्वकृत अपने राजा के कर्तव्य को दूसरे से कहते हैं। गर्भयुक्त होने पर भी मेघ अधिक जल नहीं देते, नदियाँ कृश (अल्प जल वाली) हो जाती हैं और धान की उत्पत्ति बहुत कम होती है।।१२-१६।।

यस्मिन् यस्मिन् देश इति। ते तामसकीलकाः सूर्यबिम्बस्था आदित्यमण्डलगताः। यस्मिन् यस्मिन् यत्र यत्र देशे दर्शनमायान्त्युपगच्छन्ति तस्मिन् तस्मिंस्तत्र तत्र देशे महीपतीनां भूमिपानां व्यसनं दुःखं परिज्ञेयं ज्ञातव्यम्।

क्षुत्प्रम्लानशरीरा इति। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। मुनयोऽपि ऋषयोऽपि जितक्षुधः, क्षुत्प्रम्लानशरीराः, क्षुद्बुभुक्षा तया प्रकर्षेणातिशयेन म्लानानि शरीराणि देहा येषां ते तथाभूताः, तथोत्सृष्टं त्यक्तं धर्मसच्चरितं शोभनचारित्रं च यैस्ते तथोक्ताः। तथा निर्मांसा मांसरहिताः। दुर्बला ये बालाः शिशवोऽन्नाभावात्ते हस्तेषु करेषु येषां ते तथाभूताः। कृच्छ्रेण केशेन परदेशमन्यदेशं यान्ति प्राप्नुवन्ति।

तथा सन्तः साधवो जनास्तस्करविलुप्तवित्ताः, तस्करैश्चौरैर्विलुप्तं छिन्नं वित्तं धनं येषाम्। तथा प्रदीर्घैरत्यायामवद्भिर्निःश्वासैः श्वसनैर्मुकुलिताः सङ्कुचिता अक्षिपुटा नेत्राच्छादनानि येषाम्। तथा सन्नशरीराः, सन्नान्यवसादं गतानि शरीराणि देहा येषाम्। तथा शोकेन दुःखेन यदुद्भवं वाष्पमश्रु तेन रुद्धे वृते दृशौ चक्षुषी येषां ते तथोक्ताः।

क्षामाः कृशाः जुगुप्समाना निन्दन्तो मनुजा मानवाः। यतः स्वनृपतिपरचक्रपीडिताः। स्वनृपतिना आत्मीयेन राज्ञा परचक्रेण चान्यराष्ट्रेण पीडिता उपतप्ताः, अतो जुगुप्समानाः। अन्येऽपरे एवं ब्रुवन्ति कथयन्ति च कथयेति च यथा यत्कर्मास्माभिरद्यानुभूयते तत्पुरा पूर्वं स्वचरितमात्मनार्जितं न नृपतिचरितं राज्ञा वर्जितमिति।

गर्भेष्वपीति। वारिमुचो मेघा गर्भेष्वपि निष्पन्ना गर्भलक्षणयुक्ता अपि वृष्टिप्राप्त-समये न प्रभूतं न बहु वारि पयो मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा सरितो नद्यस्तनुत्वं स्वल्पतोयत्वं यान्ति गच्छन्ति जलाभावात्। सस्यधान्यादिकं क्वचित्क्वचित्कुत्रचिज्जायते उत्पद्यते न सर्वत्रेति।।१२-१६।।

अथ तेषामाकृतिवशेन फलमाह—

दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने।
ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥१७॥

सूर्य के मण्डल में दण्ड की तरह केतु दिखाई दे तो राजा की मृत्यु, छिन्नमस्तक पुरुष की तरह दिखाई दे तो व्याधि का भय, काक की तरह दिखाई दे तो चोर का भय और कील की तरह दिखाई दे तो दुर्भिक्ष होता है।।१७।।

अर्कस्थे सूर्यमण्डलसंस्थिते। दण्डे दण्डाकारे चिह्ने। नरेन्द्रस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं स्यात्। कबन्धश्छिन्नशिरा: पुरुष:। कबन्धसंस्थाने कबन्धाकारे चिह्नेऽर्कस्थे। व्याधिभयं रोगभयम्। स्याद् भवेत्। ध्वाङ्क्ष: काकस्तस्मिन्नर्कस्थे तस्करभयं चौरकृतं भयं वदेत्। कीलके कील-काकारेऽर्कस्थे दुर्भिक्षमसुभिक्षं भवेत्।।१७।।

अन्यदप्याह—

राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः ।
राजान्यत्वकृदर्क: स्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा ।।१८।।

यदि सूर्यमण्डल राजा के उपकरणरूप छत्र, ध्वजा, चामर आदि से वेधित हो तो राजा का परिवर्तन होता है और अग्निकण, धूम आदि से वेधित हो तो लोगों का नाश करता है।।१८।।

राजा नृपस्तस्योपकरणानि हस्त्यश्वादयस्तद्रूपैस्तदाकारैरर्क: सूर्यो यदि विद्धो भवति। तथा छत्रध्वजचामरादिभि:। छत्रमातपत्रम्। ध्वजं पताका। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणाद् भृङ्गारकुम्भाकारैर्यद्यर्को विद्धो भवति तदा राजाऽन्यत्वकृत्, राज्ञोऽन्यत्वं करोति, अन्यो राजा भवतीत्यर्थ:। अथ स्फुलिङ्गैरग्निकणैर्धूमेन। आदिग्रहणाज्ज्वालादिभिर्युक्तो भवति तदा जनहा, जनान् हन्ति घातयतीत्यर्थ:।।१८।।

अन्यदप्याह—

एको दुर्भिक्षकरो द्व्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय ।
सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ।।१९।।

यदि पूर्वोक्त सूर्यमण्डल के वेध करने वालों में से एक से सूर्य वेधित हो तो दुर्भिक्ष, दो आदि से वेधित हो तो राजा का नाश और सफेद, लाल, पीला, काला—इन वर्णों से वेधित हो तो क्रम से वर्णों का नाश करता है। जैसे—सफेद वर्ण से वेधित होने पर ब्राह्मणों का, लाल वर्ण से वेधित होने पर क्षत्रियों का, पीले वर्ण से वेधित होने पर वैश्यों का और काले वर्ण से वेधित होने पर शूद्रों का नाश करता है।।१९।।

एको वेधोऽर्कस्थो दुर्भिक्षमसुभिक्षं करोति। द्वावाद्यौ येषां ते द्व्याद्या:। द्वौ त्रयश्चत्वारो वा वेधा नरपते राज्ञो विनाशायाभावाय स्युर्भवेयु:। अर्क आदित्यस्तैश्चिह्नैस्सितरक्तपीतकृष्णै-र्विद्धोऽनुवर्णघ्नो भवति। अनु क्रमेण। वर्णान् द्विजादीन् हन्ति। तद्यथा—सितै: श्वेतवर्णै-श्चिह्नैर्विद्धो ब्राह्मणान् हन्ति घातयति, रक्तवर्णै: क्षत्रियान्, पीतवर्णैर्वैश्यान्, कृष्णवर्णै: शूद्रानिति।।१९।।

विशेषफलमाह—

दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाता: ।
आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥२०॥

ये पूर्वकथित ध्वांक्ष आदि महा उत्पात सूर्यमण्डल में जिस तरफ दिखाई देते हैं, उस दिशा में स्थित देशों के लोगों को भय होता है। जैसे—यदि उत्पात सूर्यबिम्ब में पूर्व तरफ हो तो पूर्वीय देश में, दक्षिण की तरफ हो तो दक्षिणीय देश में, पश्चिम की तरफ हो तो पश्चिमीय देश में और उत्तर की तरफ हो तो उत्तरीय देश में स्थित लोगों को भय होता है।।२०।।

ते महोत्पाता ध्वाङ्क्षप्रभृतयो रविबिम्बस्यार्कमण्डलस्योत्थिता उत्पन्ना यतो यस्यां दिशि दृश्यन्ते, पूर्वस्यां दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां वा दिशि विदिक्षु वा तेनैव प्रदेशेन लोकानां जनानां भयमागच्छति आयाति।।२०।।

अथार्करश्मिवशेन शुभाशुभफलमाह—

ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्र: सेनापतिं विनाशयति ।
पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥२१॥
चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलं करोत्यूर्द्धम् ।
तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥२२॥

सूर्य के ऊपरी भाग की किरणें ताम्र वर्ण की हों तो सेनापति का, पीले वर्ण की हों तो राजा के पुत्र का और श्वेत वर्ण की हों तो पुरोहित का नाश होता है। साथ चित्र या धूम्र वर्ण की हों तो चोरों या शस्त्रप्रहारों से लोग व्याकुल होते हैं। यदि उक्त उत्पात देखने के बाद जल्दी वृष्टि न हो तो पूर्वोक्त फल होता है। यदि वृष्टि हो जाय तो पूर्वोक्त फल न होकर लोगों का कल्याण होता है।।२१-२२।।

दिवसकर आदित्य:। ऊर्ध्वकर ऊर्ध्वरश्मिर्यदा दृश्यते। अधोभागे तस्य रश्मयो न दृश्यन्त इत्यर्थ:। स च ताम्रस्ताम्रवर्णश्च तदा सेनापतिं चमूनाथम्, विनाशयति घातयति। ऊर्ध्वकर: पीतवर्णश्च नरेन्द्रपुत्रं नृपसुतम्, हन्ति मारयति। ऊर्ध्वकर: श्वेतवर्णश्च पुरोहितं मारयति।

चित्रोऽथवेति । रवेरादित्यस्य सम्बन्धी रश्मि: कर:। ऊर्ध्वं स्थित: स च चित्रो नानावर्णोऽथवापि तु धूम्रवर्णस्तस्करशस्त्रनिपातै:, तस्कराश्चौरा:, शस्त्रमायुधम्, तैस्तस्करशस्त्रनिपातैश्चौरसङ्ग्रामोपमर्दनैर्व्याकुलं सोद्यमं देशं करोति, यद्याशु शीघ्रं सलिलं जलं न पातयति न वर्षति तदैवम्। अथ सलिलपातं करोति तदा शिवमिति।।२१-२२।।

अथ भगवतो भास्करस्य ऋतुवर्णलक्षणमाह—

ताम्र: कपिलो वार्क: शिशिरे हरिकुङ्कुमच्छविश्च मधौ ।
आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥२३॥

शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः ।
प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्त्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥२४॥

यदि सूर्यमण्डल शिशिर ऋतु में ताम्र या पीला, वसन्त ऋतु में हरा या कुङ्कुम के समान, ग्रीष्म ऋतु में पाण्डु (कुछ-कुछ सफेद) या सुवर्ण के समान, वर्षाकाल में सफेद, शरद ऋतु में कमल के गर्भ के समान और हेमन्त में रुधिर के समान हो तो शुभ होता है। यदि वर्षाकाल में स्वच्छ या अन्य सब ऋतुओं के समान वर्ण का हो तो भी शुभ फल देने वाला होता है।।२३-२४।।

ताम्रः कपिलो वार्क इति । शस्त इति सर्वत्र सम्बध्यते। शिशिरे माघफाल्गुनयोरर्क आदित्यस्ताम्रवर्णः कपिलो वा कपिलवर्णः शस्तः शुभफल इत्यर्थः। मधौ वसन्ते चैत्रवैशाख-योर्हरिकुङ्कुमच्छविर्हरितकान्तिः शुकाभः। कुङ्कुमवर्णश्च पीतलोहितवर्णः शस्त एव। ग्रीष्मे ज्येष्ठाऽऽषाढयोः पाण्डुः पाण्डुरवर्ण ईषच्छुक्रः। कनकवर्णः सुवर्णकान्तिश्च शस्त एव। वर्षासु वर्षाकाले श्रावणभाद्रयोः। शुक्लः श्वेतवर्णः शस्तः। चशब्दादापाण्डुकनकवर्णश्च शस्त एव।

शरदि शरत्काले। आश्वयुजकार्त्तिकयोः। कमलोदराभः कमलं पद्मं तस्योदरमभ्यन्तरं तत्सदृशी भा कान्तिर्यस्य स तथाभूतः शस्तः। हेमन्ते मार्गपौषयोः। रुधिरवर्णो रक्तवर्णः शस्तः। प्रावृट्काले वर्षासमये स्निग्धो विमलस्तथा सर्वर्त्तुनिभः सर्वेषां शिशिरादीनामृतूनां ये वर्णा उक्तास्तेषां निभः सदृशस्तद्वर्णोऽपि शुभदायी शुभप्रदो भवति। तथा च समास-संहितायाम्—

> ताम्रघृतकनकमुक्ताकमलासृक्सन्निभः शुभः सविता।
> शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु प्रावृषि सर्वर्त्तुसन्निभः स्निग्धः।।

तथा च वृद्धगर्गः—

> शिशिरे ताम्रसङ्काशः कपिलो वापि भास्करः।
> वसन्ते कुङ्कुमप्रख्यो हरितो वापि शस्यते।।
> ग्रीष्मे कनकवैदूर्यं सर्वरूपो जलागमे।
> शस्तः शरदि पद्माभो हेमन्ते लोहितप्रभः।।
> एतत्स्वरूपं सवितुर्विपरीतमतोऽन्यथा।

तथा च पराशरः—

'शिशिरे ताम्रः कपिलो वा। वसन्ते कुङ्कुमाभो हरितो वा। ग्रीष्मे कनकवैदूर्यप्रभः। प्रावृषि सर्ववर्णः। शरदि पद्माभो हेमन्ते रक्तवर्णो रश्मिः सर्वर्त्तुषु श्वेतः पाण्डुवर्णश्च शस्यते विपरीतो विपरीतकारी'ति।।२३-२४।।

अन्यदप्याह—

रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान् विनाशयति ।
पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥२५॥

यदि सूर्यमण्डल रूखा या सफेद हो तो ब्राह्मणों का, लाल वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। यदि पूर्वोक्त वर्ण स्निग्ध हो तो ब्राह्मण आदि वर्णों का शुभ करने वाला होता है।।२५।।

रूक्ष इति सर्वत्र सम्बध्यते। श्वेत: शुक्लवर्णो रूक्ष: स्नेहरहितो विप्रान् ब्राह्मणान्। विनाशयति हन्ति। रक्ताभो लोहितकान्ती रूक्षश्च क्षत्रियान् विनाशयति। पीत: पीतवर्णो रूक्षो वैश्यान्नाशयति। कृष्ण: कृष्णवर्णो रूक्षश्च ततोऽपरान् तदित्यनेन वैश्या: परामृश्यन्ते तेभ्योऽपरानन्यान् शूद्रान् हन्तीति।

शुभकर: स्निग्ध इति। यथोक्तवर्णो यदि स्निग्धो भवति तदा तेषामेव शुभकरो भवति। तथा श्वेत: स्निग्धो ब्राह्मणानां शुभकरो भवति, रक्ताभ: स्निग्ध: क्षत्रियाणाम्, पीत: स्निग्धो वैश्यानाम्, कृष्ण: स्निग्धश्च शूद्राणामिति।।२५।।

अथार्कस्य ऋतुष्वशुभवर्णानाह—

ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसित: करोत्यनावृष्टिम्।
हेमन्ते पीतोऽर्क: करोति न चिरेण रोगभयम्॥२६॥

ग्रीष्म ऋतु में रक्त वर्ण का रविमण्डल भय उत्पन्न करने वाला होता है।, वर्षा ऋतु में काला रविमण्डल अनावृष्टि करता है और हेमन्त ऋतु में पीत वर्ण का रविमण्डल शीघ्र रोगभय करता है।।२६।।

अर्क आदित्यो रक्तो लोहितवर्णो ग्रीष्मे दृष्टो भयकृद् भयं करोति। वर्षासु वर्षाकाले। असितवर्ण: कृष्णवर्णोऽनावृष्टिं वृष्ट्यभावं करोति। हेमन्ते पीत: पीतवर्णो न चिरेण शीघ्रमेव रोगभयं गदभीतिं करोति। शेषर्त्तुषु न विशेष: पूर्वोक्तमेव शुभाशुभमिति।।२६।।

अन्यदप्याह—

सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रद: सहस्रांशु:।
प्रावृट्काले सद्य: करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम्॥२७॥

यदि इन्द्रधनुष से सूर्यमण्डल खण्डित होता हो तो राजाओं में विरोध उत्पन्न करता है। यदि वर्षाकाल में निर्मल कान्तियुक्त हो तो सद्य: (उसी दिन) वृष्टि करता है।।२७।।

सुरचापेति। सहस्रांशुरादित्य:। सुरचापमिन्द्रधनुस्तत्तुल्येन चिह्नेन पाटिता विदारिता तनुर्मूर्तिर्यस्य तथाभूतो नृपते राज्ञो विरोधप्रदो भवत्यशुभ इत्यर्थ:। प्रावृट्काले वर्षासमये विमलद्युतिर्निर्मलकान्ति: सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं करोति वर्षतीत्यर्थ:।।२७।।

वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्य: शिरीषपुष्पाभ:।
शिखिपत्रनिभ: सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि॥२८॥

यदि वर्षाकाल में शिरीष-पुष्प की कान्ति के समान कान्ति वाला सूर्य-मण्डल हो तो उसी दिन वृष्टि करता है। यदि मयूरपंख की तरह कान्ति वाला दिखलाई दे तो बारह वर्ष पर्यन्त वृष्टि नहीं होती।।२८।।

वर्षाकाले प्रावृट्समये शिरीषपुष्पाभः शिरीषपुष्पकान्तिसदृशो नीलपीत इत्यर्थः। सद्यो वृष्टिं करोति। शिखी मयूरस्तस्य पत्रं पक्षस्तन्निभस्तत्तुल्यो मयूरचन्द्रिकाकारो द्वादशवर्षाणि सलिलं जलं न करोति न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

मयूरचन्द्रिकाभो वा यदा दृश्येत भास्करः।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे तदा देवः प्रवर्षति।। इति।।२८।।

अन्यदप्याह—

श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात्।
यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ॥२९॥

यदि सूर्यविम्ब श्याम वर्ण का दिखलाई दे तो कीड़े का भय और भस्म की कान्ति की तरह दिखलाई दे तो परराष्ट्र से भय होता है। जिस राजा के जन्मनक्षत्र में सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई दे, उस राजा का नाश होता है।।२९।।

अर्के सूर्ये श्यामवर्णे कीटभयं कृमिभीतिः सस्यानां भवति। भस्मनिभे भस्मवर्णे पाण्डौ रूक्षे परचक्रादन्यनृपाद्भयं भीतिमुशन्ति कथयन्ति। अर्क आदित्यो यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे स्थितः सच्छिद्रो दृश्यते तन्नक्षत्रं यस्य क्षितीशस्य राज्ञः कूर्मविभागेन भवति तस्य विनाशो मृत्युर्भवति।।२९।।

अन्यदप्याह—

शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति सङ्ग्रामाः।
शशिसदृशे नृपतिबधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ॥३०॥

यदि आकाश में खरहे के रुधिर के समान रक्त वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो युद्ध होता है। यदि चन्द्र के समान वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो वर्तमान राजा का नाश होकर उसके स्थान पर दूसरा राजा होता है।।३०।।

शशः प्राणिविशेषः। भानावादित्ये शशरुधिरनिभे शशलोहितवर्णे अतिरक्त इत्यर्थः। नभस्तलस्थे मध्याह्ने मध्यस्थिते सङ्ग्रामा युद्धानि भवन्ति। नभस्तलग्रहणमुदयास्तमयकालपरिहारार्थम्। तत्र किल स्वभावादतिलोहितो रविर्भवति। तथा च गर्गः—

शशलोहितवर्णाभो यदा भवति भास्करः।
तदा भवन्ति सङ्ग्रामा घोरा रुधिरकर्दमाः।। इति।

शशिसदृशे चन्द्रनिभे विरश्मौ शीतले च नृपते राज्ञो बधो मरणं भवति। क्षिप्रं चाश्वेवान्योऽपरो नृपो राजा भवति।।३०।।

अन्यदप्याह—

क्षुन्मारकृद्धटनिभः खण्डो जनहा विदीधितिर्भयदः।
तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय ॥३१॥

जिस देश में घड़े की आकृति के समान सूर्यमण्डल दिखालाई दे, उस देश में क्षुधा से पीड़ित होकर मनुष्य प्राण-विसर्जन करते हैं। यदि खण्डाकार दिखालाई दे तो लोगों का नाश करता है। यदि तेज से हीन दिखांलाई दे तो भय देने वाला होता है। यदि फाटक की तरह दिखलाई दे तो पुरों का नाश करता है और छत्र के समान दिखालाई दे तो देश का नाश करता है।

घटनिभो घटाकारोऽर्कः। क्षुन्मारकृत्। क्षुद्दुर्भिक्षं मारं मरकं च करोति। खण्ड एकदेशाद्धीनो जनहा। जनान् हन्ति घातयति। विदीधितिर्विगतरश्मिर्भयदो भीतिं ददाति। तोरणरूपस्तोरणाकारः पुरहा। पुरं नगरं हन्ति। छत्रनिभ आतपत्राकारो देशस्य जनपदस्य नाशाय विघाताय भवति।। ३१।।

अन्यदप्याह—

ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च।
कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं सचिवः ॥३२॥

यदि सूर्यमण्डल ध्वजा या चाप की तरह काँपता हुआ रूखा दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि सूर्यमण्डल में काली रेखा दिखाई दे तो मन्त्री के द्वारा राजा का वध होता है।।३२।।

ध्वजः प्रसिद्धो बहुपटरचितः पताकारूपः। चापं धनुः। भास्करे सूर्ये। ध्वजचापनिभे तदाकृतौ। युद्धानि सङ्ग्रामा भवन्ति। वेपने कम्पमाने रूक्षे वाऽस्निग्धे युद्धान्येव भवन्ति। सवितर्यादित्ये कृष्णवर्णरेखा यदि मध्ये दृश्यते तदा नृपं राजानं सचिवो मन्त्री हन्ति घातयति। केचित्पठन्ति नृपं सचिवम्। नृपं सचिवं च हन्ति। तथा च पराशरः—

'विवर्णो भूमिवर्णो वा महाभयाय। श्यामो जनमरणाय। सुवर्णरजतपद्मनिभो विमलः स्निग्धो जनहिताय। धूम्राभो वृष्टिनिग्रहाय। ऊर्ध्वदण्डो जटिलः शस्त्रकोपव्याधिमृत्युकरः। महान् परिमण्डलः कुक्षिमान् विशालो घृतमण्डलनिभः क्षेमारोग्यकरः। संक्षिप्तः क्षयाय। वज्राकारो दुर्भिक्षाय। सर्वतश्छिद्रो द्विधा वा दृश्यमानो मृत्युदेशं विनाशं वाऽऽचष्टे। शिरीषपुष्पसङ्काशो वार्षुके निष्प्रभो जनमारकरः। घटसंस्थः क्षुत्कृत्। ताम्रो रुधिराभो वा शस्त्रकोपकरः। खण्डच्छिद्रो भूपालविनाशाय च। पुण्ड्राकारः उलूकसंस्थानः उन्मादापस्मारकरः। विरश्मिर्व्याधिभयकृत्। छत्राकारो देशविपर्ययकरः। शकटाकारश्च कबन्धाकृतिर्महासङ्ग्रामकृत्। तोरणसंस्थानः पुरनाशाय। अवर्णः प्रजानाशाय। प्रतिरूपः स्त्रीभयकारी। परुषो वेपनः सस्यनाशनः। शरासनाकृतिर्ध्वजाभो वा सद्य आहवाय। विजयाकृतिर्गर्भविनाशी। परुषाकारो रुधिरप्रभोऽनेकनृपतिहस्तोत्पाटनकरः। कृष्णवर्णो जगतः क्षयाय। अपर्वण्युपरक्तः सर्वलोकविनाशाय। व्यामिश्रवर्णो यावत्प्रदृश्यते तावत्परस्परं नृपविनाशाय। कृष्णरुधिरपीतवर्णो जगत्क्षयकारी। वैदूर्यकृष्णबभ्रुवर्णः पाशुवर्णोत्सादनकरः। मयूरचन्द्रिकाभो द्वादशवार्षिकीमनावृष्टिं धत्ते। एवमन्योन्यव्यामिश्रवर्णो युगान्तकारी भवती'ति।।३२।।

अन्यदप्याह—

दिनकरमुदयास्तसंस्थितमुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः।
नरपतिमरणं विन्द्यात्तदाऽन्यराजप्रतिष्ठा च ॥३३॥

यदि उल्का, वज्र, बिजली उदयकालिक सूर्य पर गिरे तो वर्तमान राजा की मृत्यु और उसके स्थान पर दूसरे की प्रतिष्ठा होती है।।३३।।

दिनकरमादित्यमुदयास्तसंस्थितमुदयरेखास्थमस्तस्थमपररेखास्थं वा यदा उल्का अशनिर्विद्युद्वा आसां लक्षणं वक्ष्यति। एता हन्युस्ताडयेयुस्तदा तस्मिन् काले नरपतेर्मरणं मृत्युम्। विन्द्याद्विजानीयात्। तथाऽन्यराजप्रतिष्ठा। अन्यस्य द्वितीयस्य राज्ञो नृपत्वे प्रतिष्ठा स्थितिस्तत्क्षणमेव भवति। तथा च पराशरः—

उदयास्तमये भानुमुल्का हन्यात् समुत्थिता।
प्रज्वलन्ती तदा राजा क्षिप्रं शस्त्रेण बध्यते।। इति।।३३।।

अन्यल्लक्षणमाह—

प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा।
रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम्॥३४॥

यदि प्रत्येक दिन दोनों सन्ध्याओं (उदय और अस्त) में परिवेषयुक्त सूर्यमण्डल होता हो या रक्त वर्ण का होकर उदय-अस्त होता हो तो निश्चय ही दूसरा राजा होता है।।३४।।

अहिमकिरण उष्णरश्मिः सूर्यः। प्रतिदिवसम्। दिवसं दिवसं प्रति प्रतिदिवसम्। परिवेषी मण्डलवान् भवति। अथवा द्वयोः सन्ध्ययोरुदयास्तमययोः परिवेषी भवति। अथवा रक्तवर्णोऽस्तमेत्यस्तं गच्छति रक्तवर्णश्चोदेति। एतदुक्तं भवति। यादृश एव लोहितवर्णस्तादृश एव सकलमहर्भूत्वा रक्तवर्ण एवास्तमेति। प्रतिदिवसं सर्वत्र सम्बध्यते। तदा तस्मिन् प्रकारत्रये भूपं राजानमन्यं द्वितीयं करोति।।३४।।

अर्कस्य सन्ध्याकाले शुभाशुभलक्षणमाह—

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी॥३५॥

यदि दोनों सन्ध्याओं में शस्त्र के समान स्वरूप वाले मेघ से सूर्यमण्डल आच्छादित हो तो युद्ध कराने वाला; और हरिण, महिष, पक्षी, गधे या हस्ती के समान स्वरूप वाले मेघ से आच्छादित हो तो भय देने वाला होता है।।३५।।

प्रहरणमायुधं खड्गादि। प्रहरणसदृशैरायुधाकृतिभिर्जलदैर्मेघैर्यदा सन्ध्याद्वये उदयास्तमयकाले स्थगित आच्छादितो भवति सूर्यस्तदा रणकारी सङ्ग्रामकृद्भवति। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। तेनैकस्यां सन्ध्यायां द्वितीयस्यां वेत्यर्थः। मृग अरण्यप्राणी। महिषः प्रसिद्धः। विहगः पक्षी। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। एषां सदृशरूपैस्तुल्याकारैर्यदा सन्ध्याद्वये स्थगितो भवति, तदा भयदायी भयं भीतिं ददाति।।३५।।

अथार्काक्रान्तस्य नक्षत्रस्य सन्तापसंशोधने आह—

दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम्।
भवति तु पश्चाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात्॥३६॥

अग्नि के परिताप से पीड़ित होकर जिस तरह सोना शुद्ध होता है, उसी तरह सूर्य के परिताप से पीड़ित होकर नक्षत्र शुद्ध होता है।।३६।।

यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे दिनकरः सूर्यः स्थितस्तदृक्षं दिनकरकराभितापात्सूर्यरश्मिसन्तापात् सुमहतीं पीडामतिरुजमवाप्नोति लभते। तदेव सूर्यमृक्षं पश्चादनन्तरं शुद्धं निर्दोषं भवति। यथा कनकं सुवर्णं हुताशपरितापादग्निसन्तापेन शुद्धं निर्मलं भवति। तथा च पराशरः—

ग्रहोपसृष्टं नक्षत्रं सवितुर्योगमागतम्।
विशोधयति तत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम्।।

तथा च वृद्धगर्गः—

यथाग्निना प्रज्वलिते गृहे तप्यन्त्यदूरिणः।
तथार्कस्याप्यदूरस्थमृक्षं तदपि तप्यते।। इति।।३६।।

अथ प्रतिसूर्यलक्षणमाह—

दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा।।३७।।

यदि सूर्यमण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो वृष्टि होती है, दक्षिण दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो आँधी आती है, दोनों तरफ दिखलाई पड़े तो राजा का और नीचे की तरफ दिखलाई पड़े तो वह प्रतिसूर्य लोगों का नाश करता है।

विशेष—सूर्योदय के बाद एक प्रहर तक जब एक छोटा मेघ का टुकड़ा आ जाता है तब वह सूर्य की किरणों से चमकता हुआ द्वितीय सूर्य के समान लक्षित होता है, उसी को 'प्रतिसूर्य' कहते हैं।।३७।।

दिवसकृत इति। उदयात्प्रभृति दिनप्रहरैकं यावत्तनुघनोऽर्कसमीपे यदा भवति तदार्करश्मिवशात्तत्र द्वितीयोऽर्क इव लक्ष्यते, स प्रतिसूर्य उच्यते। एवमस्तमयेऽपि सम्भवति। दिवसकृतः स प्रतिसूर्यः। आदित्यस्योदगुत्तरे यदा प्रतिसूर्यो दृश्यते तदा जलकृज्जलं पानीयं करोति पर्जन्यवृष्टिर्भवति। दक्षिणस्थोऽर्कस्य वातकरो भवति। उभयस्थ उत्तर-दक्षिणभागयोर्द्वयोरपि स्थितः सलिलभयं जलभीतिं करोति। तस्यैवार्कस्योपरि स्थितः प्रतिसूर्यो नृपं राजानं हन्ति घातयति। अधःस्थितः प्रतिसूर्यो जनहा जनान् हन्ति।।३७।।

अन्यदप्याह—

रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो न चिरात्।
परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत्।।३८।।

असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः।
खगमृगभैरवस्वररुतैश्च निशाद्युमुखे।।३९।।

आकाश में रुधिर के समान लाल वर्ण या धूलि के समुदाय से लाल वर्ण का सूर्यमण्डल राजा का बहुत जल्दी नाश करता है। यदि सूर्यमण्डल कृष्ण, विचित्र या नील

वर्ण का होकर देखने में भयङ्कर प्रतीत हो या सन्ध्याकाल में पक्षी अथवा जंगली जानवरों के भयङ्कर शब्द सुनाई दें तो लोगों का नाश होता है।।३८-३९।।

दिनकृदादित्यो वियत्याकाशेऽकस्मादेव रुधिरनिभो रक्तवर्णो यदा दृश्यते तदा न चिरात् शीघ्रमेवाऽवनिपस्य राज्ञोऽन्तकरो मृत्युकृद्भवति। वियद्ग्रहणमत्रोदयास्तमयौ विहायान्यत्र ग्रहणार्थम्। परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा। परुषेण रूक्षेण रजसा पांशुनारुणीकृता लोहिता तनुर्मूर्त्तिर्यस्य तथाभूतोऽप्यवनिपान्तकरः शीघ्रमेव भवति। असितः कृष्णः। विचित्रो नानावर्णः। नीलो नीलवर्णः। परुषो रूक्षः। एवंविधोऽर्को जनघातकरः। जनानां लोकानां घातं करोति। खगाः पक्षिणो मृगा आरण्यजातयः। एतेषां भैरवा भीषणा ये स्वराः शब्दास्तैर्यानि रुतानि तैर्यदा निशामुखेऽस्तमये द्युमुखे उदये च युक्तो भवति तदापि जनघातं करोति।।३८-३९।।

अथ शुभलक्षणमाह—

अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः ।
अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः ॥४०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामादित्यचारस्तृतीयोऽध्यायः॥३॥

स्वच्छ, अखण्डित, स्पष्ट, अतिशय स्वच्छ, दीर्घ किरण वाला, निर्विकार शरीर, वर्ण और चिह्न वाला सूर्यमण्डल संसार का मङ्गल करने वाला होता है।।४०।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामादित्यचाराध्यायस्तृतीयः ॥३॥

अमलवपुरिति । एवंविधो दिवाकरः सूर्यो जगति जनानां शिवं श्रेयः करोति। कीदृशोऽमलवपुर्निर्मलशरीरः। अवक्रमण्डलः स्पष्टबिम्बः। तथा च पराशरः—

श्वेतः शिरीषपुष्पाभः पद्माभो रूप्यसन्निभः।
वैदूर्यघृतमण्डाभो हेमाभश्च दिवाकरः।।
वर्णैरेभिः प्रशस्तः स्यान्महास्निग्धः प्रतापवान्।
भावनः सर्वसस्यानां क्षेमारोग्यसुभिक्षदः।।

स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः । स्फुटाः स्पष्टा। विपुला विस्तीर्णाः। अमला निर्मलाः। दीर्घा आयामिनो रश्मयो यस्य। तथा च पराशरः—'स्निग्धाः परिपूर्णाः शुक्ला माञ्जिष्ठाः पीता अत्यन्तगामिनो रश्मयः शस्यन्ते। रूक्षा अविच्छिन्नास्तनवो ह्रस्वा धूमाभा लोहितवर्णा विगर्हिता' इति। **अविकृततनुवर्णचिह्नभृत्** । अविकृता निर्विकारा तनुर्मूर्त्तिस्तथाऽविकृतो वर्णः कान्तिः। अविकृतं चिह्नं लक्ष्म। एतान्यविकृतानि विभर्ति धारयति तथाभूत इति।।३९।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावादित्यचारो नामाध्यायस्तृतीयः ॥३॥

अथ चन्द्रचाराध्यायः

अथ चन्द्रचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव रवेरुपरि चन्द्रमसमिच्छन्ति, तान् प्रत्याह—

नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धम्।
स्वच्छाययाऽन्यदसितं कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य ॥१॥

जिस तरह धूप में स्थित घड़े का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध दिशा में स्थित दूसरा आधा भाग अपनी छाया से ही कृष्ण वर्ण दिखाई देता है, उसी तरह सदा सूर्य के अधोभाग में स्थित चन्द्र का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध अर्धभाग अपनी छाया से ही कृष्ण दिखाई देता है।।१।।

इन्दोश्चन्द्रस्य भानोरादित्यादधःस्थस्य भानवीभिर्भाभिः सूर्यरश्मिभिर्नित्यं सर्वकालमेकमर्द्धदलं सितं शुक्लं भवति। यस्मिन् गोलकभागेऽर्करश्मयः पतन्ति तदेवार्द्धं शुक्लं भवति। अन्यद् द्वितीयमर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं नित्यमेव भवति। कथम्? उच्यते—कुम्भस्येवाऽऽतपस्स्थस्य। कुम्भस्य यस्मिन्नर्द्धे रश्मयः पतन्ति तदर्द्धं शुक्लं दृश्यते। अन्यदर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं दृश्यते। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

रविदृष्टं सितमर्द्धं कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य।
कुम्भस्य तथासन्नं रवेरधःस्थस्य चन्द्रस्य।।

तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

महतश्चाप्यधःस्थस्य नित्यं भासयते रविः।
अर्द्धं शशाङ्कबिम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन।। इति।।१।।

नन्विन्दुप्रकाशकोपलम्भात् स्वच्छाययान्यदसितमित्यस्य प्रत्यक्षबाधां मन्यमान आह—

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥२॥

जिस तरह दर्पण पर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से घर के अन्दर का अन्धकार नष्ट होता है, उसी तरह जलपिण्डात्मक चन्द्र के ऊपर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट होता है।।२।।

शशिनि चन्द्रमसि सलिलमयेऽम्बुमये रवेरादित्यस्य सम्बन्धिन्यो दीधितयो रश्मयो मूर्च्छितास्तत्र संलग्नाः प्रतिफलिता नैशं निशाभवं रात्र्युत्पन्नं तमोऽन्धकारं क्षपयन्ति नाशयन्ति। यथा दर्पणोदरे आदर्शमध्ये द्वारप्रवेशे गृहस्य सूर्यरश्मयो निहिताः संरुद्धा मन्दिरस्य गृहस्यान्तर्मध्ये तमः क्षपयन्ति तथेति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिताः।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

भूग्रहभानां गोलार्द्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्द्धानि यथा सार्द्धं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते।। इति।।२।।

अथ शशिनः पश्चिमदिग्भागात्सितवृद्धिः किमुपलभ्यते? तदर्थमाह—

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम्।
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः ।।३।।

सूर्य के अधःप्रदेश को छोड़ते हुये चन्द्र का शुक्ल जिस-जिस तरह नीचे की तरफ लटकता है, उसी तरह चन्द्र का उदित अधोभाग भी क्रम से प्रकाशित होता है।।३।।

शशिनश्चन्द्रमसोऽर्कतलं सूर्याधोभागं त्यजतो यथा येन प्रकारेण पश्चात्पश्चिमायां दिशि शौक्ल्यं शुक्लत्वमवलम्बते आक्रमते। तथा तेनैव प्रकारेणेन्दोश्चन्द्रस्य दिनकरवशात्सूर्यहेतोरधःप्रभृति बुध्नभागादारभ्योदयः प्रकाशते विराजते इति। एतदुक्तं भवति। रवेरधोभागस्थश्चन्द्रमा अमावास्यान्ते भवति तत्र च तस्य चन्द्रलोकस्य सूर्याभिमुखं गोलार्द्धं शुक्लं भवति। अधःस्थितमवनिदृश्यभागं कृष्णवर्णं भवति। ततः प्रतिपदादिषु तिथिषु यथा यथा स्वभोगतुल्येनार्कात्प्राङ्मुखः शीघ्रगतित्वाद्याति तथातथा दृष्टिवर्तिनं सितमधोभागेऽवलम्बते। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

विप्रकर्षं यथा याति ह्यधःस्थश्चन्द्रमा रवेः।
तथातथाऽस्य भूदृश्यमंशं भासयते रवेः।। इति।।३।।

प्रतिदिनं कथं चन्द्रगोले शुक्लवृद्धिर्भवति तदर्थमाह—

प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः ।
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ।।४।।

अपराह्ण काल में आतप में स्थित घड़े के पश्चिम भाग में जिस तरह शुक्लता बढ़ती है, उसी तरह प्रतिदिन रवि से स्थानविशेष (दूर-दूर) में गमन करने से चन्द्र का शुक्लत्व बढ़ता है।।४।।

एवमनेन प्रकारेण शशिनश्चन्द्रस्यार्कादादित्यात् स्थानविशेषेण स्थानान्तरगमनेन शौक्ल्यस्य शुक्लभावस्य परिवृद्धिर्वृद्धिरधिकतरा भवति। यथायथाग्रतो राशिभोगवशेन याति तथातथा तस्य शुक्लाधिक्यं भवति। यथाऽपराह्णे द्वितीये दिनार्द्धे पश्चाद्भागे पश्चिमार्द्धे घटस्य कुम्भस्याऽऽतपस्थस्य शुक्लता भवति तथेति। एतदुक्तं भवति। यथा यथा चन्द्रः प्राङ्मुखो राशिवशेन याति तथातथा शौक्ल्यपरिवृद्धिर्भवति। यावच्छुक्राष्टम्यर्द्धे राशिचयान्तरितस्यार्द्धशुक्लता भवति। पौर्णमास्यन्ते षड्राश्यन्तरितस्य सर्वशुक्लता भवति। ततो

यथायथाऽर्कसन्निकर्षमायाति तथातथा शौक्ल्यहानिर्भवति। यावत्कृष्णाष्टम्यर्द्धे कृष्णार्द्धता भवति। अमावास्यान्ते सर्वकृष्णता भवतीति।।४।।

अथ चन्द्रस्य नक्षत्रगमनेन शुभाशुभत्वमाह—

ऐन्द्रस्य शीतकिरणो मूलाषाढाद्वयस्य चायातः।
याम्येन बीजजलचरकाननहा वह्निभयदश्च ।।५।।

जिस समय चन्द्रमा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा—इन चार नक्षत्रों के दक्षिण में होकर जाता है, उस समय बीज, जलचर और वन का नाश होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उक्त नक्षत्रों के उत्तर में होकर यदि चन्द्र जाता हो तो शुभ होता है।।५।।

ऐन्द्रं ज्येष्ठा। मूलं नैर्ऋतम्। आषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे। शीतकिरणश्चन्द्रमा ऐन्द्रस्य मूलाषाढाद्वयस्य च याम्येन दक्षिणेन यदा यातो गतस्तदा बीजानि यान्युप्यन्ते। जलचरा जलप्राणिनः। काननानि वनानि च। हन्ति नाशयति। तथा वह्निभयदश्चाग्निभयदो भवति। अर्थादेवोत्तरेण गतः शोभनः। ततो वक्ष्यति—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिण तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः।। इति।।५।।

अन्येषामप्याह—

दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी विशाखाऽनुराधयोः पापः।
मध्येन तु प्रशस्तः पितृदेवविशाखयोश्चापि ।।६।।

यदि विशाखा और अनुराधा के दक्षिण भाग में चन्द्रमा जाता हो तो पाप फल देने वाला होता है। यदि मघा और विशाखा के मध्य में होकर चन्द्रमा जाता हो तो शुभ फल देने वाला होता है।।६।।

विशाखाऽनुराधे प्रसिद्धे नक्षत्रे। अनयोः शशी चन्द्रो दक्षिणपार्श्वेन याम्यभागेन गतो यातः। पापः पापफलदोऽनिष्टदो भवति। अर्थादेवोत्तरेण शुभः। पितृदेवो मघा। विशाखा प्रसिद्धा। अनयोर्द्वयोर्मध्येनान्तरेण चन्द्रमा गतः प्रशस्तः। शुभफलदः। अपिशब्दो विशेषं द्योतयति, तेन मघाविशाखयोरुत्तरेणापि गतश्चन्द्रः शुभफलदः। तथा च समाससंहितायाम्—

भवति विशाखाद्यानां षण्णां याम्येन पापदश्चन्द्रः।
उदगिष्टः सर्वेषां पित्र्येशविशाखयोश्चान्तः।।

तथा च पराशरः—

'अथ मार्गेष्वाग्नेयादुत्तरोऽतिवर्षकरो मैत्रसावित्राभ्यां प्रजाहितकारी। ज्येष्ठाग्नेयमैत्र-त्वाष्ट्राणां दक्षिणतश्चरन् पुष्कलाशुभदः। उपरिष्टाद्वैरोधिको धान्यविनाशी। अधो यव-सम्पत्करः। मघाऽनुराधाभ्यां मध्येन गमनमतिशोभनम्। शिशिरग्रीष्मयोर्दक्षिणे च शुभदो वर्षास्ववर्षकरः सर्वर्त्तुषु नैर्ऋतेऽपि विश्वदेवानां चे'ति।।६।।

अथ चन्द्रमसो नक्षत्रयोगमाह—

षडनागतानि पौष्णाद् द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि।
ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ।।७।।

रेवती से छः नक्षत्र (रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी) अनागत (अप्राप्त) होकर चन्द्र से मिलते हैं। आर्द्रा से बारह नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा) मध्यसंयोगी होकर चन्द्रमा से मिलते हैं और ज्येष्ठा से नव नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा) अतिक्रान्त (प्राप्त) होकर चन्द्रमा से मिलते हैं। इसका आशय यह है कि जब चन्द्र उत्तराभाद्रपदा में जाता है तो उसी समय चन्द्र का रेवती नक्षत्र से संयोग हो जाता है। इसी तरह रेवती में जाने पर अश्विनी से, अश्विनी में जाने पर भरणी से, भरणी में जाने पर कृत्तिका से, कृत्तिका में जाने पर रोहिणी से और रोहिणी में जाने पर मृगशिर से संयोग हो जाता है। आर्द्रा आदि बारह नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्रविभाग के बीच में चन्द्र के जाने से संयोग होता है। ज्येष्ठा से नव नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के अगले नक्षत्र में जाने पर ही चन्द्रमा पिछले नक्षत्र से संयोग कर लेता है। जैसे—मूल में जाने पर ज्येष्ठा से, पूर्वाषाढा में जाने पर मूल इत्यादि से चन्द्र का संयोग हो जाता है। इन्हीं नक्षत्रों को गर्ग आदि आचार्य अर्द्धभोगी, अध्यर्द्धभोगी और समभोगी नाम से सम्बोधित करते हैं।।७।।

पौष्ण रेवती तस्मात्प्रभृति षट् नक्षत्राणि रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिराश्चेत्येतानि षट् नक्षत्राणि षट्संख्यानि ऋक्षाणि। उडुपतिना चन्द्रेण सहानागतान्यप्राप्तानि। युज्यन्ते सयोगं यान्ति। यथोत्तरभाद्रपदस्थस्य चन्द्रमसो रैवत्या सह संयोगो दृश्यते। रेवतीसंस्थितस्य अश्विन्या सहैवमन्येषाम्। रौद्रमार्द्रा तस्मात्प्रभृति द्वादशनक्षत्राणि। आर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधा इति। एतान्युडुपतिना मध्ययोगीनि युज्यन्ते। चन्द्रमा यत्र काले एषां मध्यप्राप्तो भवति। अर्द्धभोगं भुक्त इत्यर्थः। यथा आर्द्रायां स्थितः सन् चन्द्र आर्द्रया सह संयोगं याति, एवमन्येषामपि ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाणि। ज्येष्ठाद्यानि ज्येष्ठात्प्रभृति नवनक्षत्राणि ज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठाशतभिषक्पूर्वभाद्रपदोत्तराभाद्रपदेत्येतान्युडुपतिना चन्द्रेणातीत्यातिक्रम्य युज्यन्ते। यथा मूलस्थस्य चन्द्रमसो ज्येष्ठया सह संयोगो दृश्यते पूर्वाषाढास्थस्य मूलेनैवमन्येषामपि। एतदुक्तं भवति—गर्गादिभिः कानिचिन्नक्षत्राण्यर्द्धभोगीन्युक्तानि, कानिचिदध्यर्द्धभोगीनि, कानिचित्समभोगीनि। यान्यर्द्धभोगीनि तान्यतीत्य युज्यन्ते। यान्यध्यर्द्धभोगीनि तान्येवानागतानि। यानि समभोगीनि तानि मध्यभोगीनि युज्यन्ते। तथा च गर्गः—

उत्तराश्च तथादित्यं विशाखा चैव रोहिणी।
एतानि षडध्यर्द्धभोगीनि महाक्षेत्राणि।
मघाश्विकृत्तिकासोमतिष्यपित्र्यभगाह्वयाः ।

सावित्रचित्राऽनूराधा मूलं तोयं च वैष्णवम्।
धनिष्ठा चैकपाच्चैव समभाग: प्रकीर्तित:।
एतानि पञ्चदश समभोगीनि मध्यक्षेत्राणि।
याम्येन्द्ररुद्रवायव्यसार्पवारुणसंज्ञिता: ।
एतानि षडर्द्धभोगीनि स्वल्पक्षेत्राणि।

नन्वाचार्येणान्यथोक्तानि तान्यन्यथा स्थितानि। उच्यते—आचार्येणातिगोलज्ञतया यष्टि-यन्त्रेण देवदर्शनदृक्समान्युक्तानि। अथ किम्प्रमाणमध्यर्द्धभोगिनां किं वार्द्धभोगिनां किं च समभोगिनामिति। उच्यते—चन्द्रमध्यमभुक्तिरध्यर्द्धगुणा अध्यर्द्धभोगिनां प्रमाणमर्द्धगुणा अर्द्धभोगिनामेकगुणा समभोगिनामिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

केशादित्यविशाखाप्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि ।
षट् षड् ज्येष्ठाभरणीस्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषा:।।
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽभिजिदुक्तमृक्षभोगोऽन्य: ।
तन्मानं नाक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।
अध्यर्द्धार्द्धसमक्षेत्राणां मध्यगतिलिप्तिका: शशिन:।
अध्यर्द्धार्द्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योना:।।
मण्डललिप्ता: शेषा भोगोऽभिजित:।।७।।

अथ चन्द्रमस: संस्थानानि दश भवन्ति। तद्यथा—नौर्लाङ्गलं दुष्टलाङ्गलं समो दण्ड: कार्मुकं युगं पार्श्वशय्यावर्जितं कुण्डाख्यमिति। तत्र नौसंस्थानस्य लक्षणं फलं चाह—

उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता।
नाविकपीडा तस्मिन् भवति शिवं सर्वलोकस्य ।।८।।

चन्द्र का शृङ्ग कुछ उन्नत होकर जब नाव की तरह विशालता को प्राप्त होता है तो 'नौ' नाम का संस्थान होता है। इसमें नाविक लोगों को पीड़ा और अन्य सबों का शुभ होता है।।९।।

ईषच्छृङ्गम्। ईषत्किञ्चिदुन्नतमुच्चं शृङ्गं यस्य। तथा विशालता विस्तीर्णता च भवति। तन्नौसंस्थानम्। तस्मिन्नौसंस्थाने नाविकानां नौकर्णधारिणां पीडोक्ता कथिता। तथा च सर्व-लोकस्य समस्तजनस्य च शिवं श्रेयो भवति।।८।।

अथ लाङ्गलसंस्थानं सफलमाह—

अर्द्धोन्नते च लाङ्गलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन्।
प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च ।।९।।

यदि चन्द्र का शृङ्ग आधा उन्नत हो तो 'लाङ्गल' संस्थान होता है। इसमें हल से जीवनयात्रा चलाने वाले को पीड़ा होती है। राजाओं में विना कारण स्नेह होता है और सुभिक्ष होता है।।९।।

शशिनि उच्छृङ्गे चोत्तरे अर्द्धोन्नते लाङ्गलमिते हलनाम तत्स्थानम्। तस्मिन् संस्थाने तदुपजीविनां लाङ्गलोपजीविनां पीडा भवति। तथा मनुजपतीनां राज्ञां निर्निमित्तं कारणं विना प्रीतिः स्नेहो भवति। लोके शिवं श्रेयः सुभिक्षं च भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

यदा सोमः प्रतिपदि नौस्थायी सम्प्रदृश्यते।
उत्तरोज्ज्वलशृङ्गो वा लाङ्गली च मनोहरः।।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सर्वभूतेषु निर्दिशेत्।
राज्ञां च विजयं ब्रूयाद् वर्द्धन्ते शृङ्गिणस्तथा।। इति।।९।।

अथ दुष्टलाङ्गलसंस्थानं सफलमाह—

दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलाङ्गलाख्यं तत्।
पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृदुद्योगकरं बलानां च ॥१०॥

जब चन्द्र का दक्षिण शृङ्ग अर्द्धोन्नत दिखाई दे, तब 'दुष्टलाङ्गल' नाम का संस्थान होता है। इसमें पाण्डव देश के राजा की मृत्यु होती है और यह संस्थान सेनाओं को यात्रा में प्रवृत्त कराता है।।१०।।

दक्षिणविषाणं याम्यशृङ्गं यदाऽर्द्धोन्नतं भवति तदा दुष्टलाङ्गलं नाम तत्संस्थानम्। तच्च पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृत् पाण्ड्यदेशे योऽसौ नरेश्वरो राजा तस्य निधनं मरणं करोति। तथा बलानां सैन्यानामुद्योगकरं सेनानामुद्योगम् उद्यमं करोति यात्रायाम्। तथा च वृद्धगर्गः—

दक्षिणे च भवेत् स्थूलं हीनं शृङ्गमथोत्तरम्।
दुष्टलाङ्गलसंज्ञं तत्प्रजाक्षयकरं स्मृतम्।। इति।।१०।।

अथ समदण्डसंस्थानमाह—

समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः।
दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥११॥

यदि चन्द्र का शृङ्ग समान हो तो प्रथम दिन की तरह सुभिक्ष, क्षेम (कुशल) और वृष्टि होती है अर्थात् प्रतिपदा के दिन जिस तरह सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती है, उसी तरह एक महीने तक सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती रहेगी। यदि दण्डाकार चन्द्रमा दिखाई दे तो गौ को पीड़ा होती है और राजा बहुत कठोर दण्ड देने वाला होता है।।११।।

समशशिनि तुल्यशृङ्गे चन्द्रे। प्रथमदिवससदृशाः प्रथमं दिनं प्रतिपत्तत्सदृशास्तत्तुल्याः सुभिक्षक्षेमवृष्टयः स्युर्भवेयुः। प्रतिपद्दिने यादृशः सुभिक्षो यादृशः क्षेमो यादृशी वृष्टिस्तादृशा एव मासं यावत् स्युर्भवेयुः। दण्डवदुदिते दण्डाकारे। गवां पीडा भवति। तथात्रास्मिन् संस्थाने राजा नृप उग्रदण्डस्तीक्ष्णकरो भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

समशृङ्गो यदा दृष्टः शशी क्षेमसुभिक्षकृत्।
प्रतिपत्सदृशं तत्र वासवो वर्षते तदा।।

चन्द्ररेखा यदा चोर्ध्वमृज्वी दण्ड इव स्थिता।
उदक्शृङ्गाधिकसमो दण्डस्थानं तदुच्यते।।
उद्युक्तदण्डा राजानो विनिघ्नन्ति समन्ततः।
गवां पीडां विजानीयाद्दण्डस्थाने यदा शशी।। इति।।११।।

अथ कार्मुकयुगसंस्थानयोर्लक्षणं फलं चाह—

कार्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम्।
स्थानं युगमिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय ।।१२।।

यदि चन्द्र की आकृति धनुष के समान हो तो उसको 'कार्मुक'संस्थान कहते हैं। इसमें युद्ध होता है तथा जिस तरफ धनुष की जीवा रहती है, उस दिशा के राजा की जीत होती है। यदि चन्द्र के शृङ्ग दक्षिणोत्तर विस्तीर्ण हों तो उसको 'युग'संस्थान कहते हैं। इसमें भूकम्प होता है।।१२।।

कार्मुकं धनुस्तद्रूपे तदाकारे संस्थाने। युद्धानि संग्रामा भवन्ति। यत्र तु ज्या यस्मिन् भागे गुणस्तत्र तस्यां दिशि ये स्थिता राजानस्तेषां जयो भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

उदये तु यदा सोमं पश्येद्धनुरिवोदितम्।
धनुर्द्धराणामुद्योगो जगद्युद्धकरो भवेत्।।
क्षत्रियाः क्षत्रियान् घ्नन्ति वर्णाश्चैव तथापरे।
अग्रतश्च जयस्तेषां पृष्ठतश्च पराजयः।।

स्थानं युगमिति। तत्स्थानं याम्योत्तरायतं दक्षिणसौम्यभागविस्तीर्णां मध्यमं मण्डलं यदि भवति तद्युगं नाम। तच्च भूमिकम्पाय भवति। एतदुक्तं भवति—एवंविधे संस्थाने तन्मासमध्ये भूमिकम्पो वक्तव्यः। तथा च वृद्धगर्गः—

चन्द्ररेखा यदा व्यक्ता दक्षिणोत्तरमायता।
शुक्लादौ प्रतिपद्येत तद्योगस्थानलक्षणम्।।
सैन्योद्योगा भवन्त्यत्र भूमिकम्पश्च जायते।। इति।।१२।।

अथ पार्श्वशायिनः संस्थानं फलं चाह—

युगमेव याम्यकोट्यां किञ्चित्तुङ्गं स पार्श्वशायीति।
विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात् ।।१३।।

पूर्वकथित युगसंस्थान में दक्षिण शृंग का अग्रभाग कुछ ऊँचा हो तो 'पार्श्वशायी' संस्थान होता है। इसमें धनी व्यापारियों का और वृष्टि का नाश होता है।।१३।।

युगमेव युगसंस्थानं याम्यकोट्यां दक्षिणशृङ्गाग्रे किञ्चिदीषत्तुङ्गमुच्चं यदि भवति तदा स पार्श्वशायीति चन्द्रः। पार्श्वशायीति तत्संज्ञा। स च सार्थवाहान् सार्थप्रधानान् विनिहन्ति घातयति। तथा वृष्टेर्वर्षणस्य च विनिग्रहं विनाशमभावं कुर्यात्। न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

याम्यकोट्यायतः किञ्चिद्युगकाले यदा शशी।
पार्श्वशायीति संज्ञोऽयं सार्थहा वृष्टिनाशनः।। इति।।१३।।

अथाऽऽवर्जितलक्षणं सफलमाह—

अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनोऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम्।
आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद् गोधनस्यापि ॥१४॥

अतिशय उन्नत होने के कारण चन्द्र का श्रृंग यदि अधोमुख हो तो 'आवर्जित' नाम का संस्थान होता है। इसमें मनुष्य एवं पशु—दोनों के लिये दुर्भिक्ष होता है।।१४।।

अभि मुख्येनोच्छ्रायोऽभ्युच्छ्रायस्तस्मादभ्युच्छ्रायाच्छशिनश्चन्द्रस्य यद्येकशृङ्गमवाङ्मुखमधोमुखं भवति तत्संस्थानमावर्जितं नाम। इतिशब्दः प्रकारायैवं प्रकाराय इत्यर्थः। तदसुभिक्षकारि दुर्भिक्षं करोति लोके। न केवलं यावद् गोधनस्यापि तृणानामभावादपि दुर्भिक्षं करोति। तथा च वृद्धगर्गः—

अधोमुखं यदा शृङ्गं शशिनो दृश्यते तदा।
संस्थानमावर्जितकं गोघ्नं दुर्भिक्षकारकम्।। इति।।१४।।

अथ कुण्डाख्यसंस्थाने लक्षणं फलं चाह—

अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम्।
अस्मिन् माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥१५॥

यदि चन्द्र के चारो तरफ अव्युच्छिन्न (अखण्डित) गोलाकार रेखा दिखाई दे तो 'कुण्डाख्य' संस्थान होता है। इसमें माण्डलिक राजाओं का स्थान छूट जाता है।।१५।।

समन्ततः सर्वत्र यद्यव्युच्छिन्ना रेखा खण्डरेखा चन्द्रमसो दृश्यते तदा तत्स्थानं कुण्डाख्यं कुण्डमित्याख्या नाम यस्य। अस्मिन् संस्थाने माण्डलिकानां नरपतीनाम्। मण्डले परिमिते देशे ये राजानस्तेषां स्थानत्यागः स्थानचलनं भवति, स्वस्थानाच्च्युतिरित्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

अच्छिन्ना मण्डले रेखा शशिनो दृश्यते यदा।
कुण्डाख्यं नाम संस्थानं नृपविग्रहदायकम्।।

नक्षत्रचन्द्रमसोर्यानि संस्थानान्युक्तानि तेषां कानिचिद् गणितविधिना शृङ्गोन्नतिपरिलेखकरणेनोत्पद्यन्ते कानिचिन्नोत्पद्यन्ते। तथा चाऽऽचार्येणोक्तम्—

अपमान्तरसंयुक्तात्तदूनगुणिताच्छशाङ्करविविवरात्।
मूलेनापमविवरे छिन्ने विक्षेपसङ्गुणिते।।
फलमिन्द्वर्कविशेषाच्छोध्यं त्वपमानुकूलविक्षिप्ते।
तद्व्यत्यासे देयं विपरीतं पूर्वसन्ध्यायाम्।।
दिनकृत्सप्तमभवनात्तेनोदयनाडिकाद्वयं यदि वा।
वियति विमले तदेन्दोर्लोकस्याऽऽलोकमायाति ।।

द्विगुणेच्छातिथ्यंश: शृङ्गमुदक्तुङ्गमुडुगणाधिपते:।
देयं च भुजादेतच्छौक्ल्यं कर्णाद् द्विषट्कांशम्।।
अपमान्तरविक्षेपावैकान्यत्वे युतोनितौ कोटि:।
कर्णो रवीन्दुविवरं तत्कृतिविवरात् पदं बाहु:।।
सविता यत: शशाङ्कात्कोट्या परिकल्पितस्तत: कोटि:।
देयांशकार्गुलसमा भुजकर्णौ चाङ्गुलैरेव।।
शशिमध्यात्प्राक्कर्ण: कोटिरतोऽतो भुज: शशाङ्कगत:।
परिधावक्षो नाम शौक्ल्यं मध्याद्धनुस्तत्र।।
याम्योदग्विक्षेपाद्विषुवत्याघ्नाद्रविभिरवाप्तांश: ।
उदये शशिनो वृद्धि: क्षयो विपर्यस्तमय एवम्।।
एवं व्यर्काच्चन्द्राद्यद्यूना राशय: षडधिका वा।
तदुदयकालेन दिवा निशि च शशाङ्कोदयो वाच्य:।।
कृत्वैवं क्षयवृद्धी व्यर्कं चन्द्रं विशोध्य चक्रार्द्धात्।
शेषोदयकालसमे शशिदिवसार्द्धे शशी मध्ये।।

एवमत्र तानि नोत्पद्यन्ते किमर्थमाचार्येण फलमुक्तम्। उच्यते—यानि नोत्पद्यन्ते परिलेखविधौ तान्युत्पातरूपाणि कदाचिद्दृश्यन्ते यतस्तेषां भगवद्गर्गादिविरचितशास्त्रेषु फलानि दृश्यन्ते, तानि चाऽऽचार्येण पूर्वशास्त्राऽऽचारेणोक्तानीति। पराशरतन्त्रेऽष्टौ संस्थानान्युक्तानि। तथा च पराशर:—

'तत्राऽष्टौ संस्थानानि भवन्ति। तद्यथा—लाङ्गलं नौर्दुष्टलाङ्गलं दण्डो धनुर्युगं सममवाक्शिर:। तत्रैषामीषदुन्नतोत्तरशृङ्गं लाङ्गलसंस्थानं तत्र सुभिक्षक्षेमवृष्टिकारणान्युत्पद्यन्ते। उभयशृङ्ग: कुक्षिमान्विशालो नौस्थायी फलत: सम:। पूर्वेण दक्षिणोन्नतशृङ्गो दुष्टलाङ्गलं परसैन्योद्योगनाशकृत्। दण्डवद्दण्डस्थायी दण्डकृत्प्रजानाम्। धनुष्प्रख्यो धनु:स्थायी स धनुर्द्धरोद्योगकृतोऽस्य ज्या, ततो विजय:। यद्युदगायता दक्षिणेन चास्य लेखा भवति, तद्युगसंस्थानमिच्छन्ति जगद्विद्रवभूकम्पाय। समोभयशृङ्ग: समस्तसंस्थानं महाभयकृत्। शस्त्रसारभयदोऽवाक्शिरा:। अथैतानि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयायां वा लक्ष्याणि भवन्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

उदगुन्नत: शुभफल: सम: समो दक्षिणोन्नतो न शुभ:।
युद्धानि चापरूपे ज्यास्य यतस्ते नृपा जयिन:।।
नाविकपीडा नौवल्लाङ्गलवत्संस्थिते कृषिकराणाम्।
दण्डाऽवाङ्मुखसङ्कटजर्जरपीठाकृतिर्न शुभ:।।
उत्पाता व्याख्याता येऽर्के चन्द्रेऽपि ते विनिर्देश्या:।
शुक्ले भवन्ति सौम्या: कृष्णेऽधिकपापफलदास्ते।। इति।।१५।।

अथ सामान्यलक्षणमाह—

प्रोक्तस्थानाभावादुदगुच्चः क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः ।
दक्षिणतुङ्गश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः ॥१६॥

पूर्वकथित संस्थानों के अभाव में यदि चन्द्र का शृंग उत्तर दिशा में उन्नत हो तो वह क्षेम, सस्य की वृद्धि और वृष्टि को करता है एवं यदि दक्षिण दिशा में उन्नत हो तो दुर्भिक्ष और भय करता है।।१६।।

प्रोक्तानि कथितानि यानि संस्थानानि तेषामभावादसम्भवाद्यद्युदगुच्च उत्तरोन्नतश्चन्द्रमास्तदा क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः। लब्धपालनं क्षेमस्तं च करोति। वृद्धयः सस्यवृद्धयो वृष्टिर्वर्षणं ते च करोतीति।

अथ दक्षिणतुङ्गो याम्योन्नतो भवति दक्षिणविषाणोन्नतस्तदा दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः कथितः। दुर्भिक्षभयं च करोति।।१६।।

अन्यदप्याह—

शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीनमथवाऽप्यवाङ्मुखं शृङ्गम् ।
सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रश्येत् ॥१७॥

यदि चन्द्र का एक शृङ्ग विलीन (बिलकुल नहीं) हो, अधोमुख हो या सब नये प्रकार के हों तो उसे देखने वालों में से एक मनुष्य की मृत्यु होती है।।१७।।

एवंविधमिन्दुं चन्द्रं दृष्ट्वा विलोक्यैको मनुजो जीवितादायुषो भ्रश्येत् पतेत्। य एवैकः पश्यति स म्रियत इत्यर्थः। कीदृशम्? एकेन शृङ्गेणोपलक्षितम्। अथवा विलीनं गलितमिवैकेन शृङ्गेण। अपिशब्दो विकल्पनार्थः। अथवाऽवाङ्मुखमधोमुखं शृङ्गं चास्य भवति। तथा सम्पूर्णं परिपूर्णमभिनवमभि मुख्येन नवम्। चशब्दः समुच्चये। अथवाऽभि मुख्येन नवं द्वितीयाचन्द्रमेवंविधं पश्यति। तथा च समाससंहितायाम्—

उदयन्तमप्यसदृशं न शुभं बहुरूपताथवैकस्य।
एकश्चन्द्रविकारं यः पश्येन्न स चिरं जीवेत्।। इति।।१७।।

अथ चन्द्रमसो रूपाण्याह—

संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद् भवन्ति चन्द्रमसः।
स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान् सुभिक्षावहः प्रोक्तः॥१८॥

संस्थानप्रकार कहने के बाद चन्द्र के स्वरूप और उनके फल को कहते हैं। यदि चन्द्रबिम्ब छोटा हो तो दुर्भिक्ष और बड़ा हो तो सुभिक्ष होता है।।१८।।

संस्थानविधिः संस्थानप्रकारश्चन्द्रमसः कथित उक्तः। अस्मात् परतो रूपाणि भवन्ति, तानि चाह—स्वल्पो दुर्भिक्षकरः, अत्यल्पमूर्त्तिरसुभिक्षं करोति। महान् पृथुमूर्त्तिः सुभिक्षावहः, सुभिक्षमावहति करोतीति सुभिक्षावहः, प्रोक्तः कथितः।।१८।।

मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः सम्भ्रमाय राज्ञां च।
चन्द्रो मृदङ्गरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति ॥१९॥
ज्ञेयो विशालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चन्द्रः।
स्थूलः सुभिक्षकारी प्रियधान्यकरस्तु तनुमूर्त्तिः॥२०॥

यदि चन्द्रबिम्ब मध्यम हो तो वज्रसंज्ञक होता है। यह क्षुधा और भय को देने वाला तथा राजाओं में उद्यम उत्पन्न करने वाला होता है। यदि चन्द्रबिम्ब मृदङ्ग की तरह दिखलाई पड़े तो कल्याण और सुभिक्ष होता है। यदि अति विस्तृत मूर्ति के समान हो तो राजलक्ष्मी की वृद्धि होती है। यदि मोटी मूर्ति के समान हो तो सुभिक्ष करने वाला और पतली मूर्ति के समान हो तो प्रियधान्य (सुभिक्ष) करने वाला होता है।।१९-२०।।

मध्यतनुर्यो मध्यादवनतः स वज्राख्यो वज्रसंज्ञः। क्षुद्भयदः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददाति। राज्ञां नृपाणां च सम्भ्रमायोद्यमाय भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

विलग्नमध्यो मेघाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः।
मध्यच्छिद्रो विलीनो वा भयं च जनयेद् महत्।।

चन्द्रः शशी मृदङ्गरूपो मृदङ्गाकारः क्षेमसुभिक्षावहो भवति। क्षेमं सुभिक्षं च करोति। चन्द्रः शशी विशालमूर्त्तिर्विस्तीर्णबिम्बो नरपते राज्ञो लक्ष्मीविवृद्धये श्रियो वृद्ध्यर्थं ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स्थूलो घनः सुभिक्षकारी सुभिक्षकृद्भवति। तनुमूर्त्तिरघनदेहः प्रियधान्यकरो दुर्भिक्षकारी च भवति।।१९-२०।।

अथ चन्द्रस्य कुजादिभिस्ताराग्रहैः शृङ्गे भिन्ने फलमाह—

प्रत्यन्तान् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतिः शृङ्गे कुजेनाहते
शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत्।
श्रेष्ठान् हन्ति नृपान् महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान्
शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥२१॥

यदि चन्द्रशृङ्ग मङ्गल से वेधित हो तो दूर देश में रहने वाले बड़े राजाओं का नाश करने वाला होता है एवं शनि से वेधित होने पर शस्त्र और क्षुधा का भय करने वाला होता है। इसी प्रकार बुध से वेधित होने पर श्रेष्ठ राजाओं का नाश करने वाला होता है तथा शुक्र से वेधित होने पर छोटे राजाओं का नाश करने वाला होता है। यह पूर्वोक्त ग्रहकृत फल शुक्ल पक्ष में थोड़ा और कृष्ण पक्ष में पूर्ण रूप से घटित होता है।।२१।।

चन्द्रस्य ताराग्रहैः सह संयोगे समागमाध्यायोक्तगणितविधिना ग्रहणवत्कर्मणि जाते भूत्वाऽधोभागेन भौमादयो बिम्बभेदनं कुर्वन्ति। तत्र शृङ्गभेदने इदं फलं मध्यभेदने च वक्ष्यमाणम्।

प्रत्यन्तानिति। उडुपतिश्चन्द्रः कुजेन भौमेन शृङ्गे विषाणे आहते ताडिते सति प्रत्यन्तान्

दूरवासिनः। कुनृपान् कुत्सितनरपतीन्। हन्ति घातयति। यमेन शनैश्चरेणाऽऽहते शृङ्गे शस्त्रक्षुद्भयकृत्। शस्त्रभयं क्षुद्भयं दुर्भिक्षं च करोति। शशिजेन बुधेनाऽऽहते अवृष्टिजं अवृष्ट्युद्भूतं भयं दुर्भिक्षजं भयं च करोति। महेन्द्रगुरुणा बृहस्पतिना हते श्रेष्ठान् नरपतीन् हन्ति घातयति। शुक्रेण सितेनाऽऽहते शृङ्गे अल्पान् नृपान् स्वल्पान् नृपान् हन्ति। चशब्दः समुच्चये सर्वत्राऽत्र।

शुक्ले याप्यमिति। इदं ग्रहकृतं शृङ्गभङ्गफलं शुक्लपक्षे याप्यं भवति किञ्चिद्भवतीत्यर्थः। कृष्णे कृष्णपक्षे यथोक्तागमं यथा निर्दिष्टं सकलं फलं भवतीति। तथा च पराशरः—

'अथ शृङ्गाभिमर्दने गुरुः प्रधाननृपविनाशाय। भृगुर्यायिनां कुनृपाणाम्। भौमः सौम्यो दुर्भिक्षायावृष्टये। क्षुच्छस्त्रभयदः सौर' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

प्रत्यन्तविनाशोऽन्नक्षयो महाराजपीडा च।
संग्रामाश्चाभिहिते शृङ्गे भौमादिभिः क्रमशः।। इति।।२१।।

अधुना शुक्रभिन्नबिम्बस्य चन्द्रमसः फलमाह—

भिन्नः सितेन मगधान् यवनान् पुलिन्दान्
नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान् ।
पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुषादान्
हन्यादुशीनरजनानपि सप्त मासान् ॥२२॥

यदि चन्द्रबिम्ब शुक्र से वेधित हो तो मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल, भृङ्गि, मरुदेश, कच्छ, सूरत, मद्रास, पञ्जाब, काश्मीर, कुलूतक, पुरुषाद, उशीनर—इन देशों में सात महीने तक भयानक मृत्यु होती है।।२२।।

सितेन शुक्रेण यदा भिन्नश्चन्द्रो मध्याद्विदारितस्तदा मगधान् जनान्, यवनान्, पुलिन्दान्, एतान् सर्वान् जनान्। नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रानेतान् जनान्, पाञ्चालान्, कैकयान्, कुलूतकान् जनानेव। पूरुषादान् पुरुषभक्षान्। उशीनरजनान्, एतान् सर्वान् पाककालादनन्तरं सप्त मासान् यावन्निहन्याद् घातयेत्।।२२।।

अथ जीवभिन्नस्याह—

गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान्
धान्यानि शैलान् द्रविडाधिपांश्च ।
द्विजांश्च मासान् दश शीतरश्मिः
सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः ॥२३॥

यदि चन्द्रविम्ब बृहस्पति से वेधित हो तो कन्धार, सौवीरक, सिन्ध, कीर, पर्वतीय, द्रविड—इन देशों के ब्राह्मणों और धान्यों का दश महीने तक नाश करता है।।२३।।

शीतरश्मिश्चन्द्रो वाक्पतिना गुरुणा विभिन्नो विदारितबिम्ब:। गान्धारान्, सौवीरकान्, कीरान्—एतान् सर्वानेन जनान् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। तथा धान्यानि व्रीहीन्, शैलान् पर्वतान्, द्रविडाधिपान् द्रविडदेशीयाधिपतीन्, द्विजांश्च ब्राह्मणान्—एतान् दश मासान् यावत् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। पाकाध्यायनिर्दिष्टकालात् परत इदं ज्ञेयमिति सर्वत्र।।२३।।

अथ भौमभिन्नस्याह—

उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान् मालवान्
कौलिन्दान् गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान्।
हन्यात् कौरवमत्स्यशुक्त्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि
प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया ॥२४॥

यदि मङ्गल से चन्द्रबिम्ब वेधित हो तो अश्व आदि वाहनों के द्वारा योद्धाओं का नाश होता है तथा त्रिगर्त, मालवा, कौलिन्द, गणों में प्रधान, शिबि और अयोध्या में उत्पन्न जनों एवं राजाओं का नाश करता है। इसी तरह कुरु, मत्स्य, शुक्ति—इन देशों के जनों और राजाओं का छः महीने के अन्दर नाश करता है।।२४।।

प्रालेयांशुर्हिमरश्मिश्चन्द्रोऽसृग्ग्रहे अङ्गारके तनुगते शरीरस्थे भौमभिन्न इत्यर्थ:। षण्मासमर्यादया षण्मासावधि यावदेतान् हन्यात् घातयेत्। उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतीन्, नरपतीन्नृपान्। उद्युक्तान् उद्योगस्थितान् विजिगीषून् वाहनैरश्वादिभि: सह हन्यात्। त्रैगर्तान् जनान्, मालवान्, कौलिन्दान् जनानेव। गणपुङ्गवान् समूहप्रधानान्। अथशब्द: स्वार्थे। अथ शिबीन् जनान्, आयोध्यकानयोध्याभवान्, तथा पार्थिवान्नृपान्—एतानपि हन्यात्। तथा कौरवानां मत्स्यानां शुक्तीनां जनानां चाधिपतय: स्वामिनस्तानपि राजन्यमुख्यान् क्षत्रियप्रधानांश्च हन्यात्।।२४।।

अथ शनैश्चरभिन्नस्याह—

यौधेयान् सचिवान् सकौरवान् प्रागीशानथ चार्जुनायनान्।
हन्यादर्कजभिन्नमण्डल: शीतांशुर्दशमासपीडया ॥२५॥

यदि शनैश्चर से चन्द्रमा वेधित हो तो दश महीने तक पीड़ित करके योद्धाओं, मन्त्रियों, कुरुवंशियों, पूर्व दिशा में स्थित राजाओं और अर्जुनायन (पाण्डुवंशीय) जनों का नाश करता है।।२५।।

शीतांशुश्चन्द्रोऽर्कजभिन्नमण्डल: सौरविदारितबिम्बो दशमासपीडया दशमासोपतापेनैतान् हन्याद् घातयेत्। यौधेयान् जनान्। सचिवान् मन्त्रिण:। सकौरवान् कौरवैर्जनै: सहितान्। प्रागीशान् पूर्वस्यां येऽधिपतयस्तान्। अथशब्द: पादपूरणे। चशब्द: समुच्चयार्थे। अर्जुनायनान् जनानिति।।२५।।

अथ बुधभिन्नस्याह—

मगधान् मथुरां च पीडयेद्वेणायाश्च तटं शशाङ्कज:।
अपरत्र कृतं युगं वदेद्यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गत:॥२६॥

यदि चन्द्रमा को वेधित करके बुध निकला हो तो मगध, मथुरा और वेणा नदी के तट पर स्थित देशों के मनुष्यों को पीड़ित करता है तथा पश्चिमीय देशों में स्थित मनुष्यों के लिए सतयुग के समान समय करता है, अर्थात् उन देशों में रहने वाले मनुष्य सब प्रकार से सम्पन्न होते हैं।।२६।।

शशाङ्कजो बुधो यदि शशिनं चन्द्रं भित्त्वा विदार्य विनिर्गतो विनिःसृतस्तदा मगधान् देशान् मथुरां च पीडयेत् हन्ति। तद्वासिनो जनान् विनाशयति। वेणा नाम नदी तस्यास्तटं तत्तीरे ये निवासिनस्तान् जनानित्यर्थः। एतानुक्तान् वर्जयित्वाऽपरत्र अन्यदेशेषु कृतं युगं वदेत् कृतयुगाकारं ब्रूयात् तद्धर्मानुवृत्तेः।।२६।।

अथ केतुभिन्नस्याह—

क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः।
कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम्॥२७॥

यदि केतु से चन्द्रमा वेधित हो तो सब प्रकार के मंगल, आरोग्य, सुभिक्ष—इनका और शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले मनुष्यों का नाश करता है तथा चोरों को विशेषकर पीड़ा देता है।।२७।।

शीतांशुश्चन्द्रः शिखिना केतुना यदि भिन्नो विदारितबिम्बस्तदा क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी भवति। क्षेममारोग्यं नीरुजत्वं सुभिक्षं च विनाशयति तच्छीलः। तथाऽऽयुधजीविनामायुधेन ये जीवन्ति तेषां विनाशमुपघातं कुर्यात्। चौराणां तस्कराणामधिकेन चातिशयेन पीडां रुजं कुर्यात्। तथा च पराशरः—

'अथ भेदेष्वसुरगुरुभिन्नः पाञ्चालमगधमद्रकुणिन्दकौलूतककैकययवनधूमाम्बष्टमार्गणाङ्गनाराज्यभृङ्गिमरुकच्छोशीनरपुलिन्दपुरुषादनेपालान् सप्तमासानुपतापयतीति। अमरगुरुणा दशमासान् गान्धारवसतिं सिन्धुवाह्लिकपर्वतकाश्मीरान्। क्षितिसुतभिन्नः कुरुशिबिमालवत्रिगर्तकुलिन्दायोध्याधिपतीन् जयार्थिनः सह षण्मासानुपतापयतीति। अर्कसूनुसम्भेदो नृपविरोधामात्यभेदगणपयौधेयार्जुनायनभयायाऽनावृष्टिप्रादुर्भावाय च दशमासान्। बुधभिन्नः सुभिक्षक्षेमवृष्टिकरः। केतोस्तद्विपर्ययः। प्रवर्द्धमानो वपुष्मानपराजितो ग्रहभिन्नोऽप्यशुभफलसंहर्ता' इति।।२७।।

अथ ग्रहणकाले उल्काहतस्य चन्द्रस्य फलमाह—

उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते।
हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः॥२८॥

यदि ग्रहणकालिक चन्द्र के ऊपर उल्कापात हो तो उस समय जिस राजा के जन्मनक्षत्र में चन्द्रमा स्थित हो, उस राजा का नाश करता है।।२८।।

शशी चन्द्रः। ग्रस्तो राहुराशिगतो यदोल्कया हन्यते, तदभिमुखी उल्का याति, तदा यस्य नृपस्य यस्य राज्ञः, जन्मनि जन्मगतः स्थितः स हन्यते तदा म्रियत इत्यर्थः। तथा

च समाससंहितायाम्—

उल्काभिहतो ग्रहणे तन्नक्षत्रं नृपं हन्ति।। इति।।२८।।

अथ चन्द्रमसो वर्णलक्षणमाह—

भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्त्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः।
श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुड्डमरामयचौरभयाय ॥२९॥

यदि चन्द्रबिम्ब भस्म के समान रूक्ष, रक्त वर्ण, किरणों से हीन, कृष्ण वर्ण, खण्डित या काँपता हुआ हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग और चोरों का भय देने वाला होता है।।२९।।

एवंविधः शीतकरश्चन्द्रः क्षुड्डमरामयचौरभयाय भवति। क्षुद्दुर्भिक्षम्। डमरः शत्रुकलहः। आमयो रोगः। चौरास्तस्कराः। एषां सम्बन्धि भयं भवति। कीदृशः? भस्मनिभो भस्मवर्णः कलुषः। परुषो रूक्षः। अरुणमूर्त्तिर्लोहितशरीरः। किरणै रश्मिभिः परिहीणो वर्जितः। श्यावतनुः श्यामशरीरः। स्फुटितो भग्नः। स्फुरणः कम्पमान इति।।२९।।

अन्यच्छुभलक्षणमाह—

प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो
यत्नादिवाऽद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः।
उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय
यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥३०॥

मानो शिव जी के लिये पार्वती जी ने साफ करके हिम, कुन्दपुष्प या स्फटिक मणि के समान स्वच्छ अत्यन्त सुन्दर चन्द्र बनाया हो, ऐसे चन्द्र को जो मनुष्य रात्रि में देखता है उसके लिये वह कल्याणकारी होता है अर्थात् हिम आदि के समान स्वच्छ चन्द्र को रात्रि में जो देखता है; उसका सर्वथा मंगल होता है।।३०।।

एवंविधश्चन्द्रो यो दृश्यतेऽवलोक्यते स जगतो जनानां शिवाय श्रेयसे भविता भविष्यतीत्यर्थः। कीदृशः? प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातः, प्रालेयं हिमम्, कुन्दकुमुदे पुष्पविशेषे शुक्ले तथा स्फटिको मणिस्तद्वदवदातो निर्मल इत्यर्थः। तथा अद्रिसुतया गौर्या यत्नाद्यत्नतः परिमृज्य समन्ततो निर्मलीकृत्योच्चैः कृत इवोपरि न्यस्तः। किमर्थम्? निशि रात्रौ मे शिवाय महेश्वराय भविष्यति प्रेयसे वेति निश्चित्य। तथा च पराशरः—

'भस्मारुणवह्नितामप्रीतपाण्डुनीलरूक्षवर्णः क्षुद्वैरकरः। स्निग्धः प्रसन्नो रश्मिवान् श्वेतः क्षेमसुभिक्षवृष्टिकरः' इति।।३०।।

अथ पक्षवृद्धौ वा हानौ वा साम्ये शुभाशुभमाह—

शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च।
हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥३१॥

यदि शुक्ल पक्ष में कोई तिथि बढ़ जाय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और प्रजागण अत्यन्त

वृद्धि को प्राप्त होते हैं, लेकिन घट जाने पर उनकी हानि होती है और समान तिथि रहने पर उनको साधारण फल प्राप्त होता है।।३१।।

शुक्ले पक्षे श्वेतमासार्द्धे सम्प्रवृद्धे सम्यक् प्रवृद्धिं गते ब्रह्मक्षत्रं वृद्धिं याति। ब्राह्मणा द्विजा:, क्षत्रिया नृपाश्च वृद्धिं गच्छन्ति, तथा प्रजाश्च वृद्धिं यान्ति। हीने हानिरिति, तस्मिन्नेव शुक्लपक्षे हीने क्षयं गते च ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्भवति। **तुल्यता तुल्यतायामिति।** तुल्यतायां समत्वे न हानौ न वृद्धौ तेषां ब्रह्मक्षत्रप्रजानां तुल्यता साम्यमेव भवति। कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन, कृष्णे कृष्णपक्षे सर्वं प्रागुक्तं फलं व्यत्ययेन विपरीतेन ज्ञेयं ज्ञातव्यम्। एतदुक्तं भवति—कृष्णपक्षे प्रवृद्धे ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्हीने तस्मिन् पक्ष एव तेषां वृद्धि:। समे पक्षे समत्वमिति।।३१।।

अन्यदप्याह—

यदि कुमुदमृणालहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा।
अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मि: ॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्याय: ॥४॥

यदि विकाररहित गति और विकाररहित किरण वाला चन्द्र कुमुद, मृणाल या मुक्ताहार के समान वर्ण का होकर तिथि के अनुसार घटता-बढ़ता हो तो मनुष्यों की विजय का सूचक होता है।।३२।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां चन्द्रचाराध्यायश्चतुर्थ: ॥४॥

एवंविध: शीतरश्मिश्चन्द्रो नृणां पुंसां विजयाय भवति। कीदृशो यदि कुमुदमृणालहारगौर:, कुमुदं पुष्पविशेषम्, मृणालं बिसम्, हारो मुक्ताहारस्तद्वद्यदि गौर: श्वेत इत्यर्थ:। तिथिनियमात्तिथिक्रमेण क्षयमेति क्षयं गच्छति। तिथिक्रमेण वा वर्द्धते वृद्धिं याति। शुक्लकृष्णप्रतिपदाद्यासु तिथिषु वृद्धिक्षयौ तुल्यौ भवत: कदाचिद्धीनाधिकतेत्यर्थ:। अविकृतगति:, अविकृता विकाररहिता गतिर्गमनं यस्य कम्पनादिदोषरहित:। अविकृतं मण्डलं बिम्बं यस्य अविकृतैरंशुभि: किरणैर्योग: संयोगो यस्य तथाभूत इति।।३२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
चन्द्रचारो नामाध्यायश्चतुर्थ: ॥४॥

अथ राहुचाराध्यायः

अथ राहुचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव राहोर्ग्रहत्वप्रतिपादनाय मतान्तरमाह—

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥१॥

राहु नामक राक्षस ने अपना मस्तक कट जाने पर भी अमृत पी चुकने के कारण प्राणनाश नहीं; वरन् ग्रहत्व को प्राप्त किया—ऐसा कुछ लोग कहते हैं।।१।।

किलशब्द आगमप्रदर्शनार्थः। एके केचिदाचार्या एवं वदन्ति कथयन्ति। लोके यो राहुरित्युच्यते स चाऽसुरः सैंहिकेयः। तस्य पुराऽमृतं पिबतो भगवता हरिणा सुदर्शनाख्येन चक्रेण शिरो मूर्द्धा छिन्नं निकृत्तमपि अमृताऽऽस्वादविशेषादमृताऽऽस्वादनहेतोः प्राणैरसुभिरपरित्यक्तं नोज्झितं ग्रहतां यातं तदेव ग्रहत्वं प्राप्तमिति। तथा च पुराणकारः—

सिंहिकातनयो राहुरपिबच्चामृतं पुरा।
शिरच्छिन्नोऽपि न प्राणैस्त्यक्तोऽसौ ग्रहतां गतः।। इति।।१।।

यद्येवंविधो राहुस्तत्किमित्याकाशे ग्रहवन्नोपलभ्यते तदर्थमाह—

इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥२॥

कृष्ण वर्ण का होने के कारण ब्रह्मा जी के वर-प्रदान से पर्वकाल से भिन्न समय में राहु आकाश में चन्द्र और रविमण्डल के सदृश नहीं दिखाई देता।।२।।

इन्दुमण्डलस्य चन्द्रबिम्बस्यार्कमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्य च यादृश्याकृतिराकारस्तादृगेव राहुमण्डलस्य। यद्येवं तत् किमिति गगने आकाशे न दृश्यते नोपलभ्यते? असितत्वात् किलेति, असितत्वात् कृष्णत्वात् किल न दृश्यते यतोऽसौ तमोमय इति। यदि न दृश्यते तदास्य दर्शनमस्तीत्याह—**अन्यत्र पर्वकालादिति**। कमलयोनेर्ब्रह्मणो वरप्रदानात् पर्वकालाद् ग्रहणसमयादन्यत्र अन्यस्मिन् काले न दृश्यते, पर्वकाले तु पुनर्दृश्यते। तथा च पराशरः—

'पुरा पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिरकालयाञ्चाकोपाद्दारुणं मयकालान्तकोपमं सुतमदात्, यं राहुमित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्गरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधाद्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजयमर्कचन्द्रसम्भक्षणं च वरमभिवरयामास। तस्मै भगवानमरगुरुः स्वयम्भूः प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्तस्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वान्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहुः। ततो हरिरिन्द्रियघ्नं

चक्रमुपरि प्रक्षिप्यास्य शिरच्छित्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं कुर्वन् जगतः शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसी'ति। तथा च भगवान् गर्गः—

आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च पुरश्चान्द्रेषु पर्वसु।। इति।।२।।

अन्यदपि मतान्तरमाह—

मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्त्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥३॥

किसी का मत है कि मुख और पुच्छ से विभक्त है अंग जिसका, ऐसा जो सर्प का आकार है, वही राहु का आकार है। किसी का मत है कि राहु का आकार कोई भी नहीं है, बल्कि वह केवल अन्धकारमय है।।३।।

एके आचार्याः सैंहिकेयाख्यं राहुं मुखपुच्छविभक्ताङ्गमुपदिशन्ति कथयन्ति। मुख-पुच्छाभ्यां विभक्तान्यङ्गानि यस्य, एतदेवास्य ज्ञायते नान्यदवयवादिकं मुखपुच्छाभ्यां परतः। तथा च वीरभद्रः—

सिंहिकातनयस्यास्य राहोः पुच्छमुखादृते।
नान्यदस्ति परं बाहुकटिपादकरादिकम्।। इति।

भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये। अन्ये आचार्या भुजङ्गमाकारं सर्पाकृतिं च वदन्ति कथयन्ति। यथा सर्परूपो राहुः। तथा च वसिष्ठः—

भषट्कान्तरितौ राहुः सूर्याचन्द्रमसावुभौ।
छादयत्युरगाकारो वरदानात् स्वयम्भुवः।। इति।

कथयन्त्यमूर्तमपर इति। अपरेऽन्ये पुनरमूर्तं मूर्त्तिरहितं तमोमयमन्धकारमयं राहुं कथयन्ति वदन्ति। तथा च देवलः—

अन्धकारमयो राहुर्मेघखण्ड इवोत्थितः।
आच्छादयति सोमार्कौ पर्वकाले ह्युपस्थिते।। इति।।३।।

अधुनैतत्परमतं दूषयितुमाह—

यदि मूर्त्तो भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः।
भगणार्द्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः ॥४॥

यदि राहु मूर्तिमान्, राशि में चलने वाला, शिर वाला और बिम्ब वाला होता तो मिश्रित गति वाला होकर भगणार्द्ध पर स्थित रवि-चन्द्र—इन दोनों को कैसे ग्रसित करता अर्थात् कभी भी ग्रसित नहीं कर पाता।।४।।

यद्यसौ राहुर्मूर्त्तो मूर्त्तिमान् सावयवः। भविचारी भेषु राशिषु वा नक्षत्रेषु विचरणशीलः। शिरोऽथवा भवति, शिरोमान् राहुर्मण्डलवान् वा तन्नियतचारो निश्चितगतिर्भूत्वा कथं

भगणार्द्धेन राशिषट्केनान्तरितौ व्यवहितौ सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति। किलास्य तिस्रो लिप्ता एकादशविलिप्ताश्च गणितस्कन्धोक्ता नियता गतिर्यस्य नियतचारस्तस्य षड्राश्यन्तरिता गतिर्न सम्भाव्यते अर्कादीनां यथेति।।४।।

अन्यद् दूषणान्तरमाह—

अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य।
पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥५॥

यदि राहु अनिश्चित गति वाला होता तो गणित से उसका ज्ञान कैसे हो सकता था? अथवा यदि मुख-पुच्छ-विभक्ताङ्ग वाला होता है तो अपने से दूसरी, तीसरी, चौथी या पाँचवीं राशि पर स्थित रवि-चन्द्र को क्यों नहीं ग्रसता है।।५।।

यद्यसौ राहुरनियतचारोऽनिश्चितगतिः केत्वादिरिव तत्कथं तस्य संख्यया गणितेनोपलब्धिरुपलम्भनम्। कथं ज्ञायते यथास्मिन् राशौ राहुरवस्थित इति।

अथवा पुच्छाननाभिधानो मुखपुच्छविभक्ताङ्गस्तदान्तरेण मध्येन कथं न गृह्णाति। यथा षड्राश्यन्तरितौ गृह्णाति तथा राशिद्वयेन राशित्रयेण राशिचतुष्केण राशिपञ्चकेन वा कस्माद्धेतोर्न गृह्णाति।।५।।

अन्यदपि दूषणमाह—

अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्द्धम् ॥६॥

यदि राहु सर्पाकार होता तो मुख या पुच्छ से छः राशि के अन्तर पर स्थित रवि-चन्द्र को ग्रहण-समय में मुख और पुच्छ के मध्य में स्थित भगणार्ध को भी आच्छादित कर देता।।६।।

अथशब्दो विकल्पार्थे। तुशब्दः पादपूरणे। यदि राहुर्भुजगेन्द्ररूपः सर्पाकारः। स च षड्राश्यन्तरितावर्कचन्द्रौ पुच्छेन लाङ्गूलेन मुखेन वदनेन वा गृह्णाति। एवं चेद् मुखपुच्छान्तरसंस्थं मुखपुच्छमध्यवर्ति भगणार्द्धं राशिषट्कं कस्माद्धेतोर्न स्थगयति नाच्छादयति। किलैतदुपपद्यत इति।।६।।

अथ राहुद्वयमप्यस्ति तत्रैको नियतचारः, अन्योऽनियतचारः। यश्चानियतचारः स षड्राश्यन्तरितयोरर्कचन्द्रयोर्मुखेन ग्रहणं करोतीत्येतत्प्रतिषेधयन्नाह—

राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥७॥

यदि राहु दो होते तो चन्द्र के ग्रस्तास्त या ग्रस्तोदय समय में चन्द्र से षड्भान्तर पर स्थित सूर्य भी उसके समान गति वाले द्वितीय राहु से ग्रसित देखने में आता। आशय यह है कि जो कोई दो राहु—एक नियत चार वाला और दूसरा अनियत चार वाला मानते हैं,

वह ठीक नहीं है; क्योंकि जब अनियत चार वाले राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्र का उदय या अस्त होगा तो उस समय क्षितिज के ऊपर विरुद्ध दिशा में नियत चार वाले राहु से सूर्य का भी ग्रहण होना सम्भव है, पर ऐसा देखने में नहीं आता।।७।।

यदि चेद्राहुद्वयं स्वर्भानुयुगम्। स्याद्भवेत्। तच्चन्द्रे शशिनि ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवा दिने ग्रस्त उदिते सति सूर्योऽपि रविरपि तत्समगतिना सूर्यतुल्यगतिनान्येनापरेण द्वितीयेन राहुणा ग्रस्तश्छादितो दृश्येत अवलोक्येत च। एतदुक्तं भवति—यदा ग्रस्तश्चन्द्रमा उदेति ग्रस्तो वास्तमेति तदा पूर्वापरहरिजसक्तस्येन्दोरर्कस्यापि पूर्वापरक्षितिजासक्तिर्भवति षड्राश्यन्तरितत्वादुपपद्यते। द्वावपि क्षितिजादुपरि स्थितौ दृश्यौ भवतः। पर्वकालस्य च सम्भवादेकेनानियत-चारेण चन्द्र आच्छाद्यते परेण च नियतचारेण षड्राश्यन्तरितः सूर्य इति।।७।।

एवं मतान्तराणि निराकृत्य स्वसिद्धान्तमाह—

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥८॥

अपने ग्रहण में चन्द्रमा भूच्छाया में और सूर्यग्रहण में सूर्यबिम्ब में प्रविष्ट होता है; अतः चन्द्र का स्पर्श पश्चिम भाग से और सूर्य का स्पर्श पूर्व भाग से नहीं होता।।८।।

यदि राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणं तदिन्दोः प्राक्प्रग्रहणं पश्चात् सूर्यस्येति तत्किमिति राहोरेकरूपत्वात्? अत्राऽऽह—**भूच्छायामिति**। इन्दुश्चन्द्रः स्वग्रहणे। आत्मीयोपरागे भूच्छाया प्रविशति। अर्कग्रहणे सूर्योपरागे भास्करमर्कं प्रविशति, यतोऽर्कात् सप्तमराशौ भूच्छाया भ्रमति चन्द्रश्च पौर्णमास्यन्ते तत्रैव भवति। स च शीघ्रत्वात् पूर्वाभिमुखो भूच्छायां प्रविशति। तत्र प्रविष्टस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतस्तस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रार्कावेकराशिगौ भवतः। तत्र चन्द्रमाः शीघ्रगतित्वात् पश्चादागत्यामावास्यान्तेऽर्कतलं प्रविशत्यतोऽविक्षिप्तः स एवाधःस्थोऽर्कमाच्छादयति। अतः पश्चात् सूर्यस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतोऽस्माद्धेतोरिन्दोश्चन्द्रस्य पश्चादर्द्धात् प्रग्रहणं न भवति। भानोरादित्यस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं न भवतीति।।८।।

अथ रात्रौ कुतो भूच्छाया भवत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया ।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥९॥

जिस तरह सूर्य के आवरणवश वृक्ष की छाया एक तरफ फैलती है, उसी तरह सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया प्रत्येक रात्रि में लम्बी होती है।।९।।

यथा वृक्षस्य तरोः स्वच्छायाऽऽत्मीया भा दिनेशस्याऽऽदित्यस्याऽऽवरणवशात् छादनहेतोरेकस्मिन् पार्श्वे भवति दीर्घचयाऽऽयामिनी सूर्याद्विपक्षायां दिशि भवति। तद्वत्तेनैव प्रकारेण निशि निशि रात्रौ रात्रौ दिनेशस्याऽऽवरणवशाद् भूर्यतः सूर्यमाच्छादयति। अतो हेतोरेकपार्श्वे भवति दीर्घचया।।९।।

यद्येवं तत्प्रतिमासं किमिति चन्द्रस्य ग्रहणं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयन्नाह—

सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः ।
चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥१०॥

जब सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होकर पूर्वाभिमुख गति वाला चन्द्र क्रान्तिवृत्त से अत्यल्प उत्तर या दक्षिण शर पर रहता है तो उस समय पूर्वाभिमुख चलता हुआ चन्द्र पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है।।१०।।

यदि चन्द्रः शशी सूर्यादादित्यात् सप्तमे राशौ स्थितो भूच्छायात उत्तरेण दक्षिणेन च नात्यर्थं याति। स्वल्पेन विक्षेपेण विक्षिप्तो भवतीत्यर्थः। तदा पूर्वाभिमुखो गच्छन् प्राचीं दिशमनुसरन्नौर्वीं भूच्छायां प्रविशति नान्यथेति। यतो भूच्छाया मूलाद्बृहती भवत्य-ग्रादल्पा। सा च चन्द्रकक्षाया ऊर्ध्वं याति। तत्रस्थश्चन्द्रमा अत्यल्पविक्षिप्तो यदा भवति तदा सर्वग्रास उत्पद्यते। विक्षेपे सति तदनुसारेण चतुर्भागग्रासप्रमाणमर्द्धग्रासप्रमाणं पादोन-ग्रासप्रमाणं ग्रासाभावो वा स्वबुद्ध्योह्यमिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भूच्छायां शशिकक्ष्यागां रवौ भार्द्धान्तरस्थिते।
यदा विशत्यविक्षिप्तश्चन्द्रः स्यात्तद्ग्रहस्तदा।। इति।।१०।।

अथ चन्द्रग्रहणं सर्वत्रैकरूपं दृश्यते अर्कग्रहणं प्रतिदेशमन्यादृशमित्येतत्प्रतिपादयन्नाह—

चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति रविमम्बुदवत् समागतः पश्चात् ।
प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद् भास्करग्रहणम् ॥११॥

सभी देशों में प्रायः चन्द्रग्रहण एक रूप का और रविग्रहण विभिन्न रूप का देखने में आता है। उसका कारण यह है कि मेघ की तरह अधःस्थित चन्द्रमा पश्चिम तरफ से आकर रविबिम्ब को आच्छादित करता है; इसीलिये प्रत्येक देश में सूर्यग्रहण विभिन्न रूप में देखने में आता है।।११।।

आदित्यादधःस्थश्चन्द्रः। स च पश्चात् पश्चिमभागात् समागतोऽम्बुदवन्मेघखण्डवद्रवि-मादित्यं स्थगयत्याच्छादयति। अतोऽस्माद्धेतोः प्रतिदेशं देशं देशं प्रति भास्करग्रहणं सूर्यो-परागं दृष्टिवशाद्दर्शनहेतोश्चित्रं नानाप्रकारं दृश्यतेऽवलोक्यते। क्वचित्सर्वग्रहणं क्वचि-त्खण्डग्रहणं क्वचिद्ग्रहणाभावः। यथा मेघखण्डाच्छादितमर्कबिम्बं समाधोवर्त्तिनां सर्व-मेवादृश्यं पार्श्ववर्त्तिनां केषाञ्चिदर्द्धदृश्यं केषाञ्चिच्चतुर्थभागदृश्यमन्येषां सर्वदृश्यमिति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

इन्दुना छादितं सूर्यमधोऽविक्षिप्तगामिना।
न पश्यति यदा लोकस्तदा स्याद्भास्करग्रहः।।
तमोमयस्य तमसो रविरश्मिपलायिनः।
भूच्छाया चन्द्रबिम्बं च स्थाने द्वे परिकल्पिते।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भूच्छायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्द्धात्।
विक्षेपो यद्यूनः शुक्लेतरपञ्चदशयन्ते।। इति।।११।।

अथार्द्धच्छन्नस्य चन्द्रमसः कुण्ठविषाणता भवत्यर्द्धच्छन्नस्यार्कस्य तीक्ष्णविषाणता भवति तत्किमेकत्वाद् ग्राहकस्येत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्द्धसञ्छन्नः।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥१२॥

चन्द्र का आवरण (छादक = भूच्छाया) महान् होने के कारण अर्धग्रसित चन्द्रबिम्ब में कुण्ठविषाण (स्थूल शृङ्ग) होता है एवं सूर्य का आवरण (छादक = चन्द्रबिम्ब) स्वल्प (सूर्यबिम्ब से अल्प) होने के कारण अर्धग्रसित सूर्यबिम्ब में तीक्ष्ण विषाण (सूक्ष्म शृङ्ग) होता है।।१२।।

इन्द्रोश्चन्द्रस्य महत् अतिबृहत् किञ्चिदावरणमाच्छादकः। ततस्तस्माद्धेतोरर्द्धसञ्छन्नोऽर्द्धग्रस्तः कुण्ठविषाणो भग्नशृङ्गो भवति।

रवेरादित्यस्य स्वल्पमावरणम्। यतो यस्मादर्द्धसञ्छन्नो रविस्तीक्ष्णविषाणस्तीक्ष्णशृङ्गो भवति। एतच्च भूच्छायाचन्द्रयोरेव सम्भवति। परिलेखकरणेनात्रोपपत्तिरिति। तथा चाऽऽचार्य एव पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

स्वं भूच्छायामिन्दुः स्पृशत्यतः स्पृश्यते न पश्चार्द्धे।
भानुग्रहेऽर्कमिन्दोः प्राक् प्रग्रहणं रवेर्नातः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

महदिन्दोरावरणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्द्धसञ्छन्नः।
अर्द्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्णविषाणस्ततोऽस्याल्पम्।। इति।।१२।।

राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्न ग्रहणमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥१३॥

दिव्य दृष्टि वाले आचार्यों ने इस तरह उपराग (ग्रहण) का कारण कहा है। इसमें राहु को कारण न मानना शास्त्रमर्यादा की रक्षा करना है।

इस प्रकार राहुकृत ग्रहण का न होना सिद्ध होता है; परन्तु पामर से लेकर महान् ज्ञानियों तक सर्वत्र राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है। साथ ही श्रुति-स्मृति-पुराणादि में भी राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है।।१३।।

एवमनेन प्रकारेणेदमुपरागकारणं ग्रहणनिमित्तं दिव्यदृग्भिराचार्यैरुक्तं दिव्यज्ञानसंयुक्ता दृष्टिर्येषां ते दिव्यदृशस्तैर्दिव्यदृग्भिरुक्तं कथितम्। अस्मिन्नुपरागे राहुरकारणमनिमित्तमिति

शास्त्रसद्भाव: परमार्थ उक्त कथित:। इतिशब्दो निश्चयार्थे। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

यदि राहु: प्राग्भागादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।
स्थित्यर्द्धं महदिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य।।
किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।
ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणमर्केन्द्वो:।। इति।

ननु यद्येवमर्केन्द्वोर्न राहुकृतं ग्रहणं तच्छ्रुतिसंहितालोकै: सह विरुध्यते। यतो लोके राहुकृतं ग्रहणमित्यागोपालाङ्गनादिप्रसिद्धं स्मृतिषूक्तम्—

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्।

तथा—

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु।
स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च।। इति।

तथा च श्रुतौ—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरि: सूर्यं तमसा विव्याधेति।

संहितासु तथा च गर्ग:—

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत् पीडा ये नरा: शान्तिवर्जिता:।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

राहुकृतं ग्रहणद्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम्।
बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र।।
स्मृतिषूक्तं न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्रात्रौ।
राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गङ्गासमं तोयम्।।
स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा विव्याध वेदवाक्यमिदम्।। इति।।१३।।

एवं मत्वा लोकश्रुतिस्मृतिसंहितानां यथैक्यं भवति तत्प्रतिपादनाय राहोरेव ग्राहकत्वमाह—

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त:।
आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता।।१४।।

तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहु:।
याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन।।१५।।

पूर्व समय में ब्रह्मा जी ने राहु को ऐसा वर दिया था कि ग्रहण-समय में लोगों के द्वारा दिये गये हुतांश से तेरी तृप्ति होती रहेगी। इस कारण ग्रहण-समय में सूर्य-चन्द्र को राहु का सान्निध्य होता है और राहु के कारण ही चन्द्र की दक्षिणोत्तरा गति उत्पन्न होती है।।१४-१५।।

योऽसावसुर इति। योऽसावसुरः सैंहिकेयाख्यो राहुस्तस्य राहोर्ब्रह्मणा पितामहेन वरोऽयमाज्ञप्तो दत्तः। यथापरागे ग्रहणेऽर्कचन्द्रयोर्दत्तहुतांशेन ग्रहणकाले यद्दानं दीयते यच्च वह्नौ हूयते ततोऽसावंशो भागस्तेन दत्तहुतांशेन ते तव चाप्यायनं तर्पणं भविता भविष्यतीति।

तस्मिन् काले ग्रहणसमयेऽस्य राहोः सान्निध्यं सन्निहितत्वं कमलजवरप्रदानाद्भवति तेन कारणेन लोके राहुरित्युपचर्यते कथ्यते। तेन भूच्छायाचन्द्रगोलौ द्वे स्थाने तस्य निवासार्थं परिकल्पिते। तत्र स्थितत्वात् स एवाऽऽच्छादक इति सर्वत्र प्रसिद्धिः। गणिते तु पुनः शशिगतिर्याम्योत्तरा दक्षिणसौम्यविक्षेपवशात्। स च दक्षिणसौम्यविक्षेप उत्पद्यते पातवशात्। यतश्चन्द्रपात एव लोके राहुरिति प्रसिद्धः। भौमादीनां ताराग्रहाणामपि पाता विद्यन्ते। तेषामपि तद्वशात्तद्विक्षेपो भवति। तेन याम्योत्तरा गतिर्ज्ञायते। किमयं ग्रहः क्रान्त्यग्रादुत्तरेण विक्षिप्तः किं वा दक्षिणेनेति। एवं चन्द्रस्य याऽसौ दक्षिणोत्तरा गतिः पातवशात् सिध्यति, सैवापि लोके राह्वर्थेनोपचर्यते व्यवस्थाप्यते। अपिशब्दो निश्चयार्थे। एतदुक्तं भवति— चन्द्रविक्षेपज्ञानार्थं यश्चन्द्रपातः परिकल्पितः स एव लोके राहुरित्युच्यते। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

श्रुतिसंहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः।
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदश्यन्ते।।
भूच्छायातमसीन्दुं वरप्रदानात् कमलजस्य।
चन्द्रोऽम्बुमयोऽधःस्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते।।
छादयति शमिततापं राहुश्छादयति तत्सवितुः।
भूच्छायाव्याससमः शशिकक्ष्यायां स्थितः शशिग्रहणे।।
राहुश्छादयतीन्दुं सूर्यग्रहणेऽर्कमिन्दुसमः।
यत्तदधिकं तमोमयराहुव्यासस्य सूर्यदृष्टं तत्।।
नश्यति भूच्छायेन्दुव्याससमोऽस्माद्भवति राहुः।।
भूच्छाया नेन्दुमतो ग्रहणे छादयति नार्कमिन्दुर्वा।
तत्स्थस्तद्व्याससमो राहुश्छादयति शशिसूर्यौ।। इति।।१४-१५।।

गर्गादिभिरुत्पातैर्ग्रहणज्ञाननिमित्तान्युक्तानि, तैर्ग्रहणज्ञानं स्फुटं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ।।१६।।

गर्गादि आचार्यों ने उत्पातों के द्वारा ग्रहण के कारण कहे हैं; पर उनके द्वारा ग्रहणज्ञान स्पष्ट नहीं होता—किसी तरह उत्पात के द्वारा ग्रहणकाल का ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि पर्वकाल से भिन्न काल में भी उत्पात के द्वारा जो ग्रहण होता है, उसको 'उत्पात' कहते हैं।।१६।।

निमित्तैश्चिह्नैरुत्पातरूपैर्ग्रहणपरिज्ञानं न कथञ्चिदपि विज्ञायते। यतो निमित्तान्यन्यस्मिन्नपि काले परसमये सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि उत्पातभूतानि गण्यन्ते। गर्गादिभिरुत्पा-

तवशेन यद्ग्रहणज्ञानमुक्तं तन्न शोभनम्। निमित्तानि ग्रहणकाल एव न सम्भवन्ति। अन्यस्मिन्नपि काले सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि गण्यन्ते, न ग्रहणकारणानीति। तथा च पराशरः—

'तद्यथा—ग्रहणनिमित्तानि। चन्द्रमसस्तावत्प्रस्पन्दनं सव्यावृत्तिर्दैन्यं पाण्डुत्वं सततपरिवेषणं चिरोत्पादितज्योत्स्नाप्रभाभङ्गः क्षीणता क्षामता दक्षिणशृङ्गतैमिर्येरितरस्यात्यर्थं तुङ्गताविर्भावश्च।

आदित्यस्यापि वेपनं परिवेषणं दीनमन्दरश्मिता कृष्णकल्माषता। उभयोरपि सन्ध्ययोश्चोल्कापातदिग्दाहभूमिकम्पाशनिवज्रनिर्घातस्तनयित्नुपांशुवृष्टिविषवातशीतोष्णविकृतानि। वज्रकनकरजतमणीनां प्रभाभङ्गः। अभ्रलेखासन्दर्शनम्। अर्कमण्डलोत्थितायाः कृष्णराज्याः सोमानुप्रवेशश्च। शिवाखगगणरुतविकृतनीचैरभ्रपरिसर्पणरश्मिजालव्याकुलत्वम्। तप्ताम्भसां शीतता क्षीरिणां क्षीरक्षयः। अकस्मान्माल्यग्लानिः। पञ्चताराग्रहादिभी रोहिणीपीडनमिति चन्द्रग्रहणेऽर्कविकृतिः।

'अर्कग्रहणे चन्द्रमसो बलवन्मध्यतनुनिमित्तहेतुकानि सर्वार्धाकिञ्चिद्ग्रहणेऽप्यानुपूर्व्या। यतो निमित्तोत्पातस्ततः प्रग्रहणम्। यत एषामपसरणं ततो मोक्ष' इति।।१६।।

अथान्यद् दूषणमाह—

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥१७॥

किसी का मत है कि जिस अमा या पूर्णिमा में पाँच ग्रहों की संयुति हो, उसमें ग्रहण का होना सम्भव नहीं कहना चाहिये तथा ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डालकर स्पर्श-मोक्ष की दिशा का ज्ञान करना चाहिये अर्थात् ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डालने पर वह तेल जिस तरफ फैले, उस तरफ स्पर्श और उसके दूसरी तरफ मोक्षकाल समझना चाहिये।

परञ्च यह मत ठीक नहीं है; अतः पण्डितों को इसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिये।।१७।।

किलेत्यागमसूचने शास्त्रान्तरेष्वेवमुक्तम्। यथा पञ्चानां ग्रहाणां संयोगात् समागमाद् ग्रहणस्य सम्भवो न भवति। एतदुक्तं भवति—पौर्णमास्याममावास्यायां वा पञ्चग्रहसंयोगो यदि भवति तदा ग्रहणाभाव इति। तथा च वृद्धगर्गः—

ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्ट्वा न ग्रहणं वदेत्।
यदि न स्याद् बुधस्तत्र तं दृष्ट्वा ग्रहणं वदेत्।।

एतदसत्। अत्रापि दिक्परिज्ञानार्थमाह—तैलं च जलेऽष्टम्यामिति सोमग्रहणं सूर्यग्रहणं वा यदा भावि तदाष्टम्यां समीपवर्त्तिन्यां तिथौ जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्यां दिशि तत्प्रसरति तस्यामेव दिशि ग्रहणं वक्तव्यम्। पुनरपि मोक्षार्थं भूयो जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्यामेव दिशि न प्रसरति तस्यामेव मोक्षो वक्तव्यः। तथा च वृद्धगर्गः—

अष्टम्यां परिवेषः स्यात्तैले जलगते यदा।
प्रसारिते विजानीयाद्यतः खण्डस्ततस्तमः।। इति।

एतदप्यसत्। यतोऽन्यस्मिन् भाण्डगते जले तैलं क्षिप्तं किमन्यस्यां दिशि न प्रसरति। अन्यत्र सर्वत्र प्रसरति तस्मात् सर्वमेव तदसत्। तथा च गर्गः—

दिग्दाहोल्कामहीकम्पतमोधूमरजांसि च।
सूचयन्त्यागमं राहोः पुनः पर्वण्युपस्थिते।।
तत्राष्टम्यां जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत्।
परिवेषो यतः खण्डस्तत्र ज्ञेयौ समागमौ।।
पञ्चग्रहसमायोगं दृष्ट्वा सौम्यविवर्जितम्।
ग्रहणं नु वदेत्तत्र सबुधं न ग्रहं वदेत्।।

तस्माद्विपश्चिद्भिः पण्डितैरिदं न विचिन्त्यं नाङ्गीकार्यं पञ्चग्रहसंयोगात्तैलं च जलेऽष्टम्यामिति।।१७।।

अथ ग्रहणे ग्रासप्रमाणं दिग्ज्ञानं वेलाज्ञानं चाह—

अवनत्याऽर्के ग्रासो दिग्ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च।
तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया ॥१८॥

अवनति (स्पष्ट शर) के द्वारा सूर्य का ग्रास, वलन और स्पष्ट शर के द्वारा परिलेख से दिशा और तिथि (अमावास्या) के अन्त से ग्रहणकाल का निश्चय करना चाहिये।।१८।।

अवनतिरिति स्फुटविक्षेपस्य नाम। तयाऽवनत्या तेन स्फुटविक्षेपेणार्के सूर्ये ग्रासो ज्ञेयः। अत्यल्पे विक्षेपे महाग्रहणं महति विक्षेपेऽल्पमिति। चन्द्रार्कमानयोगार्द्धादवनतिमपास्य शेषे रविमानादधिके सर्वग्रहणमूने खण्डग्रहणमशुद्धे ग्रहणाभावः। एवमवनत्याऽर्के ग्रासो ज्ञेयः।

दिग् ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च, अवनत्या तत्कालोत्पन्नयाऽवनत्या स्फुटविक्षेपेण च परिलेखकरणेन प्रग्रहणादीनां दिग् ज्ञेया।

तिथ्यवसानाद्वेला, तिथेरमावास्याया योऽवसानोऽस्य हरिजसंस्कारेण मध्याह्नमप्राप्य निवृत्तिर्मध्याह्नादूर्ध्वं वा तत्र मध्यग्रहणम्। तस्मिन्नेव प्राग्रहणिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संशोध्य प्रग्रहणकालो भवति। तत्रैव मोक्षस्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। एवं तिथ्यवसानाद्वेला। अत्रार्कग्रहणमुपलक्षणार्थम्। चन्द्रग्रहणेऽपि स्वोपकरणैः।

एतान्युपकरणानि करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां मया कथितान्युक्तानीति। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

दिनमध्यमसम्प्राप्ता यावत्यो नाडिका व्यतीता वा।
ताभ्यः षड्गुणिताभ्यो ज्यात्रिंशांशस्तिथेर्नाम।।
उदयात् प्रभृति च नाड्यो याः स्युः प्राग्लग्नमानयेत्ताभिः।
तस्मात्तु नवसमेतादपक्रमांशान् विनिश्चित्य।।

लग्नत्र्यगुविवरज्यां द्विगुणां खरसांशसम्मितामपमात्।
जह्याद्दिग्व्यत्यासे विक्षेपैक्ये तयोर्योगः।।
उत्तरमक्षाच्छुद्धं याम्यं साक्षं च दक्षिणं विन्द्यात्।
उत्तरमक्षाद्यदधिकमुत्तरमेवं विजानीयात्।।
तज्ज्याघ्नीं शशिभुक्तिं हृत्वा धृतिभिः शतैः स्फुटाऽवनतिः।
मध्यममानं त्रिंशद्भानोः शशिनश्चतुस्त्रिंशत्।।
समलिप्तराहुविवरज्याभ्यस्ता मूर्छना नवहृताश्च।
अवनत्या युतविश्लेषिता च दिक्साम्यवैलोम्ये।।
मध्यममानाभ्यस्ता स्फुटभुक्तिर्मध्यभुक्तिभक्ता च।
भवति कलापरिमाणं तत्कालीनं रविहिमांश्वोः।।
अवनतिवर्गं जह्याद्रवीन्दुपरिमाणयोगदलवर्गात्।
तन्मूलात्तु द्विगुणात्तिथिभुक्तवदादिशेत् कालम्।।
रविशशिमानयुतिदलादवनतिहीनाद्भवन्ति या लिप्ताः।
तान्यङ्गुलानि विन्द्याद्भानोश्छन्नानि चन्द्रमसा।।
अर्द्धेनाऽऽलिख्य रविं दत्वावनतिं यथादिशं मध्यात्।
अवनत्यन्ताच्चन्द्रं विलिखेद्ग्रासार्थमर्द्धेन।। इति।

एवमेव चन्द्रस्य स्वोपकरणैरुदाहार्यम्। तथा च—

तिथ्यन्ते ग्रहमध्यं प्राक्परतः स्थितिदलेन चाद्यन्तौ।
रक्तकपिलौ च वर्णावुच्चाधःस्थे परे नितराम्।।
सर्वग्रासिन्येवं वर्णविशेषं वदेन्निशानाथे।
उदयास्तमये धूम्रं खण्डग्रहणे सलिलदाभम्।। इति।

एवं पञ्चग्रहसंयोगादित्यादि यदुक्तं तत्सर्वमसदिति।।१८।।

इदानीं कल्पादेः षण्मासोत्तरया वृद्ध्या सप्त पर्वाणि ब्रह्मादीनां भवन्ति। तेषां देवानां नामानि चाह—

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥१९॥

कल्पादि से छः-छः मास की वृद्धि करके सात पर्वों के क्रमशः ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम—ये सात देवता होते हैं।।१९।।

कल्पादारभ्य षण्मासोत्तरया वृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्गतैः पर्व भवति। तानि च सप्त पर्वाणि। तेषां पर्वणां क्रमशः क्रमेण सप्तदेवता ब्रह्माद्याः। तद्यथा—ब्रह्मा कमलजः, शशी चन्द्रः, इन्द्रः शक्रः, कुबेरो वैश्रवणः, वरुणो यादसाम्पतिः, अग्निर्हुताशनः, यमः पितृपतिः—एते सप्त यथासंख्यं सप्तानां पर्वणामधिपतयो विज्ञेया विज्ञातव्याः। एतेषामानयनं गणितसिद्धम्। तथा च खण्डखाद्यके करणेऽस्मदीयं वचनम्—

दिनवृन्दात्खशर५०घ्नात् षण्णवरविभि१२९६र्विभाजितादाप्तम्।
रामर्तुखेन्दु१०६३सहितं क्षिपेद् द्युवृन्दे भजेत्खधृतिभि१८०स्तत्।।
लब्धः कमलजपूर्वः पर्वगणः सप्तभाजितः शेषः।
गतगम्ये ते शून्यधृत्यूने चन्द्रसूर्यपर्व स्यात्।।

अत्र यल्लब्धं तदतीतं स्यात्ततः परं वर्तमानं भवति इति।।१९।।

अथ तेषां फलान्याह—

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च।
तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च ।।२०।।

ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम्।
कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ।।२१।।

वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम्।
आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम्।।२२।।

याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च सस्यानाम्।
यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व।।२३।।

यदि ब्राह्मपर्व में ग्रहण हो तो ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य तथा धान्यों की वृद्धि होती है। चान्द्रपर्व में भी इसी तरह ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य, धान्यों की वृद्धि, पण्डितों को पीड़ा तथा अनावृष्टि होती है। ऐन्द्रपर्व में राजाओं में विरोध, शारदीय धान्य का नाश और लोगों में अकुशल होता है। कौबेरपर्व में धनपतियों के धन की क्षति और सुभिक्ष होता है। वारुणपर्व में राजाओं का अशुभ, दूसरे लोगों का कुशल और धान्यों की वृद्धि होती है। आग्नेयपर्व को 'मित्र' भी कहते हैं; इसमें धान्य की वृद्धि, आरोग्य, अभय और वृष्टि होती है। याम्यपर्व में वर्षा का अभाव, दुर्भिक्ष और धान्यों का नाश होता है। इन सात पर्वों से भिन्न पर्व अशुभ फल देने वाले होते हैं। जैसे कि छः- छः मास वृद्धि करके सात पर्वेश कहे गये हैं; इनमें किसी समय उत्पातवश पाँच, साढे पाँच, साढे छः या सात मास आदि पर ही पर्व की उपस्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में पूर्वकथित ब्रह्मा आदि सात पर्व नहीं होते। इनसे अतिरिक्त पर्वों में दुर्भिक्ष, मरकी और अनावृष्टि होती है।।२०-२३।।

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणीति। ब्राह्मे पर्वणि द्विजानां ब्राह्मणादीनां पशूनां चतुष्पदानां वृद्धिर्वर्द्धनम्, तथा क्षेमं लब्धपालनम्, आरोग्यं नीरोगत्वम्, एतानि भवन्ति। सस्यानां च सम्पद्वृद्धिर्भवति।

तद्वत्सौम्य इति। सौम्ये पर्वणि चान्द्रे तद्वद् द्विजपशुवृद्धिक्षेमारोग्याणि भवन्ति। सस्यसम्पच्च भवति। तस्मिन् सौम्ये तु पुनर्विदुषां पण्डितानां पीडा। अवृष्टिरवर्षणं भवति।

ऐन्द्रे भूपविरोध इति। ऐन्द्रे पर्वणि भूपानां राज्ञां परस्परं विरोधः कलहम्, तथा शारदानां सस्यानां धान्यानां क्षयो विनाशः, लोके क्षेमं न च भवति। कौबेरे पर्वण्यर्थपतीनामीश्वराणामर्थविनाशो वित्तक्षयः सुभिक्षं च भवति।

वारुणमवनीशाशुभमिति। वारुणं नाम यत्पर्व तदवनीशानां राज्ञामशुभमश्रेयस्करमन्येषां सर्वजनानां क्षेमकरं तथा सस्यानां वृद्धिकरं भवति।

आग्नेयं मित्राख्यमिति। आग्नेयस्य पर्वणो मित्राख्यमित्यपरं नाम तत्पर्व सस्यारोग्यकरं सस्यानि करोति निष्पादयति, आरोग्यं च करोति। तथा अम्बु जलमभयं भयरहितं नातिबहुलं नात्यल्पं मध्यमं यथाकालोपयोग्यं च करोति।

याम्यमिति। याम्यं पर्वावृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं क्षुद्भयं सस्यानां च संक्षयं विनाशं करोति। **यदतः परमिति**। अतोऽस्मात् पर्वसप्तकाद्यत्परमन्यत्पर्व तदशुभमनिष्टदम्।

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशा उक्ताः। तत्र कदाचिदुत्पातवशात् पञ्चभिर्मासैः सार्द्धैः पञ्चभिर्वा षड्भिः सार्द्धैः सप्तभिर्वा पर्व भवति। तत्पर्व ब्राह्मादि न भवति। तच्च क्षुन्मारावृष्टिदम्, क्षुद् दुर्भिक्षम्, मारं मरणम् अवृष्टिमवर्षणं च ददाति। तथा च पराशरः—

'शुक्लकृष्णाष्टमीपञ्चदश्योरन्तराद् ग्रहणनिमित्तानीन्दुभान्वोः प्रबलानि भवन्ति। तानि च निशामय। षण्मासात् चन्द्रमसस्ततोऽर्द्धषष्ठेत्यादि चादित्यस्यापि पूजितमाहुराचार्याः। सप्तदशत्रयोदशपञ्चत्रिंशन्मासिकानि चेन्दोस्त्रीणि विसन्धिग्रहणानि क्षुद्व्याधिमरकदुर्भिक्षोपद्रवाय वेदितव्यानि। एवमेवैतानि प्राकृतवैकृतग्रहणानि। अतः परं सप्तविधैः पर्वेशान् कथयिष्यामः। ब्राह्मसौम्यैन्द्रकौबेरवारुणाऽऽग्नेययाम्यानि षण्मासान्तरितानि सप्त भवन्ति। तत्र ब्राह्मं सस्यजननं तद्वत्सौम्यम्। ऐन्द्रं भूपालविरोधाक्षेमदुर्भिक्षकरम्। कौबेरमीश्वराणामैश्वर्यविनाशकरं क्षेमसस्यकृच्च। वारुणं वृष्टिसस्यक्षेमारोग्यकरम्। आग्नेयमन्नक्षयदम्। दुर्भिक्षायाल्पवृष्टये याम्यं चे'ति। तथा च गर्गः—

> चन्द्रात् पञ्चममासे तु मासे त्वेकादशे तथा।
> सप्तादशे वा सूर्यस्य ग्रहणं क्षुद्भयाय तत्।। इति।।२०-२३।।

अथ वेलाहीनेऽतिवेले च पर्वणि फलमाह—

> **वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।**
> **अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥२४॥**

गणितागत ग्रहणकाल से पूर्व में या बाद में ग्रहण दिखलाई पड़े तो उसको क्रम से वेलाहीन एवं अतिवेल ग्रहण कहते हैं। वेलाहीन पर्व में गर्भ (गर्भलक्षण आगे कहेंगे) का नाश, शस्त्रकोप (युद्ध) और अतिवेल पर्व में पुष्प-फल का नाश, भय एवं धान्यों का नाश होता है।।२४।।

गणिताऽऽगतप्रग्रहणात् पूर्वं यदि दृक्प्रग्रहणं दृश्यते तदा तत्पर्व वेलाहीनम्। अथ गणिताऽऽगतप्रग्रहणकालात् पश्चाद् दृक्प्रग्रहणं भवति तदा तत्पर्वाऽतिवेलम्। वेलाहीने

पर्वणि गर्भाणां विपत्तिर्नाशो भवति। गर्भागर्भलक्षणमग्रतो वक्ष्यति। ते तत्र विज्ञेयाः। तथा शस्त्रकोपो युद्धं च भवति।

अतिवेले पर्वणि कुसुमानां पुष्पाणां फलानां च क्षयो विनाशः। लोके भयं सस्यानां नाशश्च भवति। तथा च गर्गः—

वेलाहीने शस्त्रभयं गर्भाणां स्रावणं तथा।
अतिवेलफलानां तु सस्यानां क्षयमादिशेत्।
दृक्समे पर्वणि नृपा निर्वैरा विगतज्वराः।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वा भयरोगविवर्जिताः।

तथा च काश्यपः—

अनागतमतीतं वा ग्रहणे पर्व दृश्यते।
गर्भस्रावमनावृष्टिं फलं पुष्पं विनश्यति।। इति।।२४।।

एतन्मया पूर्वशास्त्राणि निरीक्ष्योक्तं न स्वमतेनेत्याह—

हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ॥२५॥

गणितागत ग्रहणकाल से भिन्नकालिक पर्व में जो फल मैंने कहे हैं, वे पूर्वशास्त्रानुसार हैं; क्योंकि स्पष्ट गणित को जानने वाले दैवज्ञों के द्वारा साधित ग्रहणकाल अन्यथा नहीं हो सकता। यतः देशान्तर कर्म के विना तिथिचलन नहीं होता—यह गणित को जानने वाले ज्योतिषी लोग ही जान सकते हैं।।२५।।

हीनातिरिक्तकाले पर्वणि यन्मया फलमुक्तं कथितं तत्पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्। पूर्वशास्त्रेषु भगवद्गर्गादिप्रणीतेषु दृष्टम्। यतः स्फुटगणितविदः स्फुटं गणितं वेत्ति जानातीति स्फुट-गणितज्ञस्य कालः प्रग्रहणादीनां समयः कथञ्चिदप्यन्यथा न भवति। यतो देशान्तरकर्मणा विना तिथिचलनं न भवति। तच्च गणितज्ञ एव जानाति। उक्तं च—

गणितप्रग्रहात् पश्चाद्यदि दृक्प्रग्रहो भवेत्।
स प्राग्देशोऽन्यथा पश्चाद्रेखायाः स च मेरुतः।।
उज्जयिन्यां गता यावल्लङ्कातो दक्षिणोत्तरा।
तदन्तर्घटिका भुक्तिवधात् षष्ट्या हतात् फलम्।।
मध्ये धनमृणं पश्चात्प्राग्घटिका द्युगणेऽथवा।

एवं संस्कृता ग्रहा दृक्समा भवन्तीत्यर्थः। पूर्वागमतः परीक्ष्योक्तम्। यथा—

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किं तु बहूनां मतं वक्ष्ये।। इति।।२५।।

अधुनैकमासे चन्द्रसूर्यग्रहणयो: फलमाह—

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपा: ।
स्वबलक्षोभै:　　　संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥२६॥

यदि एक ही मास में सूर्य-चन्द्र दोनों का ग्रहण हो तो अपनी-अपनी सेनाओं में हलचली मच जाने से या शस्त्रप्रहार से राजाओं का नाश होता है।।२६।।

एकस्मिन् मासे रविसोमयो: सूर्य्याचन्द्रमसोर्यदि ग्रहणमुपरागो भवति, तदा क्षितिपा राजान: स्वबलक्षोभैरात्मीयसैन्यानां क्षोभणै: संक्षयं विनाशमायान्ति प्राप्नुवन्ति। अतिशस्त्रकोपोद्योग: संग्रामाश्च भवन्ति। तथा च काश्यप:—

चन्द्रार्कयोरेकमासे　ग्रहणं न　प्रशस्यते।
परस्परं वधं कुर्यु: स्वबलक्षुभिता नृपा:।। इति।

नन्वत्रोक्तं यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरिति। तदत्र वक्ष्यमाणेन—

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रामय:　　प्रजानां　　दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम्।।

इत्यनेनैव सह पुनरुक्ततादोष: स्यात्। यस्माज्ज्योति:शास्त्रे मास: शुक्लादिरुक्त:। प्रथमपक्षान्ते सोमग्रहो द्वितीयपक्षान्तेऽमावास्यायामर्कग्रहात् तथैकमास: सञ्जायते तस्मादयं महान् दोष:।

अन्य एवं व्याचक्षते—यथाधिकमास एवैतत्सम्भवति। यदि समाने मासाह्वये सूर्येन्द्वोर्ग्रहणं भवति तदैकमासोक्तफलमन्यत्र पक्षान्तरितग्रहणफलमर्केन्द्वोर्वक्तव्यम्। एतत् सत्यमौत्पातिकं भवति। यस्मादाचार्येणाऽऽदित्यचारे सूर्यस्योपरक्तस्यापर्वणि फलमुक्तम्—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षै:।। इति।

तथा च व्यास आह—

ततो ववौ महाराज　मारुतो लोमहर्षण:।
राहुरग्रसताऽऽदित्यं युगपत् सोममेव च।।

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरित्यस्यामायामौत्पातिकं पर्व विना रविसोमयोरप्येकस्मिन्नेव मासे ग्रहणफलमुक्तम्। कुत एतल्लभ्यते। तथा च भगवान् व्यास:—

चन्द्रसूर्यावुभौ　ग्रस्तावेकमासे　त्रयोदशे।
अपर्वणि ग्रहावेतौ प्रजा: संक्षपयिष्यत:।। इति।

तथा च पराशर:—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रह:।
आवृणोति　तम:श्याम:　सर्वलोकविपत्तये।।

तथा च वृद्धगर्ग:—

मासि त्रयोदशे दृश्यौ सोमार्कौ ग्रहणं गतौ।
छत्राण्यनेकानि तदा मृज्यन्ते भूमिपक्षये।।
सपुत्रदारा गच्छन्ति संग्रामे लोमहर्षणे।
अनेन वनिताया: स वैधव्यान्तकरोऽधिकम्।।
कालशोकावह: पुंसां देशानेकविनाशन:।
स्वचक्रपरचक्रैश्च विनश्यन्ति बहुप्रजा:।। इति।

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्येत्यत्र पक्षान्ते मासान्ते पर्वनियममाह— तस्मात् पुनरुक्ततादोषोऽन्यत्रावगम्यत इति।

अन्य एवं व्याचक्षते। यथा—कथमेकस्मिन् मासे रविसोमयोर्ग्रहणं स्याद् यावच्चैत्र-सिताद्या मासा इति शास्त्रस्थिति:। अत्रोच्यते—यदि पञ्चदश्यां ग्रहणं भवति तत: पुरस्ता-दमावास्यायामर्कग्रहणं भवति, तत्प्राग्लम्बनमृणगतं भवति तदैको मासो भवति। अथवा लम्बनं धनगतं भवति, तत: पुरस्तात् पौर्णमास्यां चन्द्रग्रहणं भवति। तत्राप्येको मासो युज्यते नान्यथेति।

एवमत्राधिकमासके यदुक्तं तदेव शोभनमृषिवचनादेकमासे त्रयोदश इति।।२६।।

अथ ग्रस्तोदितयोर्ग्रस्तास्तयोश्चार्कचन्द्रयो: फलमाह—

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ।
सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसन्दृष्टौ ॥२७॥

यदि ग्रस्त चन्द्र-सूर्य का उदय या अस्त हो तो क्रम से शारदीय धान्य और राजा का नाश करता है। आशय यह है कि ग्रस्त चन्द्र का उदय या अस्त हो तो शारदीय धान्य का और ग्रस्त सूर्य का उदय या अस्त हो तो राजा का नाश होता है। सर्वग्रस्त चन्द्र-सूर्य यदि पापग्रह से देखे जाते हों तो दुर्भिक्ष और मरकी देते हैं।।२७।।

ग्रस्तावुदितास्तमितावित्यत्र शशिरव्यो: प्रत्येकस्य फलेन सह सम्बन्ध:। चन्द्रो यदा ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितो वा भवति तदा शारदधान्यस्य क्षयदो विनाशकर्ता भवति। एवमर्को ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितश्चावनीश्वरस्य राज्ञ: क्षयदो भवति। ननु सूर्येन्द्वोर्यथासंख्येन कस्मात् फलं न सम्बध्यते। ग्रस्तोदितौ सूर्येन्दू शारदधान्यक्षयदौ ग्रस्तास्तमिताववनीश्वरक्षयदौ भवत इति। अत्रोच्यते नैतद्युक्तम्। यस्माद्वृद्धगर्ग:—

उद्गच्छति गृहीतश्चेदस्तं वा यदि गच्छति।
शारदं तु तदा सस्यं जातं जातं विपद्यते।।
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नरा मूलफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च तदा सम्पीड्यते जगत्।। इति।

तथा च ऋषिपुत्रः—

यावतोंऽशान् ग्रसित्वेन्दोरुदयत्यस्तमेति वा।
तावतोंऽशान् पृथिव्यास्तु तम एव विनाशयेत्।।
उदयेऽस्तमये वापि सूर्यस्य ग्रहणं भवेत्।
तदा नृपभयं विन्द्यात् परचक्रस्य चागमम्।।

तथा च—

चिरं गृह्णाति सोमार्कौ सर्वं वा ग्रसतं यदा।
हन्यात् स्फीतान् जनपदान् वरिष्ठांश्च जनाधिपान्।।
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नराश्चाम्बुफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च सम्पीड्यन्ते प्रजास्तथा।। इति।

सर्वग्रस्ताविति। सूर्येन्दू सर्वग्रस्तौ निःशेषाच्छादितौ तावेव यदि पापसन्दृष्टौ पापग्रहयोरङ्गारकसौरयोरन्यतरेण दृष्टौ भवतस्तदा दुर्भिक्षं मरकं च ददाते इति।।२७।।

अथोदयात् प्रभृत्यस्तमयं यावद् ग्रस्तयोश्चन्द्रार्कयोः सप्तस्वाकाशभागेषु फलं श्लोकचतुष्टयेनाह—

अर्द्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च।
अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगेऽभ्युदितः।।२८।।

कर्षकपाखण्डिवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयांशे।
कारुकशूद्रम्लेच्छान् खतृतीयांशे समन्त्रिजनान्।।२९।।

मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः।
तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे।।३०।।

स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहाऽस्तमयकाले।
यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति।।३१।।

यदि अर्द्धोदित चन्द्र और सूर्य ग्रस्त होता हो तो निषाद जाति का और समस्त यज्ञों का नाश करता है। दिनमान या रात्रिमान को सात जगह विभक्त करने पर युग का प्रथम आदि खांश मान होता है।

इनमें प्रत्येक खांश मान में स्पर्श और मोक्ष होने पर फल यह होता है कि यदि युग के प्रथम खांश में उदित चन्द्र या सूर्य ग्रस्त होता हो तो अग्नि से जीविका चलाने वाले, गुणी, ब्राह्मण और आश्रमवासियों का नाश करता है। द्वितीय खांश में किसान, पाखण्डी, व्यापारी, क्षत्रिय और सेनापति का नाश करता है। तृतीय खांश में चित्र बनाने वाले, शूद्र, म्लेच्छ जाति और मन्त्रियों का नाश करता है। चतुर्थ खांश में राजा और मध्य देश का नाश करता है तथा अन्नों के मूल्य में समानता करता है। पञ्चम खांश में चतुष्पद, मन्त्री,

अन्तःपुर और वैश्यों का नाश करता है। षष्ठ खांश में स्त्री और शूद्रों का नाश करता है। सप्तम खांश में (अस्तकाल में) चोर और गुहा में निवास करने वालों का नाश करता है। जिस खांश में मोक्ष होता है, उस खांश में तत्तद्व्यक्तियों के लिये कथित अशुभ फल नहीं होकर शुभ फल होता है।।२८-३१।।

चन्द्रोऽर्को वाऽर्द्धोदितो यद्युपरक्तो भवति ग्रस्त इत्यर्थः। तदा नैकृतिकान्निषादान् सर्व-यज्ञान् निःशेषान् यागांश्च हन्ति नाशयति। ग्राह्यादिनप्रमाणस्य सप्तभिर्भागमपहृत्य यल्लभ्यते तच्छास्त्रप्रमाणम्। अनेनाऽऽकाशमपि सप्तधाकृतं भवति—

स्पार्शिकं मौक्षिकं वान्यं कालं सप्तगुणं हरेत्।
दिनमानेन यल्लब्धं खांशमानं युगस्य तत्।।

एवं कृत्वा विचारयेत्। कस्मिन्नाकाशभागे प्रग्रहणं मोक्षो वा। तत्र यदाभ्युदित उद्गत एव चन्द्रः सूर्यो वा युगे प्रथमभागे। प्रथमदिनसप्तभागे यद्यर्कस्य चन्द्रस्य ग्रहणं भवति वा तदा स एवाकाशभागः प्रथम इत्यर्थः। तत्र ग्रस्तो दृश्यते तदाग्न्युपजीविनः सुवर्ण-कारप्रभृतयः। गुणाधिका गुणिनः। विप्रा ब्राह्मणाः। आश्रमिण आश्रमवासिनश्चैतान् हन्ति।

कर्षकाः कृषिकराः। पाखण्डिनो वेदबाह्याः। वणिजः क्रयविक्रयकारकाः। क्षत्रिया राजन्याः। बलनायकाः सेनापतयः। एतान् द्वितीयांशे द्वितीयभागे निहन्ति।

कारुकाः शिल्पिनः। शूद्राः शूद्रजातयः। म्लेच्छा म्लेच्छजातयः। एतान् समन्त्रिजनान् मन्त्रिजनैः सह तृतीयेंऽशे तृतीय आकाशविभागे निहन्ति।

तथा मध्याह्ने चतुर्थे खांशे नरपतिमध्यदेशहा नरपतिं राजानं मध्यदेशं च निहन्ति मध्यदेशे यो राजा तमेव हन्ति। धान्यस्यार्घः शोभनो भवति सममर्घं धान्यं भवतीत्यर्थः। तृणभुजश्चतुष्पदान्। अमात्यान् मन्त्रिणः। अन्तःपुराणि राजदारान्। वैश्यान् वैश्यजातीयांश्च पञ्चमे खांशे आकाशभागे निहन्ति।

स्त्रीशूद्रानिति। स्त्रियो योषितः। शूद्राः शूद्रजातयः। एतान् षष्ठेंऽशे आकाशभागे निहन्ति। दस्यवश्चौराः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। एतानस्तमयकाले निहन्ति। यस्मिन् खांशे आकाशभागे मोक्षो भवति तत्प्रोक्तानामग्न्युपजीविप्रभृतीनां शिवं श्रेयो भवति। अथ यस्मि-न्नंशे प्रग्रहस्तस्मिन् मोक्षस्तदा यदुक्तं फलं तत्र भवति शुभाशुभं समं स्यात्। तथा च काश्यपः—

उदितास्तमितौ ग्रस्तौ सर्वसस्यक्षयङ्करौ।
सर्वं ग्रस्तौ यदा पश्येद्दुर्भिक्षं तत्र जायते।।
प्रथमांशे विप्रपीडा क्षत्रियाणां द्वितीयके।
शूद्राणां च तृतीयेंऽशे चतुर्थे मध्यदेशिनाम्।।
वैश्यानां पञ्चमे खांशे षष्ठांशे प्रमदाभयम्।
दस्युप्रत्यन्तकम्लेच्छविनाशः सप्तमांशके।।
येषामंशे भवेन्मोक्षस्तज्जातानां शुभं भवेत्।

तथा च वृद्धगर्गः—

येषां सोमो युगे ग्रस्तो विमर्दो यत्र वा भवेत्।
तेषां पीडां विजानीयात् मोक्षे शुभमथादिशेत्।। इति।।२८-३१।।

अथायनफलं दिक्फलं चाह श्लोकत्रयेण—

द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान् दक्षिणायने हन्ति।
राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन्॥३२॥

म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च।
सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोदग्गवामशुभः॥३३॥

पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः।
पश्चात् कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः॥३४॥

यदि उत्तरायण में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों का नाश करता है। दक्षिणायन में वैश्य और शूद्रों का नाश करता है। प्रदक्षिणक्रम से उत्तर आदि दिशाओं (उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम) में राहु दिखाई दे तो क्रम से ब्राह्मण आदि का नाश करता है। जैसे—उत्तर में ब्राह्मण, पूर्व में क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य और पश्चिम में शूद्र का नाश करता है। विदिशा (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण) में स्थित राहु म्लेच्छ जाति, यायी और अग्नि से जीविका चलाने वाले (अग्निहोत्री आदि) का नाश करता है। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं के लिये पुनः विशेष फल कह रहे हैं। यदि दक्षिण में राहु दिखाई दे तो जलचर और हस्तियों का नाश करता है। उत्तर में दिखाई दे तो गाय-बैलों का नाश करता है। पूर्व में दिखाई दे तो भूमि को जल से पूर्ण करता है तथा पश्चिम में दिखाई दे तो किसान, भृत्य और बीजों का नाश करता है।।३२-३४।।

मकरादिराशिषट्कस्थेऽर्के उत्तरमयनम्। कर्कटादिराशिषट्कस्थेऽर्के दक्षिणमयनमिति। उदगयने उत्तरायणे राहुर्दृष्टो द्विजान् ब्राह्मणान् नृपतीन् क्षत्रियांश्च निहन्ति। तथा विट्शूद्रान् वैश्यान् शूद्रांश्च दक्षिणायने हन्ति घातयति। तथा च गर्गः—

उत्तरायणसन्दृष्टो ब्रह्मक्षत्रविनाशनः।
दक्षिणायनगो राहुर्वैश्यशूद्रविनाशनः।।

राहुरुदगादिदृष्ट इति। उदगादिषूत्तराद्यासु चतसृषु दिक्षु प्रदक्षिणेन राहुर्दृष्टो विप्रादीन् ब्राह्मणादीन् हन्ति। एतदुक्तं भवति—सूर्ये चन्द्रे वा यद्युत्तरस्यां दिशि राहुः प्रग्रहणं करोति तदा ब्राह्मणान् हन्ति। पूर्वस्यां दृष्टः क्षत्रियान् निहन्ति। दक्षिणस्यां दृष्टो वैश्यान् हन्ति। पश्चिमायां दृष्टः शूद्रान्निहन्ति। अत्र यद्यप्यर्कचन्द्रयोर्दक्षिणोत्तरदिग्भागात् प्रग्रहणं न सम्भवति, तथाप्याचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च काश्यपः—

सौम्यायामागतो विप्रान् पूर्वस्यां क्षत्रजातयः।
वैश्यान् दक्षिणतो राहुर्हन्ति पश्चिमतोऽपरान्।।

तथा च पराशरः—'उदक्प्राग्दक्षिणप्रत्यग्ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रोच्छेदनायाऽऽनुपूर्व्याऽपि च।'

म्लेच्छान् विदिक्स्थित इति। विदिक्स्थितो राहुः। ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येषु स्थित इत्यर्थः। म्लेच्छान् म्लेच्छजनांस्तथा यायिनः प्रोद्यतान्। हुताशसक्तानग्निरतानग्निहोत्रिणो हन्यात्। दक्षिणोत्तरयोः पुनरपि विशेषमाह—**सलिलचरेति**। याम्येन दक्षिणेन दृष्टः सलिलचरान् जलचरान् तथा दन्तिनो हस्तिनो घातयति हन्ति। उदगुत्तरेण दृष्टो गवामशुभः क्षयकृत्।

अथ पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः पुनरपि विशेषफलमाह— **पूर्वेणेति**। दैत्यो राहुः पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि समागतो दृष्टो वसुधां भूमिं सलिलपूर्णां तोयपूर्णां करोति। पश्चादागतः कर्षकाणां कृषिकराणां सेवकानां पराऽऽराधनरतानां बीजानां च विनाशाय निर्दिष्ट उक्तः। उप्यन्ते यानि तानि बीजानि। तथा च काश्यपः—

पूर्वे सलिलघाती स्यात् पश्चाद्धान्यकृषीवलान्।
याम्ये जलचरान् हन्ति सौम्ये गोनाशकः स्मृतः।।
म्लेच्छान् यायिनृपान् हन्ति विदिक्स्थः सिंहिकासुतः।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

उदगादिषु दिक्ष्वशुभो विप्रादीनां सितादिवर्णस्य।
विदिगादिगतो हन्याद्राहुर्म्लेच्छान् सविजिगीषून्।।
द्विजराजन्यान् हन्यादुदगयने दक्षिणे तु विट्शूद्रान्।
समरामयाय राहुर्यदि पक्षान्ते पुनर्दृश्यः।। इति।।३२-३४।।

अथ चन्द्रार्कयोर्मेषादिषु राशिषु ग्रस्तयोः फलान्याह—

पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्त्ताः।
जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ॥३५॥

मेष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण होने पर पञ्जाब, कलिङ्ग, शूरसेन, कम्बोज, औड्रदेश, किरात, शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले और अग्नि से जीविका चलाने वालों को पीड़ित करता है।। ३५।।

पाञ्चालाः पाञ्चालजनाः, कलिङ्गाः, शूरसेनाः, काम्बोजाः, उड्राः, किराता—एते सर्वे जनाः। तथा शस्त्रवार्ताः शस्त्रवृत्तयः शस्त्रं वर्तनं येषाम्। ये च हुताशवृत्त्या अग्निवृत्त्या च जीवन्ति सुवर्णकारादयः। ते सर्वे पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति मेषसंस्थितेऽर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते।।३५।।

अथ वृष आह—

गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः।
पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ॥३६॥

यदि वृष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो वह गौ को पालन करने वालों (अहीर आदियों), चतुष्पदों और पूजनीय मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३६।।

गाः पान्ति रक्षन्तीति गोपाः। पशवश्चतुष्पदाः। गोमिनो गोमन्तो गावो विद्यन्ते येषां ते। ज्योत्स्नातमिस्रेति गोमिन्शब्दः। ये च मनुजा मनुष्या महत्त्वमागताः पूज्यतां प्राप्तास्ते सर्व एव भास्करे सूर्ये शीतकरे चन्द्रे वा वृषस्थे ग्रस्ते पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति।।३६।।

मिथुन आह—

मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः।
यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥३७॥

यदि मिथुन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र या ग्रहण हो तो उत्तम स्त्री, राजा, नृपमात्र (राजा के समान मन्त्री आदि), प्राणधारी अन्य जीव, कलाओं (चित्र, गीत, नृत्य और वाद्य) को जानने वाले, यमुना नदी के तट पर निवास करने वाले, बाह्लिक (धीर मनुष्य, 'बाह्लीकं वाह्लिकं धीरहिङ्गुनो'रिति मेदिनी), मध्यदेश (साकेता मिथिला चम्पा कौशाम्बी कौशिकी तथा। अहिक्षेत्रं गया विन्ध्या मध्यदेशो हि कीर्तितः।।) और सुह्म देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३७।।

प्रवराङ्गनाः प्रधानस्त्रियः। नृपा राजानः। नृपमात्रा नृपसदृशा अमात्याः। बलिनः प्राणिनः। कलाविदश्चित्रगीतनृत्यवाद्याभिज्ञाः। यमुना नदी तस्यास्तटे तीरे ये जातास्ते च सबाह्लिका बाह्लिकैर्जनैः सहिताः। तथा मत्स्या जनास्ते च सुह्मजनैः समन्विताः सहिता एते सर्व एव मिथुनस्थे सूर्ये चन्द्रे वा ग्रस्ते पीडामुपयान्ति।।३७।।

कर्कटक आह—

आभीराञ्छबरान् सपह्लवान् मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि।
पाञ्चालान् विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥३८॥

यदि कर्क राशि में स्थित सूर्य का चन्द्र का ग्रहण हो तो आभीर (अहीर, 'गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाहीरबल्लवाः' इत्यमरः) शबर (म्लेच्छ जाति, 'भेदाः किरात-शबर-पुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः), पह्लव (दक्षिण देश का राजवंश), बाहुयुद्ध जानने वाले, मत्स्य, कुरु, शक, पञ्जाब—इन देशों में निवास करने वाले और अङ्गहीन मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३८।।

आभीरान् जनान्, शबरानपि जनांश्च, सपह्लवान् पह्लवैर्जनैः सहितान्, मल्लान् बाहु-युद्धज्ञान्, मत्स्यान्, कुरूंश्च, शकानपि, पाञ्चालानपि, विकलानङ्गहीनान् एतान् सर्वानेव जनान् पीडयत्युपतापयति तथाऽन्नं च निहन्ति धान्यमहार्घाधिक्यं भवतीति कर्कटे यद्यर्क-चन्द्रौ ग्रस्तौ भवतः।।३८।।

सिंहकन्ययोराह—

सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्
राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च।

षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्
हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥३९॥

यदि सिंह राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पुलिन्दों (म्लेच्छ जातियों) का समूह, मेकल (पर्वतविशेष) में निवास करने वाले, बलवान जन्तु, राजा और राजा के समान तथा वन में निवास करने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि कन्या राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो धान्य, कवि, लेखक, गानविद्या जानने वाले, पत्थर से आजीविका चलाने वाले, त्रिपुर नामक देश और धान्ययुत प्रदेश—इन सबों का नाश करता है।।३९।।

पुलिन्दा निषादा जनाः, गणाः समूहाः, मेकला जनाः, सत्त्वयुक्ताः सत्त्वप्रधानाः, राजोपमा राजन्यतुल्या वित्तप्रतिपत्तियुक्ताः, नरपतयो राजानः, वनगोचरा वनमरण्यं गोचरो विषयो येषां ते वनगोचरा वनवासिन इत्यर्थः। एतान् सिंहे हन्ति।

षष्ठ इति। सस्यानि प्रसिद्धानि, कवयः पण्डिताः, लेखका लेखज्ञाः, गेयसक्ता गेयरताः, अश्मका जनाः, त्रिपुरा देशाः, शालियुता देशा येषु शालयो धान्यानि बहूनि भवन्ति, एतान् सर्वान् षष्ठे कन्यायां हन्ति।।३९।।

अथ तुलावृश्चिकयोराह—

तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान् मरुकच्छपांश्च।
अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान् द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ॥४०॥

यदि तुला राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो अवन्तिदेश में निवास करने वाले, पश्चिम समुद्र के निकट रहने वाले, सज्जन तथा व्यापारी, दशार्ण, मरु और कच्छ देश में रहने वाले—इन सबों का नाश करता है। यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चोल देश में निवास करने वाले मनुष्य, वृक्ष, युद्ध करने वाले मनुष्य, कठोर शस्त्र धारण करने वाले—इन सबों का नाश करता है।।४०।।

अवन्ती आवन्त्या जनाः, अपरान्त्या जना एव, साधवः सज्जनाः, वणिजः किराटाः, दशार्णा जना एतान् मरुकच्छपाञ्जनांश्च—एतान् सर्वान् तुलाधरे तुले हन्ति।

अलिन्यथेति। उदुम्बरा जनाः, मद्राः, चोला—एतानपि जनान्, द्रुमान् वृक्षान्, यौधेयान् जनान्, विषायुधीयान् विषमायुधं येषां तान् सह यौधेयैर्विषायुधीयान्—एतानलिनि वृश्चिके हन्ति।।४०।।

अथ धनुर्मकरयोराह—

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्
पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान्।
हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्
मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥४१॥

यदि धनु राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मन्त्री, प्रधान मनुष्य, घोड़ा, विदेह देश (मिथिला) में निवास करने वाले मनुष्य, बाहुयुद्ध करने वाले मनुष्य, पञ्जाब देश में निवास करने वाले मनुष्य, वैद्य, व्यापारी, कठोर अस्त्र को चलाने वाले—इन सबों का नाश करता है। यदि मकर राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मछली, मन्त्रियों का कुल, नीच कर्म करने वाले मनुष्य, मन्त्र और औषध को जानने वाले, वृद्ध, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले—इन सबों का नाश करता है।।४१।।

अमात्या मन्त्रिणः, वराः प्रधानाः, अथवाऽमात्यवराः प्रधानाः, वाजिनोऽश्वाः, विदेहा जनाः, मल्ला बाहुयुद्धज्ञाः, पाञ्चाला जनाः, वैद्याः कायचिकित्सकाः, वणिजः क्रयविक्रयिणः, विषमाः क्रूराः, आयुधज्ञा आयुधवेत्तार—एतान् धन्विनि हन्यात्।

हन्यान्मृगे त्विति। झषा मत्स्याः, मन्त्रिणश्चाणक्यविदः सचिवाः, कुलानि वंशाः अथवा मन्त्रिणां सचिवानां कुलानि, नीचा अधमकर्मकराः—एतान् तथा मन्त्रौषधीषु च कुशलान् मन्त्रेषु शैववैष्णवसौरेषु औषधीषु च कुशलान् शक्तान्, स्थविरान् वृद्धान्, आयुधीयानायुधजीविन—एतान् मृगे मकरे हन्यात्।।४१।।

अथ कुम्भमीनयोराह—

कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करा-
नाभीरान् दरदाऽऽर्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान्।
मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि वन्यान् जनान्
प्राज्ञान् वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत्।।४२।।

यदि कुम्भ राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पहाड़ी मनुष्य, पाश्चात्य देश में रहने वाले मनुष्य, बोझा ढोने वाले, चोर, अहीर, दरद देश में रहने वाले, प्रधान मनुष्य, सिंह नगर, बर्बर देश में रहने वाले मनुष्य—इन सबों का नाश करता है। यदि मीन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो समुद्र के तीर और जल में उत्पन्न हुये द्रव्य, जंगली मनुष्य, बुद्धिमान, जल के विक्रय से जीवन-यात्रा चलाने वाले मनुष्य—इन सबों का नाश करता है। नक्षत्र-फल कूर्म-विभाग के द्वारा कहना चाहिये, जैसे कि जिस नक्षत्र में सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो, वह नक्षत्र कूर्म-विभाग से जिस देश में पड़े, उस देश में स्थित मनुष्यों को पीड़ा होती है।।४२।।

अन्तर्मध्ये गिरौ पर्वते जाता अन्तर्गिरिजास्तान् पर्वतमध्यजातान् जनान् सपश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिभिर्जनैः सह। केचिदन्तर्गिरिजान् स पश्चिमानिति पठन्ति। गिरेरन्तरे जातान् जनान् पश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिनः। प्राक्पाठोऽत्र शोभनः। भारोद्वहान् भारवाहिनः, तस्करान् चौरान्, आभीरान् जनान्, दरदान् जनानेव, आर्यान् प्रधानजनान्, सिंहपुरकान्, बर्बरान् तथा तेनैव प्रकारेण एतान् सर्वान् कुम्भे हन्यात्।

सागरकूलं समुद्रतटम्। सागरजलद्रव्याणि समुद्रोत्पन्नानि द्रव्याणि रत्नादीनि। वन्यान्

वनभवान् जनान्, प्रज्ञान् बुद्धियुक्तान्, वार्युपजीविनो जलोपजीविनः, उदकविक्रयेण जीवन्ति ये एतान् मीने हन्यात्। भफलं नक्षत्रफलं कूर्मोपदेशात् कूर्मविभागकथितात् वदेद् ब्रूयात्। यन्नक्षत्रस्थावर्कचन्द्रौ ग्रहणसमये भवतस्तन्नक्षत्रं कूर्मविभागेन यस्मिन् देशे उक्तं तज्जनानां पीडा भवति। तच्च वक्ष्यति—

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजिता देशाः।। इति।

तथा च पराशरः—

'अथ कृत्तिकासु कलिङ्गानामधिपतीन् पीडयति। रोहिण्यां हृच्छस्त्रकोपैः प्रजानाम्, मृगशिरसि सालनिषदकैकयान्, आर्द्रायां शुकान् कुकुरान् पल्वलोपजीविनश्च। पुनर्वसौ पण्यान् रुरुकर्पासं च। पुष्ये गोमतिसिन्धुसौवीरकुरुपाञ्चालान्। सार्पे काशिकलिङ्गसिंहलकराजन्यांन्। पित्र्ये दण्डकनिवासिनः पितृधान्यं च। भाग्ये सुभगान् काम्वोजान् सुराष्ट्राधिपतींश्च। अर्यम्णे मगधान् यवनान्। हस्ते दशार्णान्। त्वाष्ट्रे मद्रान् कुरुक्षेत्रं च। वायव्ये काश्मीरोशीनरान् वाजिनश्च। विशाखायां वृक्षाश्मकान्। मैत्रे काशिकोशलान्। ज्येष्ठायां ज्येष्ठनृपतीन् दरदांश्च। मूले क्षुद्रमालवकयौधेयान्। आप्ये पञ्चनदान् सुवीराधिपतिं च। वैश्वदेवे आर्जुनायनपौण्ड्रशिबिमालवान्। श्रवणे सत्त्वावतंसकांश्च। वासवे धनिनः शकानण्डजांश्च। वारुणे कैकयपाञ्चालराजांश्च। अजे वङ्गमगधकुकुरान्। अहिर्बुध्नेऽश्मकेक्षुक्षुद्रकत्रिगर्त्तान्। पौष्णे च वैदेहानर्त्तकसिन्धुसौवीरान्। आश्विनेऽश्वानश्वजीविनश्च। याम्ये कलिङ्गान् दक्षिणानुपतापयति। तथा च समाससंहितायाम्—

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।
सहितं ग्रहणं येन तद्देशश्चाप्नुयात् पीडाम्।। इति।।४२।।

अथार्कशनिनोर्दश ग्रासा भवन्ति, तेषां संज्ञामाह—

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः ।
आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ।।४३।।

सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आरोह, आघ्रात, मध्यतम, तमोऽन्त्य—ये सूर्य और चन्द्र के दश ग्रास होते हैं।।४३।।

सव्यः, अपसव्यः, लेहः, ग्रसनम्, निरोधः, अवमर्दनम्, आरोहः, आघ्रातम्, मध्यतमः, तमोऽन्त्य—इत्येवं प्रकारास्ते दश ग्रासा इति।।४३।।

अथैतेषां लक्षणानि सफलानि। तत्र सव्यापसव्ययोराह—

सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च ।
अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः ।।४४।।

यदि ग्रहण-समय में सूर्य या चन्द्र के सव्य (दक्षिण भाग) में होकर राहु गमन करे तो संसार जल से पूर्ण, हर्षित और भयरहित होता है। यदि अपसव्य (वाम भाग) में

होकर गमन करे तो राजा और चोरों को पीड़ित करते हुये प्रजा का नाश करता है।।४४।।

तमसि राहौ सव्यगते चन्द्रस्यार्कस्य वा दक्षिणभागगते जगज्जलप्लुतं वारिणा प्लावितं मुदितं हृष्टमभयं भयरहितं च भवति। अपसव्ये वामभागगते राहौ नरपते राज्ञस्तस्कराणां चौराणामवमर्दै: पीडनै: प्रजानाश: संक्षयो भवति।

अथ चन्द्रग्रहणे आग्नेय्यां राहोरागमनं सव्य:। ऐशान्यामपसव्य:। अर्कग्रहणे वायव्ये सव्यो नैर्ऋत्यामपसव्य इति।।४४।।

अथ लेहस्याह—

जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः ।
प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ॥४५॥

यदि सूर्य या चन्द्रबिम्ब को जिह्वा के समान राहु चाटता हो तो 'लेह' नाम का ग्रास होता है। इसमें पृथ्वी हर्षित, सम्पूर्ण प्राणियों से युत और जलपूर्ण होती है।।४५।।

तिमिरनुदः। चन्द्रस्यार्कस्य वा तिमिरमन्धकारं नुदति प्रेरयतीति तिमिरनुदस्तस्य परित: समन्ततो मण्डलं जिह्वोपलेढि, जिह्वया रसनयोपलीढमिव दृश्यते तथा स ग्रासो लेह इति। तत्र तस्मिन् ग्रासे मही भू: प्रमुदितसमस्तभूता प्रकर्षेण मुदिता हर्षिता: समस्ता भूता जना यस्यां तथा प्रभूततोया वारिबहुला च भवति।।४५।।

अथ ग्रसनस्याह—

ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाऽप्यर्द्धम् ।
स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम् ॥४६॥

यदि सूर्य या चन्द्र के बिम्ब के तृतीयांश, चतुर्थांश या अर्द्धांश राहु से ग्रसित होता हो तो 'ग्रसन' नामक ग्रास होता है। इसमें स्फीत (बहुत ऐश्वर्यशाली) नृप का धननाश होता है तथा स्फीत देश में रहने वालों को पीड़ा होती है।।४६।।

त्र्यंशस्त्रिभाग:। पादश्चतुर्भाग:। अर्द्धं वा बिम्बार्द्धं गृह्यते तमसाऽऽच्छाद्यते तदा स ग्रासो ग्रसनमिति। तस्मिन् ग्रासे स्फीतानामतिविभवयुक्तानां नृपाणां राज्ञां वित्तहानिर्धननाशो भवति। तथा स्फीतानां सधनानां च देशानां पीडा भवति।।४६।।

अथ निरोधस्याह—

पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत् ।
स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम् ॥४७॥

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल को चारो तरफ से ग्रसित कर राहु मध्य-प्रदेश में पिण्डाकार होकर स्थित हो तो 'निरोध' नामक ग्रास होता है। यह भूमिस्थ सभी प्राणियों को आनन्द देने वाला होता है।।४७।।

तमो राहु: पर्यन्तेषु गृहीत्वा समन्तत: सञ्छाद्य मध्ये मध्यभागे पिण्डीकृतं घनतरं

भूत्वा यदि तिष्ठेत्तदा स ग्रासो निरोधसंज्ञो विज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च सर्वभूतानां निःशेषप्राणिनां प्रमोदकृत् हर्षकृत्।।४७।।

अथावमर्दनमाह—

अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत्।
हन्यात् प्रधानभूपान् प्रधानदेशांश्च तिमिरमयः ॥४८॥

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के सम्पूर्ण बिम्ब को ढककर राहु बहुत काल तक स्थिर रहे तो 'अवमर्द' नामक ग्रास होता है। यह प्रधान राजा और देश का नाश करता है।।४८।।

तिमिरमयो राहुर्निःशेषं समग्रमेव मण्डलं सञ्छाद्य स्थगयित्वा यदि चिरं बहुकालं तिष्ठेत् तदाऽवमर्दनं नाम ग्रासस्तेन ग्रासेन प्रधानभूपान् प्रधानान् नृपान् प्रधानांश्च देशान् हन्याद् घातयेत्।।४८।।

अथाऽऽरोहणस्याह—

वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः।
आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ॥४९॥

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहण के बाद उसी क्षण में पुनः राहु (ग्रहण) दिखाई दे तो 'आरोहण' नामक ग्रास होता है। यह राजाओं में परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर भयंकर स्थिति लाता है।

विशेष—यह आरोहण नामक ग्रास गणित से नहीं आ सकता। जब कभी अचानक ऐसी स्थिति दृष्टिगोचर हो तो उसको उत्पातरूप ही समझना चाहिये। आचार्य ने पूर्व-शास्त्रानुसार यह लक्षण यहाँ पर बताया है।।४९।।

ग्रहे ग्रहणे वृत्ते निवृत्तेऽतिक्रान्ते भूयः पुनर्यदि चेत्तमो राहुस्तत्क्षणमावृत्य पुनश्छादयन् तिष्ठेत् तदाऽऽरोहणं नाम ग्रासः। तच्च राज्ञां नृपाणामन्योऽन्यमर्दनैः परस्परावमर्दनैर्भयं भीतिं करोति। इतिशब्दः प्रकारार्थे। एतदौत्पातिकम्। यतो नोत्पद्यते गणितगोलवासनया। आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम्।।४९।।

अथाऽघ्रातस्याह—

दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥५०॥

यदि वाष्पयुत निःश्वासवायु से मलिन दर्पण की तरह सूर्य या चन्द्रमण्डल का एक देश दिखाई दे तो 'आघ्रात' नामक ग्रास होता है। यह वृष्टि और प्राणियों की वृद्धि करता है।।५०।।

दर्पण आदर्श इवैकदेशे एकस्मिन् स्थाने सबाष्पेण सोष्मणा निःश्वासमारुतेन श्वास-वायुना चोपहतो दृश्येतावलोक्येत तदाऽऽघ्रातं नाम ग्रासः। तच्च जगतः सुवृष्टिवृद्ध्यावहं शोभनां वृष्टिं वृद्धिं च वहति जगतो जनपदस्य।।५०।।

अथ मध्यतमस आह—

मध्ये तम:प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परित: ।
तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥५१॥

यदि छाद्य विम्व का मध्य भाग राहु से ढका हो और चारो तरफ निर्मल हो तो 'मध्यतम' नामक ग्रास होता है। यह मध्यदेश का नाश और पेट की वीमारी उत्पन्न करता है।

विशेष—छाद्य (सूर्य) विम्व से छादक (चन्द्र) विम्व के अल्प होने के कारण यह ग्रास सूर्यग्रहण में ही हो सकता है; जवकि छाद्य (चन्द्र) विम्व से छादक (भूमा) विम्व के अत्यधिक होने के कारण चन्द्रग्रहण में ऐसी स्थिति कभी नहीं हो सकती। अत: सूर्यग्रहण वलयग्रहण और चन्द्रग्रहण खग्रास होता है।।५१।।

तमो राहुर्मध्येऽन्तर्यदि प्रविष्टो दृश्यते परित: समन्ततो मण्डलं वितमस्कं तमोरहितं निर्मलं भवति तदा ग्रासो मध्यतमो नाम। तच्च मध्यदेशस्य नाशं विघातं करोति तथा कुक्ष्यामयभयं कुक्षिरोगभयं च।

अस्य ग्रासस्य संस्थानमर्कग्रहण एव सम्भवति छादकस्येन्दोरल्पत्वात्। चन्द्रग्रहणे छाद्यस्याल्पत्वाच्छादकस्य च भूच्छायाया महत्त्वान्न सम्भवति।।५१।।

अथ तमोऽन्त्याख्यस्याह—

पर्य्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये ।
सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥५२॥

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के प्रान्त भाग में अधिक और मध्य भाग में थोड़ा राहु दृष्टिगोचर हो तो 'तमोऽन्त्य' नामक ग्रास होता है। इसमें धान्यों को ईति का और प्राणियों को चोर का भय होता है।।५२।।

तम: पर्यन्तेषु बिम्वपरिध्यन्तर्भागेषु। अतिबहुलमतिघनं मध्ये मध्यभागे स्वल्पमत्यल्पं दृश्यते तदा स ग्रासस्तमोऽन्त्याख्यो नाम। अस्मिंस्तमोऽन्त्याख्ये ग्रासे सस्यानामीतिभयं भवति। ईतय: सस्योपद्रवा:। तथा च—

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका: शलभा: शुका:।
अत्यासन्नाश्च राजान: षडेता ईतय: स्मृता:।।

आभ्य: सस्यानां भयं तथा तस्कराणां चौराणां भयं भवति। चौरकृता भीतिर्भवतीत्यर्थ:। तथा च पराशर:—

'तद्यथा—देशोपप्लवा ग्रसनारोहणोपघ्रातोन्मर्दननिरोधपरिलेहनापसव्यसव्यान्तर्मध्यतम उपप्लवाश्च। तत्रार्धत्रिभागग्रहणं ग्रसनं प्रख्यातनृपतिविप्रच्युताय। मण्डलमध्ये ग्रहावर्त्तनमाराहेणं नरपतिक्षोभकरं प्रजानाशनम्। ईषद् ग्रहणमुपघ्रातं जगद्धिताय। उन्मर्दनं चिरमर्केन्दुसकलमण्डलाक्रमणं प्रजाविद्रवकरम्। सर्वमण्डलधूमावरणं निरोधस्तदरोगक्षेमसुभिक्ष-

लक्षणम्। समन्ताद् जिह्वयेवाभिलेहनं परिलेहनं समानफलम्। पूर्वेण दक्षिणमपसव्यं प्रजा-भयाय। अप्रदक्षिणं सव्यमभयाय। मण्डलान्तर्मध्ययोर्ग्रहणमन्तर्मध्यं नृपतिक्षोभकरम्। महा-तमसाऽऽवरणं तम उपप्लवः परस्परं म्लेच्छसङ्करकृदि'ति। तथा च कश्यपः—

सव्यगे तु सुभिक्षं स्यादपसव्ये तु तस्कराः।
लीढे प्रजाः प्रहृष्टाः स्युर्ग्रसनं लोकनाशनम्।।
निरोधे जनहर्षः स्यादारोहे नृपसंक्षयः।
आमर्दितं चापमर्दे स्वयं क्षुभ्यन्ति पार्थिवाः।।
स्वच्छं वर्णप्रदेशं यदाघ्रातं तद्विघातयेत्।
मध्ये तमसि सन्दृष्टे पीडयेद् मध्यदेशजान्।।
दृष्टे तमसि पर्यन्ते सस्यानामीतिजं भयम्।। इति।।५२।।

अथ राहोर्वर्णान् वक्तुकाम आह—

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ।।५३।।

हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ।।५४।।

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा।
आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ।।५५।।

कापोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्।
कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ।।५६।।

विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय।
सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि ।।५७।।

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः ।।५८।।

पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।
बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ।।५९।।

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहणकाल में राहु का वर्ण श्वेत हो तो क्षेम, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। अग्नि के समान वर्ण हो तो अग्निभय और अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले (लोहार, सोनार आदि) को पीड़ा होती है। हरित वर्ण हो तो रोगों की वृद्धि और ईतियों के द्वारा धान्यों का नाश होता है। पीला हो तो जल्दी चलने वाले जानवर (ऊँट आदि) और म्लेच्छ जाति का नाश तथा दुर्भिक्ष होता है। किञ्चित् लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष, वर्षा का अभाव और पक्षियों को पीड़ा होती है। धूम्र वर्ण हो तो क्षेम, सुभिक्ष और थोड़ी

वृष्टि होती है। कबूतर के समान लाल, कपिल और श्याम वर्ण हो तो क्षुधा और दुर्भिक्ष का भय होता है। कबूतर के समान अथवा कृष्ण वर्ण हो तो शूद्रों के लिये रोग करने वाला होता है। निर्मल मणि की तरह पीत वर्ण हो तो वैश्यों का नाश और सुभिक्ष करने वाला होता है। अग्निज्वाला की तरह दिखाई दे तो अग्नि का भय करता है। गेरू के समान दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि दूर्वादल की तरह श्याम वर्ण या हल्दी की तरह पीत वर्ण का दिखाई दे तो मरकी पड़ती है। यदि पाटलपुष्प की तरह (श्वेत के साथ लोहित) हो तो वज्र गिरने का भय रहता है और यदि पांशु (धूलि) या विलोहित (मिश्रित) वर्ण का राहु दृष्टिगोचर हो तो क्षत्रियों का और वृष्टि का नाश करने वाला होता है।।५३-५९।।

राहौ तमसि श्वेते शुक्लवर्णे दृष्टे क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणानां च पीडां विनिर्दिशेत्। अग्निवर्णेऽनलवर्णे अग्निसदृशे अग्निभयं हुताशभीतिस्तथा हुताशवृत्तीनामग्निवार्त्तानां लोहकारसुवर्णकारादीनां पीडा भवति।

हरित इति। हरिते हरितवर्णे शुकाभे राहौ रोगाणामुल्बणता रोगप्राचुर्यम्। सस्यानामीतिभिरतिवृष्टिप्रभृतिभिरुपद्रवैश्च विध्वंसो विनाशो भवति। कपिले पिङ्गलाभे राहौ शीघ्रगाणां सत्त्वानामुष्ट्रादीनां तथा म्लेच्छानां ध्वंसो विनाशो दुर्भिक्षं च भवति। अथशब्द: स्वार्थे।

अरुणकिरणानुरूपे अरुणरश्मिसदृशे ईषल्लोहितवर्ण इत्यर्थ:। दुर्भिक्षावृष्ट्यो भवन्ति। विहगानां पक्षिणां च पीडा भवति। आधूम्रे धूम्रवर्णे क्षेमं सुभिक्षं चादिशेत्। मन्दां स्वल्पां च वृष्टिमादिशेत्।

कापोत: कपोतवर्ण:, तस्मिंस्तथा अरुणे लोहितवर्णे। कपिले कपिलवर्णे। श्यावे श्याववर्णे क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं विनिर्देश्यं वक्तव्यम्। कापोत: कपोतवर्ण: कृष्णवर्णश्च शूद्राणां व्याधिकर: पीडावह:।

विमलकमणेरिव पीता आभा कान्तिर्यस्य स विमलकमणिपीताभ:, नीलपीत इत्यर्थ:। एवंविधे वैश्यध्वंसी वैश्यहन्ता भवेत् स्यात्। सुभिक्षाय भवेत् सुभिक्षकृद्भवेत्। सार्चिष्मति सज्वाले राहावग्निभयं भवति। तथा गैरिकरूपे गैरिकसदृशे युद्धानि संग्रामा भवन्ति।

दूर्वाकाण्डश्यामे दूर्वाकाण्डवत् श्यामे शाद्वलप्रणालतुल्यवर्णे हारिद्रे वा अतिपीतवर्णे मरकं निर्दिशेद्वदेत्। राहुर्यदि पाटलकुसुमोपम: पाटलपुष्पसदृश: श्वेतलोहित इत्यर्थ:। तथाभूतोऽशनिभयसम्प्रदायी अशनिभयं ददाति।

पांशुरूपो विलोहितरूपश्च व्यामिश्रवर्ण: क्षत्रध्वंसाय क्षत्रियाणां नाशाय वृष्टेश्च नाशाय भवति। तथा बालरवेर्बालार्कस्य कमलस्य पद्मस्य व सुरचापस्येन्द्रधनुष: सदृशं तुल्यं रूपं कान्तिं यदा बिभर्त्ति धारयति तदा शस्त्रकोपाय भवति शस्त्रकोपं करोति। युद्धानि भवन्तीत्यर्थ:। तथा च पराशर:—

'वर्ण: कृष्णकपोतोऽतिवर्षाय शूद्रकुक्षिरोगाय तिलतोयवृद्धये दैत्यनाशाय च। पांशुधूमलोहित: क्षत्रियविनाशाय। बालार्कांशुकपिलो दुर्भिक्षाय। हारिद्रो व्याधये। दूर्वाङ्कुरसदृशो

जनमरकाय। पाटलकुसुमसन्निकाशोऽशनिभयदो भवती'ति।।५३-५९।।

अधुनाऽर्कचन्द्रयोर्ग्रहदृष्टिफलान्याह—

पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च।
भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ।।६०।।

शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम्।
रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ।।६१।।

ग्रहणकालिक सूर्य या चन्द्र के ऊपर बुध की दृष्टि हो तो घी, शहद, तेल और राजाओं का नाश करता है। यदि मंगल की दृष्टि हो तो युद्ध, अग्निभय और चोरों का भय करता है। यदि शुक्र की दृष्टि हो तो पृथ्वी पर धान्यों का नाश और अनेक तरह के क्लेश उत्पन्न करता है एवं यदि शनि की दृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अनावृष्टि और चोरों का भय करता है।।६०-६१।।

सौम्यो बुधो ग्रस्तमर्कं चन्द्रं वा पश्यति तदा घृतमधुतैलानां राज्ञां नृपाणां च क्षयाय नाशाय भवति। भौमश्चेत् पश्यति तदा समरविमर्दं युद्धं शिखिकोपमग्निप्रकोपं तस्करभयं चौरभयं च करोति।

शुक्रश्चेत् पश्यति तदा सस्यविमर्दं सस्यविनाशं धरित्र्यां भूमौ नानाक्लेशान् अनेकान् कृच्छ्रान् जनयत्युत्पादयति। रविजः सौरिश्चेत् पश्यति तदाऽवृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं तस्करभयं चौरभीतिं च करोति।।६०-६१।।

अधुना शुभदृष्टेः प्रशंसार्थमाह—

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ।।६२।।

ग्रहदृष्टिवश स्पर्श और मोक्षसमय में जो अशुभ फल कहे गये हैं, गुरु की दृष्टि से उनका जल से प्रज्वलित अग्नि की तरह नाश होता है।।६२।।

पश्यन् ग्रस्तं सौम्य इत्यादिकाभिरवलोकनाभिर्दृष्टिभिर्ग्रहजनितं ग्रहोत्पादितं यदुक्तमशुभं फलं ग्रहणकाले वा तत्सर्वं सुरपतिगुरुणा बृहस्पतिनाऽवलोकिते दृष्टे शमं शान्तिमुपयाति गच्छति। यथा जलैरम्बुभिरिद्धः प्रज्वलितोऽग्निर्हुतवह इति। ग्रहणे प्रमोक्षणे वेत्यत्र विकल्पः कृतः। यदि कदाचिद् ग्रहणकाले योऽसौ दृश्यो द्रष्टा च ग्रहः स एव राश्यन्तरं संक्रामति, तदा तानि फलानि न भवन्ति। तेन ग्रहणे मोक्षान्तदृष्टिफलमभिमतमिति।।६२।।

अथ प्रग्रहणकालाद् मोक्षान्तं यावद् ग्रहणसमयस्तन्मध्ये उत्पातैर्दृष्टैरन्यस्य ग्रहणस्य परिज्ञानमाह—

ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्ध्या।
पवनोल्कापातरजः क्षितिकम्पतमोऽशनिनिपातैः ।।६३।।

यदि सूर्य या चन्द्रग्रहण के समय में वायु, उल्कापात, धूलीवर्षण, भूकम्प, अन्धकार और वज्रपात हो तो क्रमशः छः-छः की वृद्धि करके फिर ग्रहण की सम्भावना कहनी चाहिये। जैसे ग्रहणसमय में वायु-प्रकोप हो तो वर्त्तमान ग्रहण-काल से छः मास बाद, उल्कापात हो तो बारह मास बाद, धूली-वर्षण हो तो अट्ठारह मास बाद, भूकम्प हो तो चौबीस मास बाद, अन्धकार हो तो तीस मास बाद और वज्रपात हो तो छत्तीस मास बाद पुनः ग्रहण कहना चाहिये।।६३।।

अर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते गृहीते सति यद्येत उत्पाता दृश्यन्ते तदा पुनर्भूयो मासषट्क-परिवृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। तद्यथा—प्रग्रहणकाले यदि पवनो वायुर्भवति तदा तेनोत्पातेन पुनः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। एवमुल्कापातेन द्वादशभिः। रजसा पांशु-वर्षेणाष्टादशभिः। क्षितिकम्पेन भूचलनेन मासचतुर्विंशत्या तमसा मासत्रिंशता। अशनिपातेन मासषट्त्रिंशता। तथा च पराशरः—

उपरक्ते यदा सूर्ये प्रबलाद्वाति मारुतः।
मासषट्के तदा विन्द्याद्राहोरागमनं ध्रुवम्।।
उल्कायां द्वादशे मासे रजसाष्टादशे तथा।
भूकम्पे च चतुर्विंशे त्रिंशे तमसि निर्दिशेत्।।
षट्त्रिंशेऽशनिपाते स्यात् सर्वेषु स्यात् षडुत्तरे।। इति।।६३।।

अधुना भौमादीनां ग्रस्तानां फलमाह—

आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ।।६४।।

सूर्य या चन्द्र के साथ एक राशि में अल्पांशान्तर पर होकर कुजादि ग्रहों का यदि शराभाव हो तो वे ग्रस्त कहे जाते हैं। इस तरह यदि मङ्गल ग्रस्त हो तो अवन्ती देश में स्थित मनुष्य, कावेरी और नर्मदा नदी के तीर पर रहने वाले एवं गर्वयुत राजाओं को पीड़ित करता है।।६४।।

अत्रादौ तावत्ताराग्रहाणां ग्रस्तत्वं व्याख्यायते। यो ग्रहोऽर्केण चन्द्रेण वा सहैकराशौ भवति तत्र चेति विक्षिप्तो न भवति, तदा छादनात् ग्राहकस्य ग्रस्त इत्युच्यते। एवं क्षिति-सुतेऽङ्गारके ग्रस्ते आवन्तिका इत्यवन्तिदेशभवा जनपदाः। तथा कावेरी नदी नर्मदा च तयो-स्तटं तीरं ये समाश्रितास्तन्निवासिनः। तथा दृप्ता दर्पिष्ठा ये मनुजपतयो मनुष्याणां मनुजानां पतयो राजानः, एते सर्व एव पीड्यन्ते।।४६।।

अथ बुधस्याह—

अन्तर्वेदीं सरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम्।
स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ।।६५।।

यदि बुध ग्रस्त हो तो अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना के मध्य का देश), सरयू, नेपाल, पूर्वी समुद्र, शोण नद, स्त्री, राजा, योद्धा, बालक, विद्वान्—इन सबों का नाश करता है।

अन्तर्वेदी गङ्गायमुनयोर्मध्यम्। सरयू पूर्वनदी। नेपालदेशः। पूर्वसागरः पूर्वसमुद्रः। शोणो नदः। स्त्रियो योषितः। नृपा राजानः। योधाः संग्रामकुशलाः। कुमारा बालाः। प्रथम-वयसश्च। एतान् सर्वान् विद्वद्भिः पण्डितैः सह बुधो ग्रस्तो हन्ति घातयन्ति।।६५।।

अथ जीवस्याह—

ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः ।
सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥६६॥

यदि गुरु ग्रस्त हो तो पण्डित, राजा, मन्त्री, हस्ती, घोड़ा, सिन्धुनद के तट पर रहने वाले, उत्तर दिशा में रहने वाले—इन सबों का नाश करता है।।६६।।

जीवे बृहस्पतौ ग्रहणोपगते ग्रहणं प्राप्ते विदुषां पण्डितानां नृपाणां राज्ञां मन्त्रिणां सचिवानां गजानां हस्तिनां हयानामश्वानां च ध्वंसो विनाशो भवति। तथा सिन्धुर्नाम नदी तत्तवटवासिनो ये तेषामपि। तथोदग्दिशं संश्रितानामुत्तरदिग्वासिनां जनानां च ध्वंस एव भवति।।६६।।

अथ शुक्रस्याह—

भृगुतनये राहुगते दाशेरककैकयाः सयौधेयाः ।
आर्यावर्त्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥६७॥

यदि शुक्र ग्रस्त हो तो दाशेरक, कैकय (काश्मीर), यौधेय और शिबि देश में स्थित मनुष्य, स्त्री-गण, मन्त्री—इन सबों को पीड़ित करता है।।६७।।

भृगुतनये शुक्रे राहुगते ग्रस्ते सति दाशेरका जनाः। कैकयाः सयौधेयाः सह यौधेयैर्जनैः। आर्यावर्त्ताः प्रधानदेशजनाः। शिबयो जनाः। स्त्रियो योषितः। सचिवा मन्त्रिणः। गणाः समूहाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते उपतप्यन्ते।।६७।।

अथ सौरस्याह—

सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रिकधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः ।
गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥६८॥

यदि शनैश्चर ग्रस्त हो तो मरुभूमि, पुष्कर और सौराष्ट्र देश के निवासी जन, अर्बुद पर्वत पर निवास करने वाले मनुष्य, अन्त्यजन (निकृष्ट जाति के मनुष्य), गोस्वामी, पारियात्र पर्वत पर रहने वाले—इन सबों का नाश होता है।।६८।।

सौरे शनैश्चरे ग्रस्ते मरुभवा मरुभूमावुत्पत्तिर्येषां ते। पुष्करजनाः। सौराष्ट्रिकाः। धातवो धातुद्रव्याणि। अर्बुदजनाः अर्बुदः पर्वतस्तत्र ये निवसन्ति। अन्त्यजना निकृष्टजनाः। गोमन्तो गोमिनः, केचिद् गोनन्द इति पठन्ति, गोनन्दा जनाः। पारियात्राश्रिताश्च पारियात्रः पर्वतस्तत्र

ये आश्रिताः स्थिता एते सर्व आशु क्षिप्रमेव नाशं व्रजन्ति गच्छन्ति।।६८।।

अथ मासफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव कार्त्तिकस्याह—

कार्त्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान्
कल्माषानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत्।
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो
दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥६९॥

यदि कार्तिक की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो अग्नि से आजीविका करने वाले (लोहार, सोनार आदि), मगध देश में रहने वाले, पूर्व दिशा के राजा, कोशल, कल्माष, शूरसेन और काशी में रहने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है। साथ ही मन्त्री और भृत्यों के साथ कलिङ्ग देश के राजा का नाश करता है एवं क्षत्रियों को सन्तापित करता है। साथ ही संसार में क्षेम और सुभिक्ष करता है।।६९।।

कार्तिकस्येयं पौर्णमास्यामावास्या वा कार्त्तिकी। तस्यां कार्त्तिक्यां तमो दृष्टं राहुर्यदि दृश्यते तदाऽनलोपजीविनोऽग्निवार्त्ताः सुवर्णकारप्रभृतयः। मगधा जनाः। प्राच्याधिपाः पूर्वस्यां दिशि ये अधिपतयो राजानस्तान् तथा कोशलाञ्जनान्, कल्माषान् जनान्। अथशब्दः स्वार्थे, तांश्च शूरसेनसहितान् शूरसेना जनास्तैः सहितान् तथा काशींश्च जनान् एतांश्च सर्वान् सन्तापयेदुपतापयेत्। तथा कलिङ्गदेशे यो नृपती राजा तं सामात्यभृत्यम्। अमात्यैर्मन्त्रि-भिर्भृत्यैश्च सर्वकर्मकरैः सहितमाश्वेव क्षिप्रं हन्यान्नाशयेत्। तथा क्षत्रियतापदं क्षत्रियाणां राजन्यानां तापं ददाति। क्षेमं सुभिक्षान्वितं सुभिक्षसंयुक्तं जनयत्युत्पादयति।।६९।।

अथ मार्गशीर्षस्याह—

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च।
ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च ॥७०॥

यदि मार्गशीर्ष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, कौशल और पुण्ड्र देश में रहने वाले, मृग (वन के जन्तु), पश्चिम देशवासी मनुष्य, सोमरस का पान करने वाले—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में सुवृष्टि, क्षेम और सुभिक्ष करता है।।७०।।

सौम्ये मार्गशीर्षमासे राहुर्दृष्टः काश्मीरकान् जनान्। कोशलांश्च सपुण्ड्रान् पुण्ड्रैर्जनैः सहितान्। मृगा अरण्यप्राणिनस्तानपि। अपरान्तकान् जनान्। एतानपि हन्यान्नाशयेत्। तथा ये सोमपाः सोमं पीतं यैस्ते कृतयज्ञास्तांश्च निहन्ति। सुवृष्टिकृत् शोभनां वृष्टिं करोति। क्षेमसुभिक्षकृच्च क्षेमं सुभिक्षं च करोति।।७०।।

अथ पौषस्याह—

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥७१॥

यदि पौष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों में उपद्रव, सैन्धव, कुकुर और विदेह देशवासियों का नाश होता है तथा संसार में थोड़ी वृष्टि, भय और दुर्भिक्ष होता है।।७१।।

पौषे मासे तमसि दृष्टे द्विजानां ब्राह्मणानां क्षत्रजनानां चोपरोध उपद्रवो भवति। तथा सैन्धवा जनाः सैन्धवेत्याख्या नाम येषां ते। कुकुराश्च जना एव सह सैन्धवाख्यैर्ये कुकुरा वर्त्तन्ते ते ससैन्धवाख्याः कुकुराः। तथा विदेहजनाः। एते सर्वे ध्वंसं विनाशं व्रजन्ति गच्छन्ति। अत्र च मन्दामल्पां वृष्टिं तथाऽसुभिक्षयुक्तं दुर्भिक्षसहितं भयं विन्द्याज्जानीयात्।।७१।।

अथ माघ आह—

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्
स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।
वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहु-
र्वृष्टिञ्च कर्षकजनाभिमतां करोति ।।७२।।

यदि माघ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो माता-पिता के भक्त, वसिष्ठ-गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण, स्वाध्याय और धर्म में निरत, हाथी, घोड़ा, वङ्ग, अङ्ग और काशी देश में रहने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है तथा संसार में किसानों की इच्छा के अनुकूल वृष्टि होती है।।७२।।

माघमासे राहुर्दृष्टो मातृपितृभक्तान् जननीजनकतत्परान्, तथा वसिष्ठगोत्रान् वसिष्ठो गोत्रं येषां द्विजानीनां तान्, तथा स्वाध्याये पाठे धर्मे च निरतान् सक्तान्, करिणो हस्तिनः, तुरङ्गानश्वान्, वङ्गान् जनान् अङ्गानपि, काशिमनुजान् काशिदेशे मनुष्यान् अथवा मनुज-शब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते। वङ्गान् मनुजानङ्गमनुजान् काशिमनुजांश्च सर्वान् दुनोत्युपतापयति। तथा कर्षकजनानां कृषिकराणामभिमताभीष्टां वृष्टिं च करोति।।७२।।

अथ फाल्गुन आह—

पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तिकमेकलानाम्।
नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च ।।७३।।

यदि फाल्गुन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो बङ्गाल, अश्मक, अवन्ती और मेकल देश में रहने वाले, नाचने वाले, धान्य, उत्तम स्त्री, धनुष बनाने वाले शिल्पी, क्षत्रिय, तपस्वी—इन सबों को पीड़ित करता है।।७३।।

फाल्गुने मासि पर्व ग्रहणं वङ्गानां जनानामश्मकानामावन्तिकानां मेकलानां पीडाकर-मुपतापजनकम्। तथा नृत्यज्ञानां नाट्यविदां सस्यानां प्रवराङ्गनानां प्रधानस्त्रीणां धनुष्कराणां शिल्पिनां क्षत्राणां क्षत्रियाणां तपस्विनां तपोनिरतानामेषां सर्वेषां पीडाकरमेव।।७३।।

अत्र चैत्र आह—

चैत्र्यां तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान्
रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान् ।

पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च
तापःस्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥७४॥

यदि चैत्र मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो चित्रकार, लेखक, गान विद्या जानने वाले, रूपोपजीवी (वेश्या आदि), निगम (वेद) को जानने वाले, सोना बेचने वाले, पौण्ड्र, औड्र, कैकय और अश्मक देश में रहने वाले पीड़ित होते हैं। संसार में अमरप (इन्द्र) विचित्रवर्षी (चित्रवर्षी = कहीं वृष्टि और कहीं नहीं वृष्टि करने वाले) होते हैं।।७४।।

चैत्र्याममावास्यायां पौर्णमास्यां वा चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः, लेखका लिपिज्ञाः, गेयसक्ता गीतरता एतान्। तथा रूपोपजीविनो वेश्याजनाः। निगमा वेदपाठकाः। हिरण्यपण्याः सुवर्णविक्रयिणः एतानपि। तथा पौण्ड्रा जनाः। औड्राः कैकया एते सर्व एव जनाः। अथशब्दः पादपूरणे। अश्मकाश्च जना एव, एतान् सर्वान् तापः सन्तापः स्पृशति। एते पीडिता भवन्तीत्यर्थः। अत्रास्मिन् वर्षे अमरप इन्द्रो विचित्रवर्षी। विचित्रं नानाप्रकारं वर्षति। क्वचिन्न वर्षति क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः। केषाञ्चित् पाठः—अमरराडपि चित्रवर्णः।।७४।।

अथ वैशाख आह—

वैशाखमासे ग्रहणे विनाश-
मायान्ति कर्पासतिलाः समुद्गाः ।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः
सोपप्लवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥७५॥

यदि वैशाख मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कपास, तिल और मूंग का नाश होता है। इक्ष्वाकु, यौधेय और कलिङ्ग देश में उपद्रव होते हैं; किन्तु संसार में सुभिक्ष होता है।।७५।।

वैशाखमासे ग्रहणे कर्पासास्तिलाः समुद्गा मुद्गसहिता एते विनाशमायान्ति गच्छन्ति। तथेक्ष्वाकवो जना यौधेयाः शका कलिङ्गा एते सर्वे सोपप्लवाः सोपद्रवाः। किन्तु पुनरस्मिन् ग्रहणे सुभिक्षं च भवति।।७५।।

अथ ज्येष्ठ आह—

ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च ।
प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसङ्घाः ॥७६॥

यदि ज्येष्ठ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो राजा, ब्राह्मण, राजपत्नी, धान्य, वृष्टि, महागण, उत्तर दिशा में रहने वाले मनुष्य, साल्व देशवासी, निषाद—इन सबों का नाश होता है।।७६।।

ज्येष्ठे मासि पर्वणि ग्रहणे नरेन्द्रा राजानो द्विजा ब्राह्मणा राजपत्न्यो राजस्त्रियः।

सस्यानि प्रसिद्धानि। वृष्टिर्वर्षणं च। महागणा महासमूहाश्च। एते सर्वे प्रध्वंसं नाशमायान्ति नाशं प्राप्नुवन्ति। तथा च ये नराः सौम्या दर्शनीया उत्तरदिग्वासिन इति। एते साल्वैः समेताः सहिताश्च निषादानां प्राणिघातकानां संघाः समूहा प्रध्वंसमायान्ति।।७६।।

अथाऽऽषाढ आह—

आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान्।
गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ॥७७॥

यदि आषाढ़ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो उदपान (वापी, कूप, तालाब) के वप्र (तट) में रहने वाले मनुष्य, नदी का प्रवाह, फल-मूल खाकर समय-यापन करने वाले, गाान्धार, काश्मीर, पुलिन्द, चीन—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में मण्डलवृष्टि (कहीं-कहीं वर्षा) होती है।।७७।।

आषाढपर्वण्याषाढे मासे ग्रहणे उदपानं जलाधारो वापीकूपतडागादिस्तस्य चोदपानस्य वप्रस्तटः। नदीप्रवाहः पुलिनविस्तरम्। फलमूलवार्त्ताः फलानि मूलानि वार्त्ता वर्तनं वृत्तिर्येषां ते। तथा गान्धारा जनाः। काश्मीराः। पुलिन्दाः। चीनाः। एतान् सर्वान् हतान् नष्टानिति वदेत्। सर्व एव नश्यन्तीत्यर्थः। अस्मिन् पर्वणि मण्डलवर्षं भवति। क्वचित् क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः।। ७७।।

अथ श्रावण आह—

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रजान्
गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे।
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमा-
नन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥७८॥

यदि श्रावण मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र, गान्धार, मध्य देश, कम्बोज—इन देशों में रहने वाले, एकशफ (घोड़ा, गदहा), शरद ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न—इन सबों का नाश करता है; किन्तु उक्त देशों से अन्यत्र के मनुष्यगण अत्यधिक अन्न की उत्पत्ति से सुखी होकर सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर लेते हैं।।७८।।

श्रावणे मासि ग्रहो ग्रहणं दृष्टः काश्मीरान् जनान् सपुलिन्दचीनयवनान् पुलिन्दचीनजा जना यवनास्तैः सहितान्। तथा कुरुक्षेत्रजान् जनान्। गान्धारानपि। मध्यदेशसहितानेतान् सर्वान् हन्यात् नाशयेत्। तथा काम्बोजान् जनान्। एकशफांश्च अश्वगर्दभान्। चशब्दः समुच्चये। न केवलं यावत् शारदमपि शारदधान्यादिकान् एतानपि हन्ति। इमान् यथोक्तान् काश्मीरादीन् त्यक्त्वा विहायान्यत्र देशेषु प्रचुरेण प्रभूतेनान्नेन ये हृष्टाः प्रहर्षिता मनुजा नरास्तैर्धात्रीं भूमिमावृतां व्याप्तां करोति।।७८।।

अथ भाद्रपद आह—

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान्
म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाश्मकांश्च ।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति
सुभिक्षकृद् भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥७९॥

यदि भाद्रपद मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कलिङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर, दरद, अश्मक—इन देशों का और स्त्रियों के गर्भों का नाश करता है तथा संसार में सुभिक्ष होता है।।७९।।

असुरो राहुर्भाद्रपदे मास्यभ्युपेत आगतः कलिङ्गान् जनान्। वङ्गान्। मगधान्। सुराष्ट्रान्। म्लेच्छान्। सुवीरान्। दरदान्। अश्मकान्। एतान् सर्वान्निहन्ति घातयति। केचिद्दरदाञ्छकानिति पठन्ति। तथा स्त्रीणां योषितां गर्भान् निहन्ति। सुभिक्षकृत् सुभिक्षं करोति।।७९।।

अथाश्वयुज्याह—

काम्बोचीनयवनान् सह शल्यहृद्भि-
र्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात् ।
आनर्त्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्
दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥८०॥

यदि आश्विन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कम्बोज, चीन और यवन देश में रहने वाले, शल्यचिकित्सक, बाह्लीक देश में रहने वाले, सिन्धु नद के तट में रहने वाले, आनर्त और पौण्ड्र देश में रहने वाले, वैद्य, किरात—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में अधिक सुभिक्ष होता है।।८०।।

असुरो राहुरश्वयुजि मासि दृष्टः काम्बोजान् जनान्। चीनान् यवनान् एतान् सर्वान् सह शल्यहृद्भिः शल्यहर्तृभिर्व्रणचिकित्सकैः सह। तथा वाह्लीकान् जनान्। सिन्धोर्नद्यास्तटे ये निवसन्ति जनास्तांश्च। हन्यात् घातयेत्। चशब्दः सर्वत्रात्र समुच्चये। आनर्त्ता जनाः। पौण्ड्राः। भिषजो वैद्याः। तथा किराता जनाः। एतान् सर्वान् हन्यान्नाशयेत्। तथा भूरिसुभिक्षकृच्च। भूर्यतिबाहुल्येन सुभिक्षं करोति। तथा च समाससंहितायाम्—

अश्वयुग्माघकार्त्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
राहुरवशिष्टमासेष्वशुभकरो वृष्टिधान्यानाम्।।

तथा च पराशरः—'तत्र कार्त्तिके सुभिक्षक्षेमाय काशिकोशलशूरसेनाऽभावाय च। मार्गशीर्षे मृगपौण्ड्रसोमभयाय वृष्टये च। पौषे भयदुर्भिक्षब्रह्मक्षत्रोपरोधाय। माघे शस्त्रप्रकोपाय प्रावृड्वृद्धये वङ्गानर्त्तकयवनकाशिदेशोत्सादनकृत्। फाल्गुनेऽन्नसम्पच्च। नटनर्त्तकधनुष्करसस्यविनाशाय चैत्रे। वैशाखेऽश्मकपौण्ड्रौड्रम्लेच्छवृक्षसस्याभावाय। ज्येष्ठे ज्येष्ठपत्नीगणमुख्यसस्योपद्रवाय। साल्वनिषादवृष्टिसस्यघ्नमाषाढे। श्रावणे क्षेमसुभिक्षमन्यत्र चीनकाश्मीर-

पुलिन्दगान्धारेभ्यः। भाद्रपदे मगधदरदकलिङ्गवङ्गाऽनयाय सस्यक्षेमाय च। आश्वयुग्ग्रहणे सुभिक्षक्षेमाय आवन्तिवाह्लीकानर्त्तकाम्बोजसैन्धवाऽऽमयाये'ति।।८०।।

अथार्कशशिनोर्दश मोक्षा भवन्ति तेषां नामान्याह—

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः सञ्छर्दनं च जरणं च।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥८१॥

दक्षिण हनु, वाम हनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, वाम पायु, सञ्छर्दन, जरण, मध्य विदरण एवं अन्त्य विदरण—ये दश प्रकार के सूर्य और चन्द्र के मोक्ष होते हैं।।८१।।

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः। द्वौ द्वौ वारौ द्विर्द्विः। हनुभेदौ द्वौ। कुक्षिभेदौ द्वौ। पायुभेदौ द्वाविति षट्। सञ्छर्दनं च जरणं च। चकारः समुच्चये। तथा मध्यविदरणमन्त्यविदरणम्। इत्येवंप्रकाराः शशिसूर्ययोश्चन्द्रार्कयोर्दश मोक्षाः।।८१।।

अथैतेषां लक्षणं सफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव दक्षिणहनुभेदस्य लक्षणं फलं चाह—

आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः।
सस्यविमर्दो मुखरुग् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥८२॥

यदि चन्द्र के ग्रहण में अग्निकोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् अग्निकोण में मोक्ष हो तो दक्षिण हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें धान्य का नाश, मुख का रोग, राजा को पीड़ा और सुवृष्टि होती है।।८२।।

आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि यद्यपगमनं निवर्त्तनं तमः करोति तदा स मोक्षो दक्षिण-हनुभेदसंज्ञितो दक्षिणहनुभेद इति तस्य संज्ञा। कस्य मोक्षः शशिनश्चन्द्रस्य। चन्द्रग्रहण-मत्रोपलक्षणार्थमर्कस्यापि यतो वक्ष्यति। 'एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करस्यापि' इति। अस्मिन् मोक्षे सस्यविमर्दः सस्यनाशो भवति। तथा मुखरुग्वदनपीडा। नृपस्य राज्ञः पीडा स्याद्भवेत्। सुवृष्टिः वृष्टिश्च भवेत्। तथा च कश्यपः—

दक्षिणो हनुभेदः स्याच्चाग्नेय्यां यदि गच्छति।
सस्यनाशं च कुरुते नृपभङ्गं सुदारुणम्।। इति।।८२।।

अथ वामहनुभेदलक्षणं सफलमाह—

पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी।
मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विन्द्यात् सुभिक्षं च ॥८३॥

यदि पूर्वोत्तर (ईशान कोण) में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् ईशान कोण में मोक्ष हो तो वाम हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमार को भय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष होता है।।८३।।

पूर्वोत्तरेणैशान्यां दिशि अपगमनं राहोर्यदि भवति तदा स वामो हनुभेदो नाम मोक्षः। स च नृपकुमाराणां नृपपुत्राणां भयदायी भवति भीतिं ददाति। तस्मिंश्च मोक्षे मुखरोगं

वक्त्रपीडां शस्त्रभयं संग्रामभीतिं च विन्द्याज्जानीयात्। सुभिक्षं च भवति। तथा च कश्यप:—

पूर्वोत्तरेऽपरो भेदो नृपपुत्रभयप्रद:।। इति।।८३।।

अथ दक्षिणकुक्षिविभेदलक्षणं सफलमाह—

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्ष:।
पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपव: ॥८४॥

यदि चन्द्र-ग्रहण में दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो दक्षिण कुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमारों को पीड़ा और दक्षिण दिशा में स्थित शत्रुओं में लड़ाई होती है।

विशेष—गणित के द्वारा दक्षिण दिशा में होकर राहु का निकलना असम्भव है, फिर भी यहाँ पर पूर्व-शास्त्रानुसार आचार्य ने कहा है। अत: जब ऐसी स्थिति हो तो उसको उत्पातरूप समझना चाहिये।।८४।।

दक्षिणपार्श्वेन दक्षिणभागेन यदि मोक्षो भवेत् स दक्षिणकुक्षिविभेदो नाम मोक्ष:। तस्मिन्मोक्षे नृपपुत्राणां राजसुतानां पीडा भवति। तथा दक्षिणा रिपवो दक्षिणदिक्स्था: शत्रवोऽभियोज्या:। तेषामुद्योग: कार्य इत्यर्थ:। एतदौत्पातिकम्। यतो गणितगोलवासनया दक्षिणोत्तरयोर्दिशोर्ग्रासमोक्षौ न भवत:। कदाचिदपि आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम्। तथा च कश्यप:—

दक्षिण: कुक्षिभेद: स्याद्वामे मोक्षो भवेद्यदि।
राजपुत्रभयं तत्र दक्षिणाशाद्विषां वध:।। इति।।८४।।

अथ वामकुक्षिभेदं सफलमाह—

वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहु:।
स्त्रीणां गर्भविपत्ति: सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥८५॥

यदि ग्रहण-काल में उत्तर तरफ होकर राहु निकलता (उत्तर तरफ मोक्ष) हो तो वाम कुक्षि-भेद नामक मोक्ष होता है। इसमें स्त्रियों के गर्भों का नाश और मध्यम रूप से धान्य होता है।।८५।।

राहुर्यद्युत्तरमार्गसंस्थित: उत्तरस्यां दिशि संस्थितो भवति तदा स वामकुक्षिभेदो नाम मोक्ष:। तस्मिन् मोक्षे स्त्रीणां योषितां गर्भविपत्तिर्गर्भविनाशो भवति। तथा सस्यानि मध्यानि भवन्ति नाल्पानि न बहूनीत्यर्थ:। एतदौत्पातिकम्। तथा च कश्यप:—

सौम्यायां तु यदा मोक्षो वामकुक्षिविभेदत:।
स्त्रीणां गर्भविनाशाय सौम्याशाधिपतेर्वध:।। इति।।८५।।

अथ दक्षिणवामौ पायुभेदौ सफलावाह—

नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥८६॥

यदि मोक्षकाल में नैर्ऋत्य और वायव्य कोण में राहु दृष्टिगोचर हो तो क्रम से दक्षिण पायु-भेद और उत्तर पायु-भेद नामक मोक्ष होता है। जैसे—नैर्ऋत्य कोण में मोक्ष हो तो दक्षिण पायु-भेद और वायव्य कोण में मोक्ष हो तो वाम पायु-भेद नामक मोक्ष होता है। दक्षिण पायु-भेद में गुदा और लिङ्ग में रोग एवं थोड़ी वृष्टि तथा उत्तर पायु-भेद में राजपत्नी का नाश होता है।।८६।।

नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि व्यवस्थिते तमसि दक्षिणपायुभेदः। वायव्यस्थे पश्चिमोत्तरस्यामवस्थिते वामपायुभेदः। पायुशब्देनापानस्थानमुच्यते। अनयोर्द्वयोरपि गुह्यरुग् गुदरोगो भवति। गुह्यं लिङ्गं वा तत्र रोगो भवति। अल्पा स्वल्पा वृष्टिर्वर्षणं भवति। वामस्य विशेषमाह—**राज्ञीक्षयो वाम इति**। वामकुक्षिभेदे राज्ञ्या राजपत्न्याः क्षयो मरणं भवति। तथा च कश्यपः—

पायुभेदगते राहौ वायवीनैर्ऋताशयोः।
गुह्यरोगभयं विन्द्याद्वामे राज्ञीभयं तथा।। इति।।८६।।

अथ सञ्छर्दनलक्षणमाह—

पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत।
सञ्छर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥८७॥

यदि चन्द्रविम्ब के पूर्व भाग से स्पर्श करके राहु उसी तरफ से निकलता (बिम्ब के पूर्व भाग में ही स्पर्श और मोक्ष) हो तो सञ्छर्दन नामक मोक्ष होता है। यह मोक्ष संसार में क्षेम, धान्य और सन्तोष देने वाला होता है।।८७।।

पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव पूर्वस्यामेव यद्यपसर्पेत गमनं करोति स मोक्षः सञ्छर्दनमिति। तच्च जगतो लोकस्य क्षेमप्रदं सस्यप्रदं हार्दिप्रदं तुष्टिप्रदं च भवति। तथा च कश्यपः—

ग्रासमोक्षौ यदा पूर्वे छर्दनं तु तदा भवेत्।
क्षेमहार्दिप्रदं ज्ञेयं सस्यनिष्पत्तिकारकम्।। इति।।८७।।

अथ जरणं सफलमाह—

प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्।
क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥८८॥

यदि चन्द्र-विम्ब के पूर्व भाग में स्पर्श और पश्चिम भाग में मोक्ष हो तो जरण नाम मोक्ष होता है। इसमें क्षुधा और युद्ध के भय से उद्विग्न होकर मनुष्य निःशरण होते हैं अर्थात् उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होता है।।८८।।

यस्मिन् प्रग्रहणे प्राक् पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा पश्चात् पश्चिमायां दिशि अपसर्पणं गमनं यदि करोति तदा तज्जरणं नाम मोक्षः। तत्र तस्मिन् मोक्षे जना मर्त्याः क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्नाः। क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयम्। शस्त्रभयं संग्रामभीतिः। तेनोद्विग्ना दुःखिता न शरण-

मुपयान्ति शरणं न प्राप्नुवन्ति। नि:शरणा भवन्तीत्यर्थ:। तथा च कश्यप:—

पूर्वेण ग्रसते राहुरपरस्यां विमुञ्चति।
क्षुत्तस्करभयं तत्र मोक्षस्तु जरणं स्मृतम्।। इति।।८८।।

अथ मध्यविदरणं सफलमाह—

मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम।
अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥८९॥

यदि ग्रहण के प्रारम्भ काल में ही मण्डल के मध्य भाग में प्रकाश प्रतीत हो तो मध्य विदरण नामक मोक्ष होता है। यह राजा की अपनी सेनाओं में ही परस्पर क्षोभ उत्पन्न करने वाला, सुभिक्ष और थोड़ी वृष्टि देने वाला होता है।।८९।।

प्रथममादौ मध्यभागे यदि प्रकाशो बिम्बस्य प्राकाश्यमुत्पद्यते तन्मध्यविदरणं नाम मोक्ष:। तदन्त:कोपकरम्। अन्तरभ्यन्तरे राजगृहे कोपकरम्। स्वयमेव सैन्यक्षोभकरं स्याद्भवेत्। तथा सुभिक्षदं सुभिक्षं ददाति। नातिवृष्टिकरं भवति प्रभूतं न वर्षतीत्यर्थ:। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धम्। तथा च कश्यप:—

यदा प्रकाशो मध्ये स्याद् दुर्भिक्षमरकं तदा।। इति।।८९।।

अथान्त्यविदरणाख्यं सफलमाह—

पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्त्यदरणाख्यः।
मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥९०॥

यदि ग्रहण-समय में चन्द्र के विम्ब-प्रान्त भाग निर्मल और मध्य भाग में अधिक श्यामता हो तो अन्त्य विदरण नामक मोक्ष होता है। इसमें मध्य देश और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का नाश होता है।।९०।।

पर्यन्तेषु बिम्बान्तभागेषु यदि विमलता निर्मलत्वं भवति मध्ये मध्यभागे बहुलं सन्ततं तमस्तदान्त्यदरणाख्यो मोक्ष:। अस्मिन् मोक्षे मध्याख्यस्य देशस्य नाशो भवति। मध्यदेशो विनश्यतीत्यर्थ:। तथा शारदानां सस्यानां च क्षय:। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धमिति। तथा च कश्यप:—

पर्यन्ते विमलत्वं स्यात्तमो मध्ये यदा भवेत्।
मध्याख्यदेशनाश: स्याच्छरत्सस्यं विनश्यति।। इति।।९०।।

अथैत एव मोक्षा भास्करस्य ज्ञेया इत्येतदाह—

एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र।
पूर्वा दिक् शशिनि यथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥९१॥

इन पूर्वकथित चन्द्र-ग्रहण के समस्त मोक्षों का विचार सूर्यग्रहण में भी करना चाहिये; पर वहाँ की पूर्व दिशा के स्थान पर यहाँ पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा के स्थान पर पूर्व

दिशा, उत्तर के स्थान पर दक्षिण और दक्षिण के स्थान पर उत्तर दिशा की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार दिग्वैपरीत्य करके सभी दश मोक्षों का लक्षण और फल देखना चाहिये।।९१।।

एते सर्वे मोक्षा ये चन्द्रमस्युक्तास्ते सर्वे भास्करे सूर्येऽपि वक्तव्याः कथनीयाः। किन्त्वत्रायं विशेषः—यथा शशिनि चन्द्रे पूर्वा दिक् तथा रवावादित्ये पश्चिमा दिक् कल्प्या। एतदुक्तं भवति—आदित्यस्य पश्चिमा दिक् पूर्वा, पूर्वा च पश्चिमा। दक्षिणा उत्तरा। उत्तरा च दक्षिणा। विदिशश्चानेनैव वैलोम्येन परिकल्प्य चन्द्रवद् मोक्षा वाच्या इति।।९१।।

अथ ग्रहणे मुक्ते सप्ताहान्तःफलान्याह श्लोकपञ्चकेन—

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसंक्षयं कुरुते।
नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ।।९२।।

उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृदंष्ट्रिपरिपीडाम् ।।९३।।

परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ।।९४।।

निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदेव सन्दृष्टः ।।९५।।

अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ।।९६।।

मोक्ष के पश्चात् सात दिन के अन्दर रजोवर्षण हो तो अन्न का नाश, नीहार (हिमवर्षण 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिममि'त्यमरः) हो तो रोग का भय, भूकम्प हो तो प्रधान राजा का मरण, उल्कापात हो तो मन्त्री का नाश, नाना वर्ण का मेघ हो तो अतिशय भय, मेघ का गर्जन हो तो गर्भ (२१वें अध्याय में उक्त गर्भ-लक्षण) का नाश, विद्युत्पात हो तो राजा, सर्प, सूकर आदि को पीड़ा, परिवेष (मण्डल, 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः) हो तो रोग और पीडा, दिग्दाह हो तो राजभय और अग्निभय, कठोर प्रचण्ड वायु बहे तो चोर का भय, निर्घात (वायु से वायु अभिहत) हो, इन्द्रधनुष दिखाई दे या दण्ड (रवि के किरण, मेघ और वायु का संघात) हो तो दुर्भिक्ष और परराष्ट्र का भय, ग्रहयुद्ध या केतु का दर्शन हो तो राजाओं में युद्ध और निर्मल जल की वर्षा हो तो सुभिक्ष तथा ग्रहण में उत्पन्न अशुभ फलों का नाश होता है।।९२-९६।।

मुक्ते ग्रहणे सप्ताहान्तर्दिनसप्तकमध्ये यदि पांशुनिपातो भवति पांशुवर्षणं दृश्यते तदान्नसंक्षयं दुर्भिक्षं कुरुते। एवं नीहारो रोगभयं करोति। भूकम्पः प्रवरस्य प्रधानस्य नृपस्य राज्ञो मृत्युं मरणं करोति।

उल्का पतिता मन्त्रिण: सचिवस्य विनाशं करोति। नानावर्णा विविधकान्तयो घना मेघा अतुलमतिभयं कुर्वन्ति। स्तनितं मेघशब्दस्तच्च गर्भविनाशं करोति। गर्भा गर्भलक्षणोक्ता अत्र ज्ञेया:। विद्युत्तडित्। नृपो राजा। दंष्ट्रिण: सर्पादय:। तेभ्य: परिपीडां करोति।

परिवेषो रुक्पीडां रोगव्यथां करोति। दिग्दाहो दिशां दाहो नृपभयमग्निभयेन सहितं करोति। रूक्ष: परुष: प्रबलश्चण्डो वायुश्चौरसमुत्थं तस्करोत्पन्नं भयं धत्ते ददाति।

निर्घात: शब्दस्तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'पवन: पवनाभिहत:' इति। सुरचापमिन्द्रधनु:। दण्डश्च रविकिरणजलदमरुतां संघात:। एतेषामन्यतमं क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं सपरचक्रं परचक्रभयसहितं करोति। ग्रहयोर्युद्धे नृपाणां राज्ञां युद्धं भवति। केतु: शिखी च सन्दृष्टस्तदेव नृपयुद्धं करोति।

सप्ताहान्तर्दिनसप्तमध्येऽविकृतस्याविकारस्य सलिलस्य पानीयस्य निपातै: सुभिक्षमादेश्यं वक्तव्यम्। यच्च ग्रहणजं फलमशुभं तत्सर्वं नाशमुपयाति नश्यतीत्यर्थ:। तथा च समाससंहितायाम्—

परुषपवनाभ्रगर्जितविद्युत्परिवेषभूप्रकम्पाद्या: ।
सप्ताहान्तर्न शुभा ग्रहणनिवृत्तौ शुभा वृष्टि:।।

तथा च वृद्धगर्ग:—

अथेन्दुग्रहनिर्मुक्ते सप्ताहान्तर्भवेद्यदि।
पांशुवर्षोऽन्ननाश: स्यान्नीहारो रोगवृद्धये।।
नृपनाशाय भूकम्प उल्का मन्त्रिविपत्तये।
रोगाय परिवेष: स्याद्भयायैवाभ्रसम्प्लव:।।
विद्युद्गर्भविनाशाय दिग्दाहोऽग्निविवृद्धये।
निर्घातेन्द्रधनुर्दण्डा दुर्भिक्षाय भयाय च।।
पवन: प्रबलो रूक्षश्चौरोपद्रवसूचक:।
सर्वोपद्रवनाश: स्यात् सम्यग्वृष्टिर्भवेद्यदि।।
यद्राहुचरितं प्रोक्तं चन्द्रग्रहणहेतुकम्।
तदेव सकलं सूर्ये वेदितव्यं शुभाशुभम्।। इति।।९२-९६।।

चन्द्रग्रहणानन्तरं यद्यर्कग्रहणं दृश्यते तदा फलमाह—

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य ।
तत्रानय: प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ।।९७।।

यदि चन्द्र-ग्रहण के पन्द्रह दिन पश्चात् सूर्य-ग्रहण हो तो प्रजाओं में अनीति और स्त्री-पुरुषों में द्वेष उत्पन्न होता है।।९७।।

सोमग्रहे चन्द्रग्रहणे निवृत्तेऽतीते पक्षान्ते दिनपञ्चदशकात्परतो यदि ग्रहो ग्रहणमर्कस्या-

ऽऽदित्यस्य भवति तत्र तस्मिन् प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयो भवति। दम्पत्योर्जायापत्योरन्योन्यं परस्परं वैरं द्वेषो भवति।।९७।।

अथार्कग्रहाच्छशिग्रहणं दृष्टं फलमाह—

अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः।
नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ।।९८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
राहुचाराध्यायः पञ्चमः ।।५।।

यदि सूर्य-ग्रहण के पन्द्रह दिन पश्चात् चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मणगण अनेक यज्ञफल को भोगने वाले और प्रजागण हर्षित होते हैं।।९८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां राहुचाराध्यायः पञ्चमः ।।५।।

अर्कग्रहादादित्यग्रहणादनन्तरं पक्षान्ते यदि शशिनश्चन्द्रमसो ग्रहणं दृश्यते अवलोक्यते। ततो विप्रा ब्राह्मणा नैकक्रतुफलभाजो नैकानां बहूनां क्रतूनां यज्ञानां फलभागिनो भवन्ति। तथा सर्वाः प्रजा मुदिता हृष्टा भवन्तीति।।९८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
राहुचारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अथ भौमचाराध्यायः

अथ भौमचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्र भौमस्य पञ्चमुखानि भवन्ति। तद्यथा—

उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च।
निस्त्रिंशमुशलं चेति पञ्च वक्त्राणि भूसुते।।

एतेषां लक्षणानि सफलानि वक्ष्यति। तत्रादावेवोष्णमुखस्य लक्षणं सफलमाह—

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु।
तद्वक्त्रमुष्णमुदये पीडाकरमग्निवार्त्तानाम्।।१।।

मङ्गल के पाँच मुख (उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च। निस्त्रिंशं मुशलं चेति पञ्चवक्त्राणि भूसुते।।) होते हैं। उनमें पहले उष्णमुख नामक मंगल का लक्षण और फल कहते हैं। जिस नक्षत्र में मङ्गल का उदय हो, उससे सप्तम, अष्टम या नवम नक्षत्र में जाकर यदि वक्री हो तो वह वक्री मंगल 'उष्णमुख' कहलाता है। इस उष्णमुख वाले मङ्गल के उदयकाल में अग्नि से आजीविका चलाने वाले (सोनार, लोहार आदि) को पीड़ा होती है।।१।।

यस्मिन्नक्षत्रे स्थितोऽङ्गारक आदित्यमण्डलादुदयं करोति तदुदयर्क्षादुदयनक्षत्राद् नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु नवमे नक्षत्रे अष्टमे वा सप्तमे वा यदि वक्रं प्रतीपगमनं करोति तदा तद्वक्त्रमुष्णं नाम। तच्च भौमस्योदये रविमण्डलात् पुनरपि निर्गमेऽग्निवार्त्तानामग्निवृत्तीनां सुवर्णकारलोहकारादीनां पीडाकरमुपतापकरम्। वक्रादनन्तरं यदाऽर्कमण्डलेऽस्तमेष्यति तदैतत्फलमेषां सर्वेषां ज्ञेयम्। यत्र यद्यप्यसम्भवस्तत्रापि पूर्वशास्त्रानुसारेणाऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च वृद्धगर्गः—

उदयात् नवमे कुर्यादष्टमे सप्तमेऽपि वा।
निवृत्तिं लोहिताङ्गस्तु तदुष्णं वक्त्रमुच्यते।।
नरोऽग्निजीविनो ये च पचन्ति च दहन्ति च।
तेषामुत्पद्यते तापो जायते धनसंक्षयः।।

तथा च पराशरः—'तस्य पञ्चवक्त्राणि क्रमेणोपदिशन्ति। उष्णमश्रुमुखं व्यालं लोहिताख्यं निस्त्रिंशमुशलं चेति। तत्रोदयर्क्षात् सप्तमाष्टनवमेषु नक्षत्रेषु निवृत्तः प्रजासंक्षयं विशेषतः पचतां दहतां च पीडां धत्ते'।।१।।

अथाश्रुमुखस्याह—

द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम्।
दूषयति रसानुदये करोति रोगानवृष्टिं च।।२।।

औदयिक नक्षत्र से दशम, एकादश या द्वादश नक्षत्र में यदि मङ्गल वक्री हो तो वह अश्रुमुख कहलाता है। यह वक्र रसों में दोष उत्पन्न करता है तथा रोग की वृद्धि और अनावृष्टि करता है।।२।।

उदयनक्षत्राद् द्वादशे नक्षत्रे दशमे वैकादशे वा कुजेऽङ्गारके वक्रिते प्रतीपगतौ अश्रुमुखं नाम वक्त्रम्। तच्चोदये पुनरर्कमण्डलान्निर्गमे रसान् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायान् दूषयति सदोषान् करोति। ते च दुष्टा नराणां भक्षणमात्रात् पीडामुत्पादयन्ति। एवं रोगान् करोति। तथा अवृष्टिमवर्षणं च करोति। तथा च गर्गः—

दशमैकादशे वापि द्वादशे वापि वक्रिते।
लोहिताङ्गे ग्रहे ज्ञेयं वक्त्रमश्रुमुखं च तत्।।
तत्र वर्षति पर्जन्यो दूषयित्वा शुभान् रसान्।
ते दुष्टा दूषयन्त्याशु नृणां धातून् तथा भृशम्।।
बहवो व्याधयः क्रूरा उत्पद्यन्ते शरीरिणाम्।
बहुभिः कारणैरेतैस्ततो लोकः प्रलीयते।।

तथा च पराशरः—'दशमैकादशद्वादशेषु प्रदुष्टवातैरद्रव्यरसान् प्रजानां धातून् कोपयन् व्याधीन् प्रवर्त्तयति'।।२।।

अथ व्यालस्याह—

व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये।
दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ।।३।।

जिस नक्षत्र में मङ्गल अस्त हो, उससे तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में जाकर वक्री हो तो वह वक्र व्यालमुख कहलाता है। इसमें दंष्ट्री (सूकर, कुत्ता आदि), सर्प और मृग से लोगों को पीड़ा होती है तथा संसार में सुभिक्ष होता है।।३।।

उदयापेक्षया त्रयोदशर्क्षात् त्रयोदशनक्षत्राच्चतुर्दशाद्वा कुजे वक्रिते व्यालं नाम वक्रम्। तच्चास्तमये विपच्यते। यस्मिन् काले भौमोऽर्कमण्डले पुरस्तादस्तमेति तत्र परिपाकमायाति। दंष्ट्रिणः सूकरकुक्कुरादयः। व्यालाः सर्पाः। मृगा आरण्यजातयः। तेभ्यः सकाशात् पीडां लोकानां करोति सुभिक्षं च करोति। तथा च गर्गः—

त्रयोदशे च नक्षत्रे यदि वापि चतुर्दशे।
निवृत्तिं कुरुते भौमस्तद्वक्त्रं व्यालमुच्यते।।
भवन्ति प्रचुरा व्यालास्तेभ्यो लोकभयं वदेत्।
नृपाणामशुभं विन्द्यात् सस्यसम्पत्तिमादिशेत्।।

तथा च पराशरः—'त्रयोदशचतुर्दशयोः सस्यदंष्ट्रिव्यालप्राबल्यं हिरण्यसञ्चयं च' इति।।३।।

अथ रुधिराननस्याह—

रुधिराननमिति वक्त्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते।
तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति ॥४॥

यदि अस्त-कालिक नक्षत्र से पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र में जाकर मंगल लौटता (वक्री होता) हो तो वह वक्र रुधिरानन कहलाता है। इसके उदयकाल में मुख का रोग, भय और सुभिक्ष होता है।।४।।

उदयापेक्षया पञ्चदशान्नक्षत्रात् षोडशाच्च विनिवृत्ते वक्रितेऽङ्गारके रुधिराननमिति नाम वक्त्रम्। तच्च तत्कालं यावद्वक्रं तावन्मुखरोगं वक्त्रं पीडितं सभयं भयसहितं च सुभिक्षमावहत्युत्पादयति। तथा च गर्ग:—

यदि पञ्चदशर्क्षे तु भूसुत: षोडशेऽपि वा।
निवृत्तिं कुरुते वक्रस्तद्विदुर्लोहिताननम्।।
दीप्तिमन्त: पार्थिवाश्च भवन्ति प्रथिता भुवि।
क्षत्रकोपश्च सुमहान् मुखरोगा भवन्ति च।।

तथा च पराशर:—'पञ्चदशषोडशयोर्मुखरोगो नृपक्षोभ: शस्त्रकोपश्च' इति।।४।।

अथासिमुशलस्याह—

असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे।
दस्युगणेभ्य: पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम् ॥५॥

यदि अस्तकालिक नक्षत्र से सत्रहवें सा अठारहवें नक्षत्र में जाकर मङ्गल पीछे की तरफ लौटता हो तो वह असिमुशल वक्र कहलाता है। इसमें लोगों को चोरों से पीड़ा, अनावृष्टि और शस्त्रभय होता है।।५।।

उदयापेक्षया सप्तदशान्नक्षत्रादष्टादशतोऽपि वा वक्रितेऽङ्गारके वद्वक्त्रमसिमुशलं नाम। तच्चानुवक्रे स्पष्टगत्याऽऽश्रिते भौमे दस्युगणेभ्यश्चौरसंघेभ्य: सकाशात् प्रजानां पीडां करोति। तथाऽवृष्टिं सशस्त्रभयां शस्त्रभयेन सहितां च करोति। तथा च गर्ग:—

सप्तादशेऽष्टादशे वा लोहिताङ्गे निवर्तिते।
निस्त्रिंशमुशलं नाम तद्वक्त्रं परिकीर्तितम्।।
पशुपुत्रधनं धान्यमाहरन्ते तु दस्यव:।
प्राणिनां जीवनं हन्ति जायते शस्त्रसम्भ्रम:।।

तथा च पराशर:— 'सप्तदशेऽष्टादशे वा दस्युगणै: प्रजानामुपद्रवमवृष्टिं शस्त्रभयं च' इति।।५।।

अथात्रैव योगवशेन विशेषफलमाह—

भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्तते वैश्वदैवते भौम:।
प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोकान्निपीडयति ॥६॥

यदि पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदित होकर मङ्गल उत्तराषाढा में जाकर वक्री होता हो और बाद में रोहिणी में जाकर अस्त होता हो तो वह तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) को पीड़ित करता है।।६।।

भाग्यं पूर्वफल्गुनी। अर्यमा उत्तरफल्गुनी। भौमोऽङ्गारकोऽनयोरेकतरे यद्युदितो भवति रविमण्डलनिर्गतः। ततोऽग्रतो वैश्वदैवते उत्तराषाढायां निवर्तते वक्रं करोति तथा प्राजापत्ये रोहिण्यामस्तमितो यदि भवति तदा त्रीनपि भूर्भुवःस्वराख्यांल्लोकान्निपीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः—

फल्गुन्यामुदयं कृत्वा वक्रं स्याद्वैश्वदैवते।
प्राजापत्ये प्रवासश्च त्रैलोक्यं तत्र पीड्यते।। इति।।६।।

अन्यदपि विशेषमाह—

श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्द्धाभिषिक्तपीडाकृत्।
यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति ।।७।।

यदि श्रवण नक्षत्र में उदित मङ्गल पुष्य में जाकर वक्री होता हो तो राजाओं को पीड़ित करता है तथा जिस नक्षत्र में उदित हो उस नक्षत्र की दिशा (नक्षत्रकूर्मोक्त दिशा) और व्यूह (नक्षत्रव्यूह) जहाँ हो, वहाँ के जनों का नाश करता है।।७।।

श्रवणस्थस्याङ्गारकस्यार्कमण्डलादुदितस्य यद्यग्रतः पुष्ये वक्रं भवति तदा मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञां पीडां करोति। तथा च पराशरः—

उदितः श्रवणे भौमः पुष्ये वक्रं चरेद्यदि।
मूर्द्धाभिषिक्ता राजानो विनश्येयुः परस्परम्।।

यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदित इति। सूर्यमण्डलस्थो यस्मिन्नृक्षे यत्र नक्षत्रे स्थितोऽभ्युदितः सूर्यमण्डलादुद्गतस्तस्य नक्षत्रस्य या दिक् नक्षत्रकूर्मोक्ता यश्च तस्य व्यूहो नक्षत्रव्यूहोक्तस्तत्र ये जनास्तान् हन्ति घातयति। तथा च पराशरः—

यथा जनपदव्यूहे दिग्विभागः प्रदर्शितः।
तस्य वै मोहितं कुर्याल्लोहिताङ्गस्तथा मुखम्।। इति।।७।।

अन्यदपि विशेषफलमाह—

मध्येन यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः।
पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः ।।८।।

यदि मघा नक्षत्र में जाकर मंगल उसी में वक्री होता हो तो पाण्ड्यदेशीय राजा का नाश करता है तथा शस्त्रभय और अनावृष्टि करता है।।८।।

लोहितोऽङ्गारको यदि चेन्मघानां मध्ये न गतागतं करोति स्पष्टगतेस्तन्मध्ये तारकाणां गत्वा पुनर्वक्रगतेरागमनं तन्मध्ये नैव करोति ततस्तस्माद्धेतोः पाण्ड्यो नृपः पाण्ड्यदेशे

यो राजा स विनश्यति विनाशमायाति। लोके च शस्त्रोद्योगाद्भयं भवति। शस्त्राणामुद्योग: संग्राम:। अवृष्टिरवर्षणं च भवति।।८।।

अन्यदपि योगवशेनाह—

भित्त्वा मघां विशाखां भिन्दन् भौम: करोति दुर्भिक्षम्।
मरकं करोति घोरं यदि भित्त्वा रोहिणीं याति ॥९॥

मघा नक्षत्र का भेदन करने के उपरान्त मंगल यदि विशाखा नक्षत्र का भेदन करता हो तो दुर्भिक्ष करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र का भेदन करता हो तो जनों में भयङ्कर मरक (मरी) करता है।।९।।

भौमोऽङ्गारको मघां भित्त्वा मघायोगतारकाभेदं कृत्वा यदि विशाखां भिन्दन् तामपि पुनर्भिनत्ति तदा दुर्भिक्षं क्षुद्भयं करोति। यदि रोहिणीं भित्वा याति रोहिण्या योगतारकभेदनं कृत्वा गच्छति तदा घोरं तीव्रं मरकं जनानां करोति विदधाति।।९।।

अन्यदप्याह—

दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत्।
धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्थान् ॥१०॥

यदि रोहिणी नक्षत्र के दक्षिण से मङ्गल विचरण करता हो तो महँगी और अनावृष्टि करता है। यदि धूमयुक्त या शिखायुक्त मङ्गल दृष्टिगोचर हो तो पारियात्र पर्वत पर स्थित मनुष्यों का नाश करता है।।१०।।

महीजोऽङ्गारको रोहिण्या दक्षिणतश्चरन् रोहिण्या योगतारकस्य दक्षिणभागेन गच्छन् अर्घस्य वृष्टेश्च निग्रहं करोति विनाशयतीत्यर्थ:। अर्घस्य निग्रह: स्वल्पत्वम्। वृष्टेर्निग्रहश्चाभाव:। धूमायन् सशिखो वेति। धूमायन् धूममुद्वहन् सशिख: सचूडो वा यदि दृश्यते तदा पारियात्रस्थान् विनिहन्यात्। पारियात्र: पर्वत:। तत्र स्थितान् जनान् हन्याद् घातयेत्।।१०।।

अथ भौमस्य वार्षिकाणि नक्षत्राण्याह—

प्राजापत्ये श्रवणे मूले त्रिषु चोत्तरेषु शाक्रे च।
विचरन् घननिवहानामुपघातकर: क्षमातनय: ॥११॥

यदि मङ्गल रोहिणी, श्रवण, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा या ज्येष्ठा नक्षत्र में विचरण करता हो तो मेघों का नाश करता है।।११।।

क्षमातनयोऽङ्गारक: प्राजापत्ये रोहिण्यां स्थित: श्रवणे मूले त्रिषु नक्षत्रेषूत्तरेषु उत्तरशब्द आदौ येषाम्। उत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदासु च। तिसृषूत्तरासु वा पाठ:। शाक्रे ज्येष्ठायाम्। चशब्द: समुच्चये। एतेष्वेकतमे विरचन्निवसन् घननिवहानां मेघवृन्दानामुपघातकरो विनाशकर्ता भवत्यवृष्टिकृदित्यर्थ:।।११।।

अथास्य नक्षत्रेषु स्थितस्योदितस्य वा विशेषफलमाह—

चारोदयाः प्रशस्ताः श्रवणमघादित्यहस्तमूलेषु ।
एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येषु च कुजस्य ॥१२॥

श्रवण, मघा, पुनर्वसु, मूल, हस्त, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा और रोहिणी नक्षत्र में मङ्गल का सञ्चार तथा उदय अधिक प्रशस्त (उत्तम फलदायक) कहा गया है।।१२।।

'यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति' तथा 'प्राजापत्ये श्रवण' इत्यस्यापवादोऽयम्। कुजस्यांङ्गारकस्य श्रवणे मघायामादित्ये पुनर्वसौ हस्ते मूले एकपदायां पूर्वभद्रपदायामश्विन्यां विशाखायां प्राजापत्ये रोहिण्याम्। चशब्दः समुच्चये। एतेषु नक्षत्रेषु चारोदयाः। चारश्चरणमवस्थितिः। उदयः सूर्यमण्डलादुद्गमनम्। प्रशस्ताः शोभनाः। पूर्वोक्तमशुभफलमत्र न भवतीत्यर्थः।।१२।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

विपुलविमलमूर्त्तिः किंशुकाशोकवर्णः
स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः ।
विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
भौमचाराध्यायः षष्ठः ॥६॥

अधिक निर्मल मूर्ति वाला, किंशुक और अशोकपुष्प के समान वर्ण वाला, स्पष्ट सुन्दर किरण वाला तथा तपाये गये ताम्बे के समान वर्ण वाला मङ्गल यदि उत्तरा क्रान्ति में विचरण करे तो राजाओं का शुभ करने वाला और प्रजाओं को सन्तोष देने वाला होता है।।१३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां भौमचाराध्यायः षष्ठः ॥६॥

मेदिनी भूस्तस्या जातो मेदिनीजोऽङ्गारको विपुलविमलमूर्त्तिः। विपुला विस्तीर्णा विमला निर्मला मूर्त्तिर्यस्य। तथा किंशुकाशोकवर्णः। किंशुकाशोकौ पुष्पविशेषौ अतिलोहितौ तत्सदृशवर्णः अतिलोहित इत्यर्थः। स्फुटरुचिरमयूखः। स्फुटा स्पष्टा रुचिरा दीप्तिमन्तो मयूखा रश्मयो यस्य। तप्तताम्रप्रभाभः। तप्तस्य गलितस्य ताम्रस्य यादृशी प्रभा कान्तिस्तत्तुल्या आभा बिम्बच्छाया यस्य। यदि चोत्तरं मार्गं विचरति यस्मिन्नक्षत्रे स्थितस्तस्योत्तरभागेन यदि याति तदाऽवनिपानां राज्ञां शुभकृत् श्रेयस्करः। प्रजानां लोकानां च हार्दिदस्तुष्टिदो भवति। तथा च पराशरः—

वर्णरश्मिप्रभाप्रमाणतेजोयुक्त उदग्मार्गगः स्नेहवान् सर्वलोकहितायापि च।

प्रदक्षिणगतिः कान्तः स्निग्धश्च कलशोपमः।
तप्तकाञ्चनसङ्काशो भवेल्लोकविवृद्धये।।

अन्ये एवं व्याचक्षते—यथा भरण्यादिमघान्तमुत्तरो मार्गस्तत्र यदा विचरति तदावनिपानां शुभकृत् प्रजानां च हार्दिदः। तथा च गर्गः—

याम्यादिपितृपर्यन्तं नवर्क्षं मार्गमुत्तरम्।
भाग्यादिनैर्ऋतान्तं तु मध्यमं मार्गमुच्यते।।
आषाढाद्याश्विनान्तं तु दक्षिणं समुदाहृतम्।
सौम्यमार्गस्थितो भौमः प्रजानामुपकारकः।।
मध्यमे मध्यफलदो याम्ये तु भयदः स्मृतः।। इति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
भौमचारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ बुधचाराध्यायः

अथ बुधचारो व्याख्यायते; तत्रादावेव बुधस्योदितस्य फलमाह—

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम् ।
जलदहनपवनभयकृद् धान्यार्घक्षयविवृद्धौ वा ॥१॥

उत्पातरहित होकर किसी भी समय में बुध का उदय नहीं होता अर्थात् जब बुध का उदय होता है, उस समय किसी न किसी प्रकार का उत्पात अवश्य होता है। जैसे कि जल, अग्नि और वायु का भयरूप उत्पात तथा अनाज की महँगी या सस्ती करता है।।१।।

चन्द्रजो बुध उत्पातपरित्यक्त उत्पातविरहितो न कदाचिदपि न जात्वप्युदयं सन्दर्शनं व्रजति गच्छति। अपि तु यदा यदोद्गच्छति तदा तदा सोत्पातरूप एवेति। किमुत्पातं करोति। जलदहनपवनभयकृत्। जलमुदकम्, दहनोऽग्निः, पवनो वायुः, एभ्यो भयं करोति। तथा धान्यार्घस्य क्षयाय भवति। विवृद्ध्यै विवृद्धये च भवति। बहुमूल्यता अर्घवृद्धिः, स्वल्पमूल्यता अर्घक्षयः। तथा च समाससंहितायाम्—

उदयं याति शशिसुतो नोत्पातविवर्जितः कदाचिदपि।
पवनाग्निसलिलभयदो धान्यार्घवृद्धिक्षयकृद्वा।।

ननु जलदहनादिभिरुत्पातैः परित्यक्तश्चन्द्रजः कदाचिदप्युदयं नो गच्छति। किमेतेषां जलदहनादीनामन्यतम उत्पातसमेत उदयं करोति किं वा सर्वैरेव युक्त इत्यत्रोच्यते। येनोत्पातेन सहास्तगस्तत्प्रतिलोमगश्चन्द्रज उदयं याति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

अवर्षे कुरुते वर्षं वर्षे वर्षं न गच्छति।
भये च कुरुते क्षेमं सर्वत्र प्रतिलोमगः।।

उदयोक्तं फलमेतद्विशेषतश्चारजं फलं ब्रूयात्। तथा च कश्यपः—

नाकस्माद्दर्शनं याति विनोत्पातेन सोमजः।
भयवातातपहिमैरर्घवृद्धिक्षयादिभिः ।। इति।।१।।

अधुना नक्षत्रावस्थितस्य बुधस्य फलमाह—

विचरन् श्रवणधनिष्ठाप्राजापत्येन्दुवैश्वदेवानि ।
मृद्नन् हिमकरतनयः करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम् ॥२॥

श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिर या उत्तराषाढ़ा का भेदन करते हुये यदि बुध विचरण करे तो वर्षा का अभाव और रोग का भय करता है।।२।।

श्रवणम्। धनिष्ठा। प्राजापत्यं रोहिणी। इन्दुर्मृगशिरः। वैश्वदेवमुत्तराषाढा। हिमकर-

श्चन्द्रस्तत्तनयो बुधः। एतानि नक्षत्राणि। विचरन्निवसन्नेतेषामन्यतमस्य मृद्नन्नुपमर्दयन् विचरति। मर्दनं भेदः। तदा अवृष्टिमवर्षणं सरोगभयां गदभीत्या सहितां करोति। मर्दनमत्र श्रवणमध्यात् केषाञ्चित् सम्भवति केषाञ्चिन्न सम्भवति। आचार्येणोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारेणेति। तथा च कश्यपः—

रोहिणीं वैश्वदेवं च सौम्यवैष्णववासवान्।
शशिजश्च यदा हन्ति प्रजा रोगैश्च पीडयेत्।। इति।।२।।

अन्येषु नक्षत्रेष्वाह—

रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः ।।३।।

आर्द्रा से मघा तक के पाँच नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में बुध का सञ्चार हो तो शस्त्रनिपात (युद्ध), क्षुधा, रोग, अनावृष्टि और अनेक प्रकार के दुःख से प्रजाओं को पीड़ित करता है।।३।।

रौद्रमार्द्रा तदादीनि मघान्तानि पञ्च नक्षत्राणि। आर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघाश्चेति। चन्द्रजे उपाश्रिते व्यवस्थिते तानि चोपमृद्नन् यदि विचरति तदा प्रजानां पीडा भवति। कैः शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः। शस्त्रनिपातेन युद्धेन। क्षुद्भयेन दुर्भिक्षभीत्या। रोगैर्गदैः। अनावृष्ट्या अवर्षणेन। सन्तापेनोपतापेन च। तथा च कश्यपः—

रौद्रादीनि यदा पञ्च नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
भिनत्ति शस्त्रदुर्भिक्षव्याधिभिः पीड्यते जगत्।। इति ।।३।।

अन्येष्वाह—

हस्तादीनि चरन् षड्ऋक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः।
स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम् ।।४।।

हस्त से छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा) नक्षत्रों के योगतारा का भेदन करते हुये बुध विचरण करे तो गौओं को अशुभ करता है और भूमि को अनेक प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण करता है।।४।।

हस्तादीनि षड् नक्षत्राणि हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठा इति। एतानि षड् नक्षत्राणि विचरन् बुध एतेषु व्यवस्थितस्तथोपपीडयन् योगतारकां भिन्दन् गवामशुभो भवति, गाः हन्ति। स्नेहानां तैलघृतानाम्। रसानां मधुरादीनामर्घवृद्धिं सामर्घ्यम्। तथोर्वीं भूमिं प्रभूतान्नां पर्याप्तसस्यां करोति। तथा च कश्यपः—

हस्तादीनि चरन् षड् वै नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
गवामशुभदः प्रोक्तः सुभिक्षक्षेमकारकः।। इति।।४।।

अन्येष्वाह—

आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशं च।
चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसंक्षयकृत् ॥५॥

उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा या भरणी नक्षत्र को बुध भेदन करता हो तो प्राणियों के धातुओं (वसा, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा और शुक्र) का नाश करता है।

आर्यम्णमुत्तरफल्गुनी। हौतभुजं कृत्तिका:। हुतं भुक्त इति हुतभुगग्निस्तस्येदं हौतभुजम्। भद्रपदा उत्तरा उत्तरभद्रपदा। यमेशं भरणी। चशब्दः समुच्चये। एतानि नक्षत्राणि चन्द्रस्य सुतो बुधो निघ्नन्नुपमर्दयन् प्राणभृतां देहिनां धातूनां संक्षयं विनाशं करोति। वसासृङ्-मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातव इति। तथा च कश्यपः—

भरणी कृत्तिकार्यम्णमहिर्बुध्नं च चन्द्रजः।
चरन् धातुविनाशाय प्राणिनां परिकीर्तितः।। इति।।५।।

अन्येष्वप्याह—

आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुतः।
पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकरः ॥६॥

यदि बुध अश्विनी, शतभिषा, मूल या रेवती का भेदन करे तो व्यापारी, वैद्य, नौका से जीविका करने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य तथा घोड़ों का नाश करता है।।६।।

आश्विनमश्विनी, वारुणं शतभिषक्, मूलम्। एतानि नक्षत्राणि तथा रेवतीं च चन्द्र-सुतो बुधश्चरन् तथोपमृद्नन् पण्यजीविनां पण्यवृत्तीनां वणिक्प्रभृतीनाम्। भिषजां वैद्यानाम्, नौजीविकानां नाविकानाम्, सलिलजानां जलोत्पन्नानां द्रव्याणां मुक्ताफलादीनाम्, तुरगाणा-मश्वानामुपघातं करोति नाशकर्ता भवति। तथा च कश्यपः—

रेवतीं वारुणं मूलमश्विनीं चोपमर्दयन्।
बुधो वणिग्भिषग्वाहान् जलोत्थांश्च विनाशयेत्।। इति।।६।।

अन्येष्वाह—

पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकमपीन्दोः सुतोऽभिमृद्नीयात्।
क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी चरन् जगतः ॥७॥

यदि बुध पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा या पूर्वाभाद्रपदा का भेदन कर विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्र, चोर और रोगों का भय देने वाला होता है।।७।।

पूर्वशब्द आदिर्यस्य तत्पूर्वाद्यृक्षत्रितयम्—पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभद्रपदेति। अस्मान्नक्षत्रत्रितयादिन्दोः सुतो बुधश्चरन्नेकमभिमृद्नीयात् पीडयेत् तदा जगतो लोकस्य क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी भवति। क्षुद् दुर्भिक्षम्, शस्त्रं संग्रामः, तस्कराश्चौराः, आमयो रोगः। एभ्यो भयं भीतिं प्रददाति तच्छीलः। तथा च कश्यपः—

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो भेदं कृत्वा यदि व्रजेत्।
क्षुच्छस्त्रतस्करभयै: करोति प्राणिनां वधम्।। इति।।७।।

अथ बुधस्य सप्तगतय उक्ता: पराशरतन्त्रे। तासां च तन्मतेनैव नामान्याह—

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्या: ।
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रै: कीर्तिता गतय: ।।८।।

प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर, पाप—ये पराशरतन्त्रोक्त नक्षत्रों के साथ बुध की सात गतियाँ कही गई हैं।।८।।

प्राकृता, विमिश्रा, संक्षिप्ता, तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा, पापाख्या—एता: सप्तगतय: पराशराख्ये तन्त्रे नक्षत्रै: कीर्तिता उक्ता:।।८।।

अथैतासां नक्षत्रवशेन नामान्याह—

प्राकृतसंज्ञा वायव्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च ।
मिश्रा गति: प्रदिष्टा शशिशिवपितृभुजगदेवानि ।।९।।
संक्षिप्तायां पुष्य: पुनर्वसु: फल्गुनीद्वयं चेति ।
तीक्ष्णायां भद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ।।१०।।
योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गति: सुतस्येन्दो: ।
घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदैवं वारुणं चैव ।।११।।
पापाख्या सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति ।

स्वाती, भरणी, रोहिणी या कृत्तिका नक्षत्र में प्राकृत गति से; मृगशिर, आर्द्रा, मघा या आश्लेषा में विभिन्न गति से; पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी में संक्षित गति से; पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी या रेवती में तीक्ष्ण गति से; मूल, पूर्वाषाढा या उत्तराषाढा में योगान्तिक गति से; श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा या शतभिषा में घोरा नाम की गति से और हस्त, अनुराधा या विशाखा में पापसंज्ञक गति से बुध स्थित होता है।।९-११।।

प्राकृतसंज्ञेति । वायव्यं स्वाती, याम्यं भरणी, पैतामहं रोहिणी, बहुला: कृत्तिकाश्चैतानि नक्षत्राणि प्राकृतसंज्ञा गति:। एतेषां नक्षत्राणामन्यतमे स्थितो बुध: प्राकृतगत्या स्थितो भवति।

मिश्रा गतिरिति । शशिदेवो मृगशिर:, शिवदेव आर्द्रा, पितृदेवो मघा, भुजगदेव आश्लेषा—एतानि नक्षत्राणि बुधस्य मिश्रा नाम्नी गति: प्रदिष्टा उक्ता।

संक्षिप्तायामिति । पुष्य: पुनर्वसु:, फल्गुनीद्वयं पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी एतानि नक्षत्राणि संक्षिप्तायां गतौ।

तीक्ष्णायामिति । भद्रपदाद्वयं पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे, शाक्रं ज्येष्ठा, अश्वयुगश्विनी, पौष्णं रेवती, तच्च सशाक्राश्वयुक् शाक्रेणाश्वयुजा च सह पौष्णमित्यर्थ:। एतानि नक्षत्राणि तीक्ष्णायां गतौ।

योगान्तिकेति। मूलम्, द्वे आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढे—एतानि नक्षत्राणि इन्दुसुतस्य बुधस्य योगान्तिका नाम्नी गतिः।

घोरेति। श्रवणम्, त्वाष्ट्रं चित्रा, वसुदैवं धनिष्ठा, वारुणं शतभिषग्—एतानि नक्षत्राणि घोरा नाम्नी गतिः।

पापाख्येति। सावित्रं हस्तः, मैत्रमनुराधा, इन्द्राग्निदैवतं विशाखा—एतानि नक्षत्राणि पापा नाम्नी गतिः। इतिशब्दः प्रकाराय। तथा च पराशरः—

'अथास्य गतयः सप्त च प्राकृता विमिश्रा संक्षिप्ता तीक्ष्णा घोरा पापा योगान्तिका च। तत्र प्राकृता याम्याग्नेयरोहिणीवायव्यानि। मिश्रा सौम्यार्द्रा मघाश्लेषा च। संक्षिप्ता पुष्यार्यम्णभाग्यादित्यानि। तीक्ष्णा अजपादतश्चत्वारि ज्येष्ठा च। घोरा त्रीणि श्रवणादीनि त्वाष्ट्रं च। पापा सावित्रेन्द्राग्निमैत्राणि। योगान्तिका मूलमाषाढे'।।९-११।।

अथ पराशरमतेनाऽऽसामेवोदयास्तलक्षणमाह—

उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह ।।१२।।

चत्वारिंशत्४० त्रिंशद्३० द्विसमेता
विंशति२२र्द्विनवकं च १८।
नव९ मासार्द्ध१५ दश चैक-
संयुताः११ प्राकृताद्यानाम् ।।१३।।

उदय और अस्तदिन से पूर्वोक्त गति का लक्षण कहते हैं। प्राकृता नाम की गति में स्थित बुध का उदय हो तो चालीस दिन तक उदित और अस्त हो तो चालीस दिन तक अस्त रहता है एवं मिश्रा गति में ३० दिन, संक्षिप्ता गति में २२ दिन, तीक्ष्णा गति में १८ दिन, योगान्तिका गति में ९ दिन, घोरा गति में १५ दिन तथा पापा गति में स्थित बुध का उदय हो तो ९ दिन तक उदित और अस्त हो तो ९ तक अस्त रहता है।।१२-१३।।

स एव पराशरमुनिर्गतिलक्षणं प्राह—उदयदिवसैः प्रवासदिवसैः। उदयः सूर्यमण्डलान्निर्गमः। प्रवासस्तत्रैवास्तमयः। तैश्च दिवसैर्गतिलक्षणं प्राहोक्तवान्।

चत्वारिंशदिति। एतानि चत्वारिंशदादीनि प्राकृताद्यानां गतीनामुदये प्रवासे च प्रमाणम्। तद्यथा—प्राकृतायां मतौ बुधः स्थित उदेति तदा चत्वारिंश४०द्दिनान्युदित एव तिष्ठति। अथास्तमेति तदा चत्वारिंश४०द्दिनान्यस्तमित एव तिष्ठति। एवं मिश्रायां त्रिंशत् ३०। संक्षिप्तायां द्विसमेता विंशतिर्द्वाविंशतिः २२। तीक्ष्णायां द्विनवकमष्टादश १८। योगान्तिक्यां नव ९। घोरायां पञ्चदश १५। पापाख्यायां च दश चैकसंयुता एकादश११दिनानीति। यद्यपि गणितवासनयैतन्नोपपद्यते तथापि पराशरमङ्गीकृत्याऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च पराशरः—

'अथ चत्वारिंशत्त्रिंशद्द्वाविंशत्यष्टादशपञ्चदशैकादशनवरात्राणि गतिक्रमादुदितोऽभिदृश्यते तान्येवास्तमितो भवति। उष्णशीतवाय्वभ्रसूर्येन्दुग्रहणायोदयति सस्यविघाताय

चे'ति। न केवलं पराशरेणोक्तं यावद् गर्गादिभिरपि। तथा च वृद्धगर्ग:—

चत्वारिंशत्प्राकृतायां गतावालक्ष्यते बुध:।
मासमेकं विमिश्रायां दर्शयित्वास्तमर्हति।।
अह्नां द्वाविंशतिं सार्द्धं संक्षिप्तामेत्य लक्ष्यते।
अष्टादशाहं तीक्ष्णायां घोरायां दश पञ्च च।।
पापायां पादहीनानि तथैकादश तिष्ठति।
योगान्तिक्यामिन्दुसूनुर्नवाहं लक्ष्यते तथा।।
चारकालो य एवोक्त: सोमपुत्रस्य भागश:।
अस्तकाल: स एव स्यात् सूर्यमण्डलचारिण:।।

तथा च कश्यप:—

चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्दिनानि द्वौ च विंशति:।
अष्टादशार्द्धमासं च दश चैकयुतानि च।।
नव च प्राकृताद्यासु सोमजस्तूदितस्तथा।
अस्तं गत: सर्वकालं तिष्ठतीति विनिश्चय:।।

आचार्यस्यैतन्नाभिमतम्। यत: समाससंहितायामनेनैवोक्तम्—

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्या: ।
गतयो लक्षणमासां नोदयदिवसै: स्फुटं भवति।।
स्पष्टा पराशरमते स्वाती च प्राकृता त्रिभं याम्यात्।
मिश्रा गति: शशिशेखरभुजगपितृदेवतासौम्यै:।।
संक्षिप्ता नाम गति: पुनर्वसु: फल्गुनीद्वयं पुष्य:।
तीक्ष्णा भद्रपदाद्यं नत्रक्षचतुष्टयं ज्येष्ठा।।
मूलत्र्यृक्षं योगा घोरा श्रवणत्रिभं च सत्वाष्ट्रम्।
पापाख्या तु विशाखा हस्तो मैत्रं च शशिसूनो:।। इति।।१२-१३।।

अथैतासां फलान्याह—

प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धय: क्षेमम्।
संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम् ।।१४।।

प्राकृत गति में स्थित बुध आरोग्य, वृष्टि, धान्य की वृद्धि और क्षेम करता है। संक्षिप्ता गति में स्थित बुध मिश्रित फल (मध्यम फल = साधारण आरोग्य, साधारण वृष्टि, साधारण धान्य की वृद्धि और साधारण क्षेम) देता है और शेष (तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा और पापा) गति में विपरीत फल (अनारोग, अवृष्टि, धान्य का नाश और अक्षेम) करता है।।१४।।

प्राकृतगत्यां स्थिते बुधे आरोग्यं नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, प्रकृष्टा अभिप्रभूता सस्यानां

वृद्धिरेतानि भवन्ति, तथा लोके क्षेमं च भवति। संक्षिप्तमिश्रयोर्द्वयोर्गत्योरेतदेव पूर्वोक्तं फलं मिश्रम्। आरोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धय: क्षेमं च मध्यं भवति। अन्यासु परिशेषासु तीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्यासु विपरीतम्। अनारोग्यमनावृष्टि: सस्यानामवृद्धिरक्षेममिति। तथा च पराशर:—

'तासां प्रथमा गति: क्षेमारोग्याम्बुसस्यवती। इतरे द्वे व्यामिश्रफले। शेषाश्चतस्रो दुर्भिक्षाक्षेमाय। विशेषतस्तु सौम्यादिषड्नक्षत्रचारी सुवृष्टये। श्रविष्ठावारुणयोश्च। दक्षिणतो नैर्ऋतेन्द्रपूर्वासु भयकृत्। अश्विन्यां वणिग्विनाशाय। त्वाष्ट्रे शरत्सस्यानाम्। रोहिणीश्रवणाग्नेयब्रह्मराशिष्वम्भोदविनाश:। हस्तोदितो मैत्रमनुचरन् पशुगोकोशलानभिहन्ति। विशाखामध्यगश्च सस्यमि'ति। तथा च गर्ग:—

क्षेमारोग्यसुभिक्षेषु लक्षणा प्राकृता गति:।
संक्षिप्ता च विमिश्रा च शुभाशुभफलोदये।।
तीक्ष्णा घोरा च पापा च तथा योगान्तिकापरा।
एताश्चतस्र: सौम्यस्य दुर्भिक्षाक्षेमलक्षणा:।। इति ।।१४।।

अधुना देवलमतेन बुधस्य गतिचतुष्टयमाह—

ऋज्व्यतिवक्रावक्रा विकला च मतेन देवलस्यैता: ।
पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ता: ॥१५॥

देवल के मत से बुध की गति ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा, विकला—ये चार प्रकार की होती हैं। इन गतियों की स्थिति का प्रमाण—उदय या अस्तदिन से ऋज्वी ३० दिन तक, अतिवक्रा २४ दिन तक, वक्रा १२ दिन तक और विकला ६ दिन तक रहती है।।१५।।

आकृत्येव या स्वाभाविकी गति: सा ऋज्वी अवक्रा। कुटिलगतित्वमाश्रित्य तन्मध्ये ग्रहस्य यदा भुक्त्यभावो भवति तदा अतिवक्रा गतिरुच्यते। ऋजुं मार्गं परित्यज्य निवृत्तिं करोति सा वक्रा। विकला वैकारिकी गतिर्या न्यूना। ऋज्वी चातिवक्रा च वक्रा च यास्ता ऋज्व्यतिवक्रावक्रा:। न केवलं ऋज्व्यतिवक्रावक्रा:। यावद्विकला। चकार: समुच्चये। देवलस्य मतेनैताश्चतस्रो गतय:। तथा च वृद्धगर्ग:—

ऋजुर्गच्छति चेद् मार्गमविकारं प्रदक्षिणम्।
ग्रहो यस्मात्तु तस्मात् सा ऋज्वी तु गतिरुच्यते।।
कुर्वन्ति वक्रं वक्रायां यस्मान्नित्यं महाग्रहा:।
अङ्गारकप्रभृतयस्तस्माद्वक्रेति सा गति:।।
वक्राद् भूयो महावक्रमनुकुर्वन्ति चेद् ग्रहा:।
अनेनैवानुमानेन सातिवक्रोच्यते गति:।।
विस्खलन्ति यथा चारान्मार्गादस्तमयोदयात्।
गतेस्तस्माद्धि विकला सा गति: परिकीर्तिता।।

तथा चाऽऽचार्येण विकला गति: प्रदर्शितैव—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्रातो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम्।।

तथा च ऋषिपुत्रेणोक्तम्—

उन्मार्गस्थानमार्गस्था ग्रहाः कुर्वन्ति पार्थिवान्।
मार्गवन्तश्च मार्गस्थान् कुर्वन्ति वसुधाधिपान्।।
सत्पथप्रतिपन्नेषु पार्थिवेषु भवन्ति हि।
प्रजाः सत्पथमापन्ना विपर्यासे विपर्ययः।।

आसां प्रमाणमाह—**पञ्चचतुर्द्व्येकाहा इति**। उदयप्रवासदिवसैरित्यनुवर्तते। पञ्च-चतुर्द्व्येकाहाः षडभ्यस्ताः षड्गणितास्त्रिंशदादीनि भवन्ति। एतानि ऋज्व्यादीनां प्रमाणम्। एतदुक्तं भवति—यदा बुधस्त्रिंश३०द्दिनानि उदितस्तिष्ठत्यस्तमितो वा तदा सा ऋज्वीनाम्नी बुधस्य गतिः। एवमन्यासामपि ज्ञेयम्। तेन चत्वारः षडभ्यस्ताः चतुर्विंशतिः २४। चतुर्विंश-द्दिनान्यतिवक्रायाः प्रमाणम्। द्वौ षडभ्यस्तौ द्वादश १२। द्वादशदिनानि वक्रायाः प्रमाणम्। एकाहः षडभ्यस्तः षड्दिनानि ६ भवन्ति। एतानि विकलायाः प्रमाणम्।।१५।।

अथाऽऽसां फलान्याह—

ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्राऽर्घं गतिर्विनाशयति।
शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी।।१६।।

ऋज्वी गति प्रजाओं का हित करने वाली, अतिवक्रा दुर्भिक्ष करने वाली, वक्रा शस्त्रभय देने वाली तथा विकला भय और रोग प्रदान करने वाली होती है।।१६।।

ऋज्वी गतिः प्रजानां हिता शुभकरी। अतिवक्रा गतिरर्घं विनाशयति दुर्भिक्षं करोति। वक्रा शस्त्रभयदा शस्त्रभयं संग्रामभीतिं करोति। विकला भयं भीतिं रोगान् गदांश्च सञ्जन-यत्युत्पादयति। तथा च देवलः—

दिनानि त्रिंशदुदितस्तिष्ठेद्यदि च सोमजः।
ऋज्वी गतिः सा विज्ञेया प्रजानां हितकारिणी।।
चतुर्विंशद्दिनान्येवं यदि तिष्ठेच्च सोमजः।
अतिवक्रा गतिर्ज्ञेया दुर्भिक्षगतिलक्षणा।।
अहानि द्वादश यदा बुधस्तिष्ठेत्तथोद्गतः।
वक्राः गतिः सा विज्ञेया शस्त्रसम्भ्रमकारिणी।।
षड् दिनानि यदा तिष्ठेदुद्गतः सोमनन्दनः।
विकला सा गतिर्ज्ञेया भयरोगविवर्धिनी।।
एवमस्तमये सर्वं गतिजं सोमजस्य तु।
भावाभावाय लोकानां फलं वाच्यं शुभाशुभम्।। इति।।१६।।

अथोदयास्तमययोः शुभाशुभलक्षणमाह—

पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु ।
दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत्प्रोषितस्तेषु ॥१७॥

यदि पौष, आषाढ, श्रावण या माघ मास में बुध का उदय हो तो संसार में भय और अस्त हो तो शुभ फल प्रदान करता है।।१७।।

पौषाऽऽषाढश्रावणवैशाखेषु मासेषु माघसहितेषु इन्दुजो बुधो दृष्ट उदित इत्यर्थः। जगतो लोकस्य भयाय भीत्यै भवति। तेष्वेव पौषादिषु मासेषु प्रोषितोऽस्तं गतः शुभफलकृद् भवति जगतः शुभफलं करोति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

वैशाखपौषमाघेषु श्रावणाषाढयोरपि।
न दृश्यते बुधः प्रायो मासेष्वन्येषु दृश्यते।।
यदाऽदृश्येषु दृष्टः स्याद् दृश्येषु च न दृश्यते।
गवां रोगमनावृष्टिं दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत्।।

तथा च पराशरः—

वैशाखाषाढयोर्माघे पौषश्रावणयोस्तथा।
बुधो न दृश्यते जातु दृश्येत भयमादिशेत्।।
पौषे करोति मरकं माघे वातं तथा च सोमसुतः।
वैशाखे जनमरकमाषाढे श्रावणे च दुर्भिक्षम्।। इति।।१७।।

अन्येष्वप्याह—

कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः ।
शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च तदा विदधाति ॥१८॥

यदि कार्तिक या आश्विन मास में बुध का उदय हो तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और दुर्भिक्ष का भय करता है।।१८।।

कार्तिके अश्वयुजि मासे वा यदि शिशिरांशोश्चन्द्रस्य तनुभवः पुत्रो दृश्यते उद्गच्छतीत्यर्थः। भयशब्दः प्रत्येकमपि सम्बध्यते। तदा शस्त्रभयं संग्रामभयम्, चौरभयं तस्करभयम्, हुतभुग्भयमग्निभयम्, गदभयं रोगभयम्, तोयभयं जलभयम्, क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयमेतानि विदधाति करोति।।१८।।

अन्यदुदयास्तमयवशेनेन्दुजस्य फलमाह—

रुद्धानि सौम्येऽस्तगते पुराणि यान्युद्गते तान्युपयान्ति मोक्षम् ।
अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥१९॥

बुधास्त समय में जो पुर शत्रुओं से घिर जाता है, वह उसके उदय होने पर मुक्त हो जाता है। किसी पण्डित का मत है कि यदि पश्चिम तरफ बुध का उदय हो तो उस तरफ के पुरों में स्थित मनुष्यों को लाभ होता है।।१९।।

सौम्ये बुधेऽस्तगते सूर्यमण्डलस्थे यानि पुराणि नगराणि रुद्धानि शत्रुभिर्वेष्टितानि तानि तस्मिन्नेवोद्गते उदिते रविमण्डलान्निष्क्रान्ते मोक्षमुपयान्ति प्राप्नुवन्ति, ततो रोद्धा चलतीत्यर्थः। **अन्ये त्विति**। अन्ये तु पुनस्तज्ज्ञाः पण्डिता नन्दिप्रभृतयः पश्चादुदिते बुधे पश्चिमायां दिश्युद्गते पुराणां लाभो लब्धिर्भवतीति वदन्ति कथयन्ति। लाभश्चाभियोक्तुर्भवति। अन्यथोदिते पुरपतेरेव। तथा च नन्दी—

पश्चार्द्धादुदिते सौम्ये लभते पुररोधकः।
पुनः प्रागुदिते तस्मिन् पुरमोक्षं विनिर्दिशेत्।। इति।।१९।।

अथास्य बिम्बलक्षणमाह—

हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा।
स्निग्धमूर्त्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
बुधचाराध्यायः सप्तमः ॥७॥

सुवर्ण के समान कान्ति वाला, तोता पक्षी के समान वर्ण वाला, धान्य अथवा नील-मणि के सदृश और निर्मल तथा विस्तीर्ण बुध का विम्ब दिखाई दे तो संसार के हित के लिये होता है। इसके विपरीत वर्ण का दिखाई दे तो अशुभ करने वाला होता है।।२०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां बुधचाराध्यायः सप्तमः ॥७॥

हेमकान्तिः सुवर्णाभः, अथवा शुकवर्णः शुककान्तिर्नीलपीतवर्ण इत्यर्थः। सस्यकेन मणिना नीलवर्णेन सदृशस्तुल्यो वा। तथा स्निग्धमूर्तिर्निर्मलदेहः। अलघुश्च विस्तीर्णबिम्बः। एवंविधः शशिपुत्रो बुधो लोकानां हिताय श्रेयसे भवति। व्यत्यये उक्तविपर्यये न शुभकृन्न शुभकरः। तथा च पराशरः—'विमलजलरजतस्फटिकाभः प्रशस्यते' इति।।२०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
बुधचारो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ बृहस्पतिचाराध्यायः

अथ बृहस्पतिचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव महाकार्तिकादीनां षष्ट्यब्दवर्षाणां संज्ञाज्ञापनार्थमाह—

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री ।
तत्सञ्ज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥१॥

जिस नक्षत्र में रहते हुये बृहस्पति का उदय होता है, उस नक्षत्र के अनुसार द्वादश मास की तरह द्वादश वर्ष भी होते हैं।।१।।

येन नक्षत्रेण सहोदयं याति सुरमन्त्री गुरुर्यस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सूर्यमण्डलादुदयं दर्शनं याति तन्नक्षत्रं गुरुसहितम्। अथवा येन नक्षत्रेण सहास्तं याति यस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सूर्यमण्डले प्रविशति तत्संज्ञं तन्नामधेयं वर्षं वक्तव्यं लोके वाच्यम्। तच्च मासक्रमेणैव मासपरिपाट्या। अनन्तरोक्तस्यार्थस्य नक्षत्रेण सहोदयमस्तं चेत्यस्य सन्देहव्युदासार्थमाह— **मासक्रमेणैव** । अन्यमासनक्षत्रेण सहास्तं गतोऽन्यमासनक्षत्रेण सहोदितः। यथा रोहिणीस्थोऽस्तं गतो मृगशिरःस्थश्चोदयं गतस्तदानन्तराक्रान्तमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं बोद्धव्यमिति। ऋषिपुत्रादिभिरुदयनक्षत्रमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं वक्तव्यमित्युक्तम्। तथा च ऋषिपुत्र आह—

यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे सह येन प्रवर्धते।
संवत्सरः स विज्ञेयस्तन्नक्षत्रविधायकः।।

तथा च काश्यपः—

संवत्सरे युगे चैव षष्ट्यब्देऽङ्गिरसः सुतः।
यन्नक्षत्रोदयं कुर्यात्तत्संज्ञं वत्सरं विदुः।।

प्रभवादीनामब्दानां प्रवृत्तिर्गुरोरुदयकालादित एव। यतो गुरुरत्राबाधितत्वेन स्थितः। तथा च ऋषिपुत्र आह—

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः।
बृहस्पतेस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादशवार्षिकम्।।
उदेति यस्मिन् मासे तु प्रवासोपगतोऽङ्गिराः।
तस्मात् संवत्सरो मासो बार्हस्पत्योऽथ गम्यते।। इति।

तथा च गर्गः—

प्रवासान्ते सहर्क्षेण तूदितो युगपच्चरेत्।
तस्मात् कालादृक्षपूर्वो गुरोरब्दः प्रवर्तते।।

केचित् कृत्तिकादियुक्ते गुरौ यच्चन्द्रयुक्तं नक्षत्रं चैत्रमासादितो भवति, ततो महाकार्तिकादीनि संवत्सराणि प्रभवादीनि च गणयन्ति। अपरे सौरमानेन गणयन्ति। तदयुक्तम्। यस्मात् सौरं मानमधिकं गुरुमानात्। यदुत्कृष्टं मानं तत्स्वल्पतरमानेनानुमीयमानं बहुतरं भवति। यथा—अष्टयवेनाङ्गुलेन ये पादोना एकाशीतिहस्तास्त एव सप्तयवेनानुमीयमाना हस्तशतं भवन्ति। एवं सौरं मानं गुरुमानाच्चतुर्युगेण न्यूनं भवति। आचार्या-ऽऽर्यभटेन च प्रदर्शितम्—

गुरुभगणा राशिगुणा आश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः।
गुरुभगणानां संख्या जिनयमवेदर्तुहव्यभुक्तुल्याः ३६४२२४।।

राशिगुणा इति। भगणे द्वादश राशयो भवन्ति तैर्गुणा द्वादशगुणा इत्यर्थः। द्वादशगुणा गुरोरब्दाः। वस्वष्टरसाम्बराद्रिगुणवेदतुल्याः ४३७०६८८। रविभगणा एव रव्यब्दाः खचतुष्टयरदवेतुल्याः ४३२००००। गुरोरब्दानां रव्यब्दानां चान्तरे कृते गुरोरब्दाः समधिका जाता वस्वष्टर्तुखेषवः ५०६८८। अत्र च त्रैराशिकम्—यदि चतुर्युगरव्यब्दानामनन्तर-प्रदर्शितगुरुरव्यब्दान्तरं लभ्यते तदैकस्य रव्यब्दस्य कियदिति। न्यासः—४३२००००। ५०६८८। १। फलं रविवर्षभोग इति। रव्यब्दानां कृतखगुणयमै२३०४रपवर्तितानां शरागाष्टेन्दवो लभ्यन्ते १८७५। तावद्भागेन रविगुरुवर्षान्तरस्य द्व्यधिका विंशतिर्भवति २२। सप्तत्यधिकेऽब्दशते एकादशभागैः पञ्चभिरधिके १७०/५/११ गते गुरुयुक्तनक्षत्र-माससंज्ञवर्षद्वयमधिकं भवति। तथा च गर्ग आह—

युगानि द्वादशाब्दानि तत्र तानि बृहस्पतेः।
तत्र सावनसौराभ्यां सावनाब्दो निरुच्यते।।
एवमाश्वयुजं चैव चैत्रं चैव बृहस्पतिः।
संवत्सरं नाशयते सप्तत्यब्दशतेऽधिके।।

एवं नष्टजातकेऽपि—

'लग्नत्रिकोणेषु गुरुस्त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात्' इत्यनेन गणितेन यान्यतीतवर्षाण्यागतानि तानि द्व्यधिकया विंशत्या २२ गुणयित्वा पादोनैरेकोनविंशतिशतै-१८७५र्विभज्य लब्धमनन्तरोक्तश्लोकानीतगुर्वतीतजन्मवर्षाणां विशोध्य शेषं स्फुटतरम-तीतजन्मवर्षपिण्डं भवतीति। अत्र गुणकारभागहारयोराचार्येण द्विगुणतोपनिबद्धा। यत आचार्यप्रणीतकालेऽतीतं षष्ट्यब्दादेर्वर्षद्वयं त्रयो मासाश्चतुर्दश दिनानि दिनशेषं खद्विदश १०२०। अक्षागाष्टरूपाणि १८७५ छेदः। तत्परिणामाय छेदं तेन वर्षद्वयेन सङ्गुण्य ततो मासत्रयं दिनीकृत्य सदिनं कृत्वा तेन छेदेन सङ्गुण्य शेषं युक्तं कृत्वा खर्त्वग्निभि-३६०र्विभज्यावाप्तं शतपञ्चकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं सार्द्धम् ५४४/१/२। तच्च वर्षघ्ने छेदे संयोज्यते। तस्य च सविकलत्वात् सवर्णनाय द्वाभ्यां गुणना क्रियते। स्वाधःस्थं रूपार्द्धं योज्यते। ततः सवर्णीकृतो भवति। एवं क्षेपस्य द्विगुणत्वाद् गुणकारभागहारा-वप्याचार्येण द्विगुणावुपनिबद्धाविति। तदर्थं चतुश्चत्वारिंशद् गुणकारः। शून्यशरागरामा ३७५० भागहार इति।।१।।

यदुक्तं वर्षं मासक्रमेणैव तत् कथमित्यत आह—

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥२॥

कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रों में बृहस्पति के रहने से कार्तिक आदि बारह मास की तरह बारह वर्ष होते हैं। इनमें केवल पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष तीन-तीन नक्षत्र के होते हैं।।२।।

कार्तिकादीनि कार्तिकमासपूर्वाणि वर्षाणि भवन्ति माससमानि द्वादश। तानि चाग्नेयात् कृत्तिकातः प्रभृति भद्वयानुयोगीनि। भद्वयेनानुयोगो येषाम्। नक्षत्रद्वयानुयोगीनि क्रमशः क्रमेण परिपाट्या भवन्ति।

त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षमिति। पञ्चमं फाल्गुनं वर्षम्। त्रिभं नक्षत्रत्रयानुयोगि। अन्त्यं द्वादशं चाश्वयुजं त्रिभम्। तस्य समीपमुपान्त्यमित्येकादशं च त्रिभम्। एवं पञ्चम-मुपान्त्यमन्त्यं च वर्षत्रयं त्रिभम्। तद्यथा—कृत्तिकारोहिणीभ्यां कार्तिकः। मृगशिरआर्द्राभ्यां मार्गशीर्षः। पुनर्वसुतिष्याभ्यां पौषः। आश्लेषामघाभ्यां माघः। पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तैः फाल्गुनः। चित्रास्वातीभ्यां चैत्रः। विशाखानुराधाभ्यां वैशाखः। ज्येष्ठामूलाभ्यां ज्यैष्ठः। पूर्वाषाढोत्तराषाढाभ्यामाषाढः। श्रवणधनिष्ठाभ्यां श्रावणः। शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रप-दाभिर्भाद्रपदः। रेवत्यश्विनीभरणीभिश्चाश्वयुज इति। एतदुक्तं भवति—यदा कृत्तिकायां रोहिण्यामवस्थितो वा गुरुरुदयं याति तदा कार्तिकं वर्षं ज्ञेयम्। एवमन्येषामपि। अत्रान्ये एवं व्याचक्षते—यथोपान्त्यमन्त्यं चेत्यत्रान्त्यशब्दः समीपवाची। उपान्त्यस्यैकादशस्य समीपं दशमं श्रावणं न तु द्वादशमाश्वयुजमिति। यतस्तत्र गर्गादिवचनैः सह विरोधो भवति। तथा च गर्ग आह—

फल्गुनी चैव हस्तं च चरेद्यदि बृहस्पतिः।
स फाल्गुनोऽब्दः क्रूरः स्याद्धान्यमुच्चाटतां व्रजेत्।।
श्रवणादीनि च त्रीणि चरेद्यदि बृहस्पतिः।
श्रावणो नाम सोऽब्दः स्यात् क्षेमसौभिक्षमूर्तिमान्।।
पूर्वोत्तरे प्रोष्ठपदे चरेद्रेवतिमेव च।
प्रौष्ठपाद इति ज्ञेयो मध्यमो वत्सरो हि सः।।
आश्विनं चैव याम्यं च चरेद्यदि बृहस्पतिः।
संवत्सरः सोऽश्वयुक् स्यात् सर्वभूतहितावहः।।

तथा च पराशरः—

'कृत्तिकारोहिणीषूदिते क्षुच्छस्त्राग्निना वृष्टिव्याधिप्राबल्यं गोशाकटिकपीडा च। सौम्यरौद्रयोरेतदेव गवादिवर्ज्जम्। तिष्यपुनर्वस्वोरुक्तविपर्ययः। पुष्यवन्मघाश्लेषासु राज्ञा-मुपतापश्च। फल्गुनीसावित्रेषु क्वचित्क्षेमसुभिक्षं नारीदौर्भाग्यं च। चित्रास्वात्योरुदितो नृप-

सस्यवर्षक्षेमारोग्यकरः। एवमेव मैत्रेन्द्राग्न्योरैन्द्रनैर्ऋतयोर्वनस्पतिसस्यवर्षश्रेष्ठनृपतिप्रधानजनविनाशायेतरवृद्धये। अषाढयोः प्राक्परसस्यानां वृद्धये मध्यमक्षेमवर्षणमन्योन्यभेदश्च। श्रवणधनिष्ठावारुणेषु यज्ञनृपसस्यवर्षारोग्यवृद्धये। अजाहिर्बुध्न्यपौष्णेष्वाषाढवत्फलं प्राक्परसस्यविपर्ययः। प्रभूतजलसस्यर्द्धिजलक्षेमाण्यश्वयुग्भरण्योरिति।

एवमत्रान्त्यशब्देन समीपं दशमं वर्षं श्रावणमन्त्येनाऽऽश्वयुजमिति न शोभनम्। अत्र केचिदृषिपुत्रस्य मतभेदं मन्यन्ते—

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र स्युः सौम्यत्वाष्ट्रवैष्णवाः।
द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः पूर्वपश्चिमयोगतः।। इति।

स्वमतेनैतद्विरुध्यते। यदि त्रिनक्षत्रो मार्गशीर्षस्तदा माघस्त्वेकनक्षत्रो भवति 'द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः' इत्यनेन सह विरुद्ध्यते। यस्मात् त्रयस्त्रिनक्षत्राः शेषा द्विनक्षत्राः स्मृतास्त्वेकनक्षत्रो नास्त्येव। तस्मात् पुस्तकपाठेऽयं सिद्धान्तपाठः कथ्यते।

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र ज्ञेया भाग्याजवैष्णवाः।
द्विनक्षत्राः स्मृताः शेषाः पूर्वपश्चिमयोगतः।। इति।

तथा च गर्गः—

नववारा द्विनक्षत्रा गुरोर्द्वादशमासिकाः।
शेषास्त्रयस्त्रिनक्षत्राः पञ्चमैकादशान्तिमाः।।

तथा च काश्यपः—

कार्तिकादिसमा ज्ञेया द्विनक्षत्रविचारिणा।
त्रिभं भाद्रपदे ज्ञेयं फाल्गुने श्रावणे तथा।।

तस्मात् 'क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्' इत्यत्र पञ्चमैकादशदशस्त्रिनक्षत्रांश्चेति शोभनम्।।२।।

अथैतेषां कार्तिकादीनां वर्षाणां फलानि विवक्षुरादौ कार्तिक आह—

शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च।
वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्तिके वर्षे ॥३॥

कार्तिक नामक वर्ष में गाड़ी से तथा अग्नि से आजीविका चलाने वाले (लोहार, सोनार आदि) और गौ—इन सबों को पीड़ित करता है। लोगों में व्याधि और लड़ाई होती है; किन्तु लाल और पीले पुष्पों की वृद्धि होती है।।३।।

कार्तिके वर्षे शकटोपजीविनां शकटेन गन्त्र्या य उपजीवन्ति तेषाम्। तथा अनलोपजीविनां सुवर्णकारलोहकारायस्कारादीनाम्। गवां च पीडा भवति। तथा व्याधयो रोगाः शस्त्रकोपश्च युद्धानि भवन्ति। तथा रक्तपीतककुसुमानां द्रव्याणां रक्तं पीतं च पुष्पं येषां सम्भवति तेषां च वृद्धिर्भवति। तथा च गर्गः—

कार्तिकः प्रचुरातङ्कः क्षुच्छस्त्राग्निभयप्रदः।
गोशाकटिकपीडां च करोत्येवमवृष्टिदः।। इति।।३।।

अथ मार्गशीर्ष आह—

सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः।
व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम्॥४॥

मार्गशीर्ष वर्ष में अनावृष्टि होती है। जंगली जानवर, चूहा, शलभ (टीढी) और पक्षियों से धान्य का नाश होता है। मनुष्यों में व्याधि का भय होता है तथा मित्रों से भी राजाओं को द्वेष होता है।।४।।

सौम्ये मार्गशीर्षेऽब्दे अनावृष्टिर्भवति। मृगा अरण्यपशवः, आखवो मूषकाः, शलभाः प्राणिनः कीटजातयः, अण्डजाः पक्षिणः—एतैः सस्यानां वधो नाशो भवति। तथा व्याधिभयं रोगभीतिः। भूपानां राज्ञां मित्रैरपि सुहृद्भिरपि वैरमप्रीतिर्जायत उत्पद्यते। किं पुनः शत्रुभिः सह न भवेदिति। तथा च गर्गः—

वर्षहन्ता व्याधिकरो मिथो भेदभयावहः।
शलभाद्याकुलः सौम्यो दुर्भिक्षभयकारकः।। इति।।४।।

अथ पौष आह—

शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः।
द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च॥५॥

पौष वर्ष में संसार का शुभ होता है, राजा लोग पारस्परिक द्वेष त्याग देते हैं, धान्य का मौल्य द्विगुणित या त्रिगुणित हो जाता है एवं पौष्टिक कर्म की सिद्धि होती है।।५।।

पौषोऽब्दो जगतो लोकस्य शुभकृच्छुभमिष्टं करोति। क्षितिपा राजानः परस्परमन्योन्यं निवृत्तवैरा विगतद्वेषा भवन्ति। धान्यस्यार्घो द्विगुणस्त्रिगुणो वा भवति। धान्यस्य यन्मूल्यमासीत्तेनैव द्विगुणं त्रिगुणं वा धान्यं लभ्यते। तथा पौष्टिककर्मणां पुष्टिदानां कार्याणां प्रसिद्धिर्भवति। अतिशयेन भवतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

प्रशान्तव्याधिदुर्भिक्षदुर्वर्षाशनितस्करः।
सर्वलक्षणसम्पन्नः पौषः संवत्सरोत्तमः।। इति।।५।।

अथ माघ आह—

पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्।
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च॥६॥

माघ नामक वर्ष में पितरों की पूजा की वृद्धि, सभी प्राणियों को तुष्टि, आरोग्य, सुन्दर वृष्टि, धान्यों के मौल्य में समता और मित्रों का लाभ होता है।।६।।

माघे पितृणां पूजापरिवृद्धिर्भवति। अत्यर्थं जनाः पितृपूजाकर्मणि रता भवन्तीत्यर्थः।

मघायाः पितृदैवतत्वात् सर्वभूतानां च हार्दिश्चित्ततुष्टिर्भवति। तथा आरोग्यं नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, धान्यस्यार्घसम्पत्समर्घता, एते भवन्ति। तथा मित्रलाभश्च भवति। यत्किञ्चिन्मित्रत्वमापद्यत इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

क्षेमारोग्यं सुभिक्षं च वर्षणं शिवमेव च।
पितृपूजाः प्रवर्तन्ते माघे राज्ञां च सन्धयः।। इति।।६।।

अथ फाल्गुन आह—

फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि।
दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्राः ।।७।।

फाल्गुन वर्ष में किसी-किसी स्थान में मंगलकार्य और धान्य होता है; किन्तु सर्वत्र मंगलकार्य और धान्य की उत्पत्ति नहीं होती तथा स्त्रियों की अभाग्यता, चोरों की प्रबलता और राजाओं की उग्रता बढ़ती है।।७।।

फाल्गुनवर्षे क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि विन्द्याज्जानीयात्। क्वचित्क्षेमं क्वचिद् वृष्टिः क्वचिच्च सस्यं भवति न सर्वत्र। तथा प्रमदानां स्त्रीणां दौर्भाग्यं दुर्भाग्यत्वं तन्नृणामवाल्लभ्यं भवति। प्रबलाश्चौरास्तस्करा बहवो भवन्ति। तथा नृपाश्च राजान उग्राः क्रूरा भवन्ति। तथा च गर्गः—

नारीदौर्भाग्यकृच्चौरः फाल्गुनः सस्यवर्षदः।
क्वचित् क्षेमं सुभिक्षं च क्वचिदक्षेमकारकः।। इति।।७।।

अथ चैत्र आह—

चैत्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः।
वृद्धिश्च कोशधान्यस्य भवति पीडा च रूपवताम् ।।८।।

चैत्र वर्ष में थोड़ी वृष्टि, दुर्लभ अन्न, लोगों में कुशलता, राजाओं में कोमलता, एकत्रित किये हुये धान्यों की वृद्धि और सुन्दर मनुष्यों को पीड़ा होती है।।८।।

चैत्रेऽब्दे वृष्टिर्मन्दा अल्पा भवति। प्रियमन्नं सुदुर्लभमन्नं भवति। लोके क्षेमं लब्धपालनं तथा अवनिपा राजानो मृदवोऽक्रूरा भवन्ति। कोशधान्यस्य शिम्बिधान्यस्य मुद्गादेर्वृद्धिर्बाहुल्यम्। तथा रूपवतां सुरूपाणां पीडा भवति। चशब्दः समुच्चये। तथा च गर्गः—

मृदुप्रचारा राजानः प्रियमन्नं जनस्य च।
क्षेमारोग्यं च मृदुता चैत्रवर्षस्तथा मृदुः।। इति।।८।।

अथ वैशाख आह—

वैशाखे धर्मरता विगतभयाः प्रमुदिताः प्रजाः सनृपाः।
यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ।।९।।

वैशाख वर्ष में राजाओं के साथ-साथ समस्त प्रजागण भी धर्मनिरत, भयरहित, आनन्दयुक्त और यज्ञकर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा सभी धान्यों की वृद्धि होती है।।९।।

वैशाखेऽब्दे सनृपाः प्रजा नृपेण राज्ञा सहिताः सर्वजनपदा धर्मरता धर्मसक्ता विगतभया भयरहिताः प्रमुदिताः प्रहृष्टाश्च भवन्ति। तथा यज्ञक्रियाणां यागकर्मणां प्रवृत्तिः प्रवर्तनं भवति। सस्यानां सर्वेषां च निष्पत्तिरशेषाणां सस्यानां समृद्धिर्भवति। तथा च गर्गः—

ईतयः प्रथमं यान्ति सन्धिं कुर्वन्ति पार्थिवाः।
वैशाखे तु सस्यजन्या वृष्टयः सम्भवन्ति हि।। इति।।९।।

अथ ज्येष्ठ आह—

ज्यैष्ठे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः।
पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कङ्गुं शमीजातिम् ॥१०॥

ज्येष्ठ वर्ष में अच्छे कुल में उत्पन्न, अति धनी, बहुतों में प्रधान, राजा लोग, धर्म को जानने वाले और कंगुनी तथा शमी के अतिरिक्त सभी धान्य पीड़ित होते हैं।।१०।।

ज्यैष्ठेऽब्दे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा जातीनां ये श्रेष्ठाः प्रधानाः, कुलश्रेष्ठाः सत्कुलजाः, धनश्रेष्ठा अतिधनिनः, श्रेणीश्रेष्ठा बहूनां समानजातीयानां संज्ञा श्रेणी, ततः श्रेष्ठाः प्रधानाः, नृपा राजानस्ते च सधर्मज्ञा धर्मज्ञैर्जनैः सहिताः, ते सर्व एव पीड्यन्ते। तथा धान्यानि च पीड्यन्ते सर्वाण्येव। किन्तु हित्वा कङ्गुशमीजातिम्। कङ्गुः प्रियङ्गुः, शमीजातिस्तिलादिः, एतद्धित्वा वर्जयित्वा। केचित् सबीजानीति पठन्ति। तथा च गर्गः—

वृक्षगुल्मलतासस्यक्षेमवर्षविनाशनः।
क्रूराज्ञादीप्तिजननो ज्यैष्ठो ज्येष्ठनृपान्तकृत्।। इति।।१०।।

अथाऽऽषाढ आह—

आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिदवृष्टिरन्यत्र।
योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ॥११॥

आषाढ वर्ष में कहीं-कहीं पर धान्य और कहीं-कहीं पर वर्षा का अभाव होता है, योगक्षेम (अलब्ध का लाभ, लब्ध का पालन) मध्यम रूप से होता है तथा राजा लोग काम में व्यग्र रहते हैं।।११।।

आषाढेऽब्दे क्वचित्क्वचित्सस्यानि जायन्ते उत्पद्यन्ते च सर्वत्र। अन्यत्रान्यत्र देशेषु अवृष्टिरवर्षणं भवति। तथा लोके योगक्षेमं मध्यमं भवति। अलब्धलाभो योगः, लब्धपालनं क्षेमम्, तच्च मध्यमं भवति। न चात्युत्कृष्टं न चातिनिकृष्टमित्यर्थः। भूपाला राजानो व्यग्राः सोद्यमा भवन्ति। तथा च गर्गः—

दुर्भिक्षाक्षेमजननश्चाषाढोऽन्योन्यभेदकृत्।
भूपालयुद्धजननो मध्यमक्षेमकारकः।। इति।।११।।

अथ श्रावण आह—

श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति।
क्षुद्रा ये पाखण्डाः पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ॥१२॥

श्रावण नामक वर्ष में सभी धान्य अच्छी तरह पक जाते हैं तथा क्षुद्र (क्रूर), पाखण्डी गण (वेदनिन्दक) और उनके भक्त लोग पीड़ित होते हैं।।१२।।

श्रावणवर्षे क्षेमं भवति। तथा सर्वाणि सस्यानि सम्यग् निश्चितं पाकं निष्पत्तिमुपयान्ति। तथा ये क्षुद्राः क्रूरा ये च पाखण्डा वेदबाह्यास्ते सर्वे पीड्यन्ते। ये च तद्भक्तास्तेषां क्षुद्राणां पाखण्डानां भक्ताः सेवकास्ते पीड्यन्ते बाध्यन्ते। तथा च गर्गः—

श्रावणः सस्यसम्पन्नः क्षेमारोग्यकरः शिवः।
धान्यं समर्घतां याति सम्यग् वर्षति वासवः।
क्षुद्रान् पाखण्डिनः सर्वान् तद्भक्तांश्चोपतापयेत्।। इति।।१२।।

अथ भाद्रपद आह—

भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च।
न भवत्यपरं सस्यं क्वचित्सुभिक्षं क्वचिच्च भयम् ।।१३।।

भाद्रपद वर्ष में वल्लीज (मूँग आदि अन्न) और पूर्व में बोये हुए धान्य पक जाते हैं; परन्तु इस वर्ष के आरम्भ के बाद के बोये हुए धान्य नहीं होते हैं तथा संसार में कहीं-कहीं पर सुभिक्ष और कहीं-कहीं पर भय होता है।।१३।।

भाद्रपदेऽब्दे वल्लीजं मुद्गादिकं निष्पत्तिं परिपाकं याति प्राप्नोति। तथा च पूर्वं प्रथममुप्तं सस्यं निष्पत्तिं याति। अपरं पश्चादुप्तं सस्यं न भवति। क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च भयं भीतिर्भवति। तथा च गर्गः—

प्रौष्ठपात् सस्यजननो नाशयत्यपरं च यत्।
करोति च क्वचित् क्षेमं क्वचिदक्षेमकारकः।। इति।।१३।।

अथाऽऽश्वयुज आह—

आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्।
प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ।।१४।।

आश्वयुज (आश्विन) वर्ष में बहुत वृष्टि, सर्वथा सानन्द प्रजा, सब प्राणियों में प्राणचय (अत्यधिक बल की वृद्धि) और अन्न की अधिकता होती है।।१४।।

आश्वयुजेऽब्दे वर्षेऽजस्रं सततं जलं पतति सततं वर्षतीत्यर्थः। तथा प्रजाः सर्वाः प्रमुदिताः प्रहृष्टाः। क्षेमं च भवति। तथा प्राणभृतां शरीरिणां सर्वेषामवशेषाणां प्राणचयो बलोपचयो भवति। तथाऽन्नबाहुल्यमतिसुभिक्षं च। तथा च वृद्धगर्गः—

पर्याप्तसस्यान्नजलक्षेमश्चाश्वयुजः शिवः।
सम्प्रवृत्तोत्सवः श्रीमान् सर्वकामसुखावहः।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

गुरुरुदयति नक्षत्रे यस्मिंस्तत्संज्ञितानि वर्षाणि।
द्विभयोगीन्याग्नेयात्त्रिभमन्त्यं पञ्चममुपान्त्यम्।।

अनेन वाक्येनाऽऽचार्यस्य प्रथमैव व्याख्या साध्वी। उपान्त्यमेकादशमन्त्यं च द्वादशमिति। तथा च—

फाल्गुनचैत्राषाढा मध्या: सौम्योऽधमस्तथा ज्यैष्ठ:।
वैशाखपौषमाघा: शुभफलदा: श्रावणाद्याश्च।। इति।।१४।।

अथ नक्षत्रेषु चरतो गुरोर्विशेषफलमाह—

उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानाम्।
याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी ।।१५।।

नक्षत्रों के उत्तर में चलता हुआ बृहस्पति संसार में सुभिक्ष और क्षेम करता है, दक्षिण में विपरीत फल (दुर्भिक्ष और अक्षेम) प्रदान करता है तथा नक्षत्रों के मध्य में चलता हुआ बृहस्पति मध्यम फल प्रदान करता है।।१५।।

वाक्पतिर्बृहस्पतिर्भानां नक्षत्राणामुदगुत्तरेण चरन् गच्छन्नारोग्यसुभिक्षक्षेमकर: आरोग्यं सुभिक्षं क्षेमं च करोति। याम्ये दक्षिणेन चरंस्तद्विपरीत: अनारोग्यमसुभिक्षमक्षेमं च करोति। मध्येन तु चरन् मध्यभागेन नक्षत्रस्य गच्छन् मध्यफलदायी भवति। मध्यमं फलं ददाति न शुभं नाशुभमिति।।१५।।

अन्यदप्याह—

विचरन् भद्वयमिष्टस्तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफल:।
सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं यदि कदाचित् ।।१६।।

यदि बृहस्पति एक वर्ष के अन्दर दो नक्षत्रों में विचरण करे तो शुभ फल, ढाई नक्षत्रों में विचरण करे तो मध्यम फल और यदि कदाचित् ढाई से भी अधिक नक्षत्रों में विचरण करे तो धान्यों का नाश करने वाला होता है।।१६।।

वत्सरेण वर्षेण भद्वयं नक्षत्रद्वयं विचरन् गच्छन् गुरुरिष्ट: शोभन:। एतदुक्तं भवति— बृहस्पतिर्यदा वर्षेण नक्षत्रद्वयं भुङ्क्ते तदा स प्रजानां शुभकरो भवति। **तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफल इति**। तन्नक्षत्रद्वयं सार्द्धं यदि वत्सरेण विचरति तदा मध्यफलो मध्यमं फलं करोति। न शुभं नाप्यशुभमित्यर्थ:। **सस्यानां विध्वंसीति**। अधिकं भद्वयात् सार्द्धाद्यदि कदाचिद्विचरेद्वर्षेण तदा सस्यानां विध्वंसी भवति। सस्यानि विनाशयतीत्यर्थ:। तथा च पराशर:—

'मध्यदक्षिणोत्तरमार्गप्रविचारी मध्यदारुणोत्तमप्रजाभावकर:। श्वेतरक्तपीतकृष्णवर्णो ब्राह्मणादिवर्णजयाय। सपादमृक्षद्वयमब्देन प्रविचरन् सस्यसम्पत् करोति। विपर्ययाद्विपरीत:।'

अथ गुरोर्वर्णलक्षणमाह—

अनलभयमनलवर्णे व्याधि: पीते रणागम: श्यामे।
हरिते च तस्करेभ्य: पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ।।१७।।

धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे।
विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः ॥१८॥

यदि बृहस्पति अग्निवर्ण का हो तो अग्नि का भय, पीतवर्ण का हो तो व्याधि, श्यामवर्ण का हो तो युद्ध, हरा हो तो चोरों से पीड़ा, लालवर्ण का हो तो शस्त्र का भय और धूमवर्ण का हो तो अनावृष्टि करता है। यदि बृहस्पति दिन में दिखाई दे तो राजा का नाश और ताराओं से सुन्दर रात्रि में बृहस्पति का विपुल निर्मल विम्ब दिखाई दे तो प्रजाओं को सर्वथा स्वस्थ करता है।।१८।।

त्रिदशगुरौ देवाचार्ये बृहस्पतावनलवर्णेऽग्निप्रभेऽनलभयमग्निभीतिर्भवति। पीते पीतवर्णे व्याधिः पीडा। श्यामे श्यामवर्णे रणागमः संग्रामः। हरिते हरितवर्णे शुकाभे तस्करेभ्यश्चौरेभ्यः पीडोपतापो लोकानां भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रभयम्।

धूमाभे धूमप्रभे अनावृष्टिरवर्षणम्। दिवा दिवसभागे दृष्टे नृपवधो राज्ञो मृत्युर्भवति। तथा च पराशरः—

कदाचिद्यत्र दृश्येत दिवा देवपुरोहितः।
राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति।।

विपुले महाबिम्बे। अमले निर्मले। सुतारे शोभनतारे। रात्रौ निशि। दृष्टे प्रजा लोकाः स्वस्था नीरोगा भवन्ति। केचिन्नृपाः स्वस्था इति पठन्ति।।१८।।

अथ संवत्सरपुरुषमाह—

रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढाद्वयं
सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम्।
देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं
पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥१९॥

संवत्सरपुरुष के रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्र शरीर, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नाभि, आश्लेषा हृदय और मघा पुष्प हैं। यदि संवत्सरपुरुष के ये शरीर आदि अङ्ग शुद्ध (पापग्रह से रहित) हों तो शुभ फल देते हैं। यदि देह (रोहिणी और कृत्तिका) में पाप ग्रह हो तो अग्नि और वायु का भय, नाभि (पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा) में पाप ग्रह हो तो दुर्भिक्ष का भय, पुष्प (मघा) में पाप ग्रह हो तो मूल (मूल पदार्थ) और फल (आम्र आदि) का क्षय तथा हृदय (आश्लेषा नक्षत्र) में पाप ग्रह हो तो धान्यों का नाश होता है।।१९।।

रोहिण्योऽनलभं कृत्तिकाः। एते द्वे नक्षत्रे संवत्सरतनुः संवत्सरपुरुषस्य शरीरम्। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे तस्यैव नाभिः। सार्पमाश्लेषा हृत् हृदयम्। पितृदैवतं मघा कुसुमं पुष्पमिति। प्रयोजनमप्याह—**शुद्धैः शुभं तैः फलमिति**। तैस्तन्वादिभिः शुद्धैः

पापग्रहविरहितैर्लोके शुभं फलं भवति। **देहे क्रूरनिपीडित इति।** क्रूरग्रहा रविभौमसौराः। देहे तनौ कृत्तिकारोहिण्योरित्यर्थः। क्रूरनिपीडिते क्रूरहते तयोर्यदि पापाः स्थितास्तदा अग्न्यनिलजं भयं भवति। अग्निर्हुतवहः, अनिलो वायुः, अनयोर्जातम्। तथा नाभ्यां पीडितायामषाढाद्वय इत्यर्थः। क्षुत्कृतं दुर्भिक्षभयं भवति। पुष्पे मघायां पीडितायां मूलफलक्षयः, मूलानां मूलद्रव्याणां फलानां चाम्रादीनां क्षयो विनाशो भवति। अथशब्दः स्वार्थे। हृदये आश्लेषायां पीडितायां ध्रुवमवश्यं सस्यस्य धान्यस्य नाशः क्षयो भवति। तथा च काश्यपः—

कृत्तिका रोहिणी चोभे संवत्सरतनुः स्मृता।
आषाढाद्वितयं नाभी सार्पं हृत्कुसुमं मघा।।
क्रूरग्रहहते देहे दुर्भिक्षानलमारुताः।
क्षुद्भयं तु भवेन्नाभ्यां पुष्पे मूलफलक्षयः।।
हृदये सस्यहानिः स्यात् सौम्यैः पुष्टिः प्रकीर्तिता।। इति।।१९।।

अधुना षष्ट्यब्दानयनमाह—

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला-
द्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः।
नवाष्टपञ्चाष्ट८५८९युतानि कृत्वा
विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ३७५० ।।२०।।

लब्धेन युक्तं शकभूपकालं
संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य।
युगानि नारायणपूर्वकाणि
लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ।।२१।।

एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेण।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ।।२२।।

शकादित्य (शालिवाहन) नृप के समय से जितने वर्ष बीते हों, उनको ग्यारह से गुणा कर गुणनफल को फिर चार से गुणा करे। उस गुणनफल में ८५८९ जोड़कर ३७५० से भाग देने पर जो लब्धि मिले, उसमें शकाब्द जोड़ कर ६० का भाग देने पर जो शेष बचे, उसमें पाँच का भाग दे। लब्ध गत युग और शेष वर्तमान युग के वर्ष आदि होंगे एवं उक्त वर्षों की संख्या को १२ से भाग दे और भागफल को नवगुणित अङ्क में मिलाकर ४ का भाग करने पर जो लब्धि हो, उतनी संख्या के नक्षत्रों में बृहस्पति की मान्यता समझे; परन्तु गणना के समय २४ वें नक्षत्र से गणना करनी चाहिए अर्थात् १ लब्धि हो तो २५वाँ (पूर्वाभाद्रपद) और २ लब्धि हो तो २६वाँ (उत्तराभाद्रपदा) नक्षत्र समझना चाहिये।

उदाहरण—जैसे शाके १८७६ में संवत्सर का आनयन करना है तो १८७६ को ११

से गुणा कर गुणनफल २०६३६ को फिर ४ से गुणा किया तो ८२५४४ हुआ; इसमें ३७५० का भाग देने से लब्ध वर्ष २४, शेष वर्ष ११३३ को १२ से गुणा कर गुणनफल १३५९६ में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध मास ३, मासशेष २३४६ को ३० से गुणा कर गुणनफल ७०३८० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध दिन १८, दिनशेष २८८० को ६० से गुणा कर गुणनफल १७२८०० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध घटी ४६, घटीशेष ३०० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध पला ४, पलाशेष ३००० 'अर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्' इस नियम से लब्ध पला ५ हुआ। अतः वर्ष आदि लब्धि = (२४। ३। १८। ४६। ५) इतनी हुई, इसमें इष्ट शकाब्द १८७६ जोड़ा तो १९००। ३। १८। ४६। ५ हुआ। इसके वर्षस्थान १९०० में ६० का भाग देने से लब्धि ३१ और शेष षष्ट्यब्द प्रमाण—४०। ३। १८। ४६। ५ रहा, अतः ४०वें संवत्सर के अग्रिमस्थ ४१वाँ संवत्सर 'प्लवङ्ग' नाम का इष्ट शकाब्द १८७६ में सिद्ध हुआ। इस ४०। ३। १८। ४६। ५ में ५ का भाग देने से लब्धि ८ और शेष ०। ३। १८। ४६। ५ रहा। अतः नवम युग (सोम) में वर्ष आदि ०। ३। १८। ४६। ५ बीता है।।२०-२२।।

शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः। तस्माच्छकेन्द्रकालात् शकनृपवधादारभ्याभीष्टवर्षं यावद् यानि वर्षाणि गतान्यतीतानि तानि संस्थाप्य हतानि रुद्रैरेकादशभिर्गुणयेत्, ततः पुनरपि चतुर्भिर्गुणयेत्। एवं चतुश्चत्वारिंशता गुणितानि भवन्तीत्यर्थः। ततो नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कार्याणि। अष्टभिः सहस्रैः पञ्चभिः शतैरेकोननवत्यधिकैरित्यर्थः ८५८९। एवं कृत्वा ततः शून्यशरागरामैर्विभाजयेत्। त्रिभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः सार्द्धैरित्यर्थः ३७५०। एतैर्भागमपहरेत्, लब्धं फलं वर्षाणि। तान्येव बृहस्पतिराशयः। शेषं त्रिंशता सङ्गुण्य तेनैव छेदेन विभज्यावाप्तं भागा राशीनामधः स्थाप्याः। भागशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं लिप्ता भागानामधः स्थाप्याः। भागशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं विलिप्ता लिप्तानामधः स्थाप्याः।

लब्धेन युक्तमिति। ततस्तेन लब्धेन राश्यादिना फलेन शकभूपकालं शकनृपसमयं युक्तं कार्यम्। वर्षेषु राशयः क्षेप्याः शेषमधः स्थापयेत्। यतस्तानि वर्षरूपाण्येव गुरो राशयः सम्पन्नाः। ततः संशोध्य षष्ट्या। वर्षस्थाने योऽसौ राशिस्ततः षष्ट्या भागमपहरेत्। लब्धमतीतषष्ट्यब्दाः। शेषं वर्तमानषष्ट्यब्दस्य गतवर्षाणि। यतो गुरो राशिभोग एव वर्षम्। ततस्तान्यब्दान्यत्र विषयैः पञ्चभिर्विभज्य लब्धं वर्तमानषष्ट्यब्दस्यातीतयुगानि। एतानि नारायणपूर्वकाणि विष्णुप्रभृतीनि भवन्ति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदेव वर्तमानयुगस्याब्दाः सविकला गताः। शेषं पञ्चभ्यः संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति वर्षाणि तत्र भवन्ति।

अथ बृहस्पतिनक्षत्रज्ञानं तद्वशेन वर्षज्ञानमप्याह—**एकैकमिति**। वर्तमानषष्ट्यब्दस्य ये गताः सविकला अब्दा अनष्टाः पृथक् स्थापिताः। तान् सविकलान् पृथगेकत्र नवभिर्गुणयेत्, ततो द्वितीयस्थानस्थेभ्यो वर्तमानषष्ट्यब्दगतवर्षेभ्यो द्वादशभागं वर्षादिकं गृहीत्वा नवगुणि

ष्वब्देषु योजयेत्। यत उक्तम्—**एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेणेति।** द्वादशभिर्द्वादशभिर्वर्षैरेकैकं योजयेत्। वर्षस्थाने द्वादशभिर्भागमपहृत्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः। शेषं त्रिंशता षष्ट्या षष्ट्या च सङ्गुण्य विकलासहितं कृत्वा प्राग्वद् भागाद्यानीय तत्र राशीनामधः स्थापयित्वा द्वादशभागं नवाहतेष्वब्देषु योजयेद्यथास्थानमेव। ततः स्वच्छेदैर्भागमपहृत्यावाप्तं यथास्थानमुपर्युपरि योजयेत्। ततस्तत्र चतुर्भिर्भागमपहृत्य यल्लब्धं तान्युडूनि नक्षत्राणि वसुदेवताद्यानि धनिष्ठादीनि भवन्ति। शेषं स्थाप्यम्। लब्धस्य सप्तविंशत्यावशेषाङ्कसमं धनिष्ठादिकं नक्षत्रं वक्तव्यम्। तत्र चतुर्भिर्भागे हृते यच्छेषं स्थापितं तदंशकपूर्वमब्दं भवति। लब्धसंख्यनक्षत्रात् परस्य नक्षत्रस्य तावद्भिरंशैश्चतुर्भागैर्गुरुणा भुक्तैर्वर्तमानात् पूर्वस्य कार्तिकादेः प्रवृत्तिरिति। यदुक्तम्—वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनीत्यादि। एतन्मध्यगत्या ज्ञेयम्, न स्फुटगत्येति। अत्राऽऽनयनमाचार्येण स्फुटतरं पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तथा च—

रविशशिनोः पञ्चयुगं वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि।
अधिमासास्त्रिंशद्भिर्मासैरवमो द्विषष्ट्याह्नाम्।।
द्यूनं शकेन्द्रकालं पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षाणाम्।
द्युगणं माघसिताद्यं कुर्याद्युगभानि वह्न्युदयात्।।
सैकत्रिंशे द्युगणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽक्ष्यर्कैः।
दिग्रसभागैः सप्तभिरूनं शशिभं धनिष्ठाद्यम्।। इति।

गतानि वर्षाणीत्यत्रोत्पत्तिः प्रदर्श्यते— पूर्वमेव रव्यब्दानां गुरुवर्षाणां चान्तरे कृते त्रैराशिकेन प्रतिवर्षमन्तरं प्रदर्शितम्। तत्र फलभागाद्भाज्यभाजकराशी द्वावप्यपवर्तितौ। तत्र भाज्यराशिर्जातो द्वाविंशतिः २२। भाजकराशिः शरागाष्टेन्दवः १८७५। तत्र च शकेन्द्रकालाद् गतवर्षाणि सौराणि यातानि यानि तानि च बार्हस्पत्यानि क्रियन्ते। कथम्? उच्यते—पृथक्स्थानि द्वाविंशत्या सङ्गुण्य शरागाष्टेन्दुभिर्विभज्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः कल्प्याः। शेषात्त्रिंशदादिगुणकारगुणितात् प्राग्वद्विभज्याऽऽप्तमंशादिकं वर्षाणामधः स्थापयेत्। तच्च वर्षादिफलं तत्रैव शककाले संयोज्य बार्हस्पत्येन मानेन तानि वर्षाणि भवन्ति। एवं स्थिते सति तत्र शककालात् प्रागगतस्य षष्ट्यब्दस्य छेदपरिणतं शेषमस्ति वेदनवयमाब्धयः सार्द्धाः ४२९४/१/२। एतान्यत्र योज्यानि भवन्तीति तदर्थं सवर्णीक्रियते। स्वच्छेदेन द्विकेन गुणयित्वा रूपं च संयोज्य जातो राशिर्नवाष्टपञ्चाष्टाख्यः ८५८९। एवं क्षेपसवर्णिते सति गुणकभाजकावपि सवर्णीकृतौ यतः तेनैवात्र गुणकारश्चतुश्चत्वारिंश४४दङ्को जातः। भागहारः शून्यशरागरामाख्यः ३७५०। लब्धेन फलेन शककालं संयुतं कृत्वा बार्हस्पत्येन मानेनाब्दगणो भवति। तस्य षष्ट्या भागे हृते अतीताः षष्ट्यब्दा भवन्ति। शेषस्य पञ्चभिर्भागे हृते युगानि लभ्यन्ते। यतः पञ्चवार्षिकं युगम्। ततो नवाहता अब्दा नक्षत्रपदा भवन्ति, राश्यात्मकत्वात्। अत्र द्वादशकक्रमेणैकैको नक्षत्रपादो दीयते पृथक्स्थादब्दसमूहात्। यतस्तत्र वर्षद्वादशके नक्षत्रे पादमन्तरं भवति। चतुर्भिर्भागे हृते

नक्षत्राणि सविकलानि भवन्ति। तेषां च धनिष्ठादिका गणना। यतो धनिष्ठास्थे गुरौ षष्ट्यब्दप्रवृत्तिः। यतो वक्ष्यति 'आद्यं धनिष्ठांशम्' इत्यादि। अर्थादेवाशेषं भोग्यनक्षत्रपादा भवन्तीति।।२०-२२।।

अधुना द्वादशानां षष्ट्यब्दावस्थितानां युगानां नामान्याह—

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च ।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥२३॥

विष्णु, सुरेज्य (बृहस्पति), बलभित् (इन्द्र), हुताश (अग्नि), त्वष्टा (प्रजापति), उत्तरप्रोष्ठपदाधिप (अहिर्बुध्न्य), पिता, विश्वेदेव, सोम, शक्रानल (इन्द्राग्नि), अश्वि (अश्विनीकुमार), भग (सूर्य)—ये बारह पूर्वकथित बारह युगों के स्वामी हैं।।२३।।

विष्णुर्नारायणः प्रथमयुगम्। सुरेज्यो बृहस्पतिर्द्वितीययुगम्। बलभिदिन्द्रस्तृतीयम्। हुताशोऽग्निश्चतुर्थम्। त्वष्टा नाम प्रजापतिः पञ्चमम्। उत्तरप्रोष्ठपदाधिपोऽहिर्बुध्न्यः षष्ठम्। पिता सप्तमम्। विश्वोऽष्टमम्। सोमो नवमम्। शक्रानल इन्द्राग्निर्दशमम्। अश्विसंज्ञमेकादशम्। भगः सूर्यो द्वादशम्। एते देवविशेषा द्वादश क्रमादानुपूर्व्येण युगेशा युगस्वामिनः प्रदिष्टा उक्ताः। तथा च समाससंहितायाम्—

विष्णुगुरुशक्रहुतभुक्त्वष्टाहिर्बुध्न्यपित्र्यविश्वानि ।
सौम्यमथेन्द्राग्न्याख्यं त्वाश्विनमपि भाग्यसंज्ञं च।। इति।।२३।।

अत्र युगे युगे पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तेषां नाम दैवतं च प्रत्येकस्याह—

संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली ।
प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥२४॥

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर—ये प्रत्येक युग में पाँच-पाँच संवत्सर होते हैं। इनके स्वामी क्रम से अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और शिव हैं। जैसे संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का स्वामी सूर्य, इदावत्सर का स्वामी चन्द्र, अनुवत्सर का स्वामी प्रजापति और इद्वत्सर का स्वामी शिव है।।२४।।

संवत्सरपरिवत्सरेदाद्यनुवत्सरेद्वत्सराख्यानि पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तत्र यः संवत्सरः प्रथमोऽब्दः सोऽग्निदैवत्यः। परिवत्सरो द्वितीयः सोऽर्कदैवत्यः सूर्याधिपः। यश्चेदादिकः इदाशब्द आदौ यस्य स इदावत्सरस्तृतीयस्तस्य शीतमयूखमाली चन्द्रोऽधिपतिः। योऽनुवत्सरश्चतुर्थस्तस्य प्रजापतिर्ब्रह्माऽधिपतिः। य इद्वत्सरः पञ्चमस्तस्य शैलसुतापतिरुमाभर्ता रुद्र इति। अत्र दैवतकथनेन किं प्रयोजनम्? उच्यते—यथा युगानामधिपतय उक्तास्तथा वर्षाणामपि। तस्मिन् वर्षे तस्या देवताया यागः सम्पत्त्यर्थं वेदे पठ्यते। तदर्थं दैवतकथनमिति।।२४।।

अथैतेषां फलान्याह—

वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये ।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥२५॥

संवत्सर नामक वर्ष में मध्यम रूप से (जैसे—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक—इन चारों मासों में समान) वृष्टि होती है, परिवत्सर नामक वर्ष में आद्य भाग में (श्रावण, भाद्र में) एवं इदावत्सर नामक वर्ष में चारों मासों में बहुत वृष्टि होती है। अनुवत्सर नामक वर्ष में अन्त में (आश्विन और कार्तिक में) वृष्टि होती है और इद्वत्सर नामक वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है।।२५।।

आद्ये संवत्सराख्ये वर्षे समा वृष्टिर्भवति, न चातिबह्वी न चात्यल्पा। श्रावणभाद्रपदाऽश्वयुजकार्तिकमासेषु चतुर्ष्वपि तुल्या भवतीत्यर्थः। द्वितीये परिवत्सरे प्रमुखे प्रथमभागे आदावेव वृष्टिर्भवति न पश्चात्। श्रावणभाद्रपदयोर्भवति नाश्वयुजकार्तिकयोरित्यर्थः। तृतीये इदावत्सरे प्रभूततोया बहुजला वृष्टिर्भवति चतुर्ष्वपि मासेषु। यच्चतुर्थवर्षमनुवत्सराख्यं तत्पश्चादन्ते जलं मुञ्चति वर्षति। न प्रथममाश्वयुजकार्तिकयोर्न श्रावणभाद्रपदयोरित्यर्थः। यत्पञ्चममब्दं वर्षमिद्वत्सराख्यं तत्स्वल्पोदकमल्पजलमुक्तं कथितं चतुर्ष्वपि मासेषु।।२५।।

अधुना युगान्युत्तममध्यमाधमान्याह—

चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां
विष्णिवन्द्रजीवानलदैवतानि ।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि
चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विन्द्यात् ॥२६॥

पूर्वकथित बारह युगों में विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि जिनके देवता हैं, वे उत्तम, मध्य के चार (प्रजापति, उत्तरप्रौष्ठपदाधिप, पिता और विश्वेदेव) जिनके देवता हैं, वे मध्यम और अन्त के चार (सोम, शक्रानल, अश्वि और सूर्य) जिनके देवता हैं, वे अशुभ होते हैं।।२६।।

एषां द्वादशानां युगानां मध्याच्चत्वारि युगानि मुख्यानि उत्तमफलानि प्रयच्छन्ति। अथशब्दः पादपूरणे चार्थे वा। कानि तानि? विष्णुः। इन्द्रः। जीवो बृहस्पतिः। अनलोऽग्निः। विष्णुदैवतं प्रथमम्। इन्द्रदैवतं तृतीयम्। बृहस्पतिदैवतं द्वितीयम्। अग्निदैवतं चतुर्थम्। एतानि मुख्यानि। तथा चत्वारि युगानि मध्यानि मध्यमान्येव मध्यफलानि न शुभानि नाप्यशुभानि। कानि च तानि? त्वष्टृदैवतम्। अहिर्बुध्न्यदैवतम्। पितृदैवतम्। विश्वदैवतम्। एतानि मध्यफलानि। तथा चान्त्यानि चत्वारि। सोमदैवतम्। इन्द्राग्निदैवतम्। अश्विदैवतम्। भगाख्यदैवतम्। एतान्यधमानि दुष्टफलानि विन्द्याज्जानीयात्। तथा च समाससंहितायाम्—

चत्वारि युगान्यादौ शुभानि मध्यानि मध्यमफलानि।
चत्वार्यन्त्यानि न शोभनानि वर्षैर्विशेषोऽत्र।। इति।।२६।।

अधुना षष्ट्यब्दपूर्वस्य प्रभवाख्यस्याब्दस्य प्रवृत्तिकालमाह—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः ।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः ॥२७॥

जब धनिष्ठा के प्रथम अंश में स्थित होकर बृहस्पति माघ मास में उदित होता है, उस समय से षष्ट्यब्दों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष का प्रारम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियों के लिये हितकारी होता है।।२७।।

सुरेज्यो बृहस्पतिः। आद्यं प्रथमं धनिष्ठांशं धनिष्ठायाः प्रथमपादमभिप्रपन्नस्तत्र स्थितो माघे मासे यदा यस्मिन् काले उदयं याति सूर्यमण्डलादुद्गच्छति तदा तस्मिन् काले षष्ट्यब्दपूर्वः षष्ट्यब्दस्य प्रथमोऽब्दः। स च प्रभवो नाम्ना प्रभवसंज्ञः प्रपद्यते प्रवर्तते। तस्य प्रारम्भो भवतीत्यर्थः। एतच्चान्द्रेण मानेन यो मासस्तत्र सम्भवति न सौरमानेन। यतः कृतदृक्कर्मद्वयो गुरुर्यदा राशिनवकाद्भागत्रयोविंशतेर्लिप्ताविंशतेश्चार्वाग्भवति, सूर्यश्च राशिदशकं षड् भागान् द्वादशलिप्ताश्च भुक्त्वा स्थितो भवति, तदैतत्सम्भवति नान्यत्रेति। कीदृशोऽब्दः? भूतहितो भूतानां सत्त्वानां हितोऽनुकूल इति।।२७।।

तथा च स्वरूपमाह—

क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः
सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः।
संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते
न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ।।२८।।

यद्यपि प्रभव संवत्सर में कहीं-कहीं पर अवृष्टि, कहीं-कहीं पर वायु का प्रकोप, कहीं-कहीं पर अग्नि का कोप, कहीं-कहीं पर अतिवृष्टि आदि छः ईतियों का भय और कहीं-कहीं पर कफजन्य रोग होते हैं, तथापि संसारस्थित प्राणियों को विशेष कष्ट का अनुभव नहीं होता है।।२८।।

अस्मिन् प्रभवाख्ये संवत्सरे वर्षे प्रवृत्ते प्रतिपन्ने सति क्वचित्त्ववृष्टिरवर्षणं भवति न सर्वत्र। तथा पवनाग्निकोपः। पवनो वायुः। अग्निर्हुताशनः। वायुप्रकोपोऽग्निप्रकोपश्च क्वचिद् भवति। तथा ईतयोऽतिवृष्ट्यादय उपद्रवाः सन्ति भवन्ति। श्लेष्मकृताः कफोत्पन्नाश्च रोगा गदाश्च क्वचिद् भवन्ति। तथापि जनो लोको न दुःखं कृच्छ्रमाप्नोति लभते।।२८।।

अथान्येष्वब्देषु नामानि फलं चाह—

तस्माद् द्वितीयो विभवः प्रदिष्टः शुक्लस्तृतीयः परतः प्रमोदः ।
प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलान्यथैषाम् ।।२९।।
निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् ।
संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ।।३०।।

इसके बाद दूसरे वर्ष का नाम विभव, तीसरे का शुक्ल, चौथे का प्रमोद और पाँचवें वर्ष का नाम प्रजापति है। ये चारो वर्ष उत्तरोत्तर शुभ फल देने वाले होते हैं। इन वर्षों में राजाओं की शासनपद्धति ऐसी होती है, जिससे धान्य, ईख, यव आदि अन्न अच्छी तरह पककर सुन्दर फल देने वाले होते हैं तथा सभी प्राणी निर्भय, द्वेषरहित, आनन्दयुत और कलि के दोष

(अधर्म, व्याधि, दारिद्र्य, शोक, कलह, मृत्यु आदि) से विमुक्त होते हैं।।२९-३०।।

तस्मात् प्रभवाद् द्वितीयोऽब्दो विभवनामा प्रदिष्ट उक्त:। तृतीय: शुक्ल:। परतोऽनन्तरं चतुर्थ: प्रमोद:। प्रजापति: पञ्चमश्चेति। इतिशब्द: प्रकाराय। एतानि वर्षाणि यथोत्तराणि उत्तरोत्तराणि। शस्तानि शुभानि। अथानन्तरमेषां वर्षाणां फलानि भवन्ति।

निष्पन्नेत्यादि। तदा तस्मिन् युगे क्षत्रं राजवर्गो भूतधात्रीं वसुन्धरामेवंविधां शास्ति पालयति। किम्भूताम्? निष्पन्ना निष्ठा: प्राप्ता: शालय इक्षवो यवादय: सस्यानि च यस्यां ताम्। आदिग्रहणाद् गोधूममसूरचणकमुद्गमाषा गृह्यन्ते। तथा भयैर्दु:खैर्विमुक्तां वर्जिताम्। उपशान्तवैरां नष्टद्वेषाम्। संहृष्टलोकां प्रहृष्टजनाम्। कलिदोषमुक्तां कलियुगे ये दोषा अधर्मव्याधिदारिद्र्यशोककालमृत्युप्रभृतयस्तैर्मुक्तां रहिताम्। अथवा कलि: कलह:। दोषा राष्ट्रोपतापा:।।२९-३०।।

अथ द्वितीययुगस्याह—

आद्योऽङ्गिरा: श्रीमुखभावसाह्वौ युवा सुधातेति युगे द्वितीये।
वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ॥३१॥

त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी देवो निरातङ्कभयश्च लोक:।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टि: किन्त्वत्र रोगा: समरागमश्च ॥३२॥

द्वितीय युग के अन्तर्गत अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता—ये पाँच वर्ष होते हैं। इनमें प्रथम तीन (अङ्गिरा, श्रीमुख और भाव) शुभ और शेष (युवा और धाता) मध्यम होते हैं। इनमें आदि के तीन वर्षों में देव (इन्द्र) पर्याप्त वर्षा करते हैं और सब लोग निर्भय रहते हैं। अन्त के दो वर्षों में मध्यम रूप से सुवृष्टि होती है; पर इनमें रोग और युद्ध होता है।।३१-३२।।

द्वितीये वार्हस्पत्ययुगे आद्य: प्रथमोऽब्दोऽङ्गिरा:, द्वितीय: श्रीमुख:, तृतीयो भावसाह्वो भावसेत्याह्व: संज्ञा यस्य, चतुर्थो युवा, पञ्चम: सुधाता। एतानि पञ्च वर्षाणि यथाक्रमेण परिपाट्या स्थितानि। अत्रास्मिन् युगे त्रीणि प्रथमानि वर्षाणि शस्तानि शोभनानि। परे पश्चिमे चतुर्थपञ्चमे द्वे समे न शुभे नाप्यशुभे इति।

त्रिष्वाद्यवर्षेष्विति। आद्येषु प्रथमेषु त्रिषु वर्षेषु अङ्गिर:श्रीमुखभावसाह्वेषु देव इन्द्रो निकामवर्षी निकामं पर्याप्तं वर्षति। लोको जनो निरातङ्कभय:, आतङ्क उपद्रवो भयं भीतिश्च निर्गता अविद्यमाना यस्य। तथा अन्त्ये पश्चिमे अब्दद्वये वर्षयुग्मे सुवृष्टि: शोभना वृष्टि: समा तुल्या भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा यथाकालोपयोग्या। किन्तु अत्रास्मिन् वर्षद्वये रोगा गदा भवन्ति। तथा समरागमश्च। समर: संग्रामस्तस्यागम: प्राप्ति:।।३१-३२।।

अथ तृतीययुगस्याह—

शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहु:।
प्रमाथिनं विक्रममप्यथान्यद् वृषं च विन्द्याद् गुरुचारयोगात् ॥३३॥

आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् ।
पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥३४॥

तृतीय (ऐन्द्र) युग में ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष—ये पाँच वर्ष बृहस्पति के सञ्चारवश होते हैं। इनके प्रथम (ईश्वर) और द्वितीय (बहुधान्य) वर्ष शुभ हैं तथा इनमें प्रजागण कृतयुग की तरह (धर्म में निरत, सुखी और दीर्घजीवी) होते हैं। प्रमाथी नाम का तृतीय वर्ष पापफल देने वाला होता है। वृष और विक्रम नामक वर्ष सुभिक्ष तो करता है; किन्तु रोग और भय देने वाला भी होता है।।३३-३४।।

शाके इन्द्रे युगे पूर्वं प्रथमं वर्षमीश्वरसंज्ञम्। अथशब्दः पादपूरणे। द्वितीयं वर्षं बहुधान्यसंज्ञमाहुरुक्तवन्तः। प्रमाथिनं तृतीयम्। विक्रमं चतुर्थम्। अपिशब्दश्चार्थे। अथशब्द आनन्तर्ये। अन्यत् पञ्चमं वृषं नाम गुरुचारयोगाद् बृहस्पतिचारसंयोगाद्विन्द्याज्जानीयात्। यतो बार्हस्पत्येनैव मानेनैतानि वर्षाणि भवन्ति। यस्मिन् काले गुरुरादित्यमण्डलादुदेति तस्मिन्नेव कालेऽब्दप्रवृत्तिः। अत उक्तं **गुरुचारयोगादिति।**

आद्यं द्वितीयं चेति । आद्यं वर्षं द्वितीयं च एते द्वे वर्षे शुभे प्रशस्तफले प्रजानां लोकानां कृतानुकारं कृतयुगस्यानुकारं कुरुतः। तद्धर्मानुष्ठानात् तत्सदृशमित्यर्थः। धर्मरताः सुखिता दीर्घजीविन्यः प्रजा भवन्तीति यावत्। प्रमाथी नाम तृतीयोऽब्दः, स पापोऽनिष्टफलः। वृषविक्रमौ तु द्वावब्दौ सुभिक्षदौ सुभिक्षं ददतः, किन्तु रोगभयप्रदौ रोगभयं कुरुतः।।३३-३४।।

अथ चतुर्थस्य युगस्याह—

श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम् ।
मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसञ्ज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं नतं च ॥३५॥
तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम् ।
पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥३६॥

चतुर्थ (हुताश) युग के अन्तर्गत चित्रभानु नामक प्रथम वर्ष शुभ फल देने वाला, द्वितीय सुभानु नामक वर्ष मध्यम फल देने वाला और तृतीय नत नाम का वर्ष रोगप्रद और मृत्यु को देने वाला होता है। चतुर्थ तारण नामक वर्ष में बहुत जल, धान्यों की वृद्धि और राजाओं में आनन्द की वृद्धि होती है। पञ्चम व्यय नामक वर्ष शुभ है, इसमें काम की प्रबलता और उत्सव (विवाहादि मङ्गलकार्य) होते हैं।।३५-३६।।

श्रेष्ठमिति । चतुर्थस्य युगस्य हुताशाख्यस्य पूर्वं प्रथमं वर्षं यच्चित्रभानुसंज्ञं तच्छ्रेष्ठं शुभं कथयन्ति प्रवदन्ति। तस्यैव द्वितीयं सुभानुसंज्ञं तच्च मध्यं मध्यफलम्। तृतीयं नतं नाम तच्च रोगप्रदं रोगान् ददाति। मृत्युकरं मृत्युं च करोति।

तदमु तस्य तृतीयस्य वर्षस्य पश्चाच्चतुर्थं वर्षं तारणं नाम, तच्च भूरिवारिदम्, भूरि बहु वारि जलं ददाति। तथा सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम्, सस्यानां वृद्धिः, मुदिताति-

पार्थिवं मुदितो हृष्टोऽतीवात्यर्थं पार्थिवो राजा च यत्र। तथा पञ्चमं वर्षं व्ययसंज्ञं तच्च श्रेष्ठमुशन्ति कथयन्ति। मन्मथप्रबलम्, मन्मथ: काम: प्रबल उद्धतो यस्मिन् वर्षे तत्। तथोत्सवैर्विवाहादिभिराकुलं सोद्यमम्।।३५-३६।।

अथ पञ्चमस्य युगस्याह—

त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी।
तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ॥३७॥

पञ्चम (त्वाष्ट्र) युग के अन्तर्गत सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें दूसरा (सर्वधारी) शुभ और शेष (सर्वजित्, विरोधी, विकृत और खर) भय देने वाले होते हैं।।३७।।

त्वाष्ट्रे युगे आद्य: प्रथम: संवत्सरोऽब्द: सर्वजिन्नामा उक्त: कथित:। अन्यो द्वितीय: सर्वधारी। खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे आगमद्योतनार्थे वा। तस्माद् द्वितीयात् परतस्तृतीयो विरोधी नाम। चतुर्थो विकृत:। पञ्चम: खर:। **शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषा इति।** अत्रास्मिन् युगे द्वितीयोऽब्द: शस्त: शुभ:। शेषा: प्रथमतृतीयचतुर्थपञ्चमा भयाय भवन्ति भयं कुर्वन्ति। अनिष्टफलदा इत्यर्थ:।।३७।।

अथ षष्ठस्य युगस्याह—

नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः।
कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥३८॥

षष्ठ (प्रोष्ठपद) युग में नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें आदि के तीन (नन्दन, विजय और जय) शुभ, मन्मथ मध्यम और शेष (दुर्मुख) अशुभ है।।३८।।

अहिर्बुध्न्ये युगे प्रथमोऽब्दो नन्दन:। अथानन्तरं द्वितीयो विजय:। तथा तेनैव प्रकारेण तृतीयो जय:। चतुर्थो मन्मथ:। अस्य चतुर्थस्य परतोऽनन्तरं दुर्मुख: पञ्चम:। अत्रास्मिन् युगे आदित आदौ प्रथमं वर्षत्रयं कान्तं शुभमित्यर्थ:। केचित् 'कान्तमत्र युगमादितस्त्रये' इति पठन्ति। अत्रास्मिन् युगमादित आदौ प्रथमवर्षत्रये कान्तम्। मन्मथ: समफल:, न शुभो नाप्यशुभ इत्यर्थ:। अपरश्च दुर्मुखोऽधम:, अशुभफल इत्यर्थ:।।३८।।

अथ सप्तमस्य युगस्याह—

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि परतो विकारि च।
शर्वरीति तदनु प्लवः स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ॥३९॥

ईतिप्राया प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे
मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः ॥४०॥

सप्तम (पितृसंज्ञक) युग में हेमलम्ब, विलम्बी, विकारी, शर्वरी, प्लव—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (हेमलम्ब) संवत्सर में अधिकतर अतिवृष्टि आदि छः ईतियों का भय और अधिक वायु के प्रकोप से युत वृष्टि होती है। दूसरे (विलम्बी) संवत्सर में थोड़ा धान्य और अधिक वृष्टि होती है। तृतीय संवत्सर बहुत उद्वेग (दोष) करने वाला और अधिक जल देने वाला होता है। चौथा (शर्वरी) संवत्सर दुर्भिक्ष करने वाला होता है एवं पाँचवाँ (प्लव) संवत्सर शुभ फल और बहुत वृष्टि देने वाला होता है।।३९-४०।।

सप्तमे पैत्रे हेमलम्ब इति प्रथमो वत्सरः स्यात्। विलम्बि द्वितीयः। परतोऽनन्तरं तृतीयो विकारि। चशब्दः समुच्चये। शर्वरीति चतुर्थः। तदनु तत्पश्चात् पञ्चमो वत्सरोऽब्दः प्लवः इति उक्तः। गुरुवशेन बृहस्पतिचारयोगात्।

ईतिप्रायेति। पूर्वे प्रथमेऽब्दे वर्षे ईतिप्रायाऽतिवृष्ट्याद्युपद्रवबहुला। प्रचुरपवना बहुवाता वृष्टिर्भवति। अतोऽब्दाद् द्वितीये वत्सरे मन्दमल्पं सस्यं न बहुसलिलं प्रभूतजलं भवति। तृतीयो वत्सरोऽत्युद्वेगकरः प्रभूतदोषदस्तथा प्रचुरसलिलः प्रभूतजलः स्याद् भवेत्। चतुर्थो दुर्भिक्षाय भवति। ततोऽनन्तरं प्लव इति पञ्चमः शोभनः श्रेष्ठ इति। स च भूरितोयो बहुजलश्च भवति।।३९-४०।।

अथाष्टमस्य युगस्याह—

वैश्वे युगे शोक हृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद् द्वितीयः।
क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ।।४१।।

पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः।
अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्तिर्द्विजगोभयं च ।।४२।।

अष्टम (वैश्व) युग में शोकहृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (शोकहृत्) और द्वितीय (शुभकृत्) संवत्सर प्रजाओं को आनन्द देने वाले होते हैं। तृतीय (क्रोधी) संवत्सर बहुत अशुभकारी है। अन्त्य के चतुर्थ (विश्वावसु) और पञ्चम (पराभव) संवत्सर मध्यम फल देने वाले होते हैं; किन्तु पराभव संवत्सर में अग्नि का भय, शस्त्र से पीड़ा, रोग से पीड़ा एवं ब्राह्मणों और गौओं को भय होता है।।४१-४२।।

वैश्वे युगे इति। अथानन्तरं वैश्वे अष्टमे युगे आद्यः प्रथमः संवत्सरोऽब्दः शोकहृदिति। केचिच्छोककृदिति पठन्ति। शोकं कृन्तति छिनत्तीति शोककृत्। यतोऽस्य शोभनं फलमाचार्यो वक्ष्यति—'पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानाम्' इति। तस्माच्छोकहृदिति निःसन्देहः पाठः। अतोऽन्यो द्वितीयः शुभकृत्। तृतीयः क्रोधी। परतोऽनन्तरं क्रमेण विश्वावसुश्चेति चतुर्थः। इतिशब्दः प्रकारे। पराभवश्च पञ्चमः।

पूर्वापराविति। प्रथमद्वितीयावब्दौ प्रजानां प्रीतिकरौ। एषां सर्वेषां पञ्चानां क्रोधी योऽब्दस्तृतीयः स बहुदोषदः, बहुदोषानशुभान् ददाति। अन्त्यौ पश्चिमौ चतुर्थपञ्चमौ समौ

समफलौ न शुभौ नाप्यशुभौ भवतः। किन्त्वत्र वर्षद्वये पराभवेऽग्निरग्निभयं भवति। तथा शस्त्रामयार्तिः शस्त्रेण आमयैश्च रोगैरार्तिः पीडा भवति। तथा द्विजगोभयं च द्विजानां ब्राह्मणानां गवां च भयं भवति।।४१-४२।।

अथ नवमस्य युगस्याह—

आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः
स्यात् कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः।
साधारणो रोधकृदित्यथैवं
शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ ॥४३॥

कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च।
यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥४४॥

नवम (सौम्य) युग में प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, साधारण, रोधकृत्—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें कीलक और सौम्य संवत्सर शुभप्रद हैं। प्लवङ्ग संवत्सर में प्रजाओं को कष्ट होता है। साधारण संवत्सर में थोड़ा जल और अनावृष्टि आदि ईति का भय होता है। रोधकृत् संवत्सर में चित्रजल (कहीं-कहीं पर वृष्टि और कहीं पर अवृष्टि) एवं धान्य की उत्पत्ति होती है।।४३-४४।।

आद्यः प्लवङ्ग इति। नवमे युगे सौम्ये आद्यः प्रथमोऽब्दः प्लवङ्गसंज्ञः स्याद्भवेत्। अन्यो द्वितीयः कीलकः। परतस्तृतीयः सौम्यः। साधारणश्चतुर्थः। रोधकृत् पञ्चमः। इत्येवं प्रकारे। अथशब्द आनन्तर्ये। तत्र कीलकसौम्यसंज्ञौ द्वावब्दौ शुभप्रदौ श्रेष्ठौ।

कष्ट इति। प्लवङ्गसंज्ञः प्रजानां बहुशो बहुप्रकारं कष्टोऽशुभः। अब्दे साधारणे अल्पं जलं स्वल्पमुदकम्। ईतय अतिवृष्ट्यादय उपद्रवाः। अथानन्तरं यः पञ्चमोऽब्दो रोधकृदिति तत्र तस्मिन्नब्दे चित्रं नानाप्रकारं जलं क्वचित्क्वचिद्वर्षति। तथा सस्यानां सम्पच्च भवति।।४३-४४।।

अथ दशमस्य युगस्याह—

इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत्तत्राद्यवर्षं परिधाविसंज्ञम्।
प्रमादिनं विक्रममप्यतोऽन्यत् स्याद्राक्षसं चानलसंज्ञितं च ॥४५॥

परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः।
अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥४६॥

विक्रमः सकललोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा।
ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो वह्निकोपमरकप्रदोऽनलः ॥४७॥

दशम (शक्राग्नि) युग में परिधावी, प्रमादी, विक्रम, राक्षस, अनल—ये पाँच संवत्सर होते हैं। परिधावी संवत्सर में मध्यदेश का नाश, राजा का मरण, थोड़ी वर्षा और

अग्निभय होता है। प्रमादी संवत्सर में आलसी मनुष्य, डमर (सशस्त्र कलह), रक्त पुष्प और रक्त बीज वाले वृक्षों का नाश होता है। विक्रम संवत्सर में सभी मनुष्यों को आनन्द प्राप्त होता है। राक्षस और अनल संवत्सर में सब लोगों का नाश होता है; पर राक्षस संवत्सर में ग्रीष्म धान्य (यव, गेहूँ, चना आदि) की उत्पत्ति और अनल संवत्सर में अग्निकोप एवं मरक (मरी) होता है।।४५-४७।।

इन्द्राग्निदैवमिति । दशमं युगमिन्द्राग्निदैवतं यत्तत्र तस्मिन्नाद्यवर्षं प्रथमवर्षं परिधाविसंज्ञम्। प्रमादिनं द्वितीयम्। अतोऽस्मादन्यत्तृतीयं विक्रमं स्याद् भवेत्। राक्षसं चतुर्थम्। अनलसंज्ञितं पञ्चमम्। चशब्दोऽत्रोभयत्र समुच्चये।

परिधाविनीति । परिधाविनि वर्षे मध्यदेशनाशो भवति। तत्रैव नृपहानी राज्ञो मरणम्। जलमुदकमल्पं स्तोकम्। अग्निकोपो वह्निभयम्। प्रमादिसंज्ञे जनो लोकः। अलसः सालसो भवति। तथा डमरं कलहः सशस्त्रः। रक्तकपुष्पाणां येषां वृक्षाणां लोके रक्तपुष्पं भवति, तथा रक्तकबीजानां च नाशो भवति।

विक्रम इति । विक्रमः सकललोकानां नन्दनोऽब्दः समस्तजनसमृद्धिकरः। राक्षसः समस्तलोकानां क्षयकरो विनाशकरो भवति। अनलस्तेनैव प्रकारेण क्षयकर एव। अत्रास्मिन् युगे राक्षसोऽब्दो ग्रीष्मधान्यानां यवगोधूमादीनां जननः सम्पत्करः। अनलो वह्निकोपमरकप्रदः। अग्निकोपं मरकं च ददाति।।४५-४७।।

अथैकादशस्य युगस्याह—

एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ।
आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ॥४८॥
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च ।
रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत् प्रदिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत् सः ॥४९॥

एकादश (आश्विन) युग में पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (पिङ्गल) संवत्सर में अतिवृष्टि, चोरों का भय, श्वास और ठोढ़ी को कम्पित करने वाली खाँसी होती है। कालयुक्त संवत्सर में अनेक फल होते हैं। सिद्धार्थ-संज्ञक संवत्सर में बहुत गुण (सम्पत्ति आदि) होते हैं। रौद्र संवत्सर में अतिशय अशुभ फल और प्रजाओं का नाश होता है। दुर्मति संवत्सर में मध्यम वृष्टि होती है।।४८-४९।।

एकादशेति । एकादशो आश्विने युगे प्रथमोऽब्दः पिङ्गलः। द्वितीयः कालयुक्तः। तृतीयः सिद्धार्थः। चतुर्थो रौद्रः। पञ्चमो दुर्मतिः। खलुशब्द आगमद्योतनार्थः। आद्ये प्रथमे वर्षे महती चण्डा अतिवृष्टिर्भवति सा तु सचौरा चौरयुक्ता। तस्करा भवन्तीत्यर्थः। तथा श्वासो भवति जनानां हनूकम्पयुतश्च कासः। कासपीडा च भूतानां भवति यया हनू कम्पेते।

यत्कालयुक्तमिति । यदब्दं कालयुक्तं तदनेकदोषं बहुदोषप्रदम्। सिद्धार्थसंज्ञे बहवः प्रभूता गुणाः सम्पदादयो भवन्ति। यो रौद्रः सोऽतिरौद्रः। अतिदुष्टफलः। तथा क्षयकृत्

प्रजानां क्षयकरः प्रदिष्ट उक्तः। यो दुर्मतिः स मध्यमवृष्टिकृत् मध्यमां वृष्टिं करोतीति।।

अथ द्वादशस्य युगस्याह—

भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति।
अङ्गारसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ।।५०।।

रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं तस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च।
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधैः ।।५१।।

द्वादश (भाग्य) युग में प्रथम दुन्दुभि नामक संवत्सर में धान्य की अधिक वृद्धि होती है। द्वितीय अङ्गार संवत्सर में राजाओं का नाश और अत्यन्त भयङ्कर वृष्टि होती है। तृतीय रक्ताक्ष नामक संवत्सर में दंष्ट्री (सूकर आदि) का भय और रोग होता है। चतुर्थ क्रोध नामक संवत्सर में लोगों को बहुत क्रोध होता है।।५०-५१।।

भाग्ये युगे इति। भाग्यसंज्ञे द्वादशे युगे आद्यं प्रथमं वर्षं दुन्दुभिसंज्ञं तच्च महतीमतिबह्वीं सस्यवृद्धिं करोति। तदनु तत्पश्चात् द्वितीयमङ्गारसञ्ज्ञं तच्च नरेश्वराणां राज्ञां क्षयाय नाशाय भवति। वृष्टिश्च विषमा अतुला अतिचण्डा वा भवति।

तथा तृतीयमब्दं वर्षं रक्ताक्षसंज्ञं कथितमुक्तम्। तस्मिन्नब्दे दंष्ट्रिकृतं भयं भवति। दंष्ट्रिणः सूकरादयस्तत्कृतं भयं भवति। तथा गदा रोगाश्च भवन्ति। चतुर्थं क्रोधसंज्ञं तच्च बहुक्रोधकरं बहुप्रकारं लोकानां क्रोधं करोति। तथा राष्ट्राणि विरोधैः कलहैः शून्यीकुरुते। अशून्यानि शून्यानि करोतीति शून्यीकुरुते। उद्वासयतीत्यर्थः।।५०-५१।।

अथ पञ्चमस्य वर्षस्य फलं षष्ट्यब्दलक्षणं मया संक्षेपतः कृतमित्येतच्चाह—

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं
जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीबलवृद्धिदम्।
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहृतां तथा
कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समासतः ।।५२।।

बारहवें युग का अन्तिम क्षय नामक संवत्सर बहुत प्रकार से लोगों का नाश करने वाला, ब्राह्मणों को भय देने वाला, किसानों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरे के धन का अपहरण करने वालों को बढ़ाने वाला होता है। शास्त्रान्तर में षष्ट्यब्दों का जो फल वर्णित है, उसको संक्षेप से मैंने (वाराहमिहिर ने) यहाँ पर बृहस्पतिचाराध्याय में कहा है।।५२।।

अन्त्यस्य युगस्य द्वादशस्य अन्त्यं पञ्चमं वर्षं क्षयमिति क्षयसंज्ञम्। तच्च बहुक्षयकरं बहुविधं जनानां क्षयं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानां भयं भीतिं जनयत्युत्पादयति। कृषीबलानां कर्षकाणां वृद्धिदम्। विट्शूद्राणां वैश्यानां शूद्राणां चोपचयकरं वृद्धिकरम्। तथा परस्वहृतां परधनहर्तृणामप्युपचयकरम्। अखिलं निःशेषं षष्ट्यब्दे षष्ट्यब्दाख्ये।

माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चकस्येह कालज्ञानं निबोध्यते।।

इति तस्मिन् शास्त्रे यत्कथितमुक्तं तदत्रास्मिन् बृहस्पतिचारे सर्वं समासतः संक्षेपतः कथितमुक्तम्। तथा च समाससंहितायाम्—

ऐन्द्रे तृतीयमशुभं द्वितीयवर्जानि पञ्चमे तु युगे ।
पित्र्ये युगे तृतीयं चतुर्थमपि पापदं वर्षम्।।
वैश्वे तृतीयमशुभं शुभदान्युक्तानि चावशेषाणि।
सौम्ये द्वितीयवर्षं शुभावहं यत्तृतीयं तु।।
प्रथितं शुभमैन्द्राग्नौ तृतीयवर्षं तथाश्विदैवत्ये।
भाग्ये प्रथमं वर्षं षष्ट्यब्दस्यैष संक्षेपः।। इति।।५२।।

अथ बिम्बलक्षणमाह—

अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः ।
ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ।।५३।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
बृहस्पतिचाराध्यायोऽष्टमः ।।८।।

निर्मल किरण वाला, जटिल (सघन किरण वाला), विशाल बिम्ब वाला, कुमुदपुष्प, कुन्दपुष्प या स्फटिक मणि के समान कान्ति वाला, ग्रहयुद्ध में अविजित होकर सत्पथ (ग्रहनक्षत्रों के उत्तरमार्ग) में गत बृहस्पति मनुष्यों का हितकारी होता है।।५३।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां बृहस्पतिचाराध्यायोऽष्टमः ।।८।।

एवंविधोऽमरगुरुर्बृहस्पतिर्मनुजानां मनुष्याणां हितकरः शिवप्रदः। कीदृशः? अकलुषांशुर्निर्मलरश्मिः। जटिलः समन्ततो रश्मिभिर्व्याप्तः। पृथुमूर्तिर्विस्तीर्णदेहः। तथा कुमुदस्य कुमुदपुष्पस्य कुन्दकुसुमस्य स्फटिकस्य च मणेः सदृशी आभा कान्तिर्यस्य। अतिस्निग्धः श्वेतवर्ण इत्यर्थः। यदि च ग्रहहतो न भवति ग्रहयुद्धे अन्येन ग्रहेण विजितो न भवति। तथा सत्पथवर्ती ग्रहनक्षत्राणामुत्तरमार्गगोचराणामधिकृतश्चेति।।५३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
बृहस्पतिचारो नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अथ शुक्रचाराध्याय:

अथ शुक्रचारो व्याख्यायते। तस्य च नव वीथयस्त्रयो मार्गा उदङ्मध्यदक्षिणा। वातव्याडवैश्वानरास्त्रयो मार्गभेदा: षड् मण्डलानि भवन्ति। तत्रादावेव परमतेन वीथीनां लक्षणमाह—

नागगजैरावतवृषभगोजरद्गवमृगाजदहनाख्या: ।
अश्विन्याद्या: कैश्चित्त्रिभा: क्रमाद्वीथय: कथिता: ॥१॥

शुक्र की नव वीथियाँ, तीन मार्ग एवं छ: मण्डल होते हैं। उनमें मतान्तर से प्रथमत: वीथियों के नक्षत्रों को कहते हैं—

अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रों में क्रम से नाग, गज, ऐरावत, वृष, गो, जरद्गव, मृग, अज, दहन—ये नव वीथियाँ होती हैं। जैसे—अश्विनी, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि; रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा में ऐरावतवीथि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरफाल्गुनी में वृषवीथि; हस्त, चित्रा और स्वाती में गोवीथि; विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा में जरद्गववीथि; मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में मृगवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में अजवीथि तथा पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती में दहन नाम की वीथि होती है।।१।।

स्फुटार्थ चक्र

वीथियाँ	नाग	गज	ऐरावत	वृष	गौ	जरद्गव	मृग	अज	दहन
न	अश्विनी	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू. भा.
क्ष	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनुरा.	पू. षा.	धनिष्ठा	उ. भा.
त्र	कृत्तिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ.फा.	स्वाती	ज्येष्ठा	उ. षा.	शतभि.	रेवती

नागवीथी प्रथमा। गजवीथी द्वितीया। ऐरावतवीथी तृतीया। वृषभवीथी चतुर्थी। गोवीथी पञ्चमी। जगद्रववीथी षष्ठी। मृगवीथी सप्तमी। अजवीथी अष्टमी। दहनवीथी नवमी। एता नव वीथय: कैश्चिदाचार्यैर्देवलप्रभृतिभिरश्विन्याद्यास्त्रिभास्त्रिभिर्भैर्नक्षत्रै: कथिता। अश्विनीभरणीकृत्तिका नागवीथी। रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावतवीथी। एवं क्रमेण त्रिभिस्त्रिभिर्नक्षत्रैरन्या अपि ज्ञेया:। एता: क्रमात् परिपाट्या वीथय: कथिता उक्ता:। तथा च देवल:—

अश्विन्यादित्रिभा: सर्वा नागाद्या दहनान्तिका:।
वीथयो भृगुपुस्य नव प्रोक्ता: पुरातनै:।।

तथा च काश्यप:—

त्रिष्वश्विन्यादिषु यदा चरति भृगुनन्दनः।
नागवीथीति सा ज्ञेया प्रथमान्या निबोधत।।
रोहिण्यादिगजा ज्ञेयाऽदित्याद्यैरावती स्मृता।
मघाद्या वृषभा ज्ञेया हस्ताद्या गौः प्रकीर्तिता।।
जारद्गवी विशाखाद्या मूलाद्या मृगवीथिका।
अजवीथी विष्णुभाद्याऽजाद्या तु दहना स्मृता।। इति।।१।।

अथ स्वमतेन प्रविभागमाह—

नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः।
गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे ।।२।।
जारद्गव्यां श्रवणात्त्रिभं मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम्।
हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्यजेत्यषाढाद्वयं दहना ।।३।।

अपने मत से वीथियों में नक्षत्रविभाग कहते हैं—स्वाती, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि; रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा में ऐरावतवीथि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में बृषवीथि; अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा—इन चार नक्षत्रों में गोवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जरद्गववीथि; अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में मृगवीथि; हस्त, विशाखा और चित्रा में अजवीथि तथा पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा—इन दो नक्षत्रों में दहनवीथि होती है।।२-३।।

पवनः स्वातिः। याम्यं भरणी। अनलः कृत्तिकाः। एतानि नक्षत्राणि नागवीथी। पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः। पैतामहं रोहिणी तत आरभ्य त्रिभास्त्रिभिस्त्रिभिर्भैर्नक्षत्रैस्तिस्रो वीथयो भवन्ति। तद्यथा—रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावती। मघा पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी चेति वृषभा। **गोवीथ्यामिति**। अश्विन्यः पौष्णं रेवती द्वे भद्रपदे पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि गोवीथी।

जारद्गव्यामिति। श्रवणात्प्रभृति त्रिभं नक्षत्रत्रयं श्रवणा धनिष्ठा शतभिषगिति जारद्गव्याम्। मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम्। मैत्रमनुराधा तदाद्यं त्रिभं नक्षत्रत्रितयम्। अनुराधा ज्येष्ठा मूलमिति मृगाख्या। तुशब्दः पादपूरणे। हस्तो विशाखा त्वाष्ट्रं चित्रा। एतानि नक्षत्राण्यजा अजवीथी। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढा चेति दहनवीथी।।२-३।।

अथ तासां मार्गप्रविभागमाह—

तिस्रस्तिस्रस्तासां क्रमादुदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः।
तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणेन स्थितैकैका ।।४।।

नाग आदि तीन-तीन वीथियाँ क्रम से उत्तर, मध्य और दक्षिण में स्थित होती हैं। जैसे नाग, गज और ऐरावत उत्तर मार्ग में; वृष, गो और जरद्गव मध्य मार्ग में तथा मृग, अज और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित होती हैं। इन तीन-तीन वीथियों में भी एक-एक क्रम से

उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में स्थित हैं। जैसे—नाग उत्तर मार्ग में, गज मध्य मार्ग में, ऐरावत दक्षिण मार्ग में, वृष उत्तर मार्ग में, गो मध्य मार्ग में, जरद्गव दक्षिण मार्ग में, मृग उत्तर मार्ग में, अज मध्य मार्ग में और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित है। अतः नाग उत्तरोत्तर मार्ग में, गज उत्तर-मध्य मार्ग में, ऐरावत उत्तर-दक्षिण मार्ग में, वृष मध्योत्तर मार्ग में, गो मध्यमध्य मार्ग में, जरद्गव मध्य दक्षिण मार्ग में, मृग दक्षिणोत्तर मार्ग में, अज दक्षिण मध्य मार्ग में और दहन दक्षिण-दक्षिण मार्ग में स्थित है।।४।।

तासां नागाद्यानां नवानां वीथीनां क्रमात् परिपाट्या तिस्रस्तिस्रो वीथय उदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः। उत्तरे मार्गे मध्ये मध्यमे याम्ये दक्षिणे च स्थिताः। तद्यथा—नागगजैरावत्य उत्तरमार्गस्थाः। वृषभगोजारद्गव्यो मध्यममार्गस्थाः। मृगाजदहना दक्षिणमार्गस्था। तासामपि वीथीनामुत्तरमध्यमदक्षिणमार्गस्थानामुत्तरमध्यदक्षिणेनैकैका स्थिता। तद्यथा—नागा उत्तरोत्तरा। गजा उत्तरमध्यमा। ऐरावती उत्तरदक्षिणा। तथा वृषभा मध्योत्तरा। गोवीथी मध्यमध्या। जरद्गववीथी मध्यदक्षिणा। तथा मृगा दक्षिणोत्तरा। अजा दक्षिणमध्या। दहना दक्षिणदक्षिणा इति। तथा च पराशरः—

'अथ मार्गास्त्रयो भवन्त्युत्तरमध्यमदक्षिणाः। पुनरेकैकशस्त्रिधा नव वीथय इत्याचक्षते। तत्रोत्तरे नागगजैरावत्यः। मध्ये वृषभगोजारद्गव्यः। दक्षिणे मृगाजदहनाः। तासां नागाऽऽग्नेययाम्यवायव्यानि। गजवीथी रोहिण्यादीनि त्रीणि। चत्वारि परमैरावती। वृषभा फल्गुन्यौ। गोवीथी प्राक्प्रोष्ठपदादीनि चत्वारि। श्रवणधनिष्ठावरुणानि जारद्रवी। मृगवीथी त्वाष्ट्रहस्तम्। आजी मैत्रमिन्द्राग्न्यधिपमैन्द्रम्। मूलमषाढाद्वयं च वैश्वानरीमितीच्छन्ति।'

अत्र वराहमिहिरेण सह भेदः। तथा च गर्गः—

कृत्तिका भरणी स्वाती नागवीथी प्रकीर्तिता।
रोहिण्याद्यास्त्रिभास्तिस्रो गजैरावतवार्षभाः।।
अहिर्बुध्न्याश्विपौष्णं च गोवीथीति प्रकीर्तिता।
श्रवणत्रितयं ज्ञेया वीथी जारद्रवीति सा।।
मैत्रत्रिभा मृगाख्या स्याद्धस्तचित्राविशाखिका।
अजवीथी तु दहनाषाढायुग्ममिति स्मृता।।
पूर्वोत्तरा नागवीथी गजवीथी तदुत्तरा।
ऐरावती ततो याम्या एतास्तूत्तरतः स्मृता।
आर्षभी तु चतुर्थी स्याद् गोवीथी पञ्चमी स्मृता।
षष्ठी जारद्रवी ज्ञेया तिस्रस्ता मध्यमाश्रिताः।।
सप्तमी मृगवीथी स्यादजवीथी तथाष्टमी।
दहना नवमी ज्ञेया दक्षिणं मार्गमाश्रिताः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

वीथी नागा नाम्नी स्वातिर्भरणी च कृत्तिका चैव ।
स्वायम्भुवस्त्रिभा: स्युर्गजवीथ्यैरावती वृषभा ।।
एकपदादिचतुष्कं गौ: स्याज्जारद्गवी त्रिभा श्रवणात् ।
मैत्रात्त्रिभं मृगाऽजा हस्तश्चित्रा विशाखा च ।।
द्वे चाषाढे दहना तिस्र उदग्वीथय: क्रमाच्छुभदा: ।
मध्या मध्यास्तिस्रो याम्या: पापा मृगाद्यास्ता: ।। इति।।४।।

अत्रैव मतान्तरमाह—

वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथास्थितान् भमार्गस्य ।
नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ।।५।।

किसी का मत है कि नक्षत्रमार्ग में जिस तरह वीथी के मार्ग स्थित हैं, उसी तरह दक्षिण, उत्तर और मध्यमार्ग की कल्पना करनी चाहिए। जैसे नक्षत्रमार्ग के दक्षिण में स्थित योग तारागण दक्षिणमार्गस्थित, उत्तर में उत्तरमार्गस्थित और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है अथवा नक्षत्रमार्ग से दक्षिण में स्थित ग्रह दक्षिणमार्गगत, उत्तर में उत्तरमार्गगत और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है।।५।।

अपरे आचार्या भमार्गस्य नक्षत्रपथस्य यथास्थितान् येनैव प्रकारेण व्यवस्थितान् वीथीमार्गान् तेनैव प्रकारेण कथयन्ति प्रवदन्ति। यतस्तद्वत्तेनैव प्रकारेण नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमा: स्थिता:। याम्यास्तारा दक्षिणो मार्ग:। उत्तरा: उत्तरो मार्ग:। मध्यमा मध्यमो मार्ग:। अथवा नक्षत्राद्दक्षिणभागस्थो ग्रहो दक्षिणमार्गग:। उत्तरमार्गस्थ उत्तरमार्गग:। मध्यममार्गस्थो मध्यममार्गग:। तथा च काश्यप:—

नक्षत्राणां त्रयो मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमा: ।
उदक्स्थास्तारका: सौम्यो मध्यमो मध्यमा: स्मृत: ।।
दक्षिणा दक्षिणो मार्गो नक्षत्रेषु प्रकीर्तित: ।
नक्षत्रात् सौम्यग: सौम्यमार्गस्थो ग्रह उच्यते ।।
दक्षिणे दक्षिणो मार्गो मध्ये मध्य इति स्मृत: ।। इति।।५।।

पुनरपि मतान्तरमाह—

उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्य: ।
दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गा: ।।६।।

किसी का मत है कि भरणी आदि नव नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा) उत्तरमार्ग में, पूर्वाफाल्गुनी आदि नव नक्षत्र (पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल) मध्यमार्ग में और पूर्वाषाढा आदि नव नक्षत्र (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) दक्षिणमार्ग में स्थित हैं।।६।।

कैश्चिदाचार्यैरेवमनेन प्रकारेण मार्गाः कृताः। ते च गर्गादयः। याम्या भरणी तदादिको नवनक्षत्रान्त उत्तरो मार्गो निगदित उक्तः। यथा—भरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिरआर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघा उत्तरो मार्गः। मध्यमस्तु भाग्याद्यः। भाग्यं पूर्वफल्गुनी तदादिको नवनक्षत्रान्तो मध्यमो मार्गः। तद्यथा—पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठामूलमिति मध्यमो मार्गः। दक्षिणमार्गोऽषाढादि। अषाढा पूर्वाषाढा तदादिको नवनक्षत्रान्तो दक्षिणमार्गः। तद्यथा—पूर्वाषाढोत्तराषाढा श्रवणा धनिष्ठा शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी दक्षिणो मार्ग इति। तथा च गर्गः—

अश्वयुग्भोगपर्यन्तेऽषाढादौ नवके गणे।
वर्तमानः सदा क्रूरो दक्षिणे पथि वर्तते।।
शुक्रो निर्ऋतिपर्यन्ते भाग्यादौ नवके गणे।
वर्तमानश्च मध्यस्थो मध्यमे पथि वर्तते।।
भरण्यादौ मघान्ते च तृतीये नवके गणे।
वर्तमानः शुभो ज्ञेय उत्तरे पथि वर्तते।। इति।।६।।

ननु संग्रहकर्त्रा यत्सारं तदेव वक्तव्यं किं मतान्तरैः प्रयोजनमित्येतदाशङ्क्याऽऽह—

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥७॥

ज्यौतिष शास्त्र आगमशास्त्र है। इसको आगम के विना नहीं जान सकते; अतः इसमें स्वयं सन्देह (यह ठीक है या नहीं इत्यादि) करना हमारे लिये उचित नहीं है। यतः सभी ऋषि त्रिकालदर्शी थे। नहीं कह सकते कि किस ऋषि का कैसा आगम था; अतः हमारे लिये सभी के माननीय होने के कारण बहुतों का मत संग्रह करके यहाँ कहता हूँ।।७।।

ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्योतिषं तच्चागमशास्त्रमागमेन विना न ज्ञायते। अस्माकं विप्रतिपत्तौ विषये स्वयमेवाऽऽत्मना विकल्पयितुं न योग्यं न न्याय्यम्। इदं शोभनमिदमशोभनमिति। यतः सर्व एव मुनयस्त्रिकालदर्शिनः। न ज्ञायते कस्य मुनेः कीदृश आगमः। तस्मादस्माकं विकल्पयितुं न न्याय्यम्। किन्तु बहूनां प्रभूतानां मतं वक्ष्ये कथयिष्ये।।७।।

अधुना वीथीनां फलमाह—

उत्तरवीथिषु शुक्रः सुभिक्षशिवकृद् गतोऽस्तमुदयं वा।
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु ॥८॥

यदि उत्तरवीथी में स्थित शुक्र का उदय या अस्त हो तो सुभिक्ष और मङ्गल करने वाला, मध्यवीथी में हो तो मध्यम फल देने वाला तथा दक्षिणवीथी में कष्ट देने वाला होता है।

शुक्र उत्तरवीथीषु नागगजैरावताख्यासु स्थितो यद्यर्कमण्डले अस्तमयं गतस्तस्मादेवोदयं वा गतस्तदा सुभिक्षशिवकृत्। सुभिक्षं श्रेयश्च करोति। एवं मध्यासु मध्यमासु वीथिषु ऋष-

भगोजारद्रवाख्यासु मध्यमफलदः। न शुभं नाप्यशुभं फलं करोति। तथा च दक्षिणस्थासु वीथिषु मृगाजदहनाख्यासु कष्टफलोऽनिष्टफल इति। तथा च गर्गः—

उदयास्तमयं कुर्यान्मार्गमुत्तरमाश्रितः।
सुभिक्षं च सुवृष्टिं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्।।
उदयास्तमयं कुर्यात् मध्यमं मार्गमाश्रितः।
मध्यमं चार्घसस्यं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्।।
उदयास्तमयं कुर्याद्दक्षिणं मार्गमाश्रितः।
धान्यस्य संग्रहं कृत्वा केदारेषु तिलान् वपेत्।।

तथा च पराशरः—

'तत्र नागवीथीगतो नागाश्रितांश्च पीडयति गजकुलानि गजवीथ्याम्। ऐरावत्यां नृपतिबलविरोधः। आर्षभ्यां वयोवित्तज्ञानबलाधिकसस्यपीडा श्लेष्मव्याधिप्रादुर्भावश्च। गोवीथ्यां सस्यगोमतां हानिर्जरद्रववीथ्यां शास्त्रविदाम्। मृगवीथ्यां मृगव्याधिः सस्यतपस्विनामपि रोगोद्भवश्च। अजवीथ्यां सस्यवर्षब्रह्मचारिणामाधिक्यम्। दहनवीथ्यां सस्यविलयनमग्निपित्तव्याधिसम्भवश्च'।।८।।

अथाऽऽसामपि विशेषफलमाह—

अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनमधमकष्टफलम्।
कष्टतरं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात्।।९।।

नाग आदि नव वीथियों में क्रम से अत्युत्तम, उत्तम, ऊन, (कुछ कम शुभ फल), सम, मध्यम, न्यून (किञ्चित् शुभ फल), अधम, कष्ट और कष्टतम फल होते हैं। जैसे नागवीथी में अत्युत्तम, गजवीथी में उत्तम, ऐरावतवीथी में ऊन, वृषवीथी में सम, गोवीथी में मध्यम, जरद्रववीथी में न्यून, मृगवीथी में अधम, अजवीथी में कष्ट और दहनवीथी में कष्टतम फल होता है।।९।।

सौम्याद्यासु उदगाशाद्यासु वीथिषु नागाद्यासु नवसु यथाक्रमं परिपाट्याऽनेन प्रकारेण फलमिदं ब्रूयाद्वदेत्। तद्यथा—नागायामत्युत्तममतिशुभं फलम्। गजाख्यायां वीथ्यामुत्तमं शुभफलं किञ्चिदूनं पूर्वापेक्षया। एवमूनं किञ्चिच्छुभफलमैरावत्याम्। समं मध्यमं फलमृषभवीथ्याम्। मध्यममेव गोवीथ्याम्। न्यूनमीषदशुभं जारद्रव्याम्। अधममनिष्टं मृगवीथ्याम्। कष्टमशुभमजवीथ्याम्। कष्टतरमतिकष्टं दहनवीथ्याम्।।९।।

अथ शुक्रस्य षण्मण्डलानि भवन्ति। तेषां लक्षणं सफलमाह—

भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम्।
वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजननम्।।१०।।

अत्रोदितमारोहेद् ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात्।
भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान्।।११।।

भरणी से चार नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा) प्रथम मण्डल के होते हैं। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो संसार में सुभिक्ष तथा अंग, वंग, महिष, वाह्लीक और कलिङ्ग देशों में भय होता है। यदि प्रथम मण्डल में उदित शुक्र के ऊपर कोई ग्रह हो तो भद्राश्व, शूरसेनक, यौधेयक और कोटिवर्ष देशों के राआजों का नाश होता है।।१०-११।।

आद्यं प्रथममण्डलं भरणीपूर्वमृक्षचतुष्कम्। भरणी पूर्वा प्रथमा यस्य ऋक्षचतुष्कस्य तद्भरणीपूर्वम्। भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरश्चेति। तच्च सुभिक्षकरं सुभिक्षं करोति। तथा वङ्गा अङ्गा महिषा बा ,का: कलिङ्गा:। एषां ये देशास्तेषु देशेषु भयजननं भीतिं जनयत्युत्पादयति।

अत्रास्मिन् मण्डले सितं शुक्रमुदितं सूर्यमण्डलादुद्गतं यद्यपि परोऽन्यो ग्रह आरोहेदुपरि पतेत्। अग्रतस्तिष्ठतीत्यर्थ:। तदा भद्राश्वा जना:। शूरसेनका:। यौधेयका:। कोटिवर्षा:। एतेषां ये नृपा राजानस्तान् हन्यान्नाशयेत्।।१०-११।।

अथ द्वितीयमण्डलं सफलमाह—

भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै।
विप्राणामशुभकरं विशेषत: क्रूरचेष्टानाम् ॥१२॥

अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकश्वजीविगोमन्तान्।
गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानय: स्पृशति ॥१३॥

आर्द्रा से चार नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा) तक द्वितीय मण्डल होता है। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो अधिक वृष्टि और धान्यों की विशेष उत्पत्ति होती है; ब्राह्मणों के लिये अशुभकारी और दुष्टों के लिये तो विशेष अशुभकारी होता है। यदि इसमें उदित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो म्लेच्छ मनुष्य, वन में रहने वाले, कुत्तों से आजीविका करने वाले, गौ रखने वाले, गोनर्द (पतञ्जलि की जन्मभूमि चिदम्बरम् में निवास करने वाले), अधम कर्म करने वाले, शूद्र, विदेह के देश (मिथिला) में निवास करने वाले—इन सबों को अनीति स्पर्श करती है (ये सब उपद्रवयुक्त होते हैं)।।१२-१३।।

आर्द्राद्यमार्द्राप्रथमं भचतुष्टयं नक्षत्रचतुष्कं द्वितीयं मण्डलं तच्चामिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै भवति। अमितमपरिमितमम्बु जलं सस्यानां च सम्पदं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानामशुभकरमनिष्टफलदम्। क्रूरचेष्टानां विषमस्वभावानां विशेषतो न शुभकरम्।

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन परेण ग्रहेणाऽऽक्रान्ते रुद्धे शुक्रे म्लेच्छा जना:। आटविका अरण्यवासिन:। श्वजीविनश्च श्वभिर्ये जीवन्ति। गोमन्तो विद्यमानगाव:। गोनर्दा जना:। नीचा अधमकर्मकरा:। शूद्रा:। वैदेहा जना:। एतान् सर्वाननय: स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थ:।।१२-१३।।

अथ तृतीयं मण्डलं सफलमाह—

विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः ।
क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥१४॥
पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्येनाविकान् शबरशूद्रान् ।
पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥१५॥

मघा से पाँच नक्षत्र (मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा) तक तृतीय मण्डल होता है। इसमें उदित शुक्र धान्य का नाश करने वाला, दुर्भिक्ष और चोरों का भय करने वाला, अधम कर्म करने वालों की उन्नति करने वाला तथा वर्णसंकर की उत्पत्ति करने वाला होता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो वृक्ष, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिम शूलिक देश और वन में रहने वाले, द्रविड तथा समुद्रतीर में रहने वालों का नाश करता है।।१४-१५।।

तृतीयमण्डलं मघादिपञ्चकम्। मघा आदौ यस्य ऋक्षपञ्चकस्य तत्। तत्र शुक्र उदितः सूर्यमण्डलादुद्गतो विचरंस्तिष्ठन् सस्यप्रणाशकृत् सस्यानां प्रणाशं करोतीति सस्यप्रणाशकृत्। तथा क्षुद् दुर्भिक्षम्। तस्करश्चौरः। आभ्यां भयं जनयति उत्पादयति। तथा नीचानामुन्नतिं प्राधान्यं करोति। सङ्करकरश्च वर्णसङ्करं करोति।

पित्र्याद्ये मघाद्ये। अन्येनापरेणावष्टब्धो रुद्धो यदि भवति तदाऽऽविकानविसम्भूतान् शबरान् जनान्। शूद्रान्। पुण्ड्रा अपरान्त्याः शूलिका जनाः। वनवासिनो वनेचराः। द्रविडा जनाः। सामुद्राः समुद्रतीरवासिनः। एतान् हन्ति घातयति।।१४-१५।।

अथ चतुर्थं मण्डलं सफलमाह—

स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् ।
ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥१६॥
अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून् ।
प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणान् शूरसेनांश्च ॥१७॥

स्वाती से तीन नक्षत्र (स्वाती, विशाखा और अनुराधा) तक चतुर्थ मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिये सुभिक्ष तथा उन्नति करने वाला होता है। पर मित्रों में परस्पर द्वेष उत्पन्न कराता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो किरातों के स्वामी की मृत्यु, इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न, प्रत्यन्त (म्लेच्छ देश), अवन्ती, पुलिन्द, तङ्गण और शूरसेन देश में निवास करने वालों का नाश करता है।।१६-१७।।

स्वात्याद्यं स्वातिपूर्वकं भत्रितयं चतुर्थं मण्डलम्। एतदभयकरं भयं न करोति। व्याध्यादिकृता भीतिं नोत्पादयति। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च सुभिक्षस्याभिवृद्धये भवति।

एतेषां वृद्धिं करोति। तथा मित्रभेदाय भवति मित्राणां सुहृदां परस्परं भेदमप्रीतिं जनयति।

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन ग्रहेणाक्रान्ते शुक्रे मृत्युः किरातभर्तुः किराताधिपस्य। पिनष्टि सञ्चूर्णयति तथा चेक्ष्वाकून् जनान्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। अवन्तयो जनाः। पुलिन्दाः। तङ्गणाः। शूरसेनाः। एतांश्च पिनष्ट्येव।।१६-१७।।

अथ पञ्चममण्डलं सफलमाह—

ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्कररोगदं प्रबाधयते।
काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तींश्च ॥१८॥
अत्रारोहेद् द्रविडाभीराम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्।
नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥१९॥

ज्येष्ठा से पाँच नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा और श्रवण) तक पञ्चम मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो दुर्भिक्ष, चोर और रोग का भय होता है तथा काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी नदी के तट और अवन्ती देशवासियों को पीड़ित करता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो द्रविड, आभीर (शबर), अम्बष्ठ, त्रिगर्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवीरक देशवासियों का तथा काशिराज का नाश करता है।।१८-१९।।

ज्येष्ठाद्यं ज्येष्ठापूर्वकं पञ्चर्क्षं पञ्चनक्षत्रं पञ्चमं मण्डलम्। तच्च क्षुत्तस्कररोगदम्। क्षुद् दुर्भिक्षम्। तस्कराश्चौराः। रोगा गदाश्च। एतान् ददाति। अथ काश्मीरान् जनान्। अश्मकान्। मत्स्यान्। एतान् जनान्। चारुदेवीन्। चारुदेवी नदी तत्तटनिवासिन इत्यर्थः। अवन्तीन् जनान् सचारुदेवीन् चारुदेव्या सहितान् एतान् प्रबाधयते उपतापयति।

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत् तदा द्रविडान् जनान्। आभीरान्। अम्बष्ठान्। त्रिगर्तान्। सौराष्ट्रान्। एतान्नाशयति क्षयं नयति। तथा सिन्धुसौवीरकांश्च जनान् नाशयत्येव। काशीश्वरस्य काशिराजस्य च वधो मरणं भवति।।१८-१९।।

अथ षष्ठं मण्डलं सफलमाह—

षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्।
भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित् सभयम् ॥२०॥
अत्रारोहेच्छूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते।
वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ॥२१॥

धनिष्ठा से छः नक्षत्र (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) तक षष्ठ मण्डल है। इसमें यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो शुभ होता है। पृथ्वी बहुत धन, गौ और धान्यों से व्याप्त होती है; परन्तु कहीं-कहीं पर भय की मात्रा रहती है। यदि इस मण्डल में शुक्र किसी ग्रह से आक्रान्त हो तो शूलिक, गान्धार, अवन्ती—

इन देशों में स्थित मनुष्यों को पीड़ा होती है। विदेह देश-स्थित जनों का मरण होता है तथा गुहा में निवास करने वाले, यवन, शक और दासों की वृद्धि होती है।।२०-२१।।

धनिष्ठाद्यं धनिष्ठापूर्वकं षण्नक्षत्रम्—धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदा, रेवती, अश्विनीति। एतत् षष्ठं मण्डलम्। तच्च शुभं शुभफलप्रदम्। भूरिधनगोकुलाकुलम्। भूरि बहुलम्। धनं वित्तम्। गोकुलानि गोवाटाः। एतैराकुलं सोद्यमं व्याप्तम्। अनल्पधान्यं प्रभूतशालिसंयुक्तम्। क्वचित् क्वचिच्च सभयं भीतिसंयुक्तं न सर्वत्र।

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत्तदा शूलिकाः। गान्धाराः। अवन्तयः। एते जनाः प्रपीड्यन्ते। तथा वैदेहानां जनानां वधो मरणम्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। यवनाः। शकाः। दासाः कर्मकराः। एतेषां परिवृद्धिर्भवति।।२०-२१।।

अथैषां मण्डलानां विशेषफलमाह—

अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्।
पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि॥२२॥

पूर्वोक्त मण्डलों में स्वाती आदि (चतुर्थ) और ज्येष्ठा आदि (पञ्चम) मण्डल पश्चिम दिशा में शुभ करने वाले होते हैं। मघा आदि (तृतीय) मण्डल पूर्व दिशा में शुभद होता है। शेष तीन मण्डलों (प्रथम, द्वितीय और षष्ठ) का यथोक्त फल समझना चाहिये।।२२।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि स्वात्याद्यं मण्डलं ज्येष्ठाद्यं च तच्छुभदम्। एतदुक्तं भवति—अस्मिन् मण्डलद्वये शुक्र उदितः पश्चिमायां शुभफलदः। एवमेव पित्र्याद्यं मघाद्यं मण्डलं पूर्वस्यां दिशि शुभदम्। शेषाण्यन्यानि मण्डलानि यथोक्तफलदानि यथा प्रागुक्तं फलं तदेव प्रयच्छन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'आद्यरोहितदारुणविरोचनोर्ध्वदण्डतीक्ष्णान्येतानि षण्मण्डलानि। तत्र भरण्यादीनि चत्वारि चतुर्नक्षत्राणि। ज्येष्ठाद्ये द्वे पञ्चनक्षत्रे। आद्यमेव मण्डलचतुष्टयं वातमाहुस्तीक्ष्णं व्याडमार्गम्। ऊर्ध्वदण्डं वैश्वानरमृते श्रवणात्। अथ मण्डलेषु विचरन् क्रमाद् गोब्रह्मचारि-नृपतनयसुहृद्भूपालप्रजानामुपतापायेति। तेष्वेवोदयास्तमयौ कुर्वन् प्रथमेऽतीवसुभिक्षा-याङ्गवङ्गशबरकलिङ्गाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढोऽसौ माञ्जिष्ठपुरुषादशूरसेनपटच्चर-पण्यागाराभावाय। द्वितीयेऽन्नसम्पत्प्रदोऽवन्त्यश्मकमालवपाण्ड्यकैकयोपद्रवाय च। तृतीये शकसौराष्ट्रनृपानयायान्यग्रहारूढः काश्मीरयवनक्षुद्रमालवकिरातशकाननयेन स्पृशति। चतुर्थे सुवर्षसस्यक्षेमाणि विधत्तेऽन्यग्रहारूढः सुभगांश्चित्रांश्चोपतापयति। पञ्चमे मगधान् शूद्रान् जनाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढो व्याधिभयशस्त्रदुर्भिक्षावर्षाणि सृजति। विशेषतस्तु कुरुपाञ्चालशाल्वेयशूरसेनपटच्चराहारभूतयोऽभिपीड्यन्ते। षष्ठे बालगर्भान् बालान् शूद्रांश्च हिनस्ति। यद्यारोहेत तदा काम्बोजैः सैन्धवो नृपतिः पराजयेत आवन्त्याश्मकाधिपती चोप-सृज्येते।' अत्र मतभेदो वराहमिहिरेण सहास्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

भरणीरौद्रमघाऽनिलशक्रधनिष्ठादिसम्प्रवृत्तेषु।
चारोदयः शुभो मण्डलेषु हित्वैन्द्रयपित्र्याद्ये।। इति।।२२।।

अथ दिवादृष्टस्य शुक्रस्य विशेषफलमाह—

दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के भयकृत् क्षुद्रोगकृत्समस्तमहः ।
अर्द्धदिवसे च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ॥२३॥

यदि शुक्र सूर्यास्त से पहले दिखाई दे तो भय करता है, दिन भर दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और रोग करता है तथा मध्याह्न काल में चन्द्र के साथ दिखाई दे तो राजा, सेना और नगर में भेद-भाव उत्पन्न करता है।।२३।।

शुक्रो भार्गवोऽनस्तमिते नास्तमितेऽर्के सूर्ये दृष्टोऽवलोकितो भयकृद् भयं करोति। तथा समस्तमहः सकलं दिनं दृष्टः क्षुद्रोगकृत्। क्षुद् दुर्भिक्षम्। रोगान् गदांश्च करोति। तथा अर्द्धदिवसे मध्याह्नसमये सेन्दुः सचन्द्रः शुक्रो दृष्टो नृपबलपुरभेदकृद् भवति। नृपस्य राज्ञो बलस्य सेनायाः परस्य नगरस्य भेदं पृथग्भावं करोति। तथा च पराशरः—

अहः सर्वं यदा शुक्रो दृश्यतेऽथ महाग्रहः।
तदान्वागन्तुभिर्ग्रामा बाध्यन्ते नगराणि च।। इति।।२३।।

अथ शुक्रस्य नक्षत्राणां भेदनात् फलमाह—

भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः ।
अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥२४॥

यदि कृत्तिका नक्षत्र का भेदन करते हुए शुक्र गमन करे तो किनारा काटने वाली, जल धारण करने वाली नदियों के द्वारा ऊबड़-खाबड़ स्थल लुप्त होकर पृथ्वी समान हो जाती है अर्थात् नदी की बाढ़ से पृथ्वी भर जाती है।।२४।।

अनलर्क्षं कृत्तिकां भिन्दन् भित्त्वा यदि शुक्रो गतस्तदा सरिद्भिर्नदीभिः कूलातिक्रान्त-वारिवाहाभिः कूलातिक्रान्तं वारि जलं वहन्ति याः। आत्मीयं प्रवाहमतिक्रम्यातिप्रभूतं जलं वहन्तीत्यर्थः। तथाभूताभिः। धात्री भूरव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा भवति। न व्यक्तमव्यक्तम्। तुङ्ग-मुच्चम्। निम्नं नीचम्। अव्यक्तौ तुङ्गनिम्नौ यस्याः। अलक्षितोच्चनीचप्रदेशेत्यर्थः।।२४।।

अथ रोहिण्याः शकटभेदे फलमाह—

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
केशास्थिशकलशबला कापालमिव व्रतं धत्ते ॥२५॥

यदि रोहिणीशकट का भेदन करते हुये शुक्र गमन करे तो पातकी (ब्रह्महत्या करने वाले की तरह) होकर पृथ्वी केश और अस्थिखण्डों से शबल (विचित्र वर्ण की) होकर कापालिक की तरह व्रत धारण करती है। जिस तरह ब्रह्महत्या करने वाले मनुष्य पापशान्ति के लिये मनुस्मृति आदि के अनुसार केश और अस्थिखण्डों को धारण करके

कापालिक-व्रत धारण करते हैं, उसी तरह केश और अस्थिखण्डों से व्याप्त होकर पृथ्वी कापालिक की तरह व्रत धारण करती है अर्थात् पृथ्वी पर अत्यधिक मरी पड़ती है।।२५।।

प्राजापत्ये शकटे रोहिण्याः शकटे भिन्ने। शकटभेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम्। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विक्षेपोंऽशद्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः।।

तथा च भानुभट्टः—

वृषस्यांशे सप्तदशे विक्षेपो यस्य दक्षिणः।
अंशद्वयाधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः।।

एवं रोहिण्याः शकटे शुक्रेण भिन्ने वसुधा भूः पातकं ब्रह्महत्यामिव कृत्वा केशैर्मूर्द्धजैरस्थिशकलैरस्थिखण्डैः शबला मिश्रितशुक्लकृष्णा भवति। अतः कापालं व्रतमिव धत्ते धारयति। ब्रह्महत्यायाः कापालं व्रतं प्रायश्चित्तम्। कापालिकश्च केशास्थिशकलैः शबलो भवति।।२५।।

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह—

सौम्योपगतो रससस्यसंक्षयायोशनाः समुद्दिष्टः।
आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥२६॥

यदि शुक्र मृगशिरा नक्षत्र में आवे तो रस (मधुर आदि) और धान्यों का नाश करता है। यदि आर्द्रा नक्षत्र में आवे तो कोशल तथा कलिङ्ग देश का नाश और अतिवृष्टि करता है।

उशनाः शुक्रः। सौम्योपगतो मृगशिरसि प्राप्तो रसानां मधुरादीनां सस्यानां च संक्षयाय विनाशाय समुद्दिष्टः कथितः। आर्द्रागतस्तु कोशलान् कलिङ्गांश्च हन्ति तथा सलिलं जलं निकरं निवहं करोति। अतिवृष्टिं करोतीत्यर्थः।।२६।।

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह—

अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः।
पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधररणविमर्दश्च ॥२७॥

यदि शुक्र पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित हो तो अश्मक और विदर्भ देश में अनय (उपद्रव) होता है। यदि शुक्र पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो अधिक वृष्टि तथा विद्याधरों के युद्ध में विमर्द होता है।।२७।।

पुनर्वसुस्थे सिते। अश्मकानां जनानां वैदर्भाणां च महाननय उपद्रवो भवति। तथा पुष्ये तिष्यस्थे सिते पुष्टा बह्वी वृष्टिर्भवति। तथा विद्याधराणां देवयोनीनां रणे संग्रामे विमर्दो भवति।।२७।।

अथाश्लेषामघयोराह—

आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्चरन् शुक्रः।
भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद् भूरिवृष्टिकरः ॥२८॥

आश्लेषा नक्षत्र में गमन करता हुआ शुक्र लोगों को सर्पों से अत्यन्त पीड़ित करता है तथा मघा नक्षत्र को भेदन करते हुये शुक्र हस्तिपति को पीड़ित और अतिवृष्टि करता है।

शुक्र आश्लेषासु चरंस्तिष्ठन् भुजङ्गमेभ्यः सर्पेभ्यो लोकानां दारुणां तीव्रां पीडां वहेत् कुर्यात्। मघां भिन्दन् विदारयन् महामात्राणां हस्तिसाधनपतीनां दोषकृद् दोषं करोति। केचिन्महामात्याः प्रधाना इतीच्छन्ति। भूरिवृष्टिकरो बहुवर्षकरः। भेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम्—

छादयति योगतारां मानार्द्धोनाधिकाद् भविक्षेपात्।
स्फुटविक्षेपो यस्याधिकोनको भवति समदिक्स्थः।।
विक्षेपोऽन्त्ये सौम्ये तृतीयतारां भिनत्ति पित्र्यस्य।
इन्दुर्भिनत्ति पुष्यं पौष्णं वारुणमविक्षिप्तः।। इति।।२८।।

अथ पूर्वोत्तरफल्गुन्योराह—

भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय।
आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी ॥२९॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र को भेदन करता हुआ शुक्र शबर-पुलिन्दजनों का नाश और अतिवृष्टि करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का भेदन करता हुआ शुक्र कुरु देश में निवास करने वाले, जांगल (स्वल्पोदक स्थान) में निवास करने वाले और पञ्जाबियों का नाश तथा वृष्टि करता है।।२९।।

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां शबरा जनाः पुलिन्दाश्च। एतेषां प्रध्वंसकरो विनाशकरः। अम्बुनिवहमोक्षाय। अम्बुनो जलस्य निवहं वेगं मुञ्चति। बहुजलं वर्षतीत्यर्थः। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां कुरून् जनान्। जाङ्गलं स्वल्पोदकस्थानम्। तत्र ये निवसन्ति प्राणिनः। पाञ्चालान् जनान्। एतान् हन्ति। सलिलं जलं ददातीति सलिलदायी। वर्षतीत्यर्थः।

अथ हस्तचित्रयोराह—

कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः।
कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥३०॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शुक्र कौरवों और चित्रकारों को पीड़ित करता तथा अवृष्टि करता है एवं चित्रा नक्षत्र में स्थित शुक्र कुआँ बनाने वालों और पक्षियों को पीड़ित करता तथा सुन्दर वृष्टि करता है।।३०।।

हस्ते स्थिते शुक्रे कौरवा जनाः। चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः। एषां पीडा भवति

जलस्योदकस्य च निरोधोऽवर्षणम्। चित्रास्थे शुक्रे कूपकृतां कूपकराणां खे अण्डजानां पक्षिणां च पीडा भवति। वृष्टिश्च शोभना कालोपयोग्या भवति।।३०।।

अथ स्वातिविशाखयोराह—

स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः।
ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात् ॥३१॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित शुक्र अतिवृष्टि तथा दूत, वाणिज्य कर्म करने वाले, नाव चलाने वाले—इनमें उपद्रव फैलाता है। विशाखा नक्षत्र में स्थित शुक्र सुन्दर वृष्टि तथा वाणिज्य कर्म करने वालों को पीड़ित करता है।।३१।।

स्वातौ स्थिते शुक्रे प्रभूता बह्वी वृष्टिर्भवति। दूता गमागमिनः। वणिजः क्रयविक्रयज्ञाः नाविका नौकर्णधाराः। एताननयः स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थः। ऐन्द्राग्ने विशाखायां स्थिते सुवृष्टिः शोभना वृष्टिर्भवति। तथा वणिजां किरातानां च भयं भीतिं विजानीयाद् विन्द्यात्।।३१।।

अथानुराधाज्येष्ठामूलेष्वाह—

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः।
मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः ॥३२॥

अनुराधा नक्षत्र में स्थित शुक्र क्षत्रियों में विरोध, ज्येष्ठा में क्षत्रियों में प्रधान का नाश और मूल में स्थित शुक्र प्रधान वैद्यों का नाश करता है तथा इन तीनों नक्षत्रों में जब तक शुक्र बैठा रहता है तब तक अनावृष्टि करता है।।३२।।

मैत्रेऽनुराधायां क्षत्रविरोधः क्षत्रियाणामुपद्रवः। ज्येष्ठायां स्थिते शुक्रे क्षत्रमुख्यानां क्षत्रियप्रधानानां सन्ताप उपद्रवः। मूले मौलिकानां मूलद्रव्यविक्रयिणां भिषजां वैद्यानां च सन्तापः। एतेषु त्रिष्वप्यनुराधाज्येष्ठामूलेष्वनावृष्टिरवर्षणं भवति।।३२।।

अथ पूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठास्वाह—

आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति।
श्रवणे श्रवणव्याधिः पाखण्डिभयं धनिष्ठासु ॥३३॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शुक्र जल में उत्पन्न जीवों को पीड़ित, उत्तराषाढ़ा में रोगों की उत्पत्ति, श्रवण में कर्णपीड़ा और धनिष्ठा में स्थित शुक्र पाखण्डियों में भय उत्पन्न करता है।।३३।।

आप्ये पूर्वाषाढायां सलिलजैर्जलोद्भवैश्च प्राणिभिर्द्रव्यैश्च प्राणिनां पीडा भवति। सलिलजानां पीडा भवति इति केचित्। विश्वेशे उत्तराषाढायां स्थिते शुक्रे व्याधयो रोगाः प्रकुप्यन्ति बाहुल्येन भवन्ति। श्रवणे स्थिते श्रवणव्याधिः कर्णे रोगो भवति। धनिष्ठासु स्थिते पाखण्डिभयम्। पाखण्डिनो वेदबाह्याः तेषु भयं भवति।।३३।।

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदयोराह—

शतभिषजि शौण्डिकानामजैकभे द्यूतजीविनां पीडाम्।
कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलिलम् ॥३४॥

शतभिषा नक्षत्र में स्थित शुक्र शौण्डिकों (मद्यविक्रेताओं = कलवारों) को पीड़ित करता है। पूर्वभाद्रपदा में स्थित शुक्र जुआरी लोग, कुरु तथा पञ्जाब देश में स्थित जनों को पीड़ित और वृष्टि करता है।।३४।।

सितः शुक्रः शतभिषजि स्थितः शौण्डिकानां मद्यपानप्रसक्तानां पीडाकरः। अजैकभे पूर्वभद्रपदायां स्थितो द्यूतजीविनां द्यूतेन ग्लहेन ये जीवन्ति तेषां पीडाकरः। कुरवः पाञ्चालाश्च जनास्तेषामपि पीडां करोति। अपिशब्दो वार्थे। अस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सितः शुक्रः सलिलं जलं करोति।।३४।।

अथोत्तरभद्रपदारेवत्यश्विनीभरणीष्वाह—

आहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम्।
अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥३५॥

उत्तरभाद्रपदा में स्थित शुक्र फल-मूलों को, रेवती में पथिकों को, अश्विनी में अश्वपालकों को तथा भरणी में स्थित शुक्र किरात तथा यवनों को पीड़ित करता है।।३५।।

आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां फलानां मूलानां च तापकृत् पीडाकरः। रेवत्यां यायिनां पथिकानां च पीडाकरः। अश्विन्यां हयपानामश्वपतीनां तापकृत्। याम्ये भरण्यां किरातानां यवनानां जनानां च तापकृत् तापकरः। तथा च काश्यपः—

भेदयेत् कृत्तिकां शुक्रो बहुतोयं विमुञ्चति।
रोहिण्यां मरणं घोरं गृध्राकुलभयाकुलम्।।
मृगे तु सर्वसस्यानां क्षयं कुर्याद् भृगोः सुतः।
आर्द्रासु च कलिङ्गानां कोशलानां भयावहः।।
पुनर्वसौ विदर्भाणां पीडयत्युशनास्तथा।
पुष्ये पुष्टिं समायान्ति जनाः सस्यानि वृष्टयः।।
आश्लेषासूशना भेदात् पीडयेद् भुजगैः प्रजाः।
मघाभेदकरः शुक्रो महामात्रांश्च पीडयेत्।।
भाग्ये शबरविध्वंसं बहुवृष्टिं प्रमुञ्चति।
आर्यम्णे तु कुरुक्षेत्रं पाञ्चालांश्चोपतापयेत्।।
हस्ते चित्रकराणां तु पीडा वृष्टिक्षयो भवेत्।
सुवृष्टिं कूपकृत्पीडां चित्राभेदं यदा व्रजेत्।।
स्वास्तिभेदे सुवृष्टिं च वणिग्नाविकभीतिदः।
विशाखायां सुवृष्टिं च मैत्रे मित्रं विरुध्यति।।

ऐन्द्रे पौरविरोधः स्यान्मूले तु भिषजां भयम्।
आप्ये वैश्वे व्याधिभयं वैष्णवे कर्णवेदना।।
धनिष्ठासु कुकर्मस्थान् वारुणे शौण्डिकक्षयम्।
प्रोष्ठपादे पूर्वसक्तानहिर्बुध्न्ये फलक्षयः।।
यायिनां सनृपाणां च पौष्णे ज्ञेयं महद्भयम्।
अश्विन्यां हयपीडाकृद् भरण्यां कृषिजीविनाम्।। इति।

तथा च पराशरः—

'भाग्यार्यमानिलेन्द्राग्निप्रोष्ठपदरौद्रयाम्यतिष्यगतः स्निग्धो रश्मिवान् वर्षकरः। तत्र प्राजापत्यत्वाष्ट्रेन्द्राग्निमैत्राणामुदग्मध्यदक्षिणेन व्रजेत् क्षेमसस्यवृष्टीनां प्रकृष्टमध्यान्तफलो भवति। पित्र्याग्नेययोरुदग्मध्यगतः प्रजाहिताय। एवमेवाषाढादित्यरोहिणीषु मध्यगः पुररोधाय च'।।३५।।

अथ शुक्रस्य तिथिष्वस्तमयोदयफलमाह—

चतुर्दशीं पञ्चदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिं भृगोः सुतः।
यदा व्रजेद् दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते ।।३६।।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अमावास्या और कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में शुक्र का उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण होती है।।३६।।

भृगोः सुतः शुक्रस्तमिस्रपक्षस्य कृष्णपक्षस्य चतुर्दशीं तिथिं पञ्चदशीममावस्याष्टमीं वा समाश्रित्य यदा दर्शनमुदयं व्रजेत् सूर्यमण्डलादुद्गच्छति, अथवा अस्तमयमेति तत्रैवादर्शनमायाति तदा मही भूः, वारिमयीव जलमयीव लक्ष्यते दृश्यते। अतिवृष्टिर्भवतीत्यर्थः। तथा च काश्यपः—

कृष्णपक्षे ह्यमावस्याचतुर्दश्यष्टमीषु च।
उदयं भार्गवः कुर्यात्तदा वृष्टिं प्रमुञ्चति।।

पराशरश्चात्र विशेषमाह—

कार्तिके तु यदा मासि कुरुतेऽस्तमयोदयौ।
तदाह्नां नवतिं पूर्णां देवो भुवि न वर्षति।।
वर्तमाने यदा शुक्रे कृत्तिकासु बृहस्पतिः।
उदेति तु तदा देवस्तां समां वर्षते समाम्।।
अस्तोदये तु शुक्रस्य यदि चन्द्रदिवाकरौ।
आवृत्तिमार्गं कुर्वाते तदा वर्षति भार्गवः।।
अवार्षके भे विचरन् यदि वर्षति भार्गवः।
वार्षकर्क्षगतो व्यक्तं षोडशार्चिर्न वर्षति।। इति।।३६।।

अथ गुरुशुक्रयोरन्योन्यं सप्तमस्थयो: फलमाह—

गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयो:
परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता
न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ।।३७।।

यदि बृहस्पति और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में स्थित हों तो रोग और अनेक प्रकार के भय से प्रजागण पीड़ित होते हैं तथा अवृष्टि होती है।।३७।।

गुरुर्जीव:। भृगु: शुक्र:। एतावपरपूर्वकाष्ठयो:। अपरा पश्चिमा। पूर्वा प्राची। काष्ठा दिक्। पश्चिमपूर्वयोर्दिशो: परस्परमन्योन्यं यदि च सप्तमराशिगौ भवत:। कदाचित् पूर्वकाष्ठागत: शुक्रोऽपरकाष्ठागतो गुरु:। कदाचित् पूर्वकाष्ठागतो गुरुरपरकाष्ठागत: शुक्र:। नन्वत्रापरपूर्वकाष्ठयोरित्यनेनैव सिद्धे सप्तमराशिग्रहणं किमर्थम्? उच्यते। यदि सप्तमराशिग्रहणं न क्रियते तदापरपूर्वस्थावन्येनापि प्रकारेण भवत:। एक: प्राक्कपाले स्थितोऽपरोऽपरकपालस्थ:। तदापरपूर्वकाष्ठास्थौ भवत इत्यत: सप्तमराशिग्रहणं कृतम्। तेनैतज्ज्ञापयति—यथोदयास्तयो रेखासक्तयोरयं योगो भवति नान्यथा। एवं परस्परं सप्तमराशिगौ यदा तस्मिन् काले प्रजा जना:। रुग्भयशोकपीडिता:। रोगैर्भयेन शोकेन दु:खेन च पीडिता उपहता:। पुरन्दरोज्झितमिन्द्रोत्सृष्टं वारि जलं न पश्यन्ति नावलोकयन्ति। अवृष्टिर्भवतीत्यर्थ:।

नन्वत्र यथासंख्येनैवापरपूर्वकाष्ठागौ गुरुभृगू यदा भवतस्तदायं योगो भवति यथा, तथा भृगुर्गुरुश्चेत्यनया पाठविप्रतिपत्त्या वा। यथासंख्येनैव कस्माद्योगो न भवति कथमनियमेन भवति। तथा च पराशरेण गुरुभृगू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहतौ। तथा च—

उदयास्तमयस्थौ तु यदा शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ स्यातां जनयेतां तदा भयम्।।

ऋषिपुत्रेण च भृगुगुरू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहितौ। तथा चाह—

पृष्ठतस्तूशना यत्र पुरस्ताच्च बृहस्पति:।
न च कश्चिद् ग्रहो मध्ये बुधो वाप्यथ दृश्यते।।
एकमार्गसमापन्नौ प्रेक्षमाणौ परस्परम्।
ते दिशौ पीडिते विन्द्यात् त्रीन् पक्षानभियोजयेत्।।

अत उभयदर्शनान्निश्चीयते तथा ऋषीणामत्रैकवाक्यता नास्त्येवेति स्वयमेवमङ्गीकृतं तैरिति। वयं त्वत्र ब्रूम:—

उभयदर्शनाद् गुरुभृगुभ्यामनियमोऽत्राऽऽचार्यस्याभिप्रेतस्तथा बृहज्जातकेऽपि प्रयोग: कृत इति। 'शूरस्तब्धौ विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुविज्ञौ। चार्वङ्गेष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु' इत्यत्र च नियमव्याख्यैव यथा तथा कृतैव। अत्रापि यथा तथा गुरुभृग्वोरपरपूर्वकाष्ठास्थयोरित्यनियमव्याख्यैव ज्यायसी। सति वा नियमे पाठविप्रतिपत्तिचोदने नावत-

रतीति। तथा च भद्रबाहौ पठ्यते—

प्रत्यूषे प्राक्स्थितः शुक्रः पृष्ठतश्च बृहस्पतिः ।
यदाऽन्योन्यं निरीक्षेते तदा चक्रं प्रवर्तते।।
धर्मार्थकामा लुप्यन्ते प्रस्तावा वार्णसङ्कराः।
नृपाणां च समुद्योगो यतः शुक्रस्ततो जयः।।
अवृष्टिश्च भयं रोगं दुर्भिक्षं च तदा भवेत्।
आढकेन तु धान्यस्य ग्राहकः स्यात्तदा प्रियः।।
यदा तु पृष्ठतः शुक्रः पुरतश्च बृहस्पतिः।
यदा वालोकयेतां तौ तावदेव फलं भवेत्।।

तथा च गर्गः—

अन्योन्यमस्तसंस्थौ तु यदि शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ घोरं जनयेतां महद्भयम्।।

तस्मात् साधूक्तं गुरुः शुक्रः पृष्ठतः पुरतो वेति।।३७।।

अथ सर्वैर्ग्रहैः शुक्रस्याग्रवर्तिभिः फलमाह—

यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः
सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः ।
नृनागविद्याधरसङ्गराः तदा
भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥३८॥
न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः
क्रियासु सम्यग् न रता द्विजातयः ।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो
भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम् ॥३९॥

यदि शुक्र के आगे बृहस्पति, बुध, मंगल और शनि हों तो मनुष्य, नाग और विद्याधरों में युद्ध, भयङ्कर वायु से वृक्षादिकों का नाश, मित्रों में परस्पर मित्रता का अभाव, ब्राह्मणों में कर्म का अभाव, वर्षा का बिल्कुल अभाव और वज्रपातों से पर्वतों का नाश होता है।।३८-३९।।

यदा यस्मिन् काले जीवबुधारसूर्यजाः। जीवो बृहस्पतिः। बुधः सौम्यः। आरो भौमः। सूर्यजः शनैश्चरः। एते सर्व एव सितस्य शुक्रस्याग्रपथानुवर्तिनः स्थिताः। पुरःसरा भवन्तीत्यर्थः। तदा तस्मिन् काले नृणां मनुष्याणां नागानां पन्नगानां विद्याधराणां देवयोनीनां सङ्गराः संग्रामा भवन्ति। तथा वाता वायवः समुच्छ्रितान्तकाः। समुच्छ्रितानां पर्वतानां वृक्षादीनामन्तकाः शृङ्गाग्रपातिनो भवन्तीति।

न मित्रभाव इति। सुहृदो मित्राणि न मित्रभावे सुहृद्भावे व्यवस्थिताः संस्थिता भवन्ति। मित्रतां न भजन्त इत्यर्थः। तथा द्विजातयो ब्राह्मणाः सम्यग्यथावद्विहितासु क्रियास्वग्निहोत्राद्यासु न रताः सक्ता न भवन्ति। तथा वासव इन्द्रोऽल्पं स्तोकमप्यम्बु जलं न ददाति न प्रयच्छति। न किञ्चिद्वर्षतीत्यर्थः। भूभृतां पर्वतानां वज्रेणोल्कया शिरांसि मस्तकानि भिनत्ति विदारयतीत्यर्थः।।३८-३९।।

एवं सर्वेषूक्त्वाऽधुनैकैकस्याग्रगतस्य वक्तुकामः शनैश्चरस्य तावदाह—

शनैश्चरे म्लेच्छविडालकुञ्जराः
खरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः।
पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः
क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्गदोद्भवैः ॥४०॥

यदि शुक्र के आगे शनैश्चर गमन करे तो म्लेच्छ जाति, बिल्ली, हाथी, गदहा, भैंस, काले धान्य, सूकर, निषाद, शूद्र और दक्षिण दिशा में स्थित जन नेत्ररोग तथा वायु के विकार से नष्ट होते हैं।।४०।।

शनैश्चरे शुक्रस्याग्रतः स्थिते म्लेच्छा जनाः। विडाला मार्जाराः। कुञ्जरा गजाः। खरा गर्दभाः। महिष्यः प्रसिद्धाः। असितधान्यं कृष्णधान्यम्। शूकरा वराहाः। पुलिन्दा निषादजनाः। शूद्रा जनाः। ते च सदक्षिणापथा दक्षिणदिग्निवासिभिर्जनैः सहिताः। एते सर्व एव क्षयं विनाशं व्रजन्ति। कैः? अक्षिमरुद्गदोद्भवैः। अक्षिषु नेत्रेषु ये गदा रोगा मरुता वायुना च ये गदास्तदुद्भवैस्तदुत्पन्नैर्दोषैरिति।।४०।।

अथ भौमेऽग्रतः स्थिते फलमाह—

निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजां
हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः।
चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं
दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत् ॥४१॥

यदि शुक्र के आगे मङ्गल गमन करे तो अग्नि, शस्त्र, क्षुधा, अवृष्टि और चोरों से प्रजाओं का, उत्तर दिशा में स्थित जङ्गम तथा स्थावर प्राणियों का, अग्नि तथा विद्युत् और धूलि से दिशाओं का नाश होता है।।४१।।

शुक्रो भार्गवः क्षितिजे भौमे अग्रतः पुरतः स्थिते सत्येवं प्रजां निहन्ति नाशयति। कैः? हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः। हुताशोऽग्निः। शस्त्रमायुधं संग्राम इत्यर्थः। क्षुद् दुर्भिक्षम्। अवृष्टिरवर्षणम्। तस्कराश्चौराः। एतैः। तथोत्तरां दिशम्। चराचरम्। चरं जङ्गमाख्यमचरं स्थावराख्यं व्यक्तं निःशेषं निहन्ति। तथा दिश आशाः। अग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत्। अग्निना हुतवहेन। विद्युता तडिता। रजसा पांशुना। एतैः पीडयेद् उपतापयेत्।।४१।।

अथ बृहस्पतावग्रतः स्थिते फलमाह—

बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः
सितं समस्तं द्विजगोक्षुरालयान्।
दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा
गले गदा भूरि भवेच्च शारदम्॥४२॥

यदि शुक्र के आगे गुरु गमन करे तो सफेद वस्तु, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं के गृह और पूर्व दिशा का नाश करता है, मेघ से ओले की वृष्टि होती है, लोगों के गले में रोग होता है तथा शारदीय धान्य अधिक होता है।।४२।।

सितः शुक्रो बृहस्पतौ पुरःस्थिते अग्रवर्तिनि सति समस्तं निःशेषं यत्किञ्चित्सितं शुक्लवर्णम्। तथा द्विजगोसुरालयान्। द्विजा ब्राह्मणाः। गावः। सुरा देवाः। एषामालयं स्थानं हन्ति नाशयति। तथा दिशमाशां च पूर्वामैन्द्रीं हन्ति। अम्बुदा मेघाः करकासृजः करकावृष्टिं सृजन्ति मुञ्चन्ति। गले कण्ठे गदा रोगा लोकानां भवन्ति। शारदं च सस्यं भूरि बहु भवेत्।।४२।।

अथ बुधे अग्रतः स्थिते फलमाह—

सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्
रोगान् पित्तजकामलांश्च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकान्।
हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान्
वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम्॥४३॥

यदि शुक्र के आगे बुध गमन करे तो वृष्टि, लोगों में पित्तज और कामला रोगों की उत्पत्ति तथा ग्रीष्म में उत्पन्न होने वाले धान्यों को पुष्ट करता है एवं वनवासी, अग्निहोत्री, वैद्य, योद्धा, घोड़ा, वैश्य, गौ, वाहन, राजा, सभी पीली वस्तुयें और पश्चिम दिशा का नाश करता है।।४३।।

सौम्यो बुधो भृगुसुतस्य शुक्रस्य पुरोऽग्रतः। अस्तोदययोः। अस्तमितः सूर्यमण्डले स्थित उदितस्तन्निर्गतो वा यथा तथावस्थितस्तोयकृद्भवति, तोयं जलं करोति। तथा रोगान् ज्वरादीन् करोति। पित्तजकामलांश्च पितजै रोगैः सहिताः कामलाः पित्तजकामलास्तांश्च कुरुते। ग्रैष्मिकान् ग्रीष्मजातांश्च सस्यादीन् पुष्णाति पुष्टिं नयति। तथा प्रव्रजितान् वनस्थान्। आग्निहोत्रिकान् अग्निहोत्रे सक्तान्। भिषजो वैद्यान्। रङ्गोपजीव्यान् मल्लादीन्। हयानश्वान्। वैश्यान् वैश्यजातीयान्। गास्तथा वाहनैरश्वादिभिश्च सह नरपतीन् नृपान्। पीतानि पीतवर्णानि सर्वाणि द्रव्याणि। पश्चाद्दिशमपरां चाऽऽशां हन्यान्नाशयेत्।।४३।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते
कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये।

हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः
पतति न सलिलं खाद् भस्मरूक्षासिताभे ॥४४॥

यदि शुक्र का वर्ण अग्नि के समान हो तो अग्नि का भय, रक्त हो तो शस्त्रकोप, कसौटी पर घिसे हुये सुवर्ण की रेखा के समान हो तो रोग, तोते के समान या पीला हो तो श्वास और कास रोग की उत्पत्ति तथा भस्म की तरह रूक्ष या काला वर्ण हो तो अवृष्टि होती है।।४४।।

दैत्यपूज्ये शुक्रे अनलाभे अग्निसदृशकान्तौ शिखिभयमग्निभीतिर्भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रकोपः संग्रामा भवन्ति। कनकस्य सुवर्णस्य याऽसौ निकषरेखा तद्वद् गौरवर्णे व्याधयो रोगा भवन्ति। हरितरूपे शुकाभे कपिलरूपे च पिशङ्गवर्णे श्वासकासप्रकोपो भवति। श्वासेन च कासेन च पीडा जनानां भवति। भस्माभे भस्मवर्णे। रूक्षाभे स्नेहरहिते। असिताभे कृष्णकान्तौ। खादाकाशात् सलिलं जलं न पतति। देवो न वर्षतीत्यर्थः।।४४।।

अन्यदप्याह—

दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ॥४५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
शुक्रचाराध्यायो नवमः ॥९॥

यदि दही, कुमुदपुष्प या चन्द्र की तरह कान्ति वाला, स्पष्ट विस्तृत किरण वाला, विपुल मूर्त्ति वाला, सुन्दर गति वाला (अवक्री), विकाररहित और विजयी शुक्र हो तो प्रजाओं को कृतयुग की तरह (व्याधि, दारिद्र्य और शोक से रहित) करता है।।४५।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शुक्रचाराध्यायो नवमः ॥९॥

ईदृग्रूपः सिताह्वयः सितनामा शुक्रः कृतयुगरूपकरः, कृतयुगस्य रूपं करोति, तद्धर्मानुप्रवृत्तेर्जना व्याधिदारिद्र्यशोकवर्जिता भवन्तीत्यर्थः। कीदृशः? दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत्। दध्नः क्षीरविकारस्य। कुमुदस्य पुष्पविशेषस्य। शशाङ्कस्य चन्द्रस्य सदृशीं कान्तिमाभां बिभर्ति धारयति। स्फुटविकसत्किरणः, स्फुटाः स्पष्टा विकसन्तो विस्तीर्णाः किरणा रश्मयो यस्य तथाभूतः। बृहत्तनुर्विस्तीर्णदेहः। सुगतिः शोभनगतिः। अवक्रो ग्रहर्क्षाणामुत्तरभागगतश्च। अविकृतो विकारवर्जित उत्पातरहितः। जयान्वितो जययुक्त इति। तथा च पराशरः—

'हिमकनकरजतशङ्खस्फटिकवैदूर्यमुक्तामधुघृतमण्डकुमुदशशाङ्कच्छविस्निग्धदीप्तप्रकान्तिप्रकाशः प्रसन्नार्चिरवनिपतिहितकरः प्रशान्तवैरो दुर्भिक्षारोगवृष्टिकरश्च। श्यावनील-

रूक्षकपिलरक्तध्वस्तदीनाल्पलोष्टसन्निभः शस्त्रवैरव्याधिवर्षान्नक्षयकरः।' तथा च—

कूटाकारनिभः स्निग्धो मार्गस्थो रजतप्रभः।
भार्गवो विस्तृतार्चिश्च प्रजाभावकरः स्मृतः।। इति।

प्रावृषि शुक्रः प्राच्यां दिशि स्थितोऽल्पं जलं सृजति नित्यम्।
धान्यं च भूरि कुरुते तृणं च बहु जायते तत्र।।
अपरां निषेव्यमाणः काष्ठां शुक्रो जलं सृजति भूरि।
धान्यं कुरुते चाल्पं तृणं न बहु जायते तत्र।। इति।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शुक्रचारो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ शनैश्चरचाराध्यायः

अथ शनैश्चरचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव शनैश्चरस्य नक्षत्रावस्थितिवशेन फलमाह—

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्य।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥१॥

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलम्।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ॥२॥

यदि शनैश्चर श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी या पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित होकर निर्मल मूर्ति वाला हो तो पृथ्वी वृष्टि के जल से परिपूर्ण होती है। यदि आश्लेषा, शतभिषा या ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो सुन्दर क्षेत्र और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि मूल में स्थित हो तो दुर्भिक्ष, युद्ध और वर्षा का अभाव होता है। इस तरह संक्षेप से फल कह कर अब प्रत्येक नक्षत्र के फल कहते हैं।।१-२।।

श्रवणानिलेति। श्रवणम्। अनिलः स्वातिः। हस्तः। आर्द्रा। भरणी। भाग्यं पूर्वफल्गुनी। एतेषु नक्षत्रेष्वर्कस्य सुतः शनैश्चर उपगः प्राप्तः स्थित इत्यर्थः। तत्र यदि स्निग्धो विमलमूर्तिर्भवति तदा धात्रीं भूमिं प्रचुरसलिलोपगूढां प्रचुरेण प्रभूतेन सलिलेन पानीयेन उपगूढां छन्नां करोति। तथा च गर्गः—

याम्यवायव्यसावित्ररौद्रश्रवणसंस्थितः ।
भवेत् स्निग्धवपुः सौरो भाग्ये चैवातिवर्षदः।। इति।

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेष्विति। अहिदैवतमाश्लेषा। वरुणदैवतं शतभिषक्। पुरन्दर इन्द्रस्तद्दैवतं ज्येष्ठा। एतेष्ववस्थितः सौरः सुक्षेमकृत् शोभनं क्षेमं करोति। न चाति जलम्, अति प्रभूतं जलमुदकं न करोति। क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले। मूले स्थितः क्षुद् दुर्भिक्षम्। शस्त्रं संग्रामः। अवृष्टिरवर्षणम्। एताः करोति। प्रत्येकमपि वक्ष्ये। एकमेकं प्रति प्रत्येकम्। इदानीं प्रत्येकं नक्षत्रमधिकृत्य वक्ष्ये कथयिष्ये। तथा च गर्गः—

सार्पवारुणमाहेन्द्रनक्षत्रेषु च संस्थितः।
स्निग्धः सौरः क्षेमकरो नातिवृष्टिं प्रमुञ्चति।।
क्षुच्छस्त्रवृष्टिदो मूले सूर्यपुत्रः समास्थितः।। इति।।१-२।।

अथाऽश्विनीभरण्योः समवस्थितस्य सौरस्य फलमाह—

तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः।
याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ॥३॥

यदि शनैश्चर अश्विनी नक्षत्र में स्थित हो तो घोड़ा, घोड़े का उपचारक, कवि, वैद्य

और मन्त्रियों को नाश करता है। यदि भरणी नक्षत्र में स्थित हो तो नाचने, बजाने, गाने वाले, अन्याय पथ पर चलने वाले तथा निषाद—इन सबों का नाश करता है।।३।।

अर्कज: सौर:। अश्विगत: अश्विन्यामवस्थित:। तुरगानश्वान्। तुरगाणां य उपचारकास्तान् तुरगोपचारकान्। तथा कवीन् काव्यकुशलान्। वैद्यान् कायचिकित्सकान्। अमात्यान् मन्त्रिणश्च। हन्ति नाशयति। याम्ये भरण्यां नर्तनं शिल्पमस्येति नर्तक:। वादनं शिल्पमस्येति वादक:। गेयं जानातीति गेयज्ञ:। क्षुद्रोऽन्यायवर्ती। नैकृतिको निषाद:। एतान् हन्ति नाशयति।।३।।

अथ कृत्तिकारोहिण्योराह—

बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च ।
रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिका: ।।४।।

यदि कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो अग्नि से आजीविका चलाने वालों और सेनापति का नाश करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो कोशल, मद्र, काशी तथा पाञ्चाल देश में रहने वाले मनुष्यों और गाड़ी से आजीविका चलाने वालों का नाश करता है।।४।।

सौरे शनैश्चरे बहुलासु कृत्तिकास्ववस्थिते अग्न्युपजीविनोऽग्निवार्ता: सुवर्णकारलोहकारायस्कारप्रभृतय:। चमूपा: सेनापतय:। एते पीड्यन्ते। रोहिण्यां स्थिते सौरे कोशला जना:। मद्रा:। काशय:। पाञ्चाला:। एते जना:। शाकटिका: शकटोपजीविन:। एते पीड्यन्ते।।४।।

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह—

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च ।
रौद्रस्थे पारतरमठास्तैलिकरजकचौराश्च ।।५।।

यदि मृगशिर नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो वत्स देश में रहने वाले मनुष्य, याजक, यजमान, प्रधान मनुष्य और मध्यदेश को पीड़ित करता है। यदि शनैश्चर आर्द्रा में स्थित हो तो पारतर देश में रहने वाले, मद्र देश में रहने वाले, तेली, रजक (धोबी, रंगरेज) और चोरों को पीड़ित करता है।।५।।

मृगशिरसि स्थिते सौरे वत्सजना:। याजका:। यजन्तीति याजका ऋत्विज:। यजमाना याज्ञिका:। आर्यजना: प्रधानजना:। मध्यदेशा: प्रसिद्धा:। एते पीड्यन्ते। रौद्रस्थे आर्द्रास्थे पारतरा जना:। मठा जना एव। तैलिका: प्रसिद्धा:। रजका वस्त्ररागकृत:। चौरास्तस्करा:। एते पीड्यन्ते।।५।।

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह—

आदित्ये पाञ्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीरा: ।
पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ।।६।।

यदि पुनर्वसु नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो पञ्जाब, गुहा, सौराष्ट्र, सिन्धु के समीप तथा सौवीर देश में रहने वाले लोगों को पीड़ित करता है। यदि शनैश्चर पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो घण्टा बजाने वाले, घोषिक (ढींढोरा पीटने वाले अथवा घोष-गुहा में निवास करने वाले), यवन, वणिक्, किरात, धूर्त और पुष्पों को पीड़ित करता है।।६।।

आदित्ये पुनर्वसौ स्थिते सौरे पाञ्चनदा जनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। सुराष्ट्रो देशः। सैन्धवाः। सौवीराः। एते पीड्यन्ते। पुष्ये स्थिते सौरे घाण्टिका घण्टावादनं शिल्पमस्येति घाण्टिकाः। घोषः शब्दोच्चारणं शिल्पमस्येति घौषिकाः श्रावका इत्यर्थः। अथवा घोषे गह्वरे निवसन्ति ते घौषिकाः। यवना जनाः। वणिजः किराताः। कितवा द्यूतकराः। कुसुमानि पुष्पाणि। एतानि पीड्यन्ते।।६।।

आश्लेषामघयोराह—

सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्लीकचीनगान्धाराः ।
शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ।।७।।

यदि आश्लेषा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो जल में उत्पन्न प्राणियों और सर्पों को पीड़ित करता है। यदि मघा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो बाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिक और पारत देश में रहने वाले मनुष्य, वैश्य, कोष्ठागार, वणिक्, किरात—इनको पीड़ित करता है।।७।।

सार्पे आश्लेषायां जलरुहा जलोद्भवाः प्राणिनो द्रव्याणि वा। सर्पा उरगाश्च पीड्यन्ते। तथा च गर्गः—

भुजङ्गकच्छपग्राहनागमत्स्यसरीसृपान्।
हन्यादर्कसुतस्तिष्ठन्नक्षत्रे सर्पदैवते।।

पित्र्ये मघायां बाह्लीकाः। चीनाः गान्धाराः। शूलिकाः। पारताः। सर्व एव जनाः। वैश्या वैश्यवर्णाः। कोष्ठागाराण्यविलयग्रामाः। वणिजश्च किराताः। पीड्यन्त इति सर्वत्र योज्यम्।।७।।

अथ पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुन्योराह—

भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यस्त्रीकन्यकामहाराष्ट्राः ।
आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ।।८।।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर रस (मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय) बेचने वाले, वेश्या, कुमारी, महाराष्ट्र देश में निवास करने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, गुड़, नमक, भिक्षुक, जल और तक्षशिला नगरी को पीड़ित करता है।।८।।

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां रसविक्रयिणः। रसाः षट् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः। एषां

विक्रयकारिण:। पण्यस्त्रियो वेश्या:। कन्यका: कुमार्य:। महाराष्ट्रा महाराष्ट्रदेशे ये जना निवसन्ति। एते सर्व एव पीड्यन्ते। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां नृपा राजान:। गुडमिक्षुविकार:। लवणं प्रसिद्धम्। भिक्षुका यतय:। अम्बु पानीयम्। एतानि। तक्षशिला नगरी। एते सर्व एव पीड्यन्ते।।८।।

अथ हस्ते स्थितस्याह—

हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिका द्विपग्राहा: ।
बन्धक्य: कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥९॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शनैश्चर हजाम, चक्रिक (कुम्भार, तेली आदि), चोर, वैद्य, शिल्पी, हाथी पकड़ने वाले, वेश्या, कोशल देश में निवास करने वाले, माली—इन सबों को पीड़ित करता है।।९।।

हस्तस्थे सौरे नापिता: श्मश्रुकर्मविद:। चाक्रिकाश्चक्रेण चरन्ति चाक्रिका:, कुम्भकारतैलिकप्रभृतय:। चौरास्तस्करा:। भिषजो वैद्या:। सूचिका: प्रसिद्धा: शिल्पिन:। द्विपा हस्तिनस्तेषां ग्राहा बन्धका:। बन्धक्यो वेश्या:। कौशलका जना:। मालाकारा: पुष्पप्रदायका:। एते सर्व एव पीड्यन्ते।।९।।

अथ चित्रास्वात्योराह—

चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि ।
स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्या: ॥१०॥

यदि शनैश्चर चित्रा नक्षत्र में स्थित हो तो स्त्रीगण, लेखक, चित्रकार, भाण्ड (अनेक प्रकार के वैश्यों के धन = 'भाण्डं वणिङ्मूलधने भूषाश्वभूषयोरि'ति मेदिनी)—इन सबों को पीड़ित करता है। यदि स्वाती नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो मागध (कीर्ति गाने वाले या मगध देश में रहने वाले), गुप्तचर, दूत, सारथी, नाव पर चलने वाले, नट आदि—इन सबों को पीड़ित करता है।।१०।।

चित्रास्थे सौरे प्रमदाजन: स्त्रीलोक:। लेखका लिपिज्ञा:। चित्रज्ञाश्चित्रकर्मविद:। चित्रभाण्डानि नानावर्णानि भाण्डानि। बहुवर्णानीत्यर्थ:। एतानि पीड्यन्ते। स्वातौ स्थिते सौरे मागधा नाम श्रावका जना वा मगधवासिन:। चरा गूढपुरुषा:। दूता गमागमकारिण:। सूता: सारथय: कथाश्रावका वा। पोतप्लवा: पोत: समुद्रो येनोत्तीर्यते तत्र ये प्लवन्ते, पोतेन यान्तीत्यर्थ:। नटा नृत्यज्ञा:। आदिग्रहणादन्येऽपि ये गीतवाद्यज्ञास्ते सर्व एव पीड्यन्ते।।१०।।

अथ विशाखास्थिते आह—

ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा ।
सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च क्षयं याति ॥११॥

यदि विशाखा नक्षत्र में शनि बैठा हो तो त्रिगर्त, चीन और कुलूत देश में रहने वाले मनुष्य, कुङ्कुम, लाख, धान्य, मञ्जीठ और कुसुम्भ के पुष्पों का नाश करता है।।११।।

ऐन्द्राग्नाख्ये विशाखायां स्थिते सौरे त्रैगर्ता जनाः। चीनाः। कौलूताः कुलूतनिवासिनः। कुङ्कुमं काश्मीरम्। लाक्षा जतु। सस्यानि प्रसिद्धानि। अथ माञ्जिष्ठम्। अथशब्दः स्वार्थे। माञ्जिष्ठया रक्तं माञ्जिष्ठम्। कौसुम्भञ्च। एतत्सर्वं क्षयं याति नश्यतीत्यर्थः।।११।।

अथाऽनुराधायामाह—

मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः ।
उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम् ॥१२॥

यदि शनैश्चर अनुराधा नक्षत्र में स्थित हो तो कुलूत, तङ्गण, खस (नेपाल), काश्मीर—इन देशों में स्थित मनुष्य, मन्त्री और चक्रचर (कुम्भार-तेली आदि), घण्टा बजाने वाले और शिल्पियों को पीड़ित करता है तथा मित्रों में परस्पर भेदभाव उत्पन्न कराता है।।१२।।

मैत्रेऽनुराधायां कुलूतो देशस्तत्र ये जनाः। तङ्गणा जनाः। खसाः पर्वतवासिनः। काश्मीरा जनाः। किम्भूताः? समन्त्रिचक्रचराः, मन्त्रिभिः सचिवैश्चक्रचरैः कुम्भकारप्रभृतिभिः सहिताः। एते सर्वे उपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। तथा घाण्टिका घण्टावादिनः शिल्पिनस्तेऽप्युपतापं यान्ति। तथा मित्राणां सुहृदां च परस्परं विभेदो विश्लेषो भवति।।१२।।

अथ ज्येष्ठामूलयोराह—

ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः ।
मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः ॥१३॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, पुरोहित, राजाओं से पूजित, शूर, गण (संन्यासियों के मठ), प्रधान कुल और जनसङ्घियों को पीड़ित करता है। मूल में स्थित शनैश्चर काशी, कोशल, पञ्जाब—इन देशों में रहने वाले मनुष्य, फल, औषध और युद्ध करने वालों को पीड़ित करता है।।१३।।

ज्येष्ठासु स्थिते सौरे नृपा राजानः। पुरोहितास्तदाचार्याः। नृपसत्कृता राजपूजिताः। शूराः संग्रामवीराः। गणाः समूहा मठप्रायाः। कुलानि प्रधानकुलानि। श्रेणी बहूनां समानजातीयानां सङ्घः। एते सर्व एवोपतापं यान्ति। मूले तु स्थिते सौरे काशयो जनाः। कोशलाः। पाञ्चालाः। फलान्याम्रादीनि। ओषध्यः प्रसिद्धाः। योधाः संग्रामकुशलाः। एत एवोपतापं यान्ति।।१३।।

अथ पूर्वाषाढायामाह—

आप्येऽङ्गवङ्गकौशलगिरिव्रजा मगधपुण्ड्रमिथिलाश्च ।
उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च ॥१४॥

पूर्वाषाढ़ा में स्थित शनैश्चर अंग, वंग, कोशल, गिरिव्रज, मगध, पुण्ड्र, मिथिला और ताम्रलिप्ती देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है।।१४।।

आप्ये पूर्वाषाढायां स्थिते सौरे अङ्गा जनाः। वङ्गाः। कौशलाः। गिरिव्रजा जना एव। मगधाः। पुण्ड्राः। मिथिलाश्च। एते सर्व एवोपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। ये च जनास्ताम्रलिप्त्यां नगर्यां वसन्ति तेऽप्युपतापं यान्ति।।१४।।

अथोत्तराषाढायामाह—

विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च।
उज्जयिनीं शबरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥१५॥

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर दशार्ण देश में रहने वाले मनुष्य, यवन, उज्जयिनी देश, शबर जाति, पारियात्र (पर्वत पर रहने वाले) और कुन्तिभोज देश में स्थित मनुष्यों को पीड़ित करता है।।१५।।

विश्वेश्वरे उत्तराषाढायामर्कपुत्रः शनैश्चरश्चरंस्तिष्ठन् जनान् यवनांश्च निहन्ति नाशयति। चशब्दः समुच्चये। उज्जयिनीं देशम्। शबरान् जनान्। पारियात्रिकान् पारियात्रे गिरौ ये निसवन्ति तान्। कुन्तिभोजांश्च जनानेतांश्च निहन्ति नाशयति।।१५।।

अथ श्रवणधनिष्ठयोराह—

श्रवणे राजाधिकृतान् विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान्।
वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम् ॥१६॥

श्रवणा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा के अधिकारी, प्रधान ब्राह्मण, वैद्य और पुरोहितों को पीड़ित करता है। धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर हो तो मगधेश्वर की विजय और धनाधिकारी की वृद्धि होती है।।१६।।

श्रवणे स्थितः सौरो राजाधिकृतान्। राज्ञा नृपेणाधिकारे स्थापितान् नियोगिन इत्यर्थः। विप्राग्र्यान् ब्राह्मणप्रधानान्। भिषजो वैद्याः। पुरोहिता आचार्याः। कलिङ्गा जनाः। एतांश्च निहन्ति। वसुभे धनिष्ठायां स्थितः सौरो मगधेशस्य मगधाधिपतेर्जयः। तथा धनेष्वधिकृतानां वित्तरक्षणे विनियुक्तानां वृद्धिर्भवति।।१६।।

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदास्वाह—

साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवृत्तीनाम्।
आहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकराः स्त्रीहिरण्यं च ॥१७॥

यदि शनि शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में स्थित हो तो वैद्य, कवि, शौण्डिक (मद्य बेचने वाले), खरीद-बिक्री करने वाले और नीति शास्त्र जानने वाले पीड़ित होते हैं। यदि उत्तराभाद्रपदा में शनैश्चर बैठा हो तो नदी-तीर में निवास करने वाले, रथाधिकारी, शिल्पी, स्त्री और सुवर्ण का नाश करता है।।१७।।

शतभिषजि साजे पूर्वभद्रपदासहिते स्थितः सौरो भिषजो वैद्याः। कवयः काव्यज्ञाः। शौण्डिका मद्यपानप्रसक्ताः। पण्यवृत्तयः क्रयविक्रयजीविनः। नीतिवृत्तयो नीतिशास्त्रज्ञाः। एता् पीडयति। आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां नद्यः सरितः। नदीतीरे ये निवसन्ति। तथा यानकरा रथाधिकारकाः शिल्पिनस्तक्षकाः। स्त्रियो योषितः। हिरण्यं सुवर्णादि। एतान् निहन्ति।।१७।।

अथ रेवत्यामाह—

रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम्।
शबराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति ॥१८॥

यदि रेवती नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो राजा के आश्रय में रहने वाले, क्रौञ्च द्वीप में रहने वाले, शारदीय धान्य, शबर जाति और यवन पीड़ित होते हैं।।१८।।

रेवत्यां शनैश्चरे चरति स्थिते सति राजभृता राज्ञा नृपेण ये भृताः पोषिता धृता वा। तथा क्रौञ्चद्वीपे य आश्रिताः स्थिताः। शरत्सस्यं धान्यानि। शबरा जनाः। यवना म्लेच्छजातयः। एते पीड्यन्ते। तथा च पराशरः—

'आग्नेये प्रविचरन्नग्निस्थूलशूरसेनाहिताग्निलोहकारधातुकाराङ्गनाशौण्डिकाग्न्युपजीविन उपतापयति। प्राजापत्ये मद्रकपाञ्चालकाशिकोशलाङ्गशाकटिकाः कन्यकाश्चोपतप्यन्ते। सौम्ये यजमानयाजकार्यजनमध्यदेशवत्सजनपदाः। रौद्रे पारतरमठतैलिकरजकदस्यवः। आदित्ये सुराष्ट्रसिन्धुसौवीरपञ्चनदप्रत्यन्ता विधवाश्च। पुष्ये पुष्पमानकघाण्टिकघौषिकपोतयात्रिकयवनवणिग्दूताः। आश्लेषासु सर्पाः सलिलजाश्च। मघासु शूलिकबाह्लिकतैलिकगान्धारवैद्यपारतदरदशिल्पिकोष्ठागाराणि। भाग्ये रसविक्रयिपण्यस्त्रीकन्यामहाराष्ट्राः। आर्यम्णे नृपनृपपत्नीसुततिललवणगुडभिक्षुककूपकूर्चधरतक्षशिलादर्शनिवासिनः। हस्ते हस्तिहस्तिग्राहकस्तेनभिषग्रजकसूचिकनापितमालाकारबन्धकीकोशलाः। त्वाष्ट्रे प्रमदालेखकचित्रकरचित्रभाण्डानि। स्वातौ दूतचरसूतमागधप्लवकनटनर्तकगायनवादकपोतयात्रिकाः। ऐन्द्राग्ने त्रैगर्तचीनकौलूतलाक्षाकुङ्कुमकुसुम्भमाञ्जिष्ठपीतकुसुमसस्यानि विग्रहकामाश्च। अनुराधासु खसतङ्गणकुलूतकाश्मीरचक्रचरमन्त्रिघाण्टिकाः। अस्मिन् मित्रभेदं च विन्द्यात्।'

ऐन्द्रे जातिगणकुलश्रेणीश्रेष्ठनृपनृपतिसत्कृतपुरोहितान्। मूले काशिकोशलपाञ्चालमूलफलौषधियोधान्। पूर्वाषाढास्वङ्गमगधवङ्गपुण्ड्रकौशलमिथिलागिरिव्रजताम्रलिप्तिनिवासिनः। उत्तराषाढास्ववन्तिशबरकुन्तिभोजदाशार्णेयपारियात्रिकान्। वैष्णवेऽग्निदेशकलिङ्गेशविद्वद्द्विप्राश्रमभिषग्राजाधिकृतपुरोहितान्। श्रविष्ठासु मगधाधिपतिविजयाय विविधवसुनिचयाय तदधिकृतानामर्थेशांश्च पीडयति। शतभिषजि भिषङ्मद्यसुरासवक्रयविक्रयवनितोपजीविदस्युपाखण्डिनिवासिनः। प्राक्प्रोष्ठपदायां द्रविडकर्णाटवर्तिचोलपाण्ड्यसिंहलमहेन्द्रनगरनिवासिनः। उत्तरभद्रपदायां स्त्रीहिरण्यनिचयतक्षकशमीधान्यनदनदीपान् युग्मकरान्। रेवत्यां शरत्सस्यराजभृतशबरवनवासिक्रौञ्चद्वीपनिवासिनः। अश्विन्यामश्वारोहाश्वपालवैद्यामात्यकविनायकान्। भरणीषु वादकगायननर्तकक्षुद्रनैकृतिकान् पीडयति।।१८।।

अथ विशाखास्थस्य गुरोः कृत्तिकास्थस्य सौरस्य तथानयोरेकर्क्षगतयोः फलमाह—

यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः ।
तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम् ॥१९॥

जब विशाखा नक्षत्र में गुरु और कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो उस समय प्रजाओं में भयंकर अनीति उत्पन्न होती है तथा जब एक ही नक्षत्र में दोनों बैठे हों तो उस समय नगरों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।।१९।।

यदा यस्मिन् काले महेन्द्रमन्त्री बृहस्पतिर्विशाखासु यातः प्राप्तस्तथा भानोरादित्यस्य सुतः पुत्रः सौरो दहनर्क्षे कृत्तिकायां यातस्तदा तस्मिन् काले प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयोऽतिघोरो भयावहो भवति। तयोरेवंगुरुसौरयोरेकं भमेकनक्षत्रं गतयोः पुरस्य नगरस्य प्रभेदो भवति। तथा च पराशरः—

कृत्तिकासु शनैश्चारी विशाखासु बृहस्पतिः।
तिष्ठेद्यदा तदा घोरः प्रजानामनयो भवेत्।।
एकं नक्षत्रमासाद्य दृश्यते युगपद्यदि।
अन्योन्यभेदं जानीयात्तदा पुरनिवासिनाम्।।

गुरुसौरावेकस्थौ द्विस्वभावराशिस्थौ तदाप्यनिष्टफलमभिहितम्। तथा च देवलः—

मीने धनुषि कन्यायां मिथुने सगुरुः शनिः।
तिष्ठेद्यदा तदा घोरः प्रजानामनयो भवेत्।। इति।।१९।।

अथ वर्णस्वरूपमाह—

अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः ।
शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥२०॥

यदि शनैश्चर का वर्ण अनेक वर्णों का हो तो पक्षियों का नाश, पीला हो तो दुर्भिक्ष, रक्त वर्ण का हो तो युद्ध और भस्म के सदृश वर्ण का हो तो प्रजाओं में द्वेष होता है।।२०।।

रविजः शनैश्चरो यदि चित्रश्चित्रवर्णो नानाकारो दृश्यते। तदा अण्डजहा अण्डजान् पक्षिणो हन्ति। यदि पीतमयूखः पीतरश्मिर्दृश्यते तदा क्षुद् दुर्भिक्षं करोति। रक्तसवर्णो रक्ताभः शस्त्रभयाय संग्रामाय भवति। भस्मनिभो भस्मसदृशकान्तिर्बहुवैरकरः प्रजानां भवति। तथा च पराशरः—

नीलपीतः क्षुधे। रक्तभस्मचित्रवर्णः शस्त्रवैरकरोऽण्डजाभिहन्ता। यद्वर्णस्तद्वर्णविनाशी भवति।।२०।।

अन्यद्वर्णलक्षणमाह—

वैदूर्यकान्तिविमलः शुभकृत् प्रजानां
बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः ।

यं चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान्
सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ॥२१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
शनैश्चरचाराध्यायः दशमः ॥१०॥

यदि शनैश्चर का वर्ण वैडूर्य मणि के समान निर्मल हो तो प्रजाओं को शुभ करने वाला होता है। बाण या अतसी पुष्प के समान काला हो तो भी शुभ है। साथ ही शनैश्चर जिस तरह के वर्ण को धारण करे, उसके समान वर्ण वाले मनुष्यों का नाश करता है। जैसे—श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मण का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रिय का, पीत वर्ण का हो तो वैश्य का तथा कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्र का नाश करता है। इस प्रकार प्राचीन मुनियों का वचन है।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शनैश्चरचाराध्यायो दशमः ॥१०॥

सूर्यात्मजः सौरो वैदूर्यकान्तिविमलो वैदूर्यस्य मणेरिव कान्तिः प्रभा विमला निर्मला यस्य स तथाभूतः प्रजानां लोकानां शुभकृत्। शुभं श्रेयः करोति। तथा बाणपुष्पाणामतिकृष्णवर्णानामतसीकुसुमानां चातिनीलवर्णानां वर्णनिभस्तत्सदृशकान्तिः शस्तः प्रशस्तः। यं चापि वर्णमुपगच्छतीति। यादृशं वर्णं सितं रक्तं पीतं कृष्णमुपगच्छति समाश्रयति तत्सवर्णांस्तत्समानवर्णान् द्विजादीन् क्षपयति नाशयति। तद्यथा—श्वेतवर्णो ब्राह्मणान्नाशयति। रक्तः क्षत्रियान्। पीतो वैश्यान्। कृष्णः शूद्रानिति। इत्येवम्प्रकारो मुनीनां गर्गादीनां प्रवादो वचनमित्यर्थः। तथा च गर्गः—

भवत्यर्कात्मजे रूक्षे श्यावपीतारुणप्रभे।
तदात्मकानां भावानां क्षुच्छस्त्राग्निकृतं भयम्।।

तथा पराशरश्च—

पाण्डुः स्निग्धोऽमलः श्यामो विस्तृतार्चिः शनैश्चरः।
मार्गस्थश्च प्रसव्यश्च नक्षत्राद्धित इष्यते।। इति।।२१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शनैश्चरचारो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ केतुचाराध्यायः

अथ केतुचारो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः ॥१॥

गर्ग, पराशर, असित, देवल और अन्य आचार्यों के भी किये हुये केतुचार को देखकर यह अनाकुल (निःसन्देहात्मक) केतुचार को कहते हैं।।१।।

गार्गीयं गर्गप्रोक्तम्। शिखिचारं केतुचारम्। तथा पाराशरं पराशरकृतम्। असित-नामाचार्यस्तत्कृतम्। देवलकृतं देवलविरचितं च। एतान् केतुचारान् दृष्ट्वा अवलोक्य। तथा अन्यानपि काश्यपऋषिपुत्रनारदवज्रादिविरचितान् बहून् प्रभूतान् दृष्ट्वा मया अयम-नाकुलो निःसन्देहः केतुचारः क्रियते विरच्यत इति।।१।।

अथोदयास्तमयलक्षणमाह—

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥२॥

गणित के द्वारा केतु का अस्त या उदय नहीं जान सकते; क्योंकि दिव्य (आकाश में उत्पन्न), आन्तरिक (ग्रह और नक्षत्रस्थान से भिन्न स्थान में उत्पन्न), भौम (पृथ्वी पर उत्पन्न)—ये तीन प्रकार के केतु होते हैं। इसलिए उत्पातरूप होने के कारण गणित से इनका उदयास्त नहीं जाना जा सकता।।२।।

अस्य केतोर्दर्शनमुदयोऽस्तमयोऽदर्शनं वा गणितविधिना गणितविधानेन न ज्ञातुं वेदितुं शक्यते। यस्मात् केतवस्त्रिविधास्त्रिप्रकारा दिव्यान्तरिक्षभौमाः। दिव्याकाशे भवा दिव्याः। अन्तरिक्षे भवा आन्तरिक्षाः। ग्रहनक्षत्रस्थानं विहायान्यत्राऽऽकाशे ये दृश्यन्ते ते आन्तरिक्षाः। भूमौ भवा भौमाः। इति हेतोरुत्पातरूपत्वादेषामुदयास्तमयौ न ज्ञायेते इति।

अथ केतूनां दिव्यवर्जितानामन्येषां स्वरूपमाह—

अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत्केतुरूपमेवोक्तम्।
खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥३॥

खद्योत, पिशाचालय (यक्ष का स्थान), मणि (चन्द्रकान्त इत्यादि), रत्न (मरकत इत्यादि), आदि (काच आदि)—इनको छोड़कर अग्नि से भिन्न जिस-किसी स्थान में अग्नि के समान रूप दृष्टिगोचर हो, वहाँ केतु का रूप समझना चाहिये।।३।।

अहुताशेऽग्निवर्जिते यस्मिन् देशेऽनलरूपमग्निरूपं दृश्यते तदेव केतुरूपमुक्तं कथितम्। किन्तु खद्योत इन्द्रगोपकः कृमिविशेषः। पिशाचालयो यक्षस्थानम्। मणयश्चन्द्रकान्तप्रभृतयः।

रत्नानि मरकतप्रभृतीनि। आदिग्रहणादन्यान्यपि काचप्रभृतीनि तेजोरूपाणि। एतानि परित्यज्य त्यक्त्वा। यत एषां स्वभावादेवानलरूपं दृश्यते। एतानि परित्यज्यान्यद्यदनल-रूपमहुताशे दृश्यते तत्केतुरूपमिति।।३।।

अथ दिव्यान्तरिक्षभौमानां केतूनां लक्षणमाह—

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते ।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥४॥

ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, घोड़ा, हाथी आदि में जिस केतु का दर्शन हो, वह आन्तरिक्ष नक्षत्रों में दिव्य और इनसे भिन्न स्थानों में भौम केतु होता है।।४।।

ध्वजश्चिह्नम्। शस्त्रमायुधादि। भवनं गृहम्। तरुर्वृक्षः। तुरगोऽश्वः। कुञ्जरो हस्ती। आदिग्रहणादन्येषु चतुष्पदादिषु दृश्यन्तेऽनलरूपास्ते केतव आन्तरिक्षाः। तथा नक्षत्राणां तारकाणां च मध्ये ये केतवो दृश्यन्ते ते दिव्या नक्षत्रस्थाः अतोऽस्मादुक्ताद्येऽन्यथा अन्ये भूभौ दृश्यन्ते ते भौमाः शिखिनः केतव इति।।४।।

अथ केतूनां मतान्तरेण संख्यामाह—

शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम् ।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥५॥

कोई एक सौ एक, दूसरे एक सहस्र और नारद मुनि अनेक रूप वाला केवल एक ही केतु कहते हैं।।५।।

एके मुनयः पराशरादय एकाधिकं शतं केतूनां वदन्ति कथयन्ति। तथा च पराशरः—
तद्यथा—'शतमेकोत्तरं केतूनां भवति। तेषां षोडश मृत्युनिःश्वासजाः। द्वादशाऽऽदित्यसम्भवाः। दश दक्षमखविलयने रुद्रक्रोधजाः। सप्त पैतामहाः। पञ्चदश उद्दालकऋषेः पुत्राः। सप्तदश मरीचिकश्यपललाटजाः। पञ्च प्रजापतिहास्यजाः। त्रयो विभावसुजाः। धूमोद्भवश्चैकः। चतुर्दश मथ्यमानेऽमृते सोमेन सह सम्भूताः। एकस्तु ब्रह्मकोपजः' इति।

सहस्रमपरे वदन्तीति । अपरे अन्ये गर्गादयः सहस्रं केतूनां वदन्ति। तथा च गर्गः—

अतीतोदयचाराणामशुभानां च दर्शने।
आगन्तूनां सहस्रं स्याद् ग्रहाणां तन्निबोध मे।।

बहुरूपमेकमेवेति । नारदाख्यो मुनिरेकमेव केतुं प्राहोक्तवान्। तन्मते एक एव केतुस्तस्य च बहूनि रूपाणि। स एव दिव्यान्तरिक्षभौम इत्यर्थः। तथा च नारदः—

दिव्यान्तरिक्षगो भौम एकः केतुः प्रकीर्तितः।
शुभाशुभफलं लोके ददात्यस्तमयोदयैः।। इति ।।५।।

एवं मतान्तराण्युक्त्वा स्वसिद्धान्तमाह—

यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम् ।
उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ॥६॥

एक या अनेक केतु हों, इसका मुझसे कोई प्रयोजन नहीं; बल्कि उदय, अस्त, उसके स्थान, स्पर्श (ग्रह या नक्षत्र के साथ स्पर्श) और आधूम (श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण वर्णों) के द्वारा मुझे केवल फल कहना है।।६।।

फलं शुभाशुभम्। वाच्यं वक्तव्यम्। उदयास्तमयौ यथा—कस्यां दिशि उदितः कस्यामेवास्तमितः। स्थानं यथा—कस्मिन्नाकाशभागे कस्य ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा समीपे उदितोऽस्तमितश्च। स्पर्शनकम्। तेन ग्रहो नक्षत्रं वा स्पृष्टम्। आधूमनः शिखयाऽभिधूमितः। वर्णः सितरक्तपीतकृष्णादिकः। एवमादिभिस्तस्य फलं वाच्यम्। तस्माद्यद्येको बहवो यदि वा भवन्तु किमनेन का नः क्षतिरिति।।६।।

अथ केतुचारे येषां केतूनां नाम निर्दिष्टं कियन्तं कालं यावत्फलपाको भविष्यति तेषामिति फलपाकनियमार्थमाह—

यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः।
मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः ।।७।।

जितने दिन तक केतु देखने में आवे, अस्त के ४५ दिन बाद से उतने मास तक और जितने मास तक देखने में आवे, अस्त के ४५ दिन बाद से उतने वर्ष तक फल देता है।

यावन्त्यहानि यावन्ति दिनानि दृश्यो दर्शनपथं गतः। कः केतुरिति सम्बध्यते। फलपाकः। फलस्य पाकः फलपाकः। तस्य तावन्तो मासाः। तस्य केतोस्तावतो मासान् दृश्यदिनतुल्यांस्तावत्संख्यान् मासान् फलपाकं वदेद् ब्रूयात्। मासैरब्दांश्च वदेत्। **प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति**। मासैः पुनरब्दान् संवत्सरान् वदेत्। माससंख्यादर्शने मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। यावत्संख्यान् मासान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि तस्य फलपाकं वदेत्। कस्मात् कालात् प्रभृति? इत्यत आह—प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। सर्वेषां केतूनां त्विदं सामान्यम्। यावन्ति दिनानि दृश्यः केतुस्तस्माद्दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि यावन्ति निष्फलानि। तस्मात् पक्षत्रयात् परतस्तावतो मासान् फलपाकः। अथ मासा दृश्यन्ते तदा तस्मादेव दर्शनात् परतः पक्षत्रयमतिक्रम्य मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति यदुक्तं तत्सर्वत्र फलपाके। दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं यावन्निष्फलं भवति।

अत्र केचिद् व्याख्याविप्रतिपत्तिं प्रदर्शयन्ति। यदुक्तं मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। तत्र पक्षत्रयं यावद्दिनसंख्या गृह्यते। पक्षत्रयादूर्ध्वं यदा दृश्यते केतुस्तदा माससंख्यातुल्यानि वर्षाणि वदेत्।

अत्र सन्देहव्युदासार्थं गर्गोक्तं नियामकमभिलिख्यते। तथा च गर्गः—

यावन्त्यहानि दृश्यः स्यात्तावन्मासान् फलं भवेत्।
मासांस्तु यावद् दृश्येत तावतोऽब्दांश्च वैकृतम्।।
त्रिपक्षात् परतः कर्म पच्यतेऽस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः।।

तथा च वृद्धगर्गः—

यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावन्मासान् विनिर्दिशेत्।
त्रिपक्षात् परतश्चापि कर्म केतोः प्रपच्यते।।
तस्मात् कालात् परं ब्रूयात् फलमस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः।।

यद्येवं तदा द्वितीयव्याख्यानं न घटते, प्रथमव्याख्यानमेव ज्याय इति। यथा प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। दर्शनादूर्ध्वं पक्षत्रयं यावन्निष्फलम्। पक्षत्रयात् परतः फलपाकस्य कालसंख्या प्रवर्तते। यस्मादुक्तं 'सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः' इति।

यच्चोक्तं मासैरब्दांश्च वदेत् तदेकदेशेनापि मासप्रतिमासमेकद्वित्र्यादिदिनस्पर्शनेनापि माससंख्या लभ्यत एव सर्वथा किमनेनास्माकमसद्विकल्पेन। दिवसैः पक्षत्रयात् परतो मासान् वदेत् मासैस्तस्मादेव पक्षत्रयात् परतोऽब्दान् वदेत्। मासात् परतो दिनाधिक्ये दृष्टेऽनुपातवशाद्वक्तव्यम्। यदि दिनत्रिंशता वर्षं लभ्यते तदेष्टदिनैः किमिति? तथा च समाससंहितायाम्—

केचित् केतुसहस्रं शतमेकसमन्वितं वदन्त्येके।
नारदमत एकोऽयं त्रिस्थानसमुद्भवो विविधरूपः।।
दिव्यग्रहर्क्षजातास्तीव्रफला मन्दफलकरा भौमाः।
प्राणिध्वजादितुङ्गेषु चान्तरिक्षा न चान्यशुभाः।।
उदयास्तमयाधूमनसंयोगाकारमार्गदिग्यातैः ।
फलनिर्देशो दिवसैर्मासा मासैस्तु वर्षाणि।। इति।।७।।

अथ शुभस्य केतोर्लक्षणमाह—

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः ।
उदितोऽथवाभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ॥८॥

यदि छोटा, पतला, निर्मल, स्निग्ध, सरल, थोड़े ही दिनों में अदृश्य, श्वेत और उदयकाल में वृष्टि हो तो वह केतु सुभिक्ष और सुख देने वाला होता है।।८।।

एवंविधः केतुर्दृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः सुभिक्षं सौख्यमावहति करोति। कीदृशः? ह्रस्वोऽदीर्घः। तनुरस्थूलः। प्रसन्नो निर्मलः। स्निग्धः सुस्नेहः। ऋजुः स्पष्टः। अकुटिल इत्यर्थः। अचिरसंस्थितः शीघ्रमेवादर्शनं यातः। शुक्लः श्वेतवर्णः। अथवोदित एवाभिवृष्टस्तस्मिन्नुदितमात्रे यदि वृष्टिर्भवति।।८।।

अथाशुभस्य केतोर्लक्षणमाह—

उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः ।
इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥९॥

उक्त लक्षण से भिन्न लक्षण वाले केतु शुभ करने वाले नहीं होते तथा इन्द्रधनु, दो या तीन शिखा वाले केतु विशेषकर अशुभ फल देते हैं।।९।।

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्न इत्यस्मादुक्ताद्यो विपरीतरूपः केतुरुत्पन्नः स धूमकेतुः। स च न शुभकरः शुभं फलं न करोति। पापं करोतीत्यर्थः। तथेन्द्रायुधानुकारी, इन्द्रायुधं चक्रचापं तत्सदृशो न शुभकर एव। तथा द्वित्रिचूलो द्विशिखस्त्रिशिखश्च विशेषतो न शुभकर एव। तथा च समाससंहितायाम्—

अचिरस्थितोऽभिवृष्टस्त्वृजुः स्मितः स्निग्धमूर्तिरुदगुदितः।
ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः केतुर्लोकस्य भावाय।।
न शुभो विपरीतोऽतो विशेषतः शक्रचापसङ्काशः।
द्वित्रिचतुश्चूलो वा दक्षिणसंस्थश्च मृत्युकरः।। इति।।९।।

अधुना केतुसहस्रस्य लक्षणं सफलं विवक्षुस्तत्रादावेव रविजाः पञ्चविंशतिः केतवो भवन्ति तेषां लक्षणमाह—

हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः।
प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥१०॥

मुक्ताहार, मणि (चन्द्रकान्त आदि) और सुवर्ण के समान वर्ण वाले शिखासहित केतु पच्चीस प्रकार के होते हैं। ये सूर्यपुत्र केतु पूर्व और पश्चिम तरफ दृश्य होते हैं। इनमें से एक का भी यदि दर्शन हो तो राजाओं में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।।१०।।

हारो मुक्ताहारः। मणयश्चन्द्रकान्तप्रभृतयः। हेम सुवर्णम्। एतेषां सदृशरूपाः समानवर्णा ये केतवस्ते किरणाख्याः किरणसंज्ञाः। सशिखाः सचूलाः। ते च पञ्चविंशतिः। रविजाः सूर्यपुत्राः प्रागपरदिशोर्दृश्याः। प्राक् पूर्वस्यामपरस्यां पश्चिमायां दिशि दृश्यन्ते। एतेषां मध्ये एक एव दृश्यते न सर्वे युगपदिति सर्वत्रेयं परिभाषा। ते च नृपतिविरोधावहाः, नृपते राज्ञो विरोधावहा विरोधप्रदाः। अनिष्टा इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

शुद्धस्फटिकसङ्काशमृणालरजतप्रभाः।
मुक्ताहारसुवर्णाभाः सशिखाः पञ्चविंशतिः।।
किरणाख्या रवेः पुत्रा दृश्यन्ते प्राग्दिशि स्थिताः।
तथा चापरभागस्था नृपतेर्भयदाश्च ते।। इति।।१०।।

अथाग्निपुत्रांस्तावत आह—

शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः।
आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥११॥

तोता, अग्नि, बन्धुजीवक (काला पुष्प) लाख या रक्त के समान वर्ण वाले अग्नि के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु होते हैं, जो अग्निकोण में दृश्य होते हैं। इनका दर्शन होने पर अग्नि का भय होता है।।११।।

शुकः पक्षिविशेषो नीलपीतवर्णः। दहनोऽग्निः। बन्धुजीवकः पुष्पविशेषोऽतिलोहितः। लाक्षा वृक्षनिर्यासः। क्षतजं रक्तम्। तदुपमास्तत्तुल्यवर्णाः। ते च तावन्तः पञ्चविंशतिः। हुताशसुता अग्निपुत्राः। आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। ते च दृष्टाः शिखिभयदा अग्निभयप्रदा इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

नानावर्णाग्निसङ्काशा दीप्तिमन्तो विचूलिनः।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशात् सर्वे ज्यौतिषनाशनाः।।
तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः।
आग्नेय्यां दिशि दृश्यन्ते पञ्चविंशत्प्रकीर्तिताः।। इति।।११।।

अथ मृत्युसुतांस्तावत एवाऽऽह—

वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः ।
दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्ते च ।।१२।।

कुटिल शिखा वाले, रूक्ष और काले यम के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु हैं। ये दक्षिण दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से पृथ्वी पर मरी पड़ती है।।१२।।

वक्रशिखा अस्पष्टचूडास्ते च रूक्षा अस्निग्धाः। कृष्णाश्चासितास्तेऽपि तावन्तः पञ्चविंशतिरेव। ते च मृत्युसुता मृत्योः पुत्राः। याम्यायां दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते विलोक्यन्ते। ते च जनमरकावेदिनः। जनानां मरकमावेदयन्ति कथयन्ति। तथा च गर्गः—

कृष्णा रूक्षा वक्रशिखा दृश्यन्ते याम्यदिक्स्थिताः।
पञ्चविंशा मृत्युसुताः प्रजाक्षयकराः स्मृताः।। इति।।१२।।

अथ भूपुत्रा द्वाविंशतिस्तानाह—

दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः ।
क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ।।१३।।

वृत्ताकार, दर्पण के समान, शिखारहित, किरणों से युक्त, जल और तेल के समान बाईस प्रकार के भूमिपुत्र केतु हैं। ये ईशान कोण में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से दुर्भिक्ष होता है।।१३।।

दर्पणवद् वृत्तः परिवर्तुल आकारो येषां ते दर्पणवृत्ताकाराः। विशिखा विचूलाः। किरणान्विता रश्मिसंयुक्ताः। धरातनया भूमिपुत्रास्ते च द्वाविंशतिरैशान्यां पूर्वोत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। अम्बुतैलनिभाः। अम्बु जलम्। तैलं प्रसिद्धम्। तन्निभाः। जलस्य तैलस्य वा सदृश्यः कान्तयः। एते दृष्टा क्षुद्भयदाः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददति। तथा च गर्गः—

समस्तवृत्ता विशिखा रश्मिभिः परिवारिताः।
अम्बुतैलप्रतीकाशा द्वाविंशद् भूसुताः स्मृताः।।
ऐशान्यां दिशि दृश्यन्ते दुर्भिक्षभयदास्तु ते।। इति।।१३।।

अथ चन्द्रसुतास्त्रयस्तानाह—

शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः।
उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः ॥१४॥

चन्द्रकिरण, चाँदी, हिम, कुमुद या कुन्दपुष्प के समान वर्ण वाले तीन प्रकार के चन्द्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने पर सुभिक्ष होता है।

शशिकिरणाश्चन्द्ररश्मयः। रजतं रूप्यम्। हिमं तुषारम्। कुमुदकुन्दकुसुमे पुष्पविशेषे अतिशुक्लवर्णे। तदुपमास्तत्तुल्यवर्णास्त्रयः शिखिनः केतवश्चन्द्रस्य सुताः पुत्राः। उत्तरतः सौम्यायां दिशि दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। ते च सुभिक्षावहाः सुभिक्षमावहन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

चन्द्ररश्मिसवर्णाभा हिमकुन्देन्दुसप्रभाः।
त्रयस्ते शशिनः पुत्रा सौम्याशास्थाः शुभावहाः।। इति।।१४।।

अथ ब्रह्मदण्डाख्यस्य लक्षणमाह—

ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः।
अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥१५॥

ब्रह्मा का पुत्र, तीन शिखा वाला, तीन वर्णों से युक्त एक केतु है। यह सभी दिशाओं में उदित होता है। जब इसका दर्शन होता है, उस समय सभी प्रदेशों का नाश होता है।

ब्रह्मसुतो ब्रह्मणः पुत्र एक एव। स च त्रिशिखस्त्रिचूडः। वर्णैः सितादिभिस्त्रिभिरुपलक्षितास्ताश्च शिखाः। स तु ब्रह्मदण्डाख्यो ब्रह्मदण्डसंज्ञो विज्ञेयो विज्ञातव्यः। अनियतदिक्सम्प्रभवः। अनियतायामनिश्चितायां दिशि सम्प्रभव उत्पत्तिर्यस्य। सर्वासु दिक्षु दृश्यत इत्यर्थः। स तु युगान्तकरो युगस्यान्तं करोति। सर्वत्र क्षयकर इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

एको ब्रह्मसुतः क्रूरस्त्रिवर्णस्त्रिशिखान्वितः।
सर्वास्वाशासु दृश्यः स्याद् ब्रह्मदण्डः क्षयावहः।। इति।।१५।।

एकाधिकं शतं कथितमन्यानि नवशतान्येकोनानि कथयामीत्याह—

शतमभिहितमेकसमेतमेतदेकेन विरहितान्यस्मात्।
कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥१६॥

इस तरह एक सौ एक केतुओं के लक्षण कहे गये हैं। फिर आठ सौ निन्यानबे तरह के उनके स्पष्ट लक्षण कहते हैं।।१६।।

एतदेकसमेतमेकेनाधिकं केतूनां शतमभिहितमुक्तम्। अस्मादेकाधिकाच्छतात् परत एकेन विरहितान्येकेनोनानि नव शतानि केतूनां स्पष्टैः स्फुटैर्लक्षणैश्चिह्नैः कथयिष्ये वक्ष्ये।।१६।।

अथ शुक्रपुत्राश्चतुरशीतिसंख्यास्तांश्चाह—

सौम्यैशान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः ।
विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥१७॥

विस्तीर्ण, शुक्ल और निर्मल शरीर वाले चौरासी प्रकार के शुक्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर और ईशान कोण में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से तीव्र (अशुभ) फल होता है।

शुक्रसुता भार्गवपुत्राश्चतुरशीत्याख्याः। चतुरशीतिसंज्ञाश्चतुरशीतिसंख्याश्च। सौम्यैशान्योरुदयं यान्ति। सौम्या उत्तरा। ऐशानी पूर्वोत्तरा। तत उदयं यान्ति गच्छन्ति। ते च विपुलसिततारका विपुला विस्तीर्णाः सिताः शुक्लास्तारका येषाम्। स्निग्धा निर्मलदेहाः। ते तीव्रफला भवन्ति। अनिष्टफला इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

स्थूलैकतारकाः श्वेताः स्नेहवन्तश्च सप्रभाः।
आर्चिष्मन्तः प्रसन्नाश्च तीव्रेण वपुषान्विताः।।
एते विसर्पका नाम शुक्रपुत्राः पुरोदयाः।
अशीतिश्चतुरश्चैव लोकक्षयकराः स्मृताः।। इति।।१७।।

अथ षष्टिः शनैश्चरपुत्रास्तानाह—

स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः ।
अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः ॥१८॥

निर्मल, कान्ति से युक्त, दो शिखा वाले शनैश्चर के पुत्र साठ प्रकार के केतु हैं। ये कनकसंज्ञक हैं और सभी दिशाओं में उदित होते हैं। इनके दर्शन होने से बहुत अशुभ फल होते हैं।।१८।।

स्निग्धा निर्मलाः। प्रभासमेताः कान्त्यन्विता दीप्तिमन्तः। द्विशिखा द्विचूडास्ते च षष्टिसंख्याः शनैश्चराङ्गरुहाः शनैश्चरपुत्राः। एते कनकसंज्ञाः कनककेतवः। सर्वत्र सर्वासु दिक्षु दृश्याः। अतिकष्टफला अत्यशुभफलाश्च ते। तथा च गर्गः—

सुस्निग्धा रश्मिसंयुक्ता द्विशिखाः सप्ततारकाः।
षष्टिस्ते कनका घोराः शनैश्चरसुता ग्रहाः।। इति।।१८।।

अथ गुरुसुताः पञ्चषष्टिस्तानाह—

विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः ।
षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः ॥१९॥

श्वेत, एक तारे वाले, शिखारहित, निर्मल शरीर वाले पैंसठ प्रकार के बृहस्पति-पुत्र केतु हैं। ये विकचसंज्ञक और दक्षिण दिशा में उदित होते हैं एवं इनका दर्शन होने से पाप (अशुभ) फल होता है।।१९।।

षष्टिः पञ्चभिरधिका पञ्चषष्टिः केतवो विकचा नाम विकचसंज्ञा गुरुसुता बृहस्पति-

पुत्राः। ते च सितैकताराः। सितः श्वेत एकस्तारको येषाम्। शिखापरित्यक्ताश्चूडारहिताः। ते च स्निग्धा निर्मलदेहा याम्याश्रिता दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफला अनिष्टफला इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

शुक्लाः स्निग्धाः प्रसन्नाश्च महारूपाः प्रभान्विताः।
एकतारा वपुष्मन्तो विशिखा रश्मिभिर्वृताः।।
एते बृहस्पतेः पुत्राः प्रायशो दक्षिणाश्रयाः।
नामतो विकचा घोराः पञ्चषष्टिर्भयावहाः।। इति।।१९।।

अथैकपञ्चाशद् बुधपुत्रास्तानाह—

नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः।
बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥२०॥

अस्पष्ट, सूक्ष्म शरीर वाले, लम्बे, श्वेत, सभी दिशाओं में उदित होने वाले, तस्कर-संज्ञक बुध के पुत्र इक्यावन केतु हैं। इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२०।।

तस्करसंज्ञास्तस्करनामान एकपञ्चाशत्केतवो बुधजाः सौम्यपुत्राः। नातिव्यक्ता नातिस्फुटाः। सूक्ष्मा अल्पदेहाः। दीर्घा आयामिनः। शुक्लाः श्वेतवर्णाः। यथेष्टदिक्प्रभवा यथेष्टायां दिशि प्रभव उत्पत्तिर्येषाम्। सर्वासु दिक्षु दृश्यन्त इत्यर्थः। ते च पापफला अनिष्टफलाः। तथा च गर्गः—

अरुन्धतिसमा रूक्षाः केचिदव्यक्ततारकाः।
सपाण्डुवर्णाः श्वेताभाः सूक्ष्मा रश्मिभिरावृताः।।
एते बुधात्मजा ज्ञेयास्तस्कराख्या भयावहाः।
एकाधिकास्ते पञ्चाशदथोत्पथचरा ग्रहाः।। इति।।२०।।

अथ षष्टिर्भौमपुत्रास्तानाह—

क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः।
नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिताः पापाः ॥२१॥

रक्त या अग्नि के समान कान्ति वाले, तीन शिखा और तीन तारे वाले साठ प्रकार के मङ्गल-पुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं और इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२१।।

कौङ्कुमनामानः षष्टिः केतवः कुजात्मजा अङ्गारकपुत्राः। क्षतजानलानुरूपाः। क्षतजं रक्तमनलोऽग्निस्तदनुरूपास्तत्सदृशाः। अतिलोहिता इत्यर्थः। त्रिचूलतारास्त्रिशिखास्त्रितारका येषाम्। ते च सौम्याशासंस्थिता उत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफलाश्च। तथा च गर्गः—

त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्ता लोहितरश्मयः।
प्रायशश्चोत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते।।

लोहिताङ्गात्मजा ज्ञेया ग्रहाः षष्टिः समासतः।
नामतः कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां संग्रामकारकाः।। इति।।२१।।

अथ त्रयस्त्रिंशद्राहुपुत्रास्तानाह—

त्रिंशत्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम्॥२२॥

राहु के पुत्र तामस-कीलक संज्ञक तैंतीस प्रकार के केतु हैं। ये सूर्य-चन्द्रमण्डल में दिखाई देते हैं। इनका फल सूर्यचाराध्याय में 'तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवः' इत्यादि पद्य में कहा गया है।।२२।।

त्रिंशत्यधिकास्त्रयस्त्रिंशत्केतवो राहोः सुताः स्वर्भानुपुत्राः। ते च नामतस्तामसकीलका इति ख्याताः प्रसिद्धाः। ते च रविशशिगा अर्कचन्द्रमण्डलस्था दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। तेषां च फलं शुभाशुभमर्कचारोक्तं सूर्यचारे कथितम्—'तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केवतः' इति। तथा च गर्गः—

कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः सङ्कुलाः कृष्णरश्मयः।
राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत् कीलकाश्चातिदारुणाः।।
रविमण्डलगाश्चैते दृश्यन्ते चन्द्रगास्तथा।।

तथा च पराशरः—

अपर्वण्येव दृश्यन्ते ह्यङ्गिरःकाककीलकाः।
रवेरेवाङ्गिरा मध्ये ह्युभयोः काककीलकौ।।
अङ्गिराः सरथो धन्वी दृश्यते पुरुषाकृतिः।
काकः कालाकृतिर्घोरस्त्रिकोणो वापि लक्ष्यते।।
मण्डलं कीलके मध्ये मण्डलस्यासितो ग्रहः।
महानृपविरोधाय यस्यर्क्षे तस्य मृत्यवे।। इति।।२२।।

अथ विंशत्यधिकं शतमग्निपुत्राणामाह—

विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम्।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम्॥२३॥

अतिशय जाज्वल्यमान मूर्ति वाले अग्नि के पुत्र एक सौ बीस प्रकार के केतु हैं। ये विश्वरूपसंज्ञक और बड़े भयङ्कर अग्निभय देने वाले होते हैं।।२३।।

अन्यदपरं शतं विंशत्याधिकं केतूनामग्नेरग्निपुत्राणां विश्वरूपसंज्ञानां विश्वरूपनाम्नाम्। कीदृशानाम्? ज्वालामालाकुलतनूनां ज्वालामालाभिराकुला व्याप्तास्तनवो मूर्तयो येषाम्। तथा तीव्रानलभयदानां तीव्रं घोरमनलभयमग्निभीतिं ये ददति। तथा च गर्गः—

नानावर्णा हुताशाभा दीप्तिमन्तो विचूलिनः।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशे सर्वे ज्योतिर्विनाशनाः।।

तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिन:।
विंशं ग्रहशतं घोरं विश्वरूपेति नामत:।। इति।।२३।।

अथ सप्तसप्ततिर्वायुपुत्रास्तानाह—

श्यामारुणा विताराश्चामररूपा विकीर्णदीधितय: ।
अरुणाख्या वायो: सप्तसप्तति: पापदा: परुषा: ॥२४॥

श्याम वर्ण लेते हुये लोहित वर्ण, ताराओं से रहित, चामर के समान, विस्तृत किरण और रूक्ष सतहत्तर वायुपुत्र केतु होते हैं। ये सभी अरुणसंज्ञक और पाप फल देने वाले होते हैं।।२४।।

अरुणाख्या अरुणसंज्ञा: सप्तसप्तति: केतवो वायो: सुता: अनिलपुत्रा:। श्यामारुणा: श्यामलोहितवर्णा:। वितारास्तारकवर्जिता:। चामररूपा बालव्यजनाकृतय:। विकीर्णदीधितयो व्याक्षिप्तरश्मय:। परुषा रूक्षा:। ते च पापदा दुष्टफलदा:। अत्र येषां दिङ्नियमो नास्ति तेऽनियतदर्शना: सर्वास्वपि दिक्षु दृश्यन्ते। तथा च गर्ग:—

अताररूपप्रतिमा धूमरक्तसवर्णिन:।
वातरूपा इवाभान्ति शुष्कविस्तीर्णरश्मय:।।
सप्तति: सप्त चैवान्ये वायुपुत्रान् प्रचक्षते।
लोकविध्वंसना रूक्षा नामतस्त्वरुणा ग्रहा:।। इति।।२४।।

अथाष्टौ प्रजापतिसुता द्वे च शते चतुरधिके ब्रह्मण: पुत्रास्तानाह—

तारापुञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ ।
द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्ताना: ॥२५॥

तारापुञ्ज के समान प्रजापति के पुत्र आठ प्रकार के केतु हैं। ये गणकसंज्ञक और अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। साथ ही चतुर्भुजाकार ब्रह्मा के पुत्र चतुरस्रसंज्ञक एक सौ चार केतु हैं। ये भी अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। ये दोनों केतु सभी दिशाओं में उदित होते हैं।।२५।।

अष्टौ केतवो गणका नाम प्रजापते: सुता: पुत्रा:। ते च तारापुञ्जनिकाशास्ताराणां नक्षत्राणां पुञ्जा: समूहास्तदाकारा:। ते च पापफला अशुभफलदायिन:। तथा द्वे च शते चतुरधिके केतूनां च ते चतुरस्राश्चतुरस्रसंज्ञाश्चतुरस्राकारा आकृतयश्च। ते च ब्रह्मसन्ताना ब्रह्मण: पुत्रा: पापफला एवं ज्ञेया:। ते चानियतदिक्सम्प्रभवा:। तथा च गर्ग:—

तारापुञ्जप्रतीकाशास्तारामण्डलसंस्थिता: ।
प्राजापत्या ग्रहास्त्वष्टौ गणका भयवेदिन:।।
त्र्यस्रा वा चतुरस्रा वा सशिखा: श्वेतरश्मय:।।
द्वे शते चतुरश्चैव ब्रह्मजा भयदाश्च ते।। इति।।२५।।

अथ द्वात्रिंशद्वरुणपुत्रानाह—

कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंशगुल्मसंस्थानाः ।
शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥२६॥

वंश और गुल्म (लता) के समान आकृति वाले, वरुण के पुत्र, कङ्कसंज्ञक और चन्द्र के समान कान्ति वाले बत्तीस प्रकार के केतु हैं। ये सभी दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२६।।

द्वात्रिंशत्केतवः कङ्कनामानः। ते च वरुणजा यादसाम्पतेः पुत्राः। वंशगुल्मसंस्थाना वंशगुल्मवत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। गुल्म एकमूलजो लतासमूहः। शशिवच्चन्द्रवत्प्रभया कान्त्या समेताः संयुक्ताः। ते च तीव्रफलाः कष्टफलाः। प्रोक्ताः कथिताः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः—

वंशगुल्मप्रतीकाशा महान्तः पूर्णरश्मयः।
काकतुण्डनिभैश्चापि रश्मिभिः केचिदावृताः।।
मयूखानुत्सृजन्तीव सुस्निग्धाः सौम्यदर्शनाः।
एते कष्टफलाः प्रोक्ता द्वात्रिंशद्वारुणा ग्रहाः।। इति।।२६।।

अथ षण्णवतिकालपुत्रानाह—

षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञाः कबन्धसंस्थानाः ।
पुण्ड्राभयप्रदाः स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिनः ॥२७॥

काल के पुत्र, कबन्धसंज्ञक, छिन्न शिर वाले पुरुष के समान आकृति वाले और अस्पष्ट तारा वाले छियानबे प्रकार के केतु हैं। ये समस्त दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से पुण्ड्र देश में शुभ एवं अन्य देश में अशुभ फल होता है।।२७।।

कालसुताः कालपुत्राः कबन्धसंज्ञाः कबन्धनामानः। षण्णवतिः केतवः। ते च कबन्धसंस्थानाः। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषस्तद्वत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। ते च विरूपताराः। विरूपा अस्फुटास्तारका येषाम्। ते शिखिनः केतवः पुण्ड्राभयप्रदाः। पुण्ड्रा नाम जनपदास्तेषामभयप्रदाः श्रेयस्कराः। स्युर्भवेयुः। अन्यत्र पुनर्भयदाः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः—

तारापुञ्जविरूपाश्च कबन्धाकृतिसंस्थिताः।
पीतारुणसवर्णाश्च भस्मकर्पूररश्मयः।।
कालपुत्राः कबन्धाश्च नवतिः षट् च ते स्मृताः।
लोके मृत्युकरा घोराः पुण्ड्राणामभयप्रदाः।। इति।।२७।।

अथ नव विदिक्पुत्रान् सर्वेषां च संख्यानमन्येषां विशेषं च वक्ष्यामीत्याह—

शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः ।
एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥२८॥

श्वेत वर्ण, विस्तृत और एक तारा वाले, विदिशा के पुत्र नव प्रकार के केतु हैं। ये विदिशा में उत्पन्न होते हैं तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है। इस तरह कुल एक सहस्र केतु हैं। अब आगे इनकी विशेषता कहते हैं।।२८।।

विदिशां दिगन्तरालानां नव समुत्पन्ना विदिक्पुत्रा इत्यर्थ:। किम्भूता: शुक्ल-विपुलैकतारा:। शुक्ल: श्वेतवर्णो विपुलो विस्तीर्ण एकस्तारको येषाम्। ते च विदिक्ष्वेव दृश्यन्ते। दृष्टाश्च पापफला:। तथा च गर्ग:—

शुक्लैकतारा विपुला विदिक्पुत्रा नव ग्रहा:।
विदिक्षु संस्थितास्ते च दृश्यन्ते भयदायका:।।

एवं केतुसहस्रमिति। एवं केतूनां सहस्रं कथितमुक्तम्। अतोऽनन्तरमेतेषामेव केतूनां विशेषं विशेषलक्षणं वक्ष्ये कथयिष्ये।।२८।।

एषां मध्यात् केचिद् दृश्यन्ते न सर्व एव। तत्र ये दृश्यन्ते तेषां लक्षणं वक्तुकाम-स्तत्रादावेव वसाकेतुलक्षणमाह—

उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतु:।
सद्य: करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते॥२९॥

उत्तर तरफ विस्तृत, स्थूल, निर्मल और पश्चिम दिशा में उदित होने वाला वसा नामक केतु है। इसके उदयकाल से ही पृथ्वी पर मरी पड़ती है तथा उत्तम सुभिक्ष होता है।।२९।।

उदगायत उत्तरस्यां दिशि आयतो दीर्घ:। महानतिस्थूल:। स्निग्धमूर्तिर्निर्मलतनु:। अपरोदयी पश्चिमायां दिशि उदयं याति। स च नाम्ना वसाकेतुर्दृष्ट: सद्य एव तस्मिन्नेवाहनि मरकं करोति। उत्तममपि प्रधानं सुभिक्षं च कुरुते।।२९।।

अथास्थिकेतो: शस्त्राख्यस्य च लक्षणमाह—

तल्लक्षणोऽस्थिकेतु: स तु रूक्ष: क्षुद्भयावह: प्रोक्त:।
स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय॥३०॥

पूर्वकथित वसा केतु की तरह उदगायतादि लक्षणों से युत और रूक्ष अस्थि-केतु है। यह दुर्भिक्ष करने वाला होता है तथा वसा केतु के लक्षणों से युत, निर्मल और पूर्व दिशा में उदित होने वाला शस्त्र-केतु है। यह शस्त्रयुद्ध कराने वाला और मनुष्यों को मारने वाला होता है।।३०।।

तदित्यनेन वसाकेतो: परामर्श:। अस्थिकेतुर्नाम केतु: स तल्लक्षण:। तल्लक्षणै-र्वसाकेतो: सदृशैर्युक्त:—'उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी' इति। किन्त्वयं विशेष:—स तु रूक्षो भवति स्नेहरहित:। दृष्टश्च क्षुद्भयावहो दुर्भिक्षभयप्रद: प्रोक्त: कथित:। **स्निग्ध-स्तादृगिति**। तादृग् वसाकेतुसदृश: स्निग्धो निर्मलदेह: प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि दृश्यते। स तु शस्त्राख्य: शस्त्रकेतुसंज्ञो दृष्टो डमरमरकाय भवति। डमरं शस्त्रकलहं मरकं च करोति। तथा च पराशर:—

'एते षड्विंशतिरुदयैः फलमावेदयन्ति। तान् नामतो रूपतः फलतः कालतोऽभिधास्यामः। तत्र भार्गवास्त्रय उदयं यान्ति। एकैकशो वसास्थिशस्त्रकेतवः। तत्र वसाकेतुः स्निग्धो महानुदगायतशिखस्त्रिंशद्वर्षशतं प्रोष्य सम्प्लवे युगे पश्चिमोदितः सद्यो मरकफलः सौभिक्षकरस्तु। रूक्षोऽस्थिकेतुरसौ भिक्षुकतुल्यप्रवासकालफलः। पूर्वेण स्निग्ध एव तु शस्त्रकेतुः। राजविरोधमरकफलः समो रूक्षः'।।३०।।

अथ कपालकेतोर्लक्षणमाह—

दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः।
प्राङ्नभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥३१॥

धूम्र वर्ण की किरणों वाला, अमावास्या में पूर्व तरफ उदित होने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में विचरण करने वाला कपाल-केतु है। इसका दर्शन होने से पृथ्वी पर दुर्भिक्ष, मरकी, अवृष्टि और रोग उत्पन्न होता है।।३१।।

कपालकेतुर्नाम केतुः स त्वमावास्यायां कृष्णपञ्चदश्यां प्राक् पूर्वस्यां दिशि दृश्य उदयं याति। किम्भूतः? सधूम्ररश्मिशिखः। सधूम्रा रश्मिशिखा यस्य। किरणकान्तिर्धूम्रवर्णेत्यर्थः। नभसोऽर्द्धविचारी। नभस आकाशस्यार्द्धं यावद्विचरति गच्छति। स च क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः। क्षुद् दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयम्। अवृष्टिं रोगांश्च करोति। तथा च पराशरः—

'अथादित्यजानां कपालकेतुरुदयतेऽमावस्यायां पूर्वस्यां दिशि सधूम्रार्चिशिखो नभसोऽर्द्धचरो दृश्यते। पञ्चविंशवर्षशतं प्रोष्य त्रींश्च पक्षानमृतजस्य कुमुदकेतोश्चारान्ते स दृष्ट एव दुर्भिक्षानावृष्टिव्याधिभयमरणोपद्रवान् सृजति। जगति यावतो दिवसान् दृश्यते तावन्मासान् मासैर्वत्सरान् पञ्चप्रस्थं च शारदधान्यार्घं कृत्वा प्रजानामपयुङ्क्ते'।।३१।।

तथा रौद्रकेतुमाह—

प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः।
नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः ॥३२॥

पूर्व और अग्निकोण में उदित होने वाला शूलाग्र (तीन शिखा वाला), कपिश, रूक्ष या ताम्र के समान किरण वाला और आकाश के तीन भाग में गमन करने वाला रौद्र-केतु है। यह कपाल केतु की तरह फल देता है।।३२।।

रौद्रनामा केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि वैश्वानरमार्गे दहनवीथ्यां दृश्यते। वैश्वानरसंज्ञितमार्गे पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः समीप इत्यर्थः। कीदृशः? शूलाग्रः। शूलाकृतिरग्रं यस्य केतोः स शूलाग्रः। त्रिशिख इत्यर्थः। तस्यैव विशेषणं श्यावरूक्षताम्रार्चिः। रूक्षमस्निग्धमर्चिस्तेजः, श्यावरूक्षं ताम्रं चार्चिस्तेजो यस्य स श्यावरूक्षताम्रार्चिः। नभसस्त्रिभागगामी नभस आकाशस्य त्रिभागगमनशीलः। स च कपालतुल्यफलः कपालकेतोः समानफलः। एतदुक्तं भवति—क्षुन्मरकावृष्टिरोगकर इति। आचार्येण शुक्रचारे वैश्वानरमार्गः प्रदर्शित एव 'अषाढाद्वयं दहना' इति। तथा च पराशरः—

'अथ दक्षयज्ञरुद्रक्रोधोद्भवः कलिकेतुस्त्रीणि वर्षशतानि नव च मासान् प्रोष्योदयते पूर्वेण वैश्वानरमार्गे ह्यमृतजस्य मणिकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षताम्रारुणां शूलाकारसदृशीं शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागचारी स शस्त्रभयरोगदुर्भिक्षाऽनावृष्टिमरकैर्यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि त्रिभागशेषां प्रजां कृत्वार्घं च शारदधान्यमाढकमस्तं व्रजति।' तथा च वृद्धगर्ग आह—

ज्येष्ठामूलमनूराधा या वीथी सम्प्रकीर्तिता।
तां च वीथीं समारुह्य केतुश्चेत् क्रीडते भृशम्।।
दक्षिणाभिनतां कृत्वा शिखां घोरां भयङ्करीम्।
शूलाग्रसदृशीं तीक्ष्णां श्यावताम्रारुणप्रभाम्।।
पूर्वेण चोदितश्चैष नक्षत्राण्युपधूमयेत्।
घोरं प्रजासु सृजति फलं मासे त्रयोदशे।।
त्रिभागं नभसो गत्वा ततो गच्छत्यदर्शनम्।
यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावद्वर्षाणि तद्भयम्।।
शस्त्राग्निभयरोगैश्च दुर्भिक्षमरणैर्हताः।
पूर्यमाणाः प्रजा सर्वा विद्रवन्ति दिशो दश।। इति।।३२।।

अथ चलकेतोर्लक्षणमाह—

अपरस्यां चलकेतुः शिखया याम्याग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथा यथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति ।।३३।।

सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः।
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति ।।३४।।

हन्यात् प्रयागकूलाद्यावदवन्तीं च पुष्करारण्यम्।
उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम् ।।३५।।

अन्यानपि च स देशान् क्वचित् क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः।
दश मासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः ।।३६।।

पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, दक्षिण दिशा में एक अङ्गुल उच्छ्रित शिखा वाला, जैसे-जैसे उत्तर तरफ जाय वैसे-वैसे दीर्घ होने वाला, सप्तर्षि, ध्रुवतारा और अभिजित् नक्षत्र को स्पर्श करके लौटने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में जाकर दक्षिण दिशा में अस्त होने वाला चल केतु है। इसका दर्शन होने से प्रयाग से लेकर अवन्ती तक के देश, पुष्करारण्य नामक स्थान और उत्तर दिशा में देविका नदी तक के देश का नाश होता है; लेकिन विशेषकर तथा मध्य देश का नाश होता है। साथ ही अन्य देशों का भी रोग और दुर्भिक्ष के द्वारा नाश होता है। इसका फल दर्शनकाल से लेकर दश मास तक होता है और किसी का मत है कि दर्शनकाल से लेकर अट्ठारह मासपर्य्यन्त फल प्राप्त होता है।।३३-३६।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि चलकेतुर्नाम दृश्यते। स च कीदृशः? शिखया याम्याग्रया अङ्गुलोच्छ्रितयोपलक्षितः। शिखा चूडा तया याम्याग्रया याम्यायां दक्षिणस्यां दिश्यग्रं यस्याः। तथा अङ्गुलोच्छ्रितया अङ्गुलप्रमाणोच्चया। यथा यथा येन येन प्रकारेणोदगुत्तरां दिशं गच्छेद्याति तथा तथा तेन तेन प्रकारेण दैर्घ्यं दीर्घतामायाति प्राप्नोति।

सप्तमुनीनिति। सप्तमुनीन् वसिष्ठादीन् संस्पृश्य तथा ध्रुवं ध्रुवतारकमभिजितं च नक्षत्रं संस्पृश्य ततः प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागतः। नभस आकाशस्यार्द्धमात्रमित्वा गत्वा प्राप्य याम्येन दक्षिणस्यां दिशि अस्तमदर्शनं समुपयाति गच्छति।

हन्यात् प्रयागकूलादिति। स एव चलकेतुः प्रयागकूलादारभ्य यावदवन्तीं चोज्जयिनीं तथा पुष्करारण्यं नाम स्थानं तावद्धन्यान्नाशयेत्। उदगपि चोत्तरस्यां दिश्यपि च यावद्देविकां नदीं तावद्धन्यात्। मध्यदेशाख्यं मध्यदेशं भूयिष्ठमतिशयेन हन्यात्।

अन्यानपि च स देशानिति। स चलकेतुरन्यानपरान् देशानपि रोगदुर्भिक्षैः क्वचित् क्वचिद्धन्ति नाशयति न सर्वत्र। अस्य केतोर्दश मासान् यावत्फलपाकः। दर्शनात् त्रिपक्षात्परतो यावद्दशमासांस्तावदशुभं फलं ददाति। कैश्चिदन्यैर्गर्गादिभिरष्टादश मासान् यावत् फलपाकः प्रोक्तं कथितः। तथा च पराशरः—

'अथ पैतामहश्चलकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्योदितः पश्चिमेनाङ्गुलिपर्वमात्रां शिखां दक्षिणाभिगतां कृत्वा जलकेतोश्चारान्ते नभसस्त्रिभागमनुचरन् यथा यथा चोत्तरेण व्रजति तथा तथा शूलाग्राकारां शिखां दर्शयन् ब्रह्मनक्षत्रमुपसृत्य मनाग् ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन् स्पृशन् नभसोऽर्द्धमात्रं दक्षिणमनुक्रम्यास्तं व्रजति। स स्वर्गे दारुणकर्मा। स्वर्गप्राप्तत्वादेव च कृत्स्नमभिहिनस्ति लोकम्। अपि च भूमिं कम्पयित्वा दश मासान्मध्यदेशे भूयिष्ठं जनपदमनवशेषं कुरुते। तेष्वपि क्वचित् क्वचिच्छस्त्रदुर्भिक्षव्याधिमरकभयैः क्लिश्नात्यष्टादश मासानि'ति। तथा च गर्गः—

क्षुच्छस्त्रमरकव्याधिभयैः सम्पीडयेत् प्रजाः।
मासान् दश तथाष्टौ च चलकेतुः सुदारुणः।। इति।।३३-३६।।

अथ श्वेतकेतुलक्षणमाह—

प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यश्च।
क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥३७॥

स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः।
दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥३८॥

श्वेत-केतु पूर्व दिशा में अर्द्धरात्रि के समय दृश्य होने वाला और दक्षिणस्थित शिखा वाला है तथा अन्य 'क' संज्ञक केतु गाड़ी के जुए के समान आकृति वाला और पश्चिम दिशा में अस्त होने वाला है। यदि निर्मल होकर ये दोनों सात दिन तक दिखाई दें तो सुभिक्ष और

कल्याण करते हैं। यदि सात दिन से अधिक कनामक केतु दिखाई दे तो दश वर्ष तक शस्त्र के कोप से मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३७-३८।।

श्वेतकेतुर्नाम केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि अर्द्धरात्रदृश्यः अर्द्धरात्रकाले दृश्यते। याम्याग्रो दक्षिणदिक्शिखः। अन्यश्च द्वितीयः क इति कनामा केतुः। अपरे पश्चिमायां दृश्यते। तौ च द्वावपि युगपत्तुल्यकालं सप्तदिनदृश्यौ सप्तदिनानि दृश्येते।

तौ च द्वावपि स्निग्धावतिनिर्मलौ दृष्टौ च सुभिक्षशिवदौ सुभिक्षं शिवं श्रेयश्च ददतः। अथ यः कनामा स च यदि सप्तभ्यो दिनेभ्योऽधिकं दृश्यते तदा दशवर्षाणि शस्त्रप्रकोपकृतं संग्रामजमुपतापमुपद्रवं जनयत्युत्पादयति। तथा च पराशरः—

'अथौद्दालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्य भटकेतोश्चारान्ते पूर्वस्यां दिशि दक्षिणाभिनतशिखोऽर्द्धरात्रकाले दृश्यः। तेनैव सह द्वितीयः कः प्रजापतिपुत्रः पश्चिमेन ग्रहकेतोर्यूपसंस्थायी युगपद् दृश्यते। तावुभौ सप्तरात्रदृश्यौ दशवर्षाणि प्रजाः पीड्यन्ते। कः प्रजापतिपुत्रो यद्यधिकं दृश्यते तदा दारुणतरं प्रजानां शस्त्रकोपं कुर्यात्तथैव स्नेहवर्णयुक्तौ क्षेमारोग्यसुभिक्षदौ भवतः'।।३७-३८।।

अथ श्वेतलक्षणमाह—

श्वेत इति जटाकारो रूक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः।
विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते ॥३९॥

श्वेत नामक केतु जटा के सदृश, रूक्ष, कपिश और आकाश के तीन भाग तक जाकर बायीं तरफ से होकर लौट आता है। इसका दर्शन होने से प्रजा का तृतीयांश मात्र शेष रहता है अर्थात् दो भाग नष्ट हो जाते हैं।।३९।।

श्वेतनामा केतुर्जटाकारो जटासदृशः। रूक्षः परुषः। श्यावः कृष्णवर्णः। वियत्त्रिभागगतो वियत्याकाशे त्रिभागं यावद् गच्छति ततोऽपसव्यमप्रदक्षिणं वामभागे विनिवर्तते विनिवृत्तिं करोति। त्रिभागशेषास्तृतीयांशावशेषाः प्रजाः कुरुते। द्वौ भागौ क्षयं नयतीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'अथ काश्यपः श्वेतकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्यैन्द्रांशः सहजस्य पद्मकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षो नभसस्त्रिभागमाक्रम्याग्रसव्यं निवृत्त्योर्ध्वं प्रदक्षिणजटाकारशिखः। स यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि सुभिक्षमावहति। मध्यदेश आर्यगणानामौदीच्यैश्च भूयिष्ठं बहुशस्त्रिभागशेषां प्रजामवशेषयति।।३९।।

अथ रश्मिकेतोर्लक्षणमाह—

आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः।
ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते ॥४०॥

धूम्र वर्ण की शिखा वाला और कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होने पर दिखाई देने वाला

रश्मि केतु है। इसका दर्शन होने से यह श्वेत की तरह फल (त्रिभाग शेष प्रजा) करता है।।४०।।

आधूम्रवर्णया शिखयोपलक्षितस्तथा कृत्तिकासंस्थः समीपे दर्शनमुदयमायाति गच्छति स रश्मिकेतुर्नाम केतुर्ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च श्वेतसमानं श्वेतकेतुसदृशं फलं धत्ते ददाति। त्रिभागशेषा प्रजाः कुरुत इत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'अथ रश्मिकेतुर्विभावसुजः प्रोष्य वर्षशतमावर्तकेतोश्चारान्ते उदितः कृत्तिकासु धूम्रशिखः श्वेतकेतोः सदृशफलः'।।४०।।

अथ ध्रुवकेतोर्लक्षणमाह—

ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक्।
दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ॥४१॥

सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम्।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति ॥४२॥

अनिश्चित गमन, प्रमाण, वर्ण और आकृति वाला, सभी दिशाओं में दिखाई देने वाला, दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम भेद से तीन प्रकार का होने वाला, निर्मल तथा शुभ फल देने वाला ध्रुव केतु है। यह ध्रुवकेतु नाश होने वाले राजाओं के सेनाङ्ग (अश्व, लगाम आदि) में, नाश होने वाले देशों के गृह, वृक्ष और पर्वत में तथा नाश होने वाले गृहस्थों के उपकरण द्रव्य में दिखाई देता है।।४१-४२।।

ध्रुवकेतुर्नाम केतुः स त्वनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिः। अनियता अनिश्चिता गतिर्गमनम्। प्रमाणं स्थूलसूक्ष्ममध्यभावम्। वर्णः शुक्लकृष्णादिः। आकृतिराकारो यस्य स तथाभूतः। स च विष्वक् समन्ततो भवति। सर्वासु दिक्ष्वित्यर्थः। स च दिव्यान्तरिक्षभौमस्त्रिप्रकारो भवति। केचिद्विश्वे नानाकारो भवतीतीच्छन्ति। स च स्निग्धो निर्मलशरीरः। इष्टफलः शुभफलो भवति।

एष चैवंविधानां विनाशानां मुमूर्षूणां दर्शनमुदयं याति गच्छति। नृपाणां राज्ञां विनाशिनां सेनाङ्गेषु अश्वोपकरणेषु खलीनपर्याणादिषु दर्शनं याति। देशानां विनाशिनां गृहतरुशैलेषु। गृहेषु वेश्मसु। तरुषु वृक्षेषु। शैलेषु पर्वतेषु च दृश्यते। तथा गृहिणां गृहस्थानामुपस्करेषु भाण्डेषु दर्वीशूर्पमार्जन्यादिषु विनाशिनामेव दर्शनं याति। तथा च पराशरः—

अथानियतदिक्कालरूपवर्णप्रमाणसंस्थानो ध्रुवकेतुः पराभवमिष्यतां देशानां राज्ञां जनपदानां च वृक्षपुरपर्वतवेश्मध्वजपताकाशस्त्रवर्मायुधावरणरथनागोष्ट्रपुरुषशयनासनभाण्डेषु वा दृश्यते। स एव च स्निग्धो विमलः प्रदक्षिणशिखो गोगजाजनागवीथीश्चोत्तरेण व्रजन् सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चावहति। दशैकविंशतिद्विषष्टिशतधा वा दर्शनमिच्छन्ति मुनयो ध्रुवकेतोः। तस्य प्रागुदयनिमित्तानि—अवनिचलनम्। अग्नेः प्रभामान्द्यम्। प्रधूपनं दिशाम्। शीतोष्णविपर्ययः। अतिरूक्षवायुसम्भवश्च।।४१-४२।।

अथ कुमुदकेतोर्लक्षणमाह—

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखो निशामेकाम्।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥४३॥

कुमुदपुष्प की तरह कान्ति वाला, पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, पूर्व की तरफ शिखा वाला और केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला कुमुद केतु है। इसका दर्शन होने से दश वर्ष तक पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है।।४३।।

कुमुद इति कुमुदनामा केतुः। स तु कुमुदकान्तिः कुमुदाभः। श्वेतवर्ण इत्यर्थः। स तु वारुण्यां पश्चिमायां दिशि। प्राक्शिखः पूर्वाग्रो निशां रात्रिमेकामेव दृश्यते। किलेत्यागमसूचने। स तु दृष्टो दशवर्षाण्यतुलमसमं सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथामृतजः कुमुदो मणिः। जलोद्भवः पद्मः। आवर्तः। ऊर्मि। शङ्खः। हिमः। रक्तः। कुक्षिः। कामः। विसर्पणः। शीतश्चे'ति।

तत्र कुमुदकेतुर्वसाकेतोश्चारसमाप्तौ वारुण्यां दर्शनमुपैति। गोक्षीरविमलस्निग्धप्रभां पूर्वेणाभिनतां शिखां कृत्वैकरात्रचरः। स दृष्ट एव सुभिक्षमुत्पादयति। दशवर्षाणि प्रजानामविरोधं च। प्रतीच्यानां च मुखरोगारोचकप्रतिश्यायपाण्डुरोगजननैः प्रजा बाधत इति।

अथ मणिकेतोर्लक्षणमाह—

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः।
ऋज्वी शिखास्य शुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥४४॥

उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान्।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥४५॥

पश्चिम दिशा में एक प्रहरमात्र शेष रात्रि में एक बार दिखाई देने वाला और दुग्धधारा की तरह स्पष्ट शिखा वाला मणि केतु है। यह केतु उदयकाल से ही साढ़े चार महीने तक सुभिक्ष और अधिकतर नकुल आदि क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है।।४४-४५।।

मणिकेतुर्नाम केतुः स त्वपरेण पश्चिमायां दिशि सुसूक्ष्मतारोऽत्यल्पतारकः। सकृदेकवारम्। एकयामदृश्यः। यामशब्देन रात्रिचतुर्भाग उच्यते। अस्य केतोः। ऋज्वी स्पष्टा। शिखा चूडा। शुक्ला श्वेतवर्णा दृश्यते। कीदृशी? स्तनोद्गता क्षीरधारेव। स्तनात् कुचादुद्गता निःसृता क्षीरधारा यथा दृश्यते तद्वच्छिखा।

असौ केतुरुदयन्नेवोदितमात्र एव चतुरः सार्द्धान् अर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमं सुभिक्षमुत्पादयति करोति। प्रायो बाहुल्येन क्षुद्रजन्तूनां नकुलादीनां प्रादुर्भावमुत्पत्तिं करोति। तथा च पराशरः—

'मणिकेतुरपि कपालकेतोश्चारावसाने प्रतीच्यामुदयमुपयाति। सूक्ष्मोऽरुन्धतीतारकामात्रः क्षीरप्रसेककान्त्या पूर्वाभिनतया स्निग्धशिखया शर्वर्यामेकयामदृश्यः। स उदयात्

प्रभृत्यर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमसुभिक्षमुत्पादयति। क्षुद्रजन्तूनां प्रादुर्भावं करोत्यतिमात्रकालदृष्टः'।।४४-४५।।

अथ जलकेतोर्लक्षणमाह—

जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया।
नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ।।४६।।

पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाला, निर्मल और पश्चिमोन्नत शिखा वाला जलकेतु है। यह उदित हो तो नव मास तक सुभिक्ष और लोगों का कुशल करता है।।४६।।

जलकेतुर्नाम केतुः सोऽपि पश्चात् पश्चिमायां दिशि दृश्यते। स्निग्धो निर्मलदेहः। अपरेण पश्चिमेन। चोन्नतया उच्चया शिखया चूडया युक्तः। स च दृष्टो नव मासान् यावत् सुभिक्षं करोति। लोकस्य जनपदस्य च शान्तिं श्रेयः करोति। तथा च पराशरः—

'अथ जलकेतुः पैतामहजस्य जलकेतोर्नवमासावशिष्टे कर्मणि कृतं प्रवर्तयति। पश्चिमेनोदितः स्निग्धः सुजातोऽनुपश्चिमाभिनतशिखः। स च नव मासान् क्षेमसुभिक्षारोग्याणि प्रजाभ्यो धत्ते। अन्यग्रहकृतानां चाशुभानां व्याघाताये'ति।।४६।।

अथ भवकेतोर्लक्षणमाह—

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ।।४७।।

यावत एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान्।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ।।४८।।

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला, सूक्ष्म तारा से युत और सिंह की पूँछ की तरह दक्षिणावर्त शिखा से युत भव केतु है। यह निर्मल मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष और रूक्ष मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक प्राणान्तक रोग की उत्पत्ति करता है।।४७-४८।।

भवकेतुर्नाम केतुः स च प्राक् पूर्वस्यां दिशि एकरात्रमेकां निशां दृश्यः। सूक्ष्मतारकः सूक्ष्मोऽत्यल्पस्तारको यस्य। स्निग्धो निर्मलदेहः। अन्यत्र शिखयोपलक्षितः। कीदृश्या? हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया। हरिः सिंहस्तस्य लाङ्गूलं पुच्छस्तदुपमया तदाकारया प्रदक्षिणेनावर्तो यस्यास्तथाभूतया।

स च यावत एव मुहूर्तान् यावत्संख्यान् क्षणान् दर्शनमायाति दृश्यते तावन्मासानतुलमसमं सुभिक्षं निर्दिशेद्वदेद्यदि स्निग्धः। रूक्षे तु पुनः प्राणान्तिकान् रोगान् गदान् वदेत्। तथा च पराशरः—

'अथ जलकेतोः कर्मसमाप्तावूर्म्यादयः शीतान्ता अष्टौ प्रादुर्भवन्ति। ते त्रयोदशचतुर्दशाष्टादशवर्षान्तरिता दृश्यन्ते। स्निग्धाः सुभिक्षक्षेम्या विपर्यया: विपरीताः। क्षुद्रजन्तूनां

वधाय। तेषामष्टानां कर्मण्यतीते भवकेतुर्दृश्यते पूर्वेणैकरात्रम्। या कृत्तिकानामग्रतमा तारा तत्प्रमाणया स्निग्धयाऽरूक्षाभया सिंहलाङ्गूलसंस्थानया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षाय। रूक्षः प्राणहराणां रोगाणां प्रादुर्भावायेति'।।४७-४८।।

अथ पद्मकेतोर्लक्षणमाह—

अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ॥४९॥

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला मृणाल की तरह गौर पद्म केतु है। यह उदित हो तो सात वर्ष तक सुभिक्ष और लोगों में आनन्द-मंगल करता है।।४९।।

पद्मकेतुर्नाम केतुः। अपरेण पश्चिमायां दिशि निशां रात्रिमेकां दृश्यते। कीदृशः? मृणालगौरः, मृणालवद् गौरो मृणालगौरः। मृणालं बिसतन्तु। तद्वद् गौरः। श्वेत इत्यर्थः। स तु दृष्टः सप्त वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथ पद्मकेतुः श्वेतकेतुफलसमाप्तौ पश्चिमेनाह्लादयन्निव मृणालकुमुदाभया शिखयैकरात्रचरः। सप्त वर्षाण्यभ्युच्छ्रितं हर्षमावहति जगतः'।।४९।।

अथावर्तकेतोर्लक्षणमाह—

आवर्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः।
यावत्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ॥५०॥

पश्चिम दिशा में रात्र्यर्ध समय में उदित होने वाला, दक्षिणस्थ शिखा वाला, रक्तवर्ण, निर्मल शरीर वाला आवर्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष करता है।।५०।।

आवर्तनामेति यः केतुः स निशार्धे रात्र्यर्धे। अपरे पश्चिमायां दिशि। सव्यशिखो दक्षिणदिगाश्रितशिखः। अरुणनिभो रक्तवर्णः। स्निग्धो निर्मलवपुर्दृश्यते। स तु यावत्क्षणान् यावत्संख्यान् मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथावर्तकेतुः श्वेतकेतोः कर्मण्यतीतेऽपरस्यामर्द्धरात्रे शङ्खावदातोऽरुणाभया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षं नित्ययज्ञोत्सवं जगत्'।।५०।।

अथ संवर्तकेतोर्लक्षणमाह—

पश्चात् सन्ध्याकाले संवर्तो नाम धूम्रताम्रशिखः।
आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ॥५१॥

यावत एव मुहूर्तान् दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति।
भूपान् शस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ॥५२॥

पश्चिम दिशा में सन्ध्याकाल में आकाश के तीसरे भाग तक जाकर दिखाई देने वाला धूम्र या ताम्र वर्ण की तीन शिखा वाला संवर्त्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने वर्ष तक युद्ध के द्वारा राजाओं का नाश करता है; साथ ही उदयकालिक नक्षत्र को पीड़ित करता है।।५१-५२।।

पश्चात् पश्चिमायां दिशि। सन्ध्याकाले सन्ध्यासमये। संवर्तो नाम केतुः। कीदृशः? धूम्रताम्रशिखः। धूम्रा ताम्रवर्णा च शिखा चूडा यस्य। वियत आकाशस्य त्र्यंशं तृतीयभागमाक्रम्य प्राप्य दृश्यते। शूलाग्रावस्थितः। शूलमग्रे शिरस्यवस्थितं यस्य। त्रिचूड इत्यर्थः। स च रौद्रो भयावहः।

स च केतुर्यावतो मुहूर्तान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि हन्ति नाशयति। अशुभफलप्रदो भवतीत्यर्थः। तथा भूपान् नृपान्। शस्त्रनिपातैः संग्रामैर्हन्ति नाशयति। तथोदयर्क्षम्। यस्मिन्नक्षत्रे उदितो दृश्यते तच्च पीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः—

'अथ संवर्तो वर्षसहस्रमष्टोत्तरं प्रोष्य पश्चिमेनास्तं गते सवितरि सन्ध्यायां दृश्यते तन्वीं ताम्ररूक्षां शूलाभां धूम्रं विमुञ्चन्तीं दारुणां शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागमाक्रम्य। स यावन्मुहूर्तान् निशि तिष्ठति तावद्वर्षाणि परस्परं शस्त्रैर्घ्नन्ति पार्थिवाः। यानि नक्षत्राणि धूपयति यत्र चोदेति तानि दारुणतरं पीडयति। तदाश्रितांश्च देशानि'ति। तथा च—

येषां नक्षत्रविषये रूक्षः सज्वाललोहितः।
दृश्यते बहुमूर्तिश्च तेषां विन्द्यान्महाभयम्।।
अवर्षं शस्त्रकोपं च व्याधिं दुर्भिक्षमेव च।
कुर्यान्नृपतिपीडाश्च स्वचक्रपरचक्रतः।।
यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे प्रवासं यत्र गच्छति।
धूपयेद्वा स्पृशेद्वापि हन्याद्देशांस्तदाश्रितान्।।
यस्याभिषेकनक्षत्रं जन्मभं कर्मभं तथा।
देशर्क्षं पीडयेद्वापि स शान्त्युपरमो भवेत्।।
स्निग्धः प्रसन्नो विमलः प्रदक्षिणशिखस्तथा।
दृश्यते येषु देशेषु शिवं तेषु विनिर्दिशेत्।।
गगनार्द्धचरः सद्यः प्रधानदेशान् विनाशयेदचिरात्।
निखिलगगनानुचारी त्रैलोक्यविनाशकः केतुः।। इति।।५१-५२।।

अथ शुभान् केतून् वर्जयित्वाऽशुभानां नक्षत्रस्पर्शधूपनाद् दुष्टफलं वक्ष्यामीत्याह—

ये शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूपितेऽथवा स्पृष्टे।
नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान्।।५३।।

शुभ केतुओं को छोड़कर अन्य केतुओं से धूपित या स्पृष्ट नक्षत्र होने पर जिन-जिन राजाओं का नाश होता है, उनको अब कहते हैं।।५३।।

ये केतव: शस्ता: प्रशस्तफला:। तान् हित्वा त्वक्त्वा। अन्यै: केतुभि: शिखिभिर्नक्षत्रे यस्मिन्नाधूपितेऽथवा स्पृष्टे तेषां राज्ञां नृपाणां वधो मरणं भवति तान्नृपान् वक्ष्ये कथयिष्ये।।५३।।

तांश्चाधुनाऽऽह—

अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात्।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम्॥५४॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट अश्विनी नक्षत्र हो तो अश्मक देशाधिपति, भरणी हो तो किरातों के अधिपति, कृत्तिका हो तो कलिङ्ग देश के अधिपति और रोहिणी नक्षत्र हो तो शूरसेन देश के स्वामी का नाश करता है।।५४।।

अश्विन्यामभिधूपितायां स्पृष्टायां वा केतुना। अश्मकपमश्मकानां जनानामधिपतिं राजानं हन्यान्नाशयेत्। एवं भरणीषु किरातपार्थिवं किराताधिपतिं हन्यात्। बहुलासु कृत्तिकासु कलिङ्गेशं कलिङ्गाधिपतिम्। रोहिण्यां शूरसेनपतिं शूरसेना जनास्तेषां पतिम्।।५४।।

अन्येष्वाह—

औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति॥५५॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मृगशिरा हो तो उशीनर देश के स्वामी, आर्द्रा हो तो मत्स्य देश के स्वामी, पुनर्वसु हो तो अश्मक देश के स्वामी और पुष्य हो तो मगधाधिपति का नाश करता है।।५५।।

सौम्ये मृगशिरसि केतुनाभिधूपिते स्पृष्टे वा औशीनरमुशीनराधिपतिं हन्यात्। तथा आर्द्रासु जलजाजीवाधिपं जलजा मत्स्यादयस्तैर्ये आजीवन्ति ते च जलजाजीवा:। ग्रामदेशवासिन इत्यर्थ:। तेषामधिपं नृपं हन्यात्। आदित्ये पुनर्वसावश्मकनाथानश्मकाधिपतीन्। पुष्ये मगधाधिपं मागधं नृपं हन्ति।।५५।।

अन्येष्वाह—

असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम्॥५६॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट आश्लेषा नक्षत्र हो तो असिकेश्वर, मघा हो तो अंगदेशाधिपति, पूर्वाफाल्गुनी हो तो पाण्ड्यदेशाधिपति, उत्तराफाल्गुनी हो तो उज्जयिनी के पति और हस्त नक्षत्र हो तो दण्डक वन के स्वामी का नाश होता है।।५६।।

भौजङ्गे आश्लेषायामसिकेशम्। असिका जनास्तेषामीशं पतिं हन्ति। पित्र्ये मघायामङ्गाधिपतिम्। भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां पाण्ड्यनाथम्। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यामौज्जयिनिकमुज्जयिनीपतिम्। सावित्रे हस्ते दण्डकाधिपतिं दण्डकारण्यनाथं हन्ति।।५६।।

अन्येष्वाह—

चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः ।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥५७॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट चित्रा नक्षत्र हो तो कुरूक्षेत्राधिपति का मरण केतूपघातज्ञ पण्डित को कहना चाहिये तथा स्वाती नक्षत्र हो तो काश्मीर और कम्बोज देश के स्वामी का नाश कहना चाहिये।।५७।।

चित्रासु केतुनाभिधूपितासु स्पृष्टासु वा कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं वधम्। तज्ज्ञः केतूपघातज्ञः। समादिशेद्वदेत्। प्राभञ्जने स्वातौ काश्मीरककाम्बोजौ नृपती राजानौ न स्तो न भवतः।।५७।।

अन्येष्वाह—

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु ।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः ॥५८॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट विशाखा नक्षत्र हो तो अलकाधिपति, अनुराधा हो तो पुण्ड्राधिपति और ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो सार्वभौम राजा का नाश होता है।।५८।।

विशाखासु यदि केतूपघातो भवेत्तदा इक्ष्वाकुनाथोऽलकनाथश्च हन्यते। इक्ष्वाकवो जनाः। अलका नाम नगरी। तन्नाथो राजा। मैत्रेऽनुराधायां पुण्ड्राधिपतिर्हन्यते। ज्येष्ठासु च सार्वभौमस्य राज्ञः कान्यकुब्जाधिपतेर्वधो मरणं भवति।।५८।।

अन्येष्वाह—

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति ।
यौधेयकार्जुनायनशिविचैद्यान् वैश्वदेवे च ॥५९॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मूल नक्षत्र हो तो अन्ध्र और मद्रक देश के अधिपति, पूर्वाषाढ़ा हो तो काशी के स्वामी और उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो यौधेयक, अर्जुनायन, शिवि और चैद्य देश के अधिपति का नाश होता है।।५९।।

मूले केतूनाभिधूपिते हते वा अन्ध्रपतिं मद्रकपतिं च हन्ति। जलदेवे पूर्वाषाढायां काशिपः काश्यधिपतिर्मरणमेति प्राप्नोति। वैश्वदेवे उत्तराषाढायां यौधेयकः। अर्जुनायनः। शिविः। चैद्यः। एतान्नृपतीन् हन्ति।।५९।।

अथान्येष्वाह—

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम् ।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः ॥६०॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट श्रवण नक्षत्र हो तो केकय देश के स्वामी, धनिष्ठा हो तो पञ्जाब के स्वामी, शतभिषा हो तो सिंहल देश के स्वामी, पूर्वभाद्रपदा हो तो नैमिषारण्य के

स्वामी और रेवती हो तो किरातों के स्वामी का नाश होता है।।६०।।

षटसु श्रवणादिषु नक्षत्रेषु हतेषु षडिमान्नृपान् क्रमशः क्रमेण हन्यात्। तद्यथा— श्रवणे हते कैकयनाथं केकयजनाधिपं हन्यात्। धनिष्ठासु पाञ्चनदं पञ्चनदाधिपतिम्। शतभिषजि सिंहलाधिपतिम्। पूर्वभद्रपदायां वाङ्गं वङ्गाधिपतिम्। उत्तरभद्रपदायां नैमिषनृपं नैमिषारण्याधिपतिम्। रेवत्यां किरातं किराताधिपतिं हन्यात्।।६०।।

अथ केतोर्विशेषमाह—

उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽतिदृष्टो यः।
अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम् ॥६१॥

जो केतु उल्का से ताड़ित हो, वह शुभ करने वाला होता है। जो वृष्टियुक्त हो, वह अतिशय शुभ करने वाला होता है; लेकिन वही केतु चोल, अवगाण, सितहूण और चीन देश में स्थित मनुष्यों का अशुभ करने वाला होता है।।६१।।

यः शिखी केतुः। उल्काभिताडितशिखः। उल्कया अभिमुख्येन ताडिता हता शिखा चूडा यस्य। स शिवः श्रेयस्करः। योऽतिदृष्ट उदितमात्र एव दृष्टः स शिवतरोऽतिशयेन शुभप्रदः। स एव केतुरेवंविधश्चोलानामावगाणानां सितानां हूणानां चीनानां चाशुभोऽश्रेयस्करः सर्व एव जनाः।।६१।।

अन्यद्विशेषमाह—

नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा
ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान्।
दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ॥६२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
केतुचाराध्याय एकादशः ॥११॥

केतु की शिखा जिस दिशा में नम्र हो, जिस दिशा में फैलती हो या जिस नक्षत्र में स्पर्श करती हो, वहाँ पर स्थित अन्य भोगी जनों से भुक्त अत्यधिक पराक्रमों से निर्जित ग्रामों को उसी तरह राजा लोग भोगते हैं, जैसे गरुड़ दिव्य प्रभाव से नष्ट उत्कृष्ट सर्पों के अंगों का भोग करता है।।६२।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां केतुचाराध्याय एकादशः ॥११॥

यतो यस्यां दिशि। शिखिशिखा केतुशिखा। नम्रा वक्रा। शिखिनः शिखा शिखिशिखा। अभिसृता यतो वा। यस्यां दिशि। अभिसृता गन्तुं प्रवृत्ता। अथवा यदृक्षं नक्षत्रं स्पृशति

स्पर्शयति। तत्कथितांश्च देशान्। यस्यां दिशि शिखा नम्रा तत्र ये देशाः। यस्यां वा गन्तुं प्रवृत्ता तत्र ये देशा यन्नक्षत्रं स्पृशन्ति तस्य च नक्षत्रस्य ये देशा वक्ष्यमाणास्तान् कथितां-स्तदुक्तान् देशान् नरपती राजा गतो भुङ्क्ते स्वीकरोति। कीदृशान् देशान्? दिव्यप्रभावनिहतान्। दिव्येनाप्रतिहतेन प्रभावेण विक्रमेण निहतान् निर्जितान्। कीदृशान्? परभोगिभोगान्। परैरन्यैर्भोगिभिर्भुज्यन्ते ये भोगा ग्रामास्तान्। कथं स राजा भुङ्क्ते? यथा गरुत्मान् गरुडो दिव्यप्रभावनिहतान् परभोगिभोगान् भुङ्क्ते। परा उत्कृष्टा ये भोगिनः सर्पास्तेषां भोगाः शरीराण्य-ङ्गानि वा तान्। यथा येन प्रकारेण। तथा तेन प्रकारेणेति। तथा च पराशरः—

यस्यां दिशि समुत्तिष्ठेत्तां दिशं नाभियोजयेत्।
यतः शिखा यतो धूमस्ततो यायान्नराधिपः।।
प्रतिलोमे यतः केतोर्जयार्थी याति पार्थिवः।
सामात्यवाहनबलः स नाशमधिगच्छति।।

दृष्ट्वा षोडश वासरान्नशुभदः कैचित् प्रदिष्टः शिखी
सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रेऽथवा माधवे।
ऋक्षं यत्परिभुक्तपीडितहतं यच्चाऽऽशिखाभेदितं
तत्सर्वं परिवर्ज्य शुद्धमपरं पाणिग्रहे वास्तुषु।। इति।।६२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
केतुचारो नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

अथागस्त्यचाराध्यायः

(अगस्त्यमुनिवर्णनम्—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः ।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समासादयम्[1] ॥

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का संक्षेप से यहाँ वर्णन किया जाता है।)

अथागस्त्यचारो व्याख्यायते। तत्रादावेवागस्त्यस्य मुनेः प्राधान्यद्वारेण समुद्रशोभामुपवर्णयितुमाह—

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः ।
पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा ॥१॥

पहले तत्क्षण जलप्रवाह से, मकर के नखों से उत्पाटित शिखर वाले अन्तर्गत पर्वतों से तथा परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले देवताओं को तिरस्कार करने के लिये इधर-उधर अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित श्रेष्ठ मणि और रत्नों से युत जलप्रवाहों से समुद्र को जिन्होंने अतिशय सुन्दर बनाया।।१।।

येन भगवताऽगस्त्यमुनिना। पुरा पूर्वम्। तोयोच्छित्या जलापहरणेन। सपदि तत्क्षणमेव। समुद्रः सागरः। सुतरामतिशयेन। रुचिरो रम्यः। कृतः सम्पादितः। तस्य मुनेरुदयः श्रूयतामिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। रम्यः कैः कृतः? अन्तःशैलैः। अन्तर्मध्ये ये स्थिता मैनाकप्रभृतयः शैलाः पर्वतास्तैः। ते किलेन्द्रभयात्तत्र पूर्वं प्रविष्टाः। कीदृशैः? मकरनखरोत्खातशिखरैः। मकरा जलप्राणिविशेषाः। तेषां ये नखाः कठिनत्वात् त एव नखराः। तैर्मकरनखरैरुत्खातानि शिखराणि येषां तैः। ते किल कण्डूमपनेतुं परुषत्वात्तान्युत्खनन्ति। तथा यः समुद्रः सुरान् देवान्। प्रत्यादेष्टुं प्रत्याख्यातुमभिभवितुमिव दृष्टान्तीकर्तुमिव।

---

१. श्लोकोऽयं भट्टोत्पलटीकायामव्याख्याततत्वादिदं प्रतीयते प्रक्षिप्त इति।

कीदृशान् सुरान्? मितमुकुटरत्नान्। मितानि परिमितानि मुकुटेषु मौलिषु रत्नानि येषां तान्। तथाभूतान्। कैः प्रत्यादेष्टुमिव? पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिबहैः। अम्बुनिबहैः पानीयौघैः। कीदृशैः? पतन्मुक्तामिश्रैः पतन्तीभिर्मुक्ताभिर्मिश्रास्तैः। तथा प्रवराणि विकचानि च तानि मणिरत्नानि प्रधानरत्नानि। प्रवरमणिरत्नानि चाम्बुनिवहाश्च प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहास्तैः।।१।।

अन्यदप्याह—

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः ॥२॥

जिस अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने पर भी मणि, रत्न और प्रवालों से युत, वृक्ष तथा पंक्ति से पृथक् स्थित सर्पों से रहित पर्वतों के कारण समुद्र अतिशय शोभित हुआ है।।२।।

येनागस्त्यमुनिना। अम्बुहरणे जलापहरणे कृतेऽपि सति सागरः समुद्रः। अधिकतरमतिशयेन विराजितः शोभितः। कैः? भूधरैः पर्वतैः। कीदृशैः? विद्रुमैः। विगता द्रुमा वृक्षा येभ्यस्तैः। वृक्षरहितैः। जलमध्यगतत्वात्तेषु वृक्षाः क्लिन्ना यतः। तथा समणिरत्नविद्रुमैः। मणिरत्नैः प्रधानरत्नैर्विद्रुमेण प्रवालेन सह वर्तन्ते ये तैः। निर्गतैस्तदुरगैश्च। तदिति भूधराणां पराशर्मः। तदुरगैः। तेभ्यः पर्वतेभ्यो ये उरगाः सर्पा निर्गता निष्क्रान्तास्तैः। कथं च ते निर्गताः? राजितः पङ्क्तितस्तैस्तथाभूतैः।।२।।

अन्यदाह—

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम् ॥३॥

अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने के कारण विपत्तिग्रस्त होने पर भी समुद्र ने जलाभाव के कारण चञ्चल मत्स्य, जलहस्ती, सर्प तथा इधर-उधर विखरे हुये रत्न और मणियों से सुशोभित होकर स्वर्गीय शोभा प्राप्त की।।३।।

येन महोदधिः समुद्रः। आपदां पदगतोऽपि विपदां स्थानं प्राप्तोऽपि। पीतसलिलः पीतजलोऽपि। अमरश्रियं सुरलक्ष्मीम्। यापितः प्रापितः। कीदृशः? प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तस्तिमयश्चलन्तो मत्स्याः। जलेभा जलहस्तिनः। जिह्मगाः सर्पा यस्मिन्। जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः। एते जलप्राणिनो जलाभावात् प्रस्फुरन्ति। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः क्षिप्रः परिक्षिप्तो रत्नानां मणीनां निकरः समूहो यस्मिन्। तथा सुरलोकः प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तश्चलन्तो ये सुरास्तिमिजलेभजिह्मगाः। तिमिगा मत्स्यवाहनाः केचित्। यथा वितस्ता नदी। केचिज्जलगाः पानीयस्थाः। यथा समुद्रे भगवान्नारायणः। केचिदिभगा हस्तिनो गताः। यथेन्द्र ऐरावतस्थः। केचिज्जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः कुटिलगतयः। यथा भौमादयस्ताराग्रहा वक्रिताः। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः सोऽपि।

अथान्यदाह—

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम् ।
सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम् ॥४॥

जल नष्ट होने पर भी चलित मत्स्य, शुक्ति और शंख से युत समुद्र शरद् ऋतु में तरंग, श्वेत कुवलय और हंस से युत सरोवर की शोभा धारण करता है (यहाँ पर चलित मत्स्य = तरंग, शुक्ति = श्वेत कुवलय, शंख = हंस है)।।४।।

सरितां नदीनाम्। पतिः प्रभुः समुद्रः। सलिले जलेऽपहृतेऽपि सति। शरदि शरत्काले। सरसो महोदकाधारस्य सम्बन्धिनीं रुचिं दीप्तिम्। बिभर्ति धारयति इव। कीदृशस्य सरसः? सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः। सतरङ्गाणि तरङ्गेण वीचिसमूहेन सहितानि सितोत्पलानि श्वेतकुवलयानि पुष्पविशेषान् हंसान् पक्षिविशेषांश्च बिभर्ति धारयति यत् तस्य। समुद्रः कीदृशः? प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः। प्रचलद्भिस्तिमिभिर्मत्स्यैः। शुक्तिजैः प्राणिभिः शङ्खैश्च चितो व्याप्तः। प्रचलन्तो मत्स्यास्त एव तरङ्गाः। शुक्तिजाः सितोत्पलानि। शङ्खा हंसा इति।।४।।

अथान्यत्—

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युतिः ।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः ॥५॥

मत्स्यरूप मेघ, मणिरूप तारा, स्फटिक मणिरूप चन्द्र, जलाभावरूप शारदीय द्युति और सर्पों के फणा पर स्थित मणि (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) के किरणरूप केतु ग्रह हैं, जिसमें ऐसे कुटिलगेश (समुद्र) को जिन्होंने बना दिया।।५।।

यः कुटिलगेशं समुद्रम्। वियदाकाशम्। चकार कृतवान्। कुटिलमस्पष्टं गच्छन्तीति कुटिलगा नद्यः। तासामीशं स्वामिनम्। तिमयो मत्स्याः। त एव सिताः शुक्ला अम्बुधरा मेघा यस्मिन् तत्तथाभूतम्। मणयो रत्नानि तान्येव दीप्तिमत्त्वात्तारका यस्मिन्। स्फटिको मणिविशेषः। स एव स्थूलत्वाच्चन्द्रः शशी यस्मिन्। अनम्बु जलाभावः। तदेव शरद्द्युतिः शरत्कान्तिः। अभिव्यक्तत्वाद्यस्मिन्। फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहम्। फणिनः सर्पाः। तेषां फणासु मूर्धसु यान्युपला रत्नानि चन्द्रकान्तसूर्यकान्तप्रभृतीनि। तेषु ये रश्मयः। त एव तत्सदृश वाच्छिखिग्रहाः केतवो यस्मिन्। यत आकाश एत एव सम्भवन्तीति।।५।।

अथ समुद्रवर्णनानन्तरं विन्ध्यवर्णनामाह—

दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्ग-
मुद्भ्रान्तविद्याधरांसावासक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहाव-
लम्बाम्बरात्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितम् ।
करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारि-
द्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान् बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान्

धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम् ।
गगनतलमिवोल्लिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुम-
त्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीहृष्टमन्द्रस्वनैः
शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः ।
रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्या-
सितोद्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहारविप्रान्वितं
विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम् ।।६।।

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये उन्नत होने में कम्पायमान शृङ्ग होने से भयभीत, विद्याधर के कन्धे में सक्त और व्यग्र विद्याधरी गण से दिये हुये विद्याधर के शरीर में लगे हुये कम्पायमान और अत्युन्नत ध्वजरूप वस्त्र से शोभित, हस्ती के मद से युक्त रक्त के आस्वादन से उत्पन्न सुगन्धि को खोजने में उद्यत भ्रमरगणों से युक्त शिर वाले मानो बाणपुष्पों से रचित शिरोमाला धारण करने वाले सिंहों से युक्त गुहागत निर्झर वाला, बढ़े हुये गजों से आकृष्ट होने पर कम्पित प्रफुल्लित वृक्षों पर चञ्चल और आनन्द से मधुर शब्द करते हुये भ्रमरपंक्ति वाले तथा वन के अश्व, भालू, व्याघ्र अैर वानरों से युत पर्वतशृङ्गों से मानो आकाश को उल्लिखित करता हुआ, निर्जन स्थान में मदनवृक्ष से युक्त होने के कारण मानो मदनातुर प्रिया—रेवा नदी से युक्त, देवताओं से सेवित उद्यान वाला तथा जलहारी, निराहारी, मूलाहारी, वाताहारी ब्राह्मण मुनियों से सेवित विन्ध्याचल को जिन्होंने रोका, उन अगस्त्य मुनि के उदय के सम्बन्ध में सुनो।।६।।

एवंविधं विन्ध्यं विन्ध्यपर्वतम्। योऽगस्त्यमुनिरस्तम्भयत् स्तम्भितवान् तस्योदयो दर्शनम्। श्रूयतामाकर्ण्यताम्। कीदृशं विन्ध्यः? दिनकरस्यादित्यस्य। योऽसौ रथः स्यन्दनम्, तस्य मार्गः पन्थाः। तद्विच्छित्तये तन्निवारणाय। अभ्युद्यतमाभिमुख्येनोद्यतं यत्। अत एवाभ्युद्यतत्वाच्चलच्छृङ्गम्। चलिता न कम्पमानानि शृङ्गाणि शिखराणि सस्य तम्। उद्भ्रान्ता भ्रान्तिमापन्नाः। तेषु च शृङ्गेषु ये स्थिता विद्याधरा देवयोनयः तेषां येंऽसाः स्कन्धाः। तेष्वंसेषु या अवसक्ता अवलग्नाः प्रिया वल्लभाः स्त्रियः। ताभिर्व्यग्राभिः सोद्यमाभिः। दत्ता विन्यस्ताः। अङ्गेषूत्सङ्गेषु विद्याधराणां ये देहाः शरीराणि। तेषु यान्यवलम्बन्ते अम्बराणि वस्त्राणि। तान्यतिशयेनोच्छ्रितान्युच्चतराणि। तानि चोद्धूयमानानि कम्पमानानि। तान्येव ध्वजाः सादृश्याद् ध्वजरूपाणि। तैः शोभितं भूषितम्।

करिकटेति। मृगेन्द्रैः सिंहैः सनाथीकृतमधिष्ठितम्। अन्तर्मध्ये या दर्यो गुहाः, तासु यन्निर्झरम्। जलं नियतं झरति स्रवतीति निर्झरम्। गुहाप्रदेशे प्रपातपानीयम्। यस्मिन् विन्ध्ये तं तथाभूतम्। कीदृशैः सिंहैः? करिणो हस्तिनः। तेषां ये कटाः कुम्भाः, तेषु यो मदो दानाम्बु, तेन मिश्रं संयुक्तम्। यद्रक्तमसृक् तस्य योऽवलेह आस्वादः, तेन योऽनुवासः सौरभ्यम्। तदनुसारिणस्तदन्वेषणपरा ये द्विरेफा भ्रमराः। ते अवलीनाः संलग्ना

उत्तमाङ्गेषु शिरःसु येषां तैः सिंहैः। बाणपुष्पैर्बाणकुसुमैः कृतान् रचितान्। उत्तंसकान् शिरोमाला धारयद्भिरिव।

गगनतलमिति। शैलकूटैः पर्वतशृङ्गैः। गगनतलमाकाशतलम्। उल्लिखन्तमिव। कीदृशैः शैलकूटैः? प्रवृद्धैर्वृद्धिमद्भिः। गजैर्हस्तिभिः। आकृष्टा आकर्षिताः फुल्लाः कुसुमिता ये द्रुमा वृक्षास्तैर्यस्त्रासः कम्पः, तस्माद्ये विभ्रान्ता भ्रान्तिमापन्ना मत्तद्विरेफा भ्रमराः, तेषामावली पङ्क्तिः। तस्या हृष्टाया ये मन्द्रा मधुराः स्वनाः शब्दाः। ते विद्यन्ते येषां तैस्तथाभूतैः शैलकूटैः। अत्र भ्रमरपङ्क्तिर्वर्णपङ्क्तिरिव। तथा तरक्षैर्वनश्वभिः। ऋक्षै-र्वानरैः प्राणिविशेषैर्वा। शार्दूलैः सिंहजातिभिः। शाखामृगैर्मर्कटैः। अध्यासिताः सेविता ये शैलकूटास्तैः।

रहसीति। कीदृशं विन्ध्यम्? रहसि निर्जने। रेवया मदनसक्तया कान्तया वल्लभया कामिन्येवोपगूढं परिष्वक्तम्। रेवा नर्मदा। यतः सा तत्रैव बहुशो गता। सा च मदनसक्ता। मदनवृक्षावृतत्वादिति। सुरैर्देवैरध्यासितानि निषेवितानि, उद्यानानि उपवनानि यस्मिन्। तथाम्भोऽशनैर्जलाहारैः। अनन्नैर्निराहारैः। मूलाहारैर्मूलभक्षैः। अनिलाहारैर्वायुभक्षैश्च। विप्रै-र्ब्राह्मणैर्मुनिभिरन्वितं संयुक्तं विन्ध्यम्।।६।।

तथाऽगस्त्योदयप्रभावमाह—

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि।।७।।

जिस तरह खलों की सङ्गति-रूप मल से दूषित हृदय वाला मनुष्य भी सज्जनों के दर्शन से निर्मल हृदय वाला हो जाता है, उसी तरह वर्षा ऋतु में कीचड़ मिला हुआ जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से निर्मल हो जाता है।।७।।

अगस्त्यनाम्नो मुनेरुदये उद्गमे। पुनर्भूयः। अम्बूनि पानीयानि। स्वभावात् प्रकृत्यैव। निर्मलानि प्रसन्नानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कोर्भूम्याः समायोगः संश्लेषः कुसमायोगः। तस्मात् कुसमायोगाद्यन्मलं पङ्कः। तेन प्रदूषितानि दुष्टानि यानि तान्यगस्त्यदर्शनान्निर्मलानि भवन्ति। वर्षासु कुसमायोगस्तेषाम्। यथा सतां साधूनां उदये दर्शने हृदयानि पुनर्निर्मलानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कुत्सितैर्जनैर्योऽसौ समायोगस्तस्माद्यन्मलं पापं तेन प्रदूषितानि दुष्टानि। पुनः स्वभावादेव निर्मलानि भवन्ति। साधुदर्शनात् पापक्षय उत्पद्यते यावत्।।७।।

अथ विन्ध्यवर्णनानन्तरं शरद्वर्णनमाह—

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत् सहासा।।८।।

ताम्बूल से रक्त ओठों के मध्य विराजमान दन्तपंक्ति वाली, हासयुत स्त्री की तरह दोनों पार्श्वों में स्थित लाल वर्ण के चक्रवाकों के मध्य शब्दायमान हंसपंक्ति से विराजमान नदियों के द्वारा शरद् ऋतु शोभित है।।८।।

शरत् सहासा हासयुक्ता योषा स्त्रीव विभाति शोभते। कीदृशी योषा? ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती। ताम्बूलेन रक्ता रञ्जिता ये दन्ता रदाः। तेभ्योऽग्रदन्ताः पुरोवर्तिनो रदा उत्कषिता उद्घृष्टा यया सा तथाभूता स्त्री। शरत्कीदृशी? पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्। पार्श्वद्वयमधिष्ठितं संयुक्तम्। चक्रवाकैः पक्षिविशेषैर्लोहितवर्णैर्यस्याः सस्वनायाः शब्दयुक्ताया हंसपङ्क्तेस्तामापुष्णती आपोषयमाणा। नदीनां प्रत्यहं जलाल्पत्वात् पुलिनानि व्यक्तानि भवन्ति। तानि च हंसैः सेव्यन्ते। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती योषा सहासेव।।८।।

अन्यदप्याह—

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ।।९।।

भ्रमण करते हुये भ्रमर की पंक्तियों से भूषित, नीलकमल के निकट स्थित श्वेत कमल से युत नदियों से शोभित शरद् मानो भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली मदनातुरा स्त्री की तरह शोभित है।।९।।

शरत् सस्मरा सकामा विदग्धयोषा प्रौढाङ्गनेव विभाति शोभते। कीदृशी विदग्धयोषा? सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा। भ्रूलतयोर्योऽसावाक्षेपश्चलनम्। तेन यः कटाक्षो नयनविभ्रमः। तेन सहितं वीक्षणमवलोकनं यस्याः। शरत् कीदृशी? इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता। इन्दीवरं नीलोत्पलम्। तस्यासन्ने उभयपार्श्वस्थे ये सितोत्पले। तथाभूतेनेन्दीवरेणान्विता संयुक्ता। अनेन नेत्रस्य सादृश्यमुक्तम्। यतो नेत्रमपि मध्यभागात् कृष्णमुभयपार्श्वयोः सितं भवति। तथा भ्रमन्तश्चलन्तः। ये षट्पदा भ्रमराः। तेषां या पङ्क्तिरवलिः। तया भूषिता संयुक्ता। अनेन भ्रूसादृश्यमुक्तम्। यतो नयनस्योर्ध्वभागस्था भ्रूलता भवति। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषा सस्मरेव।।९।।

अथान्यदाह—

इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं
द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म
वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम् ।।१०।।

तरङ्गरूप कङ्कण वाली वापीरूप कामिनी रात्रि में मेघ के चले जाने से बढ़ी हुई चन्द्रमा की शोभा को देखने के लिये मानो भ्रमयुक्त कुमुदरूप कृष्ण तारा से युक्त नेत्र को खोलती है।

इन्दोश्चन्द्रमसः। पयोदानां मेघानाम्। विगमाद्विशेषोपगमात्। उपहिता वृता व्याप्ता या विभूतिः कान्तिः। तां द्रष्टुमवलोकयितुम्। वापी नलिनी। निशासु रात्रिषु। कुमुदं कैरवम्। विलोचनं नेत्रमिवोन्मूलयति विकाशयति। कीदृशी वापी? तरङ्गवलया। तरङ्गा ऊर्मिसमूहाः। त एव वलयः प्रकोष्ठभूषणं यस्याः। कीदृक् कुमुदम्? अलिनिलीनदलम्।

अलिर्भ्रमरः स निलीनः संलग्नो दलेषु पत्रेषु यस्मिन्। सुपक्ष्म शोभनं पत्रम्। तदेवासितं कृष्णम्। तारकमन्तर्मध्ये यस्मिन्। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—नयनमिव। यतो नयनं सुपक्ष्म भवति। शोभनानि पक्ष्माणि अक्षिलोमानि यस्य तत्तथा। असिततारकान्तं कृष्णतारकामध्यम्। नायिका चिरदर्शनाद्वल्लभास्यं सोत्कण्ठा समुद्वीक्षत इति।।१०।।

अथ भूमेः शोभामुपवर्णयितुमाह—

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने ।।११।।

अनेक प्रकार के विचित्र कमल, हंस, चक्रवाक, कारण्डव आदि से भूषित तड़ागरूप हस्त के द्वारा पृथ्वी मानो अनेक रत्न, पुष्प और फलों से अगस्त्य मुनि को अर्घ्य देती है।

भूर्भूमिः। अगस्त्यनाम्ने अर्घं यच्छतीव ददाति इव। कीदृशी भूः? नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता। नानाप्रकारा विचित्रा ये अम्बुजाः पद्मादयः। तथा हंसकोककारण्डवाः पक्षिविशेषाः। तैर्यान्यापूर्णानि तडागानि। तान्येव हस्ता यस्या। कैरर्घं यच्छतीव? रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्चेति। त एवाम्बुजादयो हस्तस्थिता रत्नादीन्युपलक्ष्यन्ते। तै रत्नैः। प्रभूतैर्बहुभिः। तथा कुसुमैः पुष्पैः फलैश्चेति। यतो भगवते रत्नादिभिरर्घो दीयत इति।।११।।

अथ भगवतः प्राधान्यमाह—

सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद् घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः ।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ।।१२।।

मेघों से परिवेष्टित मूर्ति वाले सर्पों के फणा से उत्पन्न विषरूप अग्नि से दूषित इन्द्र की आज्ञा से पतित जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से श्रेयस्कर हो जाता है।।१२।।

अमरप इन्द्रः। तदाज्ञया यत्सलिलं जलम्। उज्झितमुत्सृष्टम्। भुजङ्गैः सर्पैः। कीदृशैः? घनपरिवेष्टितमूर्तिभिः। घनैर्मेघैः। परिवेष्टिता मूर्तयो देहा येषां तैः। कीदृशं जलम्? फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टम्। फणिनः सर्पाः। तेभ्यो जनितमुत्पादितं यद्विषम्। तदेवाग्निर्वह्निः। तेन सम्प्रदुष्टं सम्यग् दूषितम्। तदगस्त्यदर्शनेन शिवं श्रेयस्करं भवति।।१२।।

अथान्यदप्याह—

स्मरणादपि पापमपाकुरुते
किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः ।
मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्घविधिः
कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ।।१३।।

जिनका स्मरण करने से भी पाप नष्ट हो जाते हैं, उन वरुण के पुत्र अगस्त्य की स्तुति का फल कहाँ तक कहें। गर्ग आदि मुनियों के द्वारा जिस प्रकार उनकी अर्घविधि कही गई है, उसी प्रकार राजाओं के हित के लिये मैं कहता हूँ।।१३।।

वरुणस्याङ्गरुहः पुत्रोऽगस्त्यमुनिः स्मरणादपि स्मरणमात्रादपि नामसङ्कीर्तनमात्रात्पापमेनोऽपाकुरुते निवर्तयतीति। किमुत किं पुनः स्तुतिभिः स्तोत्रैः। मुनिभिर्गर्गादिभिर्यथा येन प्रकारेणास्यार्घविधिः कथित उक्तः। तथा तेनैव प्रकारेण नरेन्द्रस्य राज्ञो हितं कथयामि वच्मि। तथा च समाससंहितायाम्—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलस्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभृत् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयश्च्युतिकृतश्चारः समासादयम्।। इति।।१३।।

अथास्योदयलक्षणमाह—

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य
विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां
भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥१४॥

गणित के द्वारा प्रत्येक देश में इनका दर्शन जानकर पण्डितों को कहना चाहिये। वह दर्शन सिंह राशि के तेईस अंश पर जब स्पष्ट सूर्य जाते हैं तब होता है।।१४।।

अस्यागस्त्यमुनेः संख्याविधानाद् गणितविधानात् प्रतिदेशं देशं देशं प्रति सन्दर्शनमुदयं विज्ञाय ज्ञात्वा ज्ञः पण्डित आदिशेद् वदेत्। तच्च दर्शनमुज्जयिन्यां स्फुटभास्करस्य स्फुटादित्यस्य कन्यां कुमारीं स्वराख्यैर्भागैः सप्तभिरंशैरगतस्याप्राप्तस्य भवति। सिंहस्य भागत्रयोविंशतिं भुक्त्वेत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

सप्तभिरंशैः कन्यामप्राप्ते रोमके तु दिवसकरे।
दृश्योऽगस्त्योऽवन्त्यां तत्समपूर्वापरेऽप्येवम्।। इति।।१४।।

अथार्घदानलक्षणमाह—

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥१५॥

सूर्य के किरणों से रात्रि के अन्धकार के कुछ नष्ट होने पर ज्योतिषी से बताई हुई दक्षिण दिशा में पृथ्वी पर संयत होकर राजा को पृथ्वी पर अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ देना चाहिये।।१५।।

भूपो राजा प्रयतः संयत उर्व्यां भूम्यामर्घं प्रयच्छेद् दद्यात्। कस्मिन् काले? अरुणरश्मिजालैररुणकरनिकरैर्नैशे रात्रिभवेऽन्धकारे तमसि ईषत् किञ्चित् प्रभिन्ने नष्टे। कस्यां दिश्यर्घं दद्यात्? दक्षिणस्यां याम्यायां दिशि। कीदृशो राजा? सांवत्सरावेदितदिग्विभागः। सांवत्सरेण कालविदा आवेदितः प्रदर्शितो दिग्विभागो यस्य स तथाभूतः। यथेयं दक्षिणदिगस्यां भगवतो दर्शनमिति।।१५।।

कैरर्घं प्रयच्छेदित्याह—

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च
रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यै-
र्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥१६॥

शारदीय सुगन्धित पुष्प, फल, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृष, पायसयुत भोजन, द्रव्य, दधि, सुगन्धित धूप और चन्दनयुत अर्घ देना चाहिये।।१६।।

कालोद्भवैः सुकालजातैः। सुरभिभिः सुगन्धैः। कुसुमैः पुष्पैः। फलैश्च जातीफलादिभिः। तथा रत्नैर्मणिभिः। सागरभवैः समुद्रजातैः। कनकेन सुवर्णेनाम्बरैर्वस्त्रैः। तथा धेन्वा पयस्विन्या गवा वृषेण दान्तेन। परमान्नेन पायसेन युतैश्च भक्ष्यैरपूपादिभिस्तथा दध्ना क्षीरविकारेण। अक्षतैर्यवैः। सुरभिधूपैः सुगन्धधूपैर्विलेपनैरनुलेपनैः सुगन्धिभिश्च।।१६।।

अथार्घं दातुर्नृपस्य फलमाह—

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः
प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः।
भवति यदि च दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यग्
जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥१७॥

यदि श्रद्धावान् राजा इस प्रकार अर्घ देने की विधि को धारण करे तो नीरोग होता है और शत्रुओं को जीतता है। यदि इस प्रकार सात वर्ष तक भक्तिपूर्वक अर्घ देता रहे तो समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का स्वामी (चक्रवर्ती राजा) होता है।।१७।।

नरपति राजा श्रद्दधानः श्रद्धावानिममर्घं दधानः प्रयच्छमाणः। प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षो भवति। प्रविगताः प्रनष्टा गदा रोगा दोषाश्च यस्य। तथा निर्जितोऽरातिपक्षः शत्रुपक्षो येन। यदि चानेन विधिना सम्यगविच्छिन्नं सप्त वर्षाणि दद्यात्तदा जलनिधिरशनाया भूमेः समुद्रमेखलाया उर्व्याः स्वामितां प्रभुतां याति गच्छति।।१७।।

अथ ब्राह्मणविट्शूद्राणां फलमाह—

द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान्।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१८॥

यदि अपनी शक्ति के अनुसार लब्ध वस्तु से अर्घ दे तो ब्राह्मण वेदों को, स्त्री पुत्रों को, वैश्य गौओं को एवं शूद्र बहुत धनों को प्राप्त करता है तथा ब्राह्मणादि सभी वर्ण रोगक्षय और धार्मिक फल को प्राप्त करते हैं।।१८।।

द्विजो ब्राह्मणो यथालाभं यथासम्भवमुपाहृतार्घो दत्तार्घः प्राप्नोति लभते वेदान्। प्रमदाः स्त्रीः। पुत्रानपत्यानि च। तथा वैश्यो यथालाभमुपहृतार्घो गां लभते। शूद्रो भूरि बहु धनं वित्तं प्राप्नोति। सर्वे ब्राह्मणवैश्यशूद्रा रोगक्षयं गदोपशमं धर्मफलं च प्राप्नुवन्ति।।१८।।

अथोदितस्य लक्षणमाह—

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं
धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च
कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥१९॥

यदि अगस्त्य रूक्ष हो तो रोग, कपिल हो तो अवृष्टि, धूम्रवर्ण हो तो गौओं के लिये अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म हो तो नगर का अवरोध करते हैं।।१९।।

अगस्त्यनामा अगस्त्यमुनिः परुषो रूक्षो रोगान् करोति। कपिलः कपिलवर्णोऽवृष्टिमवर्षणं करोति। धूम्रो धूम्रवर्णो गवामशुभकृदनिष्टफलं करोति। स्फुरणः चलनो भयाय भवति। माञ्जिष्ठरागसदृशो लोहितवर्णः क्षुधं दुर्भिक्षं करोति। आहवान् संग्रामांश्च करोति। अणुः सूक्ष्मः पुररोधं नगरवेष्टनं करोति।।१९।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणाग्रैः।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥२०॥

सुवर्ण, रजत या स्फटिक के समान अपने किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुये अगस्त्य मुनि दिखाई दें तो पृथ्वी अधिक धान्य, निर्भीक तथा रोगरहित मनुष्यों से युत होती है।

यदि शातकुम्भसदृशो रूप्यसदृशाभो दृश्यते। शातकुम्भशब्दः सुवर्णरजतयोर्द्वयोरपि वाचकः। अथवा स्फटिकाभः स्फटिककान्तिः। महीं भूमिं किरणाग्रै रश्मिप्रान्तैस्तर्पयन्निव दृश्यते। केचित् किरणौघैरिति पठन्ति। किरणौघै रश्मिसमूहैः। तदा भूर्मही प्रचुरान्ना प्रभूतसस्या। तथा अभयरोगजनाढ्या अभयैर्भयरहितैररोगैर्विगतगदैर्जनैर्जन्तुभिराढ्या बहुला भवति। तथा च गर्गः—

शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः।
दृश्यते यद्यगस्त्यः स्यात् सुभिक्षक्षेमकारकः।।
वैश्वानरार्चिप्रतिमैर्मांसशोणितकर्दमैः।
रणैर्भयैश्च विविधैः किञ्चिच्छेषायते प्रजा।। इति।।२०।।

अथोदयास्तमयलक्षणं शुभाशुभं चाह—

उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मरकमेव विधत्ते।
दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥२१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहिताया-
मगस्त्यचाराध्यायः द्वादशः ॥१२॥

यदि अगस्त्य मुनि उल्का या केतु से आहत हों तो पृथ्वी पर दुर्भिक्ष और मरी पड़ती है। अगस्त्य मुनि सूर्य-हस्तगत हों तो उदित और रोहिणीगत हों तो अस्त होते हैं।।२१।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामगस्त्यचाराध्यायो द्वादशः ॥१२॥

उल्कया विनिहतोऽभिताडितः शिखिना केतुना वा विनिहतः। तदा क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयं च विधत्ते ददाति। किलेत्यागमसूचने। सोऽगस्त्यमुनिः हस्तगतेऽर्के हस्तस्थे सूर्ये दृश्यते उदयं याति। तथा रोहिणीमुपगते रोहिण्यां संस्थितेऽर्केऽस्तमुपैति अदर्शनमायाति। यद्यप्यत्र गणितसाम्यं न भवति, तथाप्याऽऽचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

विषुवच्छायार्द्धगुणा पञ्चकृतिस्तत्कलास्ततश्चापम्।
छायात्रिसप्तकयुतं दशभिर्गुणितं विनाड्यस्ताः।।
ताभिः कर्कटकाद्याद्यल्लग्नं तादृशे सहस्रांशौ।
याम्याशावनितामुखविशेषतिलको मुनिरगस्त्यः।।

एवं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वादाचार्येणात्रोक्तम्। तथा च पराशरः—

हस्तस्थे सवितर्युदेति रोहिणीसंस्थे प्रविशति।

अथास्य त्रिविधश्चारोदयकालो दृष्टः—आश्वयुग्बहुलाष्टमीपञ्चदश्योः कार्तिकाष्टम्यां वा। तत्राश्वयुग्बहुलोदितः सुवृष्टिक्षेमान्नसम्पत्करः। वर्णैश्चावेदयति। अग्निपरुषरूक्षाभो रोगाय कपिलो वृष्टिनिग्रहाय। धूमाभो गवामभावाय। माञ्जिष्ठः कुङ्कुमच्छविः क्षुच्छस्त्रदः। नीलोऽतिवर्षाय। संवृतः पुररोधाय। स्पन्दनो भयाय। अपि च—

हन्यादुल्का यदागस्त्यं केतुर्वाप्युपधूपयेत्।
दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते।।
सुस्निग्धवर्णः श्वेतश्च शातकुम्भसमप्रभः।
मुनिः क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च।। इति।।२१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृता-
वगस्त्यचारोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ सप्तर्षिचाराध्यायः

अथ सप्तर्षिचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव तेषां मुनीनां दिक्संस्थानलक्षणमाह—

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
नाथवतीव च दिग् यैः कौवेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥१॥

एकावली (भूषणविशेष) से शोभित, श्वेत कमल की माला से भूषित, मुस्कानयुत और स्वामी–सहित कामिनी की तरह सात मुनियों से युत उत्तर दिशा शोभित है। (यहाँ मुनिपंक्तियों के कुटिल होने के कारण इनमें पूर्वोक्त सभी विशेषण उत्पन्न होते हैं)।।१।।

यैः सप्तभिर्मुनिभिः कौवेरी उत्तरा दिग् नाथवतीव च विराजते शोभते। यथा नाथवती प्रभुणा युक्ता नायिका विराजते तद्वत् कौवेरीति। नाथवती कीदृशी भवति? सैकावलीव। सह एकावल्या वर्तते या। एकावलीत्याभरणविशेषस्य संज्ञा। एवं ससितोत्पलमालिनी सहासेव। सह सितया श्वेतयोत्पलमालया वर्तते सह हासेन च। मुनिपङ्क्तेः कुटिलत्वादेतानि विशेषणान्युपपद्यन्त इति।। १।।

ध्रुववशाद् भ्रमद्भिर्यैरुत्तरा दिगेवंविधा लक्ष्यते तेषां चारं वक्ष्यामीत्याह—

ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥२॥

ध्रुव नक्षत्ररूप नायक के उपदेश से भ्रमण करने वाले सप्तर्षियों से उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है। अब वृद्ध गर्ग के मत से उनका सञ्चार कहता हूँ।।२।।

यैर्मुनिभिर्भ्रमद्भिरुत्तरा कौवेरी दिग् नरिनर्तीव। अत्यर्थं नृत्यति नरिनर्ति। कथं ध्रुवनायकोपदेशात्। ध्रुव एव नायको ध्रुवनायकस्तदुपदेशात्। यतो नर्तक्या उपदेशो नायक आचार्यो भवति। तस्या ध्रुवनायकोपदेशः। यस्मात् सकलज्योतिश्चक्रस्य ध्रुव एव भ्रामकः। तथा च भट्टब्रह्मगुप्तः—

ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्।। इति।

तेषां मुनीनां चारमहं वृद्धगर्गमतात् कथयिष्ये। वृद्धगर्गो नाम महामुनिस्तन्मतात्तत्कृताच्छास्त्रादिति।।२।।

अधुनैतेषां चारनक्षत्रानयनमाह—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥३॥

जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर राज्य करते थे, उस समय मघा नक्षत्र में सप्तर्षि थे। शकाब्द में २५२६ मिलाने से युधिष्ठिर का गताब्द काल होता है।

१८७५ शकाब्द में नक्षत्र लाने का उदाहरण—एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ (१००) वर्ष रहते हैं; अत: २५२६+१८७५/१०० = ४४०१/१००, लब्धि ४४ शेष १।

अत: गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और वर्तमान नक्षत्र रेवती का १ वर्ष भुक्त और ९९ वर्ष भोग्य हैं।।३।।

मुनयो मरीच्यादय: सप्तर्षयो युधिष्ठिरे पाण्डुतनये नृपतौ राजनि पृथ्वीं महीं शासति परिपालयति मघासु मघानक्षत्रेष्वासन्नध्यतिष्ठन्। तथा च वृद्धगर्ग:—

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरता: प्रजानां पालने रता:।।

तस्य च युधिष्ठिरस्य राज्ञ: षड्द्विकपञ्चद्वियुत: शककालो गत:। सहस्रद्वयेन पञ्चभि: शतै: षड्विंशत्यधिकै: २५२६ शकनृपकालो युक्त: कार्य:। एवं कृते यद्भवति तावद्वर्षवृन्दं वर्तमानकालं यावद् गतम्। तस्य च शतेन भागमाहत्य यदवाप्यते तानि नक्षत्राणि मघादीनि भुक्तानि यच्छेषं तानि वर्षाणि भुज्यमाने नक्षत्रे तेषां प्रविष्टानां गतानि। तानि च शताद्विशोध्य यदवशिष्यते तावन्त्येव वर्षाणि तस्मिन्नक्षत्रे स्थितानीति। लब्धनक्षत्राणामपि सप्तविंशत्या भागमपहत्यावशेषाङ्कसमं मघादिनक्षत्रं भुक्तमिति वाच्यम्।।३।।

अथ तेषां नक्षत्रभोगप्रमाणकालं नक्षत्रावस्थितिं चाह—

एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।
प्रागुदयतोऽप्यविवरादृजून्नयति तत्र संयुक्ता: ।।४।।

एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। जिस नक्षत्र के पूर्व दिशा में उदय होने पर सप्तर्षि-मण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। 'प्रागुत्तरश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका:।' ऐसा पाठ होने के फलस्वरूप ईशान कोण में सदा साध्वी अरुन्धती के साथ सप्तर्षि उदित होते हैं—ऐसा अर्थ समझना चाहिये।।४।।

ते मुनय एकैकस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे शतं शतं वर्षाणां चरन्ति। तथा च कश्यप:—

शतं शतं तु वर्षाणामेकैकस्मिन् महर्षय:।
नक्षत्रे निवसन्त्येते ससाध्वीका महातपा:।।

अविवरान्निरन्तरं प्रागुदयत: प्राक् पूर्वस्यां दिशि उदयतो यन्नक्षत्रं तेषामृजून्नयति स्पष्टतां सप्तर्षिपङ्क्त्या नयति तत्र तस्मिन्नक्षत्रे ते संयुक्ता: स्थिता इति। एतदुक्तं भवति—यस्य नक्षत्रस्य प्रागुदयत: सप्तर्षिपङ्क्ति: स्पष्टा भवति तस्मिन्नेव स्थिता इति। केचित् प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका इति पठन्ति। ते च प्रागुत्तरतश्चैशान्यां दिशि सदा सर्वकालं ससाध्वीका: सारुन्धतिका उदयन्ते।।४।।

अथ संस्थानलक्षणमाह—

पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ॥५॥
पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात्।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी ॥६॥

पूर्व दिशा में भगवान् मरीचि, उनसे पश्चिम में वशिष्ठ, वशिष्ठ से पश्चिम में अङ्गिरा, अङ्गिरा के बाद अत्रि, अत्रि के समीप पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद क्रतु— इस तरह पूर्व दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति रहती है और इनके मध्य में अरुन्धती वसिष्ठ के आश्रित है।।५-६।।

पूर्वे भागे पूर्वस्यां दिशि भगवान् मरीचिर्नाम महर्षिः स्थितः। अस्मान्मरीचेरपरे पश्चिमे भागे वसिष्ठः स्थितः। तस्य वसिष्ठस्यापरे अङ्गिराः स्थितः। ततस्तस्मादङ्गिरसोऽत्रिः स्थितः। तस्यात्रेरासन्नो निकटवर्ती पुलस्त्यश्च।

ततः पुलहस्ततः क्रतुरिति भगवान्। अनुक्रमेण परिपाट्या पूर्वाद्यात् पूर्वादित आसन्ना निकटस्थिताः। तत्र च तन्मध्ये अरुन्धती साध्वी सच्छीला मुनिवरं मुनिप्रधानं वसिष्ठमुपाश्रिता संश्रितेत्यर्थः।।५-६।।

अथैतैः शुभाशुभफलमाह—

उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः।
हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्ध्यै ॥७॥

उल्का, वज्र या धूम आदि से हत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प बिम्ब वाला सप्तर्षि मण्डल हो तो अपने-अपने वर्ग का नाश करता है तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने वर्ग की वृद्धि करता है।।७।।

एते मुनय उल्कया अशन्या धूमेन वा। आदिग्रहणाद्रजोनीहारपांशुभिर्हताः। तथा विवर्णाः कलुषाः। विरश्मयो विगतकिरणाः। ह्रस्वाः स्वल्पबिम्बाः स्वं स्वमात्मीयवर्गं वक्ष्यमाणं हन्युर्नाशयेयुः। तथा विपुला विस्तीर्णाः। स्निग्धा निर्मलाश्च तद्वृद्ध्यै स्ववर्गसिद्ध्ये भवन्ति। तथा च वृद्धगर्गः—

उल्कया केतुना वापि धूमेन रजसापि वा।
हता विवर्णाः स्वल्पा वा किरणैः परिवर्जिताः।।
स्वं स्वं वर्गं तदा हन्युर्मुनयः सर्व एव ते।
विपुलाः स्निग्धवर्णाश्च स्ववर्गपरिपोषकाः।। इति।।७।।

अथैतेषां स्ववर्गमाह—

गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम्।
पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च ॥८॥

शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः॥९॥

अङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः।
अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः॥१०॥

रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य।
पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः॥११॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
सप्तर्षिचाराध्यायस्त्रयोदशः॥१३॥

यदि मरीचि पीड़ित हों तो गन्धर्व, देव, राक्षस, मन्त्र, ओषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि वसिष्ठ पीड़ित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्बोज, तपस्वी और वनवासियों को पीड़ित करते हैं तथा किरणों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अङ्गिरा पीड़ित हों तो ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राह्मणों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अत्रि पीड़ित हों तो वन तथा जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियों को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलस्त्य पीड़ित हों तो राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और सर्पों को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलह पीड़ित हों तो मूल और फलों को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि क्रतु पीड़ित हों तो यज्ञ और यज्ञकर्ताओं को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।।८-११।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां सप्तर्षिचाराध्यायस्त्रयोदशः॥१३॥

गन्धर्वा अश्वमुखा नरदेवयोनयः। देवाः सुराः। दानवा दनुपुत्राः। मन्त्राः। औषधयः। सिद्धा देवयोनयः। यक्षाः। नागा एतेषां सर्वेषाम्। तथा विद्याधराणां देवयोनीनां मरीचिरुपतप्तः पीडाकरः। स्निग्धो विपुलश्च वृद्धिप्रदः।

शकयवनेति। शका जनाः। यवनाः। दरदाः। पारताः। काम्बोजाः। तापसाः तपोनिरताः। वनोपेता वनस्था एतान् वसिष्ठोऽभिहत उपतप्तो हन्ति। रश्मिसम्पन्नो निरुपहतो विवृद्धिदो वृद्धिप्रदः।

अङ्गिरस इति। ज्ञानयुता ज्ञानोपेताः। धीमन्तो बुद्धिमन्तः। ब्राह्मणा द्विजा। एते अङ्गिरसो विनिर्दिष्टाः कथिताः।

अत्रेरिति। कान्तारमटवी। तत्र भवो जन्म येषां ते कान्तारभवाः। जलजानि। जले यानि द्रव्याणि जायन्ते। अम्भोनिधिः समुद्रः। सरितो नद्यः। एते अत्रेः।

राक्षसाः। पिशाचाः। दानवाः। दैत्याः। भुजङ्गाः सर्पाः। एते पुलस्त्यस्य स्मृताः कथिताः। मूलफलं यत्किञ्चित्तत्तु पुलहस्य। यज्ञा मखाः। यज्ञभृतो यज्ञकर्तारः। तैः सह यज्ञाः क्रतोरिति। तथा च वृद्धगर्गः—

देवदानवगन्धर्वाः सिद्धपन्नगराक्षसाः।
नागा विद्याधराः सर्वे मरीचेः परिकीर्तिताः।।
यवनाः पारताश्चैव काम्बोजा दरदाः शकाः।
वसिष्ठस्य विनिर्दिष्टास्तापसा वनमाश्रिताः।।
धीमन्तो ब्राह्मणा ये च ज्ञानविज्ञानपारगाः।
रूपलावण्यसंयुक्ता मुनेरङ्गिरसः स्मृताः।।
कान्तारजास्तथाम्भोजा अत्रेर्ये सरिदाश्रिताः।
पिशाचा दानवा दैत्या भुजङ्गा राक्षसास्तथा।।
पुलस्त्यस्य विनिर्दिष्टाः पुष्पं मूलं फलं च यत्।
तत्सर्वं पुलहस्योक्तं यज्ञा यज्ञभृतश्च ये।।
क्रतोरेव विनिर्दिष्टा वेदज्ञा ब्राह्मणास्तथा।। इति।।८-११।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सप्तर्षि-चारो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

वराहमिहिराचार्यग्रहचारोदधौ कृते।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रे स्वार्थाय विवृतिप्लवम्।।

इति ग्रहचाराः समाप्ताः

अथ नक्षत्रकूर्मविभागाध्यायः

अथ नक्षत्रकूर्माध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रविभागमाह—

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
भारतवर्षे मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः ॥१॥

कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के एक-एक वर्ग द्वारा मेरु के दक्षिण भाग में स्थित भारतवर्ष को मध्यस्थित कल्पना करके तथा अन्य देशों को पूर्व आदि क्रम से रखकर नव भाग किये गये हैं।।१।।

नक्षत्रत्रयेण नववर्गास्तैर्नक्षत्रयवर्गैः। आग्नेयाद्यैः कृतिकाद्यैर्नवधा नवभिः प्रकारैर्व्यवस्थितैः। क्व भारतवर्षे। मेरोर्दक्षिणभागो भारतवर्षं तत्र व्यवस्थितैः। तत्र च मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः। मध्यदेशे मध्यभागे भारतवर्षेऽन्ये देशाः प्रागादिना पूर्वादिक्रमेण विभाजिता विभागेन स्थापिता वक्ष्यमाणविधानेनेति। तथा च गर्गः—

कृत्तिकाद्यैस्त्रिनक्षत्रैर्भवर्गैर्नवभिः क्षितिः।
कल्पिता मध्यदेशादौ प्रागादिक्रमयोगतः।।
कृत्तिकाद्यस्त्रिनक्षत्रो मध्यदेशे गणो यदा।
पापैरुपहतो हन्ति मध्यदेशाऽखिलांस्तदा।।
रौद्रादिको हन्ति पूर्वां सार्पाद्यः पूर्वदक्षिणाम्।
आर्यम्णाद्यस्तथा याम्यां स्वात्याद्यो दक्षिणापराम्।।
ज्येष्ठाद्यः पश्चिमामाशां वैश्वाद्यश्चापरोत्तराम्।
वारुण्याद्यो हन्ति सौम्यां पौष्णाद्यः शूलिनो दिशम्।। इति।।१।।

अथ मध्यदेशप्रविभागमाह—

भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिहानसंख्याताः ।
मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ॥२॥

माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च ।
गौरग्रीवोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥३॥

साकेतकङ्ककुरुकालकोटिकुकुराश्च पारियात्रनगः ।
औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥४॥

भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, साल्व, नीप, उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्स, घोष, यामुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, शौरग्रीव, उद्देहिक,

पाण्डु, गुड, अश्वत्थ, पाञ्चाल, साकेत, कंक, कुरु, कालकोटि, कुकुर, पारियात्र नग, औदुम्बर, कापिष्ठल और हस्तिनापुर—ये देश कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (भारतवर्ष) में स्थित हैं।।२-४।।

एते देशा मध्यदेशे प्रधानाः परिगणितास्तत्रैव कृत्तिकादिनक्षत्रत्रितयम्। तद्यथा देशास्तेषु च जनपदाः। भद्राः। अरिमेदाः। माण्डव्याः। साल्वाः। नीपाः। उज्जिहानाः। संख्याताः। मरुभूः। वत्साः। घोषो देशविशेषः। यामुनाः। सारस्वताः। मत्स्याः। माध्यमिकाः।

माथुरकाः। उपज्योतिषाः। धर्मारण्यं पुण्यक्षेत्रम्। शूरसेनाः। गौरग्रीवाः। उद्देहिकाः। पाण्डुगुडाः। अश्वत्थाः। पाञ्चालाः।

साकेतदेशः। कङ्काः। कुरवः। कालकोटिः। कुकुराश्च। पारियात्रो नगः पर्ततः। औदुम्बराः। कापिष्ठलाः। गजाह्वयो हस्तिनापुरमित्येवं प्रकारा मध्यमिदम्। मध्यदेशविभाग इत्यर्थः। तथा च भगवान् पराशरः—

'चत्वारिंशोत्तरं योजनसहस्रं जम्बूद्वीपस्तत्र पूर्वादापश्चिमार्णवमवगाढाः षणमहागिरयः। हिमवान् हेमकूटो निषधो नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च। शतं सहस्राणामितरेषां षष्टिसहस्राणि काञ्चनमयानां गिरीणां चत्वारिंशन्महानद्यश्चत्वार उदधयः। कुनदीनां षष्टिसहस्राणि या महार्णवमनुप्रविशन्ति। एकनवती राज्यानामेकोनशतं कुराज्यानां दश जाङ्गलानि मरवोऽष्टावशीतिः कच्छास्तावन्त एव द्वीपाः। पञ्च जनपदसहस्राणि। तत्र कृत्तिकादीनि त्रीणि मध्यदेशेऽस्मिन् वर्षे भवन्त्यार्द्रादीनि त्रीणि त्रीण्युक्तवर्जं क्रमात् पूर्वादिष्वष्टासु दिक्षु। दिङ्नक्षत्रेषूपसृष्टेषु दिग्जनपदानामेवोपतापो भवति। विशेषस्तु शूरसेनमगधकलिङ्गावन्तिसौवीरसैन्धवहाररभूतिमन्दकुणिन्दाधिपतीनाम्। अतः परं दिग्जनपदान् व्याख्यास्यामः।

अथ मध्यदेशे आर्यावर्त इति य आख्यायते तत्र जनपदाः—शूरसेनोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थनीपकाञ्चनकौरवोत्तमज्योतिषभद्रारिमेदमाध्यमिकसाल्वसाकेतमत्स्यकपिष्ठलचक्रदौलेपमाण्डव्यपाण्डुनगरगौरग्रीवपारियात्रिककुकुरराज्यौदुम्बरयामुनगजाह्वयोज्जिहानकालकोटिमाथुरोत्तरदक्षिणपाञ्चालकुरुक्षेत्ररुर्मारण्यसारस्वताः'।।२-४।।

अथ पूर्वस्यां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः ।
व्याघ्रमुखसुह्मकर्वटचान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च ।।५।।

खसमगधशिबिरगिरिमिथिलसमतटोड्राश्ववदनदन्तुरकाः ।
प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः ।।६।।

उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः ।
एकपदताम्रलिप्तककोशलका वर्धमानाश्च ।।७।।

अञ्जन, वृषभध्वज, पद्म और माल्यवान् गिरि, व्याघ्रमुख, सुह्म, कर्वट, चान्द्रपुर,

शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिला, समतट, ओड्र (उड़ीसा), अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्यौतिष, लौहित्य नद, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, भद्र, गौडक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तक, कोशलक, वर्धमान—ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं।।५-७।।

अथानन्तरं पूर्वस्यां दिशि देशप्रविभागः। तद्यथा—अञ्जनम्। वृषभध्वजः। पद्मम्। माल्यवान्। एते सर्व एव गिरयः पर्वताः। तथा व्याघ्रमुखा जनाः। सुह्माः। कर्वटाः। चन्द्रपुरं पत्तनं तत्र भवाश्चान्द्रपुराः। शूर्पकर्णा जनाः।

खसाः। मगधाख्यो देशः। शिबिरो गिरिः पर्वतः। मिथिलाख्यो देशः। समतटो देशः। उड्रा जनाः। अश्ववदनाः। दन्तुरकाः। प्राग्ज्योतिषः। लौहित्याख्यो नदः। क्षीरोदसमुद्रः। पुरुषादाः पुरुषभक्षा जनाः।

उदयगिरिः पर्वतः। भद्रा जनाः। गौडकाः। पौण्ड्रा जनाः। उत्कलाः। काशयः। मेकलाः। अम्बष्ठाः। एकपदाः। ताम्रलिप्तकाः। कोशलकाः। वर्धमानाश्चेति। एते आर्द्रादिके नक्षत्रत्रये देशाः। तथा च पराशरः—

'अथ पूर्वस्यां माल्यवच्छिबिराञ्जनपद्मवृषभध्वजोदयशिखरिदन्तुरकाः काशिकोशल-मिथिलमेकलोत्कलपुण्ड्रकर्वटसमतटोड्रगौडकभद्रद्रविडसुह्मताम्रलिप्तप्राग्ज्योतिषवर्द्धमान-वाजिमुखाम्बष्ठपुरुषादकर्णिकोष्ठाधिश्रोत्रव्याघ्रमुखलौहित्यार्णवक्षीरोदार्णवमीनाशनकिरात-सौवीरमहीधराविवसनैकपादोदयानुवासिनश्चे'ति।।५-७।।

अथाग्नेय्यां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

आग्नेय्यां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः।
शौलिकविदर्भवत्सान्ध्रचेदिकाश्चोर्ध्वकण्ठाश्च ॥८॥

वृषनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी।
श्मश्रुधरहेमकुड्यव्यालग्रीवा महाग्रीवाः ॥९॥

किष्किन्धकण्टकस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः।
सह नग्नपर्णशबरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशाः ॥१०॥

कोशल, कलिङ्ग, वंग, उपवंग, जठरांग, शौलिक, विदर्भ, वत्स, आन्ध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, वृष, नालिकेर, चर्मद्वीप, विन्ध्याचल के समीप, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल, निषादराष्ट्र, पुरिक, दाशार्ण, नग्नशबर, पर्णशबर—ये देश आश्लेषादि तीन नक्षत्रों के वर्ग (आग्नेय) में स्थित हैं।।८-१०।।

आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि देशप्रविभागः। तद्यथा—कोशला जनाः। कलिङ्गाः। वङ्गाः। उपवङ्गाः। जठराङ्गाः। शूलिकाः। विदर्भाः। वत्साः। अन्ध्राः। चेदिकाश्च। ऊर्ध्वकण्ठाश्च।

वृषः वृषस्थानम्। नालिकेरः। चर्मद्वीपः। विन्ध्यान्तवासिनः। विन्ध्यपर्वते ये निवसन्ति। त्रिपुरी नगरी। श्मश्रुधरा जनाः। हेमकुड्यं स्थानम्। व्यालग्रीवा जनाः। महाग्रीवाः।

किष्किन्धो देशः। कण्टकस्थलम्। निषादराष्ट्रम्। पुरिकाः। दाशार्णाः। नग्नशबराः। पर्णशबराः। एते प्रागुक्ताः सह नग्नपर्णशबरैः। एते देशा आश्लेषाद्ये नक्षत्रत्रिके ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अथ प्राग्दक्षिणस्यां विन्ध्यान्तवासिनश्चेदिवत्सदशार्णाङ्गवङ्गोपवङ्गकलिङ्गजठरपुण्ड्रशूलिकविदर्भनग्नपर्णशबरविन्ध्यक्षेत्रपुरपुरिककण्टकस्थलवृषद्वीपकौशलौर्ध्विककाम्बोजवर्मलूतकाककाचहेमकुड्यव्यालग्रीवश्मश्रुधरनालिकेरद्वीपकिष्किन्धाधिवासिनः'।।८-१०।।

अथ दक्षिणस्यां दिशि देशजनपदप्रविभागमाह—

अथ दक्षिणेन लङ्काकालाजिनसौरिकीर्णतालिकटाः।
गिरिनगरमलयदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यभरुकच्छाः ॥११॥

कङ्कटकङ्कणवनवासिशिबिकफणिकारकोङ्कणाभीराः।
आकरवेणावर्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥१२॥

कर्णाटमहाटविचित्रकूटनासिक्यकोल्लगिरिचोलाः।
क्रौञ्चद्वीपजटाधरकावेर्यो रिष्यमूकश्च ॥१३॥

वैदूर्यशङ्खमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः।
गणराज्यकृष्णवेल्लूरपिशिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥१४॥

तुम्बवनकार्मणयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः।
काञ्चीमरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः ॥१५॥

बलदेवपट्टनं दण्डकावनतिमिङ्गिलाशना भद्राः।
कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति विज्ञेयाः ॥१६॥

लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय पर्वत, दर्दुर, महेन्द्र, मालिन्द्य, भरूकच्छ, कंकट, कंकण, वनवासी, शिबिक, फणिकार, कोङ्कण, आभीर, आकर, वेण, आवर्त्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट पर्वत, नासिक्य देश, कोल्लगिरि, चोल, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरी नदी, ऋष्यमूक पर्वत, वैदूर्य, शंखमुक्ताकर देश, अत्र्याश्रम, वारिचर, धर्मपुर द्वीप, गणराज्य, कृष्णवेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि, कुसुम नग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिण समुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्टन, चेर्य, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पट्टन, दण्डकावन, तिमिङ्गिलाशन, भद्र, कच्छ, कुञ्जरदरी, ताम्रपर्णी— ये उत्तरफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (दक्षिण) में स्थित हैं।।११-१६।।

अथानन्तरं दक्षिणेन दक्षिणस्यां दिशि देशाः। तद्यथा—लङ्का। कालाजिनम्। सौरिकीर्णाः। तालिकटाः। गिरिनगरम्। मलयः पर्वतः। दर्दुरः। महेन्द्रः। मालिन्द्यः। एते पर्वताः। भरुकच्छा जनाः।

कङ्कटाः। कङ्कणाः। वनवासिनः। शिबिकाः। फणिकाराः। कोङ्कणाः। आभीराः। आकरः स्थानं यत्र सर्वद्रव्याणां परिच्छित्तिः क्रियते। वेणा नदी। आवर्तका जनाः। दशपुरम्। गोनर्दाः। केरलकाः।

कर्णाटः। महाटविः। चित्रकूटः पर्वतः। नासिक्यो देशः। कोल्लगिरिः। चोला जनपदाः। क्रौञ्चद्वीपो द्वीपविशेषः। जटाधरा जनाः। कावेरी नदी। रिष्यमूकः पर्वतः।

वैदूर्यशङ्खमुक्ता यत्रोत्पद्यन्ते। अत्रिः आश्रमस्थानं भगवतोऽत्रेः। वारिचरः। धर्मपट्टनम्। द्वीपाः। गणराज्यकृष्णवेल्लूरा राजानः। पिशिकाः। शूर्पाद्रिः पर्वतः। कुसुमनगः पर्वतः।

तुम्बवनम्। कार्मणेयकाः। याम्योदधिर्दक्षिणः समुद्रः। तापसाश्रमास्तापसानामाश्रमाः। ऋषिका जनाः। काञ्ची देशः। मरुचीपट्टनम्। चेर्यार्यकाः। सिंहलाः। ऋषभाः।

वलदेवपट्टनम्। दण्डकावनम्। तिमिङ्गिलाशनाः। भद्राः। कच्छः। अथानन्तरम्। कुञ्जरदरी हस्तिखण्डा। सताम्रपर्णी ताम्रपर्ण्या नद्या सहिता। इत्येवं प्रकारा देशा उत्तरफल्गुन्याद्ये त्रिके विज्ञेया ज्ञातव्याः। तथा च पराशरः—

'अथ दक्षिणस्यां विन्ध्यकुसुमापीडदर्दुरमहेन्द्रशूर्पवत्समलयमालिन्द्यावन्तिसाम्बवतिदशपुरैककच्छभरुकच्छर्द्धिवनवासोपगिरिभद्रगिरिनगरदण्डकगणराज्यत्रिराजककर्कोटकञ्चनतिमिङ्गिलाहाररिष्यमूकतापसाश्रमशङ्खमुक्ताप्रवालवैदूर्याकरोद्वक्त्रात्रिवारिचरार्णवचोलककौवेरकावेरिकपाशिकधर्मपट्टनपट्टिकाशकृष्णवेल्लूरताम्रपर्णनार्मदगोनर्दचाञ्चीकपट्टनतालिकटसौरिकीर्णसहकारिवेणातटतुम्बवनकालाजिनद्वीपकर्णिकारशिबिकोङ्कणचित्रकूटकर्णाटमहाटविकान्ध्रकोल्लगिरिनासिक्यकार्मणेयकावेर्वारुकवेधिनिकबलदेवपट्टनक्रौञ्चद्वीपसिंहलाः परमतदर्दुरमलयमरीचित्रकूठशिखरालंकृतालङ्कारशूर्पपर्वतकुञ्जरदरीसम्भोगवतिनृणां गिरिसाराश्रमाः'।।११-१६।।

अथ नैर्ऋत्यां दिशि देशप्रविभागमाह—

नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीराः ।
वडवामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्ताः ॥१७॥
फेणगिरियवनमार्गरकर्णप्रावेयपारशवशूद्राः ।
बर्बरकिरातखण्डक्रव्यादाभीरचञ्चूकाः ॥१८॥
हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रविडाः ।
स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्च महार्णवोऽत्रैव ॥१९॥

पह्लव, काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, अरव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, आनर्त, फेणगिरि, यवन, मार्गर, कर्णप्रावेय, पारशव, शूद्र, बर्बर, किरात, खण्डक्रव्याद, आभीर, चञ्चूक, हेमगिरि, सिन्धुनद, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर, द्रविड—ये देश स्वाति आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (नैर्ऋत्य कोण) में स्थित हैं।।१७-१९।।

नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि देशाः। तद्यथा—पह्लवाः। काम्बोजाः। सिन्धुसौवीराः। वडवामुखाः। अरवाः। अम्बष्ठाः। कपिलाः। नारीमुखाः। आनर्ताः।

फेणगिरिः। यवनाः। मार्गराः। कर्णप्रावेयाः। पारशवाः। शूद्राः। बर्बरा। किराताः। खण्डाः। क्रव्यादाः। आभीराः। चञ्चूकाः।

हेमगिरिः। सिन्धुर्नदः। कालकाः। रैवतकाः। सुराष्ट्राः। बादराः। द्रविडाः। अत्रैव नैर्ऋत्यां दिशि महार्णवो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एते स्वात्याद्ये भत्रितये स्वातिपूर्वके नक्षत्रत्रितये ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां सुराष्ट्रमहाराष्ट्रसिन्धुसौवीरशूद्राभीरद्रविडकनकखण्डसिन्धु-कालकफेणगिरिरैवतकनर्तकबाह्लीकयवनपह्लवमार्गरारवरथकाराम्बष्ठकालाजकर्णप्रवरगिरिवा-सिनोऽतः परं महार्णवोऽर्वकोपजोऽग्निर्वडवामुख' इति।।१७-१९।।

अथ पश्चिमायां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

अपरस्यां मणिमान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः।
अपरान्तकशान्तिकहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥२०॥

पञ्चनदरमठपारततारक्षितिजृङ्गवैश्यकनकशकाः।
निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥२१॥

मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, क्षुरार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रमठ, पारत, तारक्षिति, जृङ्ग, वैश्य, कनक, शक, अन्य मर्यादाहीन पश्चिम दिशा में निवास करने वाले म्लेच्छ जाति—ये सब ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पश्चिम) में स्थित हैं।।२०-२१।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि देशाः। तद्यथा—मणिमान् पर्वतः। मेघवान्। वनौघः। क्षुरार्पणः। अस्तगिरिः। अपरान्तकाः। शान्तिकाः। हैहयाः। प्रशस्ताद्रिः। वोक्काणाः।

पञ्चनदः। रमठः। पारतः। तारक्षितिः। जृङ्गाः। वैश्याः। कनकाः। शकाः। अन्ये च ये म्लेच्छा निर्मर्यादा मर्यादारहिताः। पश्चिमदिक्स्थिताः पश्चिमायां दिशि निवासिनस्ते सर्वेऽत्रैव ज्येष्ठाद्ये नक्षत्रत्रितये ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अथ पश्चिमायां दिशि मणिमान् क्षुरार्पणो मेघवान् वनौघः। चक्रवदस्तगिरिप्रशस्त-मण्डितारः। पञ्चनदकाशिब्रह्मवसतितारक्षितिपारतशान्तिकशिबिरमठजृङ्गिवायव्यगुडवासि-जहैहयसत्कङ्कताजिकहूणपार्श्वैर्वेतककवोक्काणाः। अन्ये च गिरिवनवासिनस्त्यक्तधर्म-दण्डमर्यादा म्लेच्छजातयः'।।२०-२१।।

अथ वायव्यां दिशि देशान् जनपदानाह—

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः।
अश्मककुलूतहलडाः स्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थाः ॥२२॥

वेणुमती फल्गुलुका गुलुहा मरुकुच्चचर्मरङ्गाख्याः ।
एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥२३॥

माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कुलूत, हलड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्थ, वेणुमती नदी, फल्गुलुका, गुलुहा, मरुकुच्छ, चर्मरङ्ग, एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव, आस्यकेश—ये सभी देश उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य कोण) में स्थित हैं।।२२-२३।।

पश्चिमोत्तरस्यां वायव्यां दिशि देशाः। तद्यथा—माण्डव्याः। तुषाराः। तालाः। हलाः। मद्राः। अश्मकाः। कुलूतदेशाः। हलडाः। स्त्रीराज्यम्। नृसिंहवनम्। खस्थाः।

वेणुमती नदी। फल्गुलुकाः। गुलुहाः। मरुकुच्चाः। चर्मरङ्गाख्याः। एकविलोचनाः। शूलिकाः। दीर्घग्रीवाः। दीर्घास्याः। दीर्घकेशाः। एते उत्तराषाढाद्ये त्रिके ज्ञेया देशाः। तथा च पराशरः—

'अथ पश्चिमोत्तरस्यां दिशि गिरिमतिवेणुमतिरलमतिफल्गुलुकमाण्डव्यैकनेत्रमरुकुच्चतुषारतालमल्लहलडहलातवर्दिलीनविलीनदीर्घकेशग्रीवान्याङ्गशरगविषवेषशूलिकगुलुहाः। परमतः स्त्रीराज्यमि'ति।।२२-२३।।

अथोत्तरस्यां दिशि देशप्रविभागमाह—

उत्तरतः कैलासो हिमवान् वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च ।
क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥२४॥

कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः ।
आदर्शान्तर्द्वीपित्रिगर्ततुरगाननाः श्वमुखाः ॥२५॥

केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः ।
तक्षशिलपुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥२६॥

अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः ।
माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः ॥२७॥

गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याश्च ।
यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधूर्ताश्च ॥२८॥

कैलाश, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्, क्रौञ्च, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, आग्नीध्र, आदर्श, आन्तर्द्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, श्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, शरधान, तक्षशील, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्डपिङ्गलक, माणहल, हूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवती नगरी, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय,

दासमेय, श्यामक, क्षेमधूर्त—ये सभी देश शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (उत्तर दिशा) में स्थित हैं।।२४-२८।।

उत्तरतः उत्तरस्यां दिशि देशाः। तद्यथा—कैलासः पर्वतः। हिमवान्। वसुमान् गिरिः। धनुष्मांश्च गिरिरेव। क्रौञ्चः। मेरुः। कुरवस्तथोत्तरा उत्तरकुरवः। क्षुद्रमीनाः।

कैकयाः। वसातयः। यामुनाः। भोगप्रस्थाः। अर्जुनायनाः। आग्नीध्राः। आदर्शाः। अन्तर्द्वीपिनः। त्रिगर्ताः। तुरगाननाः। श्वमुखाः।

केशधराः। चिपिटनासिकाः। दासेरकाः। वाटधानाः। शरधानाः। तक्षशिलाः शिलाः। पुष्कलावताः। कैलावताः। कण्ठधानाः।

अम्बरावताः। मद्रकाः। मालवाः। पौरवाः। कच्छाराः। दण्डपिङ्गलकाः। माणहलाः। हूणाः। कोहलाः। शीतकाः। माण्डव्याः। भूतपुराः।

गान्धाराः। यशोवति नगरी। हेमतालाः। राजन्याः। खचराः। गव्याः। दासमेयाः। श्यामाकाः। क्षेमधूर्ताः। एते शतभिषगाद्ये नक्षत्रत्रये देशाः। तथा च पराशरः-

'अथोत्तरस्यां हिमवान् क्रौञ्चो मधुमान् कैलासो वसुमानुत्तरोत्तरस्यां मद्रपौरवयौधेयमालवशूरसेनराजन्यार्जुनायनत्रैगर्तकैकयक्षुद्रमाचेलूकमत्स्यवसातिदर्भफलाफलप्रस्तलक्षेमधूर्त्ताशाकलदाशधानहव्यमुरदण्डगव्यशरधानदासेरकवाटधानान्तर्द्वीपिगान्धारववन्धिषुवास्तुतक्षशिलालवणवतिपुष्कलावतियशोवतिमणिवतिश्यामाकखचरकोहलकनगरशरभूतपुरकैरातकादर्शकान्तारदण्डपिङ्गलमाण्डव्ययामुनेयमाणहलहूणहेमतालाश्वमुखा हिमवद्वसुमत्कैलासक्रौञ्चात् परमभिजना' इति।।२४-२८।।

अथैशान्यां प्रविभागमाह—

ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः ।
अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्राः ॥२९॥

ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरातचीनकौणिन्दाः ।
भल्लाः पटोलजटासुरकुनटखसघोषकुचिकाख्याः ॥३०॥

एकचरणानुविद्धाः सुवर्णभूर्वसुधनं दिविष्ठाश्च ।
पौरवचीरनिवासित्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगान्धर्वाः ॥३१॥

मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्ल, पटोल, जटासुर, कुनट, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविद्ध, सुवर्णभू, वसुधन, दिविष्ट, पौरव, चीरनिवासी, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि, गन्धर्व—ये सभी देश रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (ईशान कोण) में स्थित हैं।।२९-३१।।

ऐशान्यां दिशि देशाः। तद्यथा—मेरुकः। नष्टराज्यम्। पशुपालाः। कीराः। काश्मीराः।

अभिसाराः। दरदाः। तङ्गणाः। कुलूतदेशाः। सैरिन्ध्राः। वनराष्ट्राः।

ब्रह्मपुरम्। दार्वाः। डामराः। वनराज्यम्। किराताः। चीनाः। कौणिन्दाः। भल्लाः। पटोलदेशाः। जटासुराः। कुनटाः। खसाः। घोषाः। कुचिकाख्याः।

एकचरणाः। अनुविद्धाः। सुवर्णभूः। वसुधनम्। दिविष्ठाश्च। पौरवाः। चीरनिवासिनः। त्रिनेत्राः। मुञ्जाद्रिः। गान्धर्वाः। एते रेवत्याद्ये त्रिके देशाः। तथा च पराशरः—

'अथ प्रागुत्तरस्यां कौलूतब्रह्मपुरकुणिन्ददिवादिनपारतनष्टराज्यवनराष्ट्रवैमकैणभल्लसिंहपुरचामरतङ्गणसार्यकपर्वतककाश्मीरदरददर्वाभिमुरजटासुरपटोलसैरिन्ध्रकुचिन्तनकिरातपशुपालचीनसुवर्णभूमिदेवस्थलदेवोद्यानानि'।

एतदाचार्येण समाससंहितायां स्पष्टतरमुक्तम्। तथा च—

भत्रयमाग्नेयाद्यं मध्यं प्राक्प्रभृति च प्रदक्षिणतः।
कथयामि प्रविभागं रौद्रात् प्रागादिदेशानाम्॥
मध्यमुदक्पाञ्चाला वङ्गा यमुनान्तरं कुरुक्षेत्रम्।
उदगपि च पारियात्रात् परमथवाऽयोग्यमत्स्याश्च॥
सारस्वतयामुनवत्सघोषसंख्याननीपमाण्डव्याः।
भद्रारिमोदनैमिषसाल्वोपज्योतिषाश्ववत्थाः॥
औदुम्बरोऽथ कुकुरोज्जिहानगजसाह्वकङ्कपाण्डुगुडाः।
माध्यमिकोद्देहिककालकोटिकापिष्ठलाश्चेति॥
मध्येऽयं प्रविभागः शेषर्क्षाणां तथादिशेद्देशान्।
प्रख्यातदेशमध्यानन्यांश्चैवाभिधास्यामि॥
आर्द्रादिकाशिकोशलमिथिलोत्कलवर्धमानपाण्ड्योड्राः।
लौहित्यमगधसमतटमेककलाम्बष्ठताम्रलिप्ताख्याः॥
आश्लेषाद्ये त्रिपुरी निषादराष्ट्राणि चेदिकदशार्णाः।
शूलिकविन्ध्यान्तःस्था वत्सान्ध्रविदर्भकालिङ्गाः॥
आर्यम्णाद्ये चैदिककोङ्कणवनवासिकोल्लगिरिमलयाः।
उज्जयिनीभरुकच्छा दिशा च याम्यार्णवो यावत्॥
स्वात्याद्ये सिन्धुसौवीरकापिलवनितास्यमार्गरानर्ताः।
बर्बरयवनसुराष्ट्रककाम्बोजद्रविडरैवतकाः॥
ज्येष्ठादितोऽपरान्तकशकहैहयजृङ्गपाञ्चनदकतकाः।
निर्मर्यादा म्लेच्छाः शान्तिकवोक्काणवैश्याश्च॥
विश्वेश्वरादिशूलिकतालतुषारैकनेत्रमाण्डव्याः।
स्त्रीराज्यचर्मरङ्गाश्मकलडहारुहकफाल्गुलुकाः॥
शतभिषगाद्ये केकयगान्धारादर्शयामुनाग्नीध्राः।
दासेयचिपिटनासार्जुनायना दण्डपिङ्गलकाः॥

पौष्णाद्ये काश्मीरत्रिगर्तदरदाभिसारचीनखसाः।
तङ्गणकिरातकीरा ब्रह्मपुरजटासुराश्चेति।। इति।।२९-३१।।

कृत्तिकाद्यैः प्रयोजनमाह—

वर्गैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः।
पाञ्चालो मागधिकः कालिङ्गश्च क्षयं यान्ति ॥३२॥

आवन्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति सिन्धुसौवीरः।
राजा च हारहौरो मद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥३३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्र-
कूर्मविभागाध्यायश्चतुर्दशः ॥१४॥

आग्नेय आदि नव वर्ग पापग्रह से पीड़ित हों तो क्रम से पाञ्चाल, मगध, कलिङ्ग, अवन्ती, आनर्त्त, सिन्धु, सौवीर, हारहौर, मद्र और कौलिन्द देश के राजाओं का नाश होता है।।३२-३३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां नक्षत्रकूर्मविभागाध्यायश्चतुर्दशः ॥१४॥

आग्नेयाद्यैः कृत्तिकाद्यैर्वर्गैः। क्रूरग्रहपीडितैः। क्रूरैरादित्याङ्गारकशनैश्चरैः पीडितैः। क्रमेण परिपाट्या। एते नृपा राजानः क्षयं नाशं यान्ति। तद्यथा—कृत्तिकाद्ये पाञ्चालः। आर्द्राद्ये मागधिकः। आश्लेषाद्ये कालिङ्गश्च। आर्यम्णाद्ये आवन्तः। स्वात्याद्ये आनर्तः। अथशब्द आनन्तर्ये। ज्येष्ठाद्ये सिन्धुसौवीरो मृत्युं मरणं चायाति प्राप्नोति। उत्तराषाढाद्ये राजा हारहौरः। शतभिषगाद्ये मद्रेशो मद्राधिपः। रेवत्याद्ये अन्यश्चापरः कौणिन्द इति।।३३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्र-
कूर्मो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ नक्षत्रव्यूहाध्यायः

अथ नक्षत्रव्यूहो व्याख्यायते। कस्मिन्नक्षत्रे के पदार्था आश्रिता इत्येतद्यत्र निरूप्यते स नक्षत्रव्यूहः। तत्रादावेव कृत्तिकायामाह—

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः।
आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥१॥

श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राह्मण, कुम्भार, पुरोहित, ज्यौतिष—ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१।।

सितकुसुमानि श्वेतपुष्पाणि। आहिताग्निराहित आरोपितोऽग्निर्येन अग्नित्रयोपचारकाः। मन्त्रज्ञा मन्त्रविदः। एवं सूत्रज्ञा यज्ञशास्त्रविदः। भाष्यज्ञा वैयाकरणाः। आकरः अर्थोत्पत्ति-स्थानम्, तत्र नियुक्त आकरिकः। नापितः श्मश्रुकर्मकरः। द्विजो ब्राह्मणः। घटकारः कुम्भकारः। पुरोहितः पुरोधाः। अब्दज्ञो ज्यौतिषिकः। एते आग्नेये कृत्तिकायां समाश्रिताः।।१।।

अथ रोहिण्यामाह—

रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥२॥

सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत—ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।।२।।

सुव्रताः शोभनव्रताः। पण्याः पण्यवृत्तयः। भूपा राजानः। धनिनः। योगयुक्ता योग-रताः। शाकटिकाः शकटजीविनः। गावः। वृषा दान्ताः। जलचराः प्राणिनः। कर्षकाः कृषिकराः। शिलोच्चयाः पर्वताः। ऐश्वर्यसम्पन्ना ऐश्वर्ययुक्ताः। एते रोहिण्यामाश्रिताः।।२।।

अथ मृगशिरस्याह—

मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहङ्गाः।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥३॥

सुगन्धियुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक—ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं।।३।।

सुरभीणि सुगन्धद्रव्याणि। वस्त्राण्यम्बराणि। अब्जं यत्किञ्चिज्जलोद्भवम्। कुसु-मानि पुष्पाणि। फलानि प्रसिद्धान्याम्रादीनि। रत्नानीन्द्रनीलप्रभृतीनि। वनचरा वनवासिनः।

विहङ्गाः पक्षिणः। मृगा अरण्यप्राणिनः। सोमपीथयः सोमपाः। गान्धर्वा गेयज्ञाः। कामुकाः कामिनः। लेखहारा लेखवाहाः। एते सर्व एव मृगशिरसि।।३।।

अथार्द्रायामाह—

रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरताः।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः ।।४।।

वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले, अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले—ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।४।।

वधरता घातकाः। बन्धरताः प्राणिनां ये बन्धं कुर्वन्ति। अनृतरता असत्यभाषिणः। परदाररताः परस्त्रीषु सक्ताः। स्तेयरताश्चौराः। शठाः परकार्यविमुखाः। तथा चोक्तम्—

मनसा वचसा यश्च दृश्यतेऽकार्यतत्परः।
कर्मणा विपरीतश्च स शठः सद्भिरिष्यते।।

तस्य भावः शाठ्यम्। तत्र ये रताः। एकीभूतानां पदार्थानां पृथक्करणं भेदाः। तत्र ये रताः। तुषधान्यं शालयः। तीक्ष्णाः क्रूराः। मन्त्रज्ञा मन्त्रविदः। अभिचारज्ञा वशीकरणादिकर्मविदः। वेतालकर्मज्ञा वेतालोत्थापनविद्यास्वभिज्ञाः। एते सर्वे रौद्रे आर्द्रायाम्।।४।।

अथ पुनर्वसावाह—

आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः।
उत्तमधान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ।।५।।

सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी—ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।५।।

सत्ययुताः सत्यभाषिणः। औदार्ययुता दानशीलाः। शौचयुताः शुद्धा परधनादिष्वलुब्धाः। कुलयुताः कुलीनाः। रूपयुताः सुरूपाः। धीयुता बुद्धिमन्तः। यशोयुता यशस्विनः। अर्थयुता धनिनः। उत्तमधान्यं कलमशाल्यादि। वणिजः किराटाः। सेवाभिरताः सेवकाः। ते च सशिल्पिजनाः शिल्पिजनैः कुम्भकारप्रभृतिभिः सहिताः। एते सर्व एवाऽऽदित्ये पुनर्वसौ।।५।।

अथ पुष्ये आह—

पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपाः।
सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ।।६।।

यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले

(धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)—ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं।।६।।

यवाः। गोधूमाः। शालयो धान्यानि। इक्षवः। वनान्यरण्यानि। मन्त्रिणः सचिवाः। भूपा राजानः। सलिलोपजीविनः सलिलं जलं तेनोपजीवन्ति तेनैवार्जनं ये कुर्वन्ति धीवरप्रायाः। साधवश्च सज्जनाः। यज्ञसक्ता यागेष्वनुरक्ताः। इष्टयः पुत्रकाम्यादयः, तासु च ये सक्ता निरताः। एते सर्व एव पुष्ये।।६।।

अथाऽऽश्लेषायामाह—

अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥७॥

कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने वाले—ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।७।।

कृत्रिमाणि द्रव्याणि यानि युक्त्या क्रियन्ते। यन्मूलमेव बीजं स कन्दः। केचिद-भिनवाङ्कुरमिच्छन्ति। मूलानि प्रसिद्धानि। फलानि च प्रसिद्धान्येव। कीटाः कृमिजातयः। पन्नगाः सर्पाः। विषं प्रसिद्धम्। परधनहरणे ये अभिरताः सक्ताः। तुषधान्यं शालयः। सर्वभिषजो निःशेषाः शल्यहर्तृशालाकिकाः कायचिकित्सकादयः। एते सर्व एवाहिदेवे आश्लेषायाम्।।७।।

अथ मघायामाह—

पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः।
पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥८॥

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी, स्त्रीद्वेषी—ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।८।।

धनधान्याढ्या वित्तशालिबहुलाः। कोष्ठागाराणि विपुलग्रामाः। पर्वताश्रयिणः पर्वतनिवासिनः। पितृभक्ताः पितृणां पूजाभिरताः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। शूराः संग्रामप्रियाः। क्रव्यादा मांसाशिनः, पक्वमपक्वं वा मांसमश्नन्ति। स्त्रीणां द्विषो ये मनुजा मनुष्याः। एते सर्व एव पित्र्ये मघायाम्।।८।।

अथ पूर्वफल्गुन्यामाह—

प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि।
कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥९॥

नाचने वाले, स्त्रियाँ, सबों के प्रिय, गानविद्या को जानने वाले, शिल्पी, विक्रय या क्रय-द्रव्य, कार्पास (रुई), नमक, शहद, तेल, बालक—ये सभी पदार्थ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रगत हैं।।९।।

नटा ये नृत्यन्ति। युवतयः स्त्रियः। सुभगाः सर्वजनवल्लभाः। गान्धर्वा गेयप्रवीणाः। शिल्पिनश्चित्रकारप्रभृतयः। पण्यं यत्किञ्चिद्विक्रयद्रव्यं क्रेयं वा। कर्पासः प्रसिद्धः। लवणं सैन्धवम्। माक्षिकं क्षौद्रम्। तैलं तिलतैलम्। एतानि। तथा कुमारका बालकाः। एते सर्व एव प्राक्फल्गुनीषु पूर्वफल्गुन्याम्।।९।।

अथोत्तरफल्गुन्यामाह—

आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः ।
शोभनधान्यमहाधनकर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥१०॥

कोमल हृदय वाले, शुद्ध (दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), नीतिज्ञ, पाखण्डी (वेदनिन्दक), दानी, शास्त्रों में निरत, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत राजा—ये सब उत्तरफल्गुनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१०।।

मार्दवरता मृदुभावसमेताः। शौचरताः शुद्धाः परधनादिष्वलुब्धाः। विनयरता नीतिज्ञाः। पाखण्डिनो वेदबाह्यास्तेषु ये रताः सक्ताः। दानरता दानसक्ताः। शास्त्ररताः पठनशीलाः। शोभनं धान्यं कलमशाल्यादि। महाधना अतिधनिनः। कर्मानुरताः कर्मस्वतिसक्ताः। ते च समनुजेन्द्रा मनुजेन्द्रैर्नृपैः सहिताः। एते सर्व एवाऽऽर्यम्णे उत्तरफल्गुन्याम्।।१०।।

अथ हस्त आह—

हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि ।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ॥११॥

चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्तिसाधनपति, शिल्पी, क्रय-विक्रय द्रव्य, भूसी वाले धान्य, सुनने वाले, वणिक्, तेजस्वी—ये सब हस्त नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।११।।

तस्कराश्चौराः। कुञ्जरा हस्तिनः। रथिका रथेन गन्त्र्यादिना ये गच्छन्ति। महामात्रा हस्तिसाधनपतयः। शिल्पिनश्चित्रकारप्रभृतयः। पण्यं यत्किञ्चिद्विक्रयद्रव्यम्। तुषधान्यं शालयः। श्रुतयुक्ताः श्रुताभिनिरताः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। तेजोयुतास्तेजस्विनः। अत्रास्मिन् हस्ते सर्व एवैते।।११।।

अथ चित्रायामाह—

त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः ।
गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥१२॥

अलंकार को जानने वाले, मणि के लक्षण को जानने वाले, रागज्ञ (रंगरेज), लेखक, गान विद्या को जानने वाले, सुगन्धियुत द्रव्य बनाने वाले, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्ररोगचिकित्सक, राजा के उपयोगी धान्य—ये सब चित्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१२।।

भूषणज्ञा अलङ्कारादिषु कुशलाः। मणिज्ञा मणिलक्षणज्ञाः। रागज्ञा यैर्वस्त्रादिषु रागः क्रियते। लेख्यज्ञा लिपिवेत्तारः। गान्धर्वज्ञा गीतविदः। गन्धयुक्तिज्ञा बहुभिर्द्रव्यै-

र्मिश्रितैर्विशिष्टतरं सुगन्धद्रव्यं ये उत्पादयन्ति। गणितपटवो गणितदक्षाः। तन्तुवायाः कौलिकाः। शालाक्या अक्षिरोगचिकित्सकाः। राजधान्यं राजोपयोगि यद्धान्यं षष्टिकादि। एतत्सर्वं त्वाष्ट्रे चित्रायाम्।।१२।।

अथ स्वातावाह—

स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि।
अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥१३॥

पक्षी, मृग, अश्व, खरीदने-बेचने वाले, धान्य, छोटे जन्तु, तपस्वी, क्रय-विक्रय में कुशल—ये सब स्वाती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१३।।

खगाः पक्षिणः। मृगा अरण्यप्राणिनः। तुरगा अश्वाः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। धान्यानि शालयः। वातबहुलानि चणकप्रभृतीनि। अस्थिरसौहृदः अस्थिरमित्राणि। लघुसत्त्वा अल्पसत्त्वाः। तापसास्तपोनिरताः। पण्यकुशलाः पण्यप्रवीणाः। केचिद्वन्यकुशला इति पठन्ति। वने भवा वन्यास्तेषु कुशलाः। एते सर्व एव स्वातौ।।१३।।

अथ विशाखायामाह—

इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः।
कर्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥१४॥

रक्त पुष्प, रक्त फल, वृक्ष, तिल, मूंग, कपास (रुई), चना, इन्द्र के भक्त, अग्निभक्त—ये सब विशाखा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१४।।

रक्तपुष्पा लोहितपुष्पा रक्तफलाश्च ये शाखिनो वृक्षास्ते च सतिलमुद्गाः तिलैर्मुद्गैश्च सहिताः। कर्पासाः प्रसिद्धाः। माषाश्चणकाश्च प्रसिद्धा एव। ये पुरन्दरस्येन्द्रस्य हुताशस्याग्नेर्भक्ता अनुरक्ताः। एते एर्व एवेन्द्राग्निदैवते विशाखायाम्।।१४।।

अथाऽनुराधायामाह—

मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम् ॥१५॥

बली, समूहों में प्रधान, साधुओं के भक्त, संघ में बैठने वाले, वाहन से चलने वाले, जनपदों के साधु, शारदीय धान्य आदि—ये सब अनुराधा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।। १५।।

शौर्यसमेता बलसंयुक्ताः। गणनायका गणप्रधानाः। साधूनां ये रताः। गोष्ठिरता नर्मसक्ताः। यानरता वाहनसक्ता गमनसक्ता वा। ये च लोके जनपदे साधवः सज्जनाः। शरत्समुत्पन्नं शारदं सर्वमशेषं यत्किञ्चिद्धान्यादि। एतन्मैत्रेऽनुराधायाम्।।१५।।

अथ ज्येष्ठायामाह—

पौरन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥१६॥

अति शूर, कुलीन, धनी, यशस्वी, दूसरे के धन का अपहरण करने वाले, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले राजा, सेनापति—ये सब ज्येष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१६।।

अतिशूरा अतिसंग्रामधीराः। कुलेनाभिजनेन वित्तेन धनेन यशसा कीर्त्या ये अन्विताः संयुक्ताः। परस्वहतः परधनहन्तारः। ये च नरेन्द्रा राजानो विजिगीषवः परान् जेतुमिच्छवः। ये च सेनानां नेतारः सेनापतयः। एते सर्व एव पौरन्दरे ज्येष्ठायाम्।।१६।।

अथ मूल आह—

मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः ।
बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्तन्ते ॥१७॥

औषध, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल और फल से आजीविका चलाने वाले, नव प्रकार के बीज, अतिधनी, फलाहारी, कन्दाहारी—ये सब मूल नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१७।।

भेषजमौषधम्। भिषजो वैद्याः। गणमुख्याः समूहप्रधानाः। कुसुममूलफलवार्ताः। कुसुमानि पुष्पाणि, मूलानि फलानि च वार्ता वृत्तिर्येषाम्। बीजानि सर्वाणि यान्युप्यन्ते। ये चातिधनयुक्ताः प्रभूतवित्तसमन्विताः। ये च फलमूलैर्वर्तन्ते जीवन्ति। ते सर्व एव मूले।।१७।।

अथ पूर्वाषाढायामाह—

आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः ।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्बुजातानि ॥१८॥

कोमल हृदय वाले, जल-मार्ग से चलने वाले (धीवर, जल में रहने वाले प्राणी आदि), सत्य भाषण करने वाले, दूसरे के धन आदि को नहीं चाहने वाले, धनी, पुल बनाने वाले, जल से आजीविका चलाने वाले, जल से उत्पन्न फल और पुष्प—ये सब पूर्वाषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१८।।

मृदवो मार्दवयुक्ताः। जलमार्गगामिनो जलमार्गेण ये गच्छन्ति ते जलमार्गगामिनो धीवरा जलप्राणिनश्च। सत्ययुक्ताः सत्यभाषिणः। शौचयुक्ताः परधनादिष्वलुब्धाः। धनयुक्ता ईश्वराः। सेतुकराः सेतुं ये कुर्वन्ति। वारिजीवका वारिणा जलेन ये जीवन्ति तेनैवार्थार्जनं कुर्वन्ति। यानि चाम्बुजातानि जलसम्भूतानि फलानि कुसुमानि च। ते सर्व एवाऽऽप्ये पूर्वाषाढायाम्।।१८।।

अथोत्तराषाढायामाह—

विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवतासक्ताः ।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये तेजसा युक्ताः ॥१९॥

महामात्र (मुख्य मन्त्री = 'महामात्राः प्रधानानि' इत्यमरः), मल्ल, बाहुयुद्ध में कुशल, हाथी, घोड़ा, देवताओं के भक्त, स्थावर (वृक्ष आदि), युद्ध में कुशल, भोगी, तेजस्वी—ये सब उत्तराषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१९।।

महामात्रा हस्तिसाधनपतयः। मल्ला बाहुयुद्धज्ञाः। करिणो हस्तिनः। तुरगा अश्वाः। देवतासक्ता देवताभक्ताः। स्थावरा वृक्षादयः। योधा युद्धकुशलाः। भोगान्विता भोगसमेताः। ये च जनास्तेजसा युक्तास्तेजस्विनः। ते सर्व एव विश्वेश्वर उत्तराषाढायाम्।।१९।।

अथ श्रवण आह—

श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः।
उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ॥२०॥

मायापटु (मायावी, प्रपञ्ची), सदा सब कामों को करने में उद्यत, उत्साही, धर्मी, भगवान् के भक्त, सत्य भाषण करने वाले—ये सब श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२०।।

मायापटवो मायाविनः प्रपञ्चकुशलाः नित्योद्युक्ताः सर्वकालं सोद्यमाः कर्मसु व्यापारेषु समर्थाः सक्ताः। उत्साहिनः सोत्साहाः। सधर्मा धर्मसंयुक्ताः। भागवता भगवद्भक्ताः। सत्यवचनाः सत्यभाषिणः। एते सर्व एव श्रवणे।।२०।।

अथ धनिष्ठायामाह—

वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाचलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुताः शमपराश्च नराः ॥२१॥

अहङ्काररहित, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाले, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी, जितेन्द्रिय—ये सब धनिष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२१।।

मानोन्मुक्ता मानवर्जिता निरहङ्काराः। क्लीबाः षण्ढाः अचलसौहृदाः स्थिरमैत्राः। स्त्रियां द्वेष्याः स्त्रीष्वप्रियाः। दानाभिरता दानशीलाः। बहुवित्तसंयुताः प्रभूतधनान्विताः। ये च नरा मनुष्याः शमपरा जितेन्द्रियाः। एते सर्व एव वसुभे धनिष्ठायाम्।। २१।।

अथ शतभिषज्याह—

वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचराजीवाः।
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥२२॥

पाशिक (जाल से प्राणियों को मारने वाले), मछली मारने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले सभी द्रव्य, जलचर जन्तुओं से आजीविका चलाने वाले, सूअर को रखने वाले (डोम आदि), धोबी, मद्य बेचने वाले (कलवार आदि), पक्षियों को मारने वाले—ये सब शतभिषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२२।।

पाशिकाः। पाशा बन्धनरज्जवः। पाशैः प्राणिनो बध्नन्तीति पाशिकाः। मत्स्यबन्धो मत्स्यान् मीनान् बध्नाति यः। जलजानि जलोद्भवानि सर्वद्रव्याणि मुक्ताफलादीनि। जलचराजीवाः। जलचरैर्मत्स्यादिभिर्ये आजीवन्ति। सौकरिकाः। सूकरान् वराहान् ये बध्नन्ति। रजका वस्त्ररागकर्तारः। शौण्डिकाः पानसक्ताः। शाकुनिकाः शकुनीन् घ्नन्तीति शाकुनिकाः पक्षिघातिनः। एते सर्व एवास्मिन् वर्गे वरुणेशे शतभिषजि।।२२।।

अथ पूर्वभद्रपदायामाह—

आजे तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः ।
धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः ॥२३॥

चोर, पशुपालक, क्रूर, कीनाश (क्षुद्र = 'कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रकर्षकयोस्त्रिषु' इत्यमरः), नीच जन, शठ (परोपकार से विमुख), विधर्मी, व्रतों से रहित, बाहु-युद्ध को जानने वाले—ये सब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२३।।

तस्कराश्चौराः। पशुपालाः छागादिषु रक्षकाः। हिंस्राः क्रूराः। कीनाशाः कदर्याः। नीचा अधमकर्मकराः। शठचेष्टाः शठः परकार्यविमुखस्तस्यैव चेष्टा येषां ते शठचेष्टाः। धर्मव्रतैर्विरहिता धर्मविवर्जिताः। व्रतैः कृच्छ्रपराकैश्चान्द्रायणादिभिश्च वर्जिताः। ये च मनुजा मनुष्या नियुद्धकुशला बाहुयुद्धज्ञाः। एते सर्व एवाऽऽजे पूर्वभद्रपदायाम्।।२३।।

अथोत्तरभद्रपदायामाह—

आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः ।
आश्रमिणः पाखण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ॥२४॥

ब्राह्मण, यज्ञ करने वाले, दानी, तपस्वी, अति धनी, आश्रमी (चतुर्थाश्रम में रहने वाले), पाखण्डी (वेदनिन्दक), राजा, उत्तम धान्य—ये सब उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।। २४।।

विप्रा द्विजाः। क्रतुर्यज्ञः। दानं सत्पात्रेष्वर्थप्रतिपादनम्। तपो व्रतानुसेवनम्। एतैर्युताः समन्विताः। महाविभवा अत्यैश्वर्ययुक्ताः। आश्रमिणश्चतुर्थाश्रमिणः। पाखण्डा वेदबाह्याः। नरेश्वरा राजानः। सारधान्यं श्रेष्ठाः शालयः। एतत्सर्वमेवाहिर्बुध्न्ये उत्तर-भद्रपदायाम्।।२४।।

अथ रेवत्यामाह—

पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानि ।
सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च ॥२५॥

जल से उत्पन्न होने वाले द्रव्य, फल और फूल, नमक, रत्न, शङ्ख, मोती, कमल आदि सुगन्धयुक्त फूल, सुगन्धियुत द्रव्य, खरीदने-बेचने वाले, नाविक—ये सभी रेवती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२५।।

सलिलजानि जलोद्भवानि यानि द्रव्याणि मृणालादीनि यानि च फलानि। तथा कुसुमानि पुष्पाणि। लवणं सैन्धवम्। मणयो रत्नानि। शङ्खः प्रसिद्धः। मौक्तिकं मुक्ताफलानि। अब्जानि पद्मप्रभृतीनि। सुरभि सुगन्धद्रव्यम्। कुसुमानि। अथवा सुरभीणि सुगन्धानि कुसुमानि। गन्धाः सुगन्धद्रव्याणि। वणिजः क्रयविक्रयिणः। नौकर्णधारा नाविकाः। एते सर्व एव पौष्णे रेवत्याम्।।२५।।

अथाश्विन्यामाह—

अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः ।
तुरगारोहा वणिजो रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥२६॥

घोड़े को चुराने वाले, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाले, खरीदने-बेचने वाले, सुन्दर, अश्वरक्षक—ये सब अश्विनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२६।।

अश्वहरा अश्वग्राहकाः। सेनापतयश्चमूनाथाः। वैद्याः कायचिकित्सकाः। सेवकाः सेवानिरताः। तुरगा अश्वाः। तुरगारोहा अश्वगामिनः। वणिजः किराताः क्रयविक्रयनिरताः रूपोपेताः रूपसम्पन्नाः सुरूपाः। तुरगरक्षा अश्वपतयः। एते सर्व एवाऽश्विन्याम्।।२६।।

अथ भरण्यामाह—

याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः ।
तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥२७॥

रक्तमिश्रित मांस खाने वाले, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाले, भूसी वाले धान्य, नीच कुल में उत्पन्न, उदारता आदि गुणों से रहित—ये सब भरणी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२७।।

असृग्रक्तं पिशितं मांसं तद्भुञ्जते ये तेऽसृक्पिशितभुजो रक्तमांसादाः। क्रूराः उग्राः। वधे मारणे बन्धे बन्धने ताडने कुट्टने चासक्ता रताः। तुषधान्यं शालयः। नीचकुलोद्भवा निकृष्टवंशजाताः। ये च सत्त्वेनौदार्येण विहीना रहिताः। एते सर्व एव याम्ये भरण्याम्।।२७।।

अधुना जातिनक्षत्राण्याह—

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥२८॥

आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति तानि ।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥२९॥

सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥३०॥

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका ब्राह्मणों के; उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्य क्षत्रियों के; रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी वैश्यों के; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् और अश्विनी क्रय-विक्रय करने वालों के; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा क्रूर मनुष्यों के; मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा सेवकों के तथा आश्लेषा, विशाखा, श्रवणा और भरणी नक्षत्र चाण्डालों के स्वामी होते हैं।।२८-३०।।

पूर्वात्रयं पूर्वफल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वभद्रपदेति। एतच्च सानलमनलेन कृत्तिकया सहितम्। एतन्नक्षत्रचतुष्टयमग्रजानां ब्राह्मणानाम्। पुष्येण सहोत्तराणि राज्ञां पुष्यमुत्तरात्र-

यमुत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदा इति। एतद्राज्ञां क्षत्रियाणां नक्षत्रचतुष्टयम्। सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं चेति। मैत्रमनुराधा। सपौष्णं पौष्णेन रेवत्या सहितम्। पितृदैवतं मघा। प्रजापतेर्भं प्राजापत्यं नक्षत्रं रोहिणी। चशब्दः समुच्चये। एतत्कृषीवलानां कर्षकाणां वैश्यानां नक्षत्रचतुष्टयम्।

आदित्येति। आदित्यं पुनर्वसुर्हस्तोऽभिजित्। आश्विनमश्विनी। एतानीमानि वणिग्जनानां किराटलोकानां चत्वारि प्रवदन्ति कथयन्ति। मूलम्। त्रिनेत्रो रुद्र आर्द्रा। अनिलः स्वातिः। वारुणं शतभिषग्। एतानि चत्वारि प्रभविष्णुतायाः प्रभावशीलाया उग्रजातेः क्रूरजनस्य।

सौम्यं मृगशिराः। ऐन्द्रं ज्येष्ठा। त्वाष्ट्रं चित्रा। वसुदैवतं धनिष्ठा। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि सेवाजनस्य सेवाभिरतस्य स्वाम्यं प्रभुत्वमुपगतानि प्राप्तानि। सार्पमाश्लेषा। विशाखा। श्रवणः। भरणी। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि चण्डालजातेश्चण्डालानामभिनिर्दिशन्ति कथयन्ति मुनयः॥२८-३०॥

अथ क्रूरग्रहप्रयोजनमाह—

रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम्।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत्॥३१॥

तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा।
निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
नक्षत्रव्यूहाध्यायः पञ्चदशः॥१५॥

रवि और शनि से मुक्त, मङ्गल के भेदन या वक्र गमन से दूषित, ग्रहणकालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीड़ित (चन्द्रमा जिस नक्षत्र की योगतारा को आच्छादित या उसके दक्षिण भाग में होकर गमन करे) या स्वाभाविक उत्तम गुण से रहित नक्षत्र को मुनि लोग पीड़ित कहते हैं। इस तरह पीड़ित नक्षत्र पूर्वोक्त अपने वर्ग का नाश और उक्त से भिन्न लक्षणयुत हो तो उनकी वृद्धि करता है।।३१-३२।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां नक्षत्रव्यूहाध्यायः पञ्चदशः॥१५॥

रविरादित्यः। रविसुतः शनैश्चरः। अनयोरेकस्य यन्नक्षत्रं भोगमागतं भोगं प्राप्तम्। क्षितिसुतो भौमस्तद्भेदनेन मध्यगमनेनाच्छादनेन वा तद्वक्रेण वा दूषितं दुष्टम्। ग्रहणगतं यन्नक्षत्रं यत्र स्थितोऽर्कश्चन्द्रो वा राहुणा ग्रस्यते तद्ग्रहणगतम्। अथोल्कया हतमुल्कानिपीडितम्। नियतं सर्वकालमुषाकरेण चन्द्रेण यत्पीडितम्। यस्य नक्षत्रस्य चन्द्रमा योगतारकाभेदेन आच्छादनं मध्यगमनं दक्षिणभागगमनं वा करोति तदुषाकरपीडितम्।

तदुपहतमिति प्रचक्षत इति। एवंविधं यन्नक्षत्रं तदुपहतमिति प्रचक्षते कथयन्ति मुनयः। अथवा प्रकृतेः स्वभावाद्विपर्ययं विपरीतं यातं प्राप्तं तदप्युपहतम्। एवंविधं नक्षत्रं निगदितस्य कथितस्य परिवर्गस्य प्रागुक्तस्य दूषणं दुष्टतां विनाशं करोति। कथित-विपर्ययगं समृद्धये। रविरविसुतमागतमित्यादि यदुक्तं तद्विपरीतगं यन्नक्षत्रं तत्कथितस्योक्तस्य परिवर्गस्य समृद्धये भवति पुष्णातीत्यर्थः। तथा च कश्यपः—

शनैश्चरस्य सूर्यस्य यदृक्षं भोगमागतम्।
धरित्रीतनयेनापि भिन्नं वक्रप्रदूषितम्।।
राहुग्रस्तमथोल्काभिर्हतमुत्पातदूषितम् ।
चन्द्रेण पीडितं यच्च प्रकृतेरन्यथास्थितम्।।
तच्चोपहतकं विन्द्यान्नक्षत्रं हन्ति सर्वदा।
स्ववर्गमन्यथा नित्यं पुष्णाति निरुपद्रवम्।। इति।।३१-३२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्र-
व्यूहो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

अथ ग्रहभक्तियोगाध्यायः

अथ ग्रहभक्तियोगो व्याख्यायते। कस्मिन् देशे केषां जनानां को ग्रहाऽधिपतिरित्येतद्यत्र निरूप्यते। तत्रादावेवाऽऽदित्यस्याह—

प्राङ् नर्मदार्द्धशोणोड्रवङ्गसुह्माः कलिङ्गबाह्लीकाः।
शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥१॥

मेकलकिरातविटका बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च।
द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥२॥

चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च।
पुण्ड्रा गोलाङ्गूलश्रीपर्वतवर्द्धमानानि ॥३॥

इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम्।
तुषधान्यकटुकतरुकनकदहनविषसमरशूराणाम् ॥४॥

भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम्।
व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥५॥

नर्मदा नदी के पूर्वभाग, शोण नद, उड्र, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग, बाल्हीक, शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्यौतिष, चीन, कम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वत के बाहर और मध्य में रहने वाले, पुलिन्द जन, द्रविड का पूर्वार्ध, यमुना के दक्षिण तट, विन्ध्याचल के मध्य भाग, कलिङ्ग देश में स्थित जन, पुण्ड्र, गोलांगूल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान, इक्षुवती नदी, तस्कर, पारतदेशवासी, वन, गौ का पालन करने वाले, बीज, भूसी वाले धान्य, कटुक द्रव्य, वृक्ष, सुवर्ण, अग्नि, विष, युद्ध में शूर, ओषधी, वैद्य, चतुष्पद पशु, किसान, राजा, क्रूर, संग्राम में जीतने की इच्छा रखने वाले, चोर, सर्प, निर्जन स्थान, यशस्वी, तीक्ष्ण (निम्ब आदि या जन)—इन सबों के स्वामी सूर्य हैं।।१-५।।

नर्मदानाम्नी नदी तस्याः प्रागर्द्धः पूर्वभागः। शोणो नदः। उड्रा जनाः। वङ्गाः। सुह्माः। कलिङ्गाः। वाह्लीकाः। शकाः। यवनाः। मगधाः। शबराः। प्राग्ज्योतिषाः। चीनाः। काम्बोजाः।

मेकलाः। किराताः। विटकाः। बहिरन्तःशैलजाः। शैलाः पर्वतास्तत्र ये बहिः बाह्यभागे जाताः समवस्थिताः, अन्तः पर्वतमध्ये ये जाताः। पुलिन्दा जनाः। चशब्दः सर्वत्र समुच्चये। तथा द्रविडानां जनानां प्रागर्द्धं पूर्वार्द्धम्। यमुना कालिन्दी नदी तस्या दक्षिणकूलम्।

चम्पो देशः। उदुम्बरः। कौशाम्बी नगरी। चेदयो जनाः। विन्ध्याटवी विन्ध्यमध्यम्।

कलिङ्गाः। पुण्ड्रा जनाः। गोलाङ्गूलाः। श्रीपर्वतः। वर्द्धमानम्।

इक्षुमतीनाम्नी नदी। इतिशब्दः प्रकारे। अथानन्तरम्। तस्करो देशो जना वा। पारता जनाः। कान्तारमटवी। गोपा गोपालकाः। बीजानि प्रसिद्धानि। तुषधान्यं शालयः। कटुकं द्रव्यं मरिचादि। तरवो वृक्षाः। कनकं सुवर्णम्। दहनोऽग्निः। विषं महौषधम्। समरशूराः संग्रामवीराः।

भेषजमौषधम्। भिषजो वैद्याः। चतुष्पादाः पशवः। कृषिकराः कार्षकाः। नृपा राजानः। हिंस्राः पापाः। यायिनो विजिगमिषवः। चौरास्तस्कराः। व्यालाः सर्पाः। अरण्यं निर्जनो देशः। यशोयुता यशस्विनः। तीक्ष्णं निम्बादि, तीक्ष्णा वा जनाः। एषां सर्वेषां भास्कर आदित्यः स्वामी प्रभुरिति। तथा च काश्यपः—

प्रागर्द्धं नर्मदायाश्च शोणः शबरमागधाः।
उड्रा वङ्गा कलिङ्गाश्च बाह्लीका यवनाः शकाः॥
काम्बोजा मेकलाः सुह्माः प्राग्ज्योतिषकिरातकाः।
चीनाः सर्वे सुशैलेयाः पार्वता बहिरन्तजाः॥
यमुनाया याम्यकूलं कौशाम्ब्यौदुम्बराणि च।
विन्ध्याटवी च पुण्ड्राश्च वर्द्धमानाश्च पर्वताः॥
श्रीपर्वतश्चेदिपुरं गोलाङ्गूलं तथैव च।
इक्षुमत्याश्रिता ये च जनाः शूराः मदोत्कटाः॥
कान्तारमथ गोपाश्च कन्दरास्तस्करास्तथा।
समरे विषमाः शूरास्तरवः कटुका अपि॥
चतुष्पदा भेषजं च धान्यं वा भिषजस्तथा।
अरण्यवासिव्यालाश्च कार्षका बालकास्तथा॥
गौरपत्यं च किञ्जल्कं पुंसंज्ञा ये च जन्तवः।
सर्वेषां भास्करः स्वामी तेजस्तेजस्विनामपि॥ इति॥१-५॥

अथ चन्द्रस्याह—

गिरिसलिलदुर्गकोशलभरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः।
वनवासितङ्गणहलस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः॥६॥

मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानाम्।
शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम्॥७॥

सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम्।
शृङ्गिनिशाचरकार्षकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः॥८॥

पर्वतदुर्ग, जलदुर्ग, कोशल देशवासी मनुष्य, भरुकच्छ, समुद्र, रोमक, तुषार, वनवासी, तङ्गण, हल, स्त्रीराज्य, महासागर के अन्तर्गत द्वीप, मधुर रस, सभी पुष्प और फल, जल,

नमक, मणि, शङ्ख, मोती, जल से उत्पन्न होने वाली वस्तु (कमल आदि), धान्य, यव, ओषधी, गेहूँ, सोमरस पीने वाले मनुष्य, आक्रन्द (पार्श्व रक्षकों के अन्तर्गत राज), ब्राह्मण, श्वेत वर्ण की सभी वस्तुयें, सभी जनों का प्रिय, अश्व, कामी, स्त्री, सेनापति, भोजनसामग्री, वस्त्र, शृङ्गी पशु, निशाचर, किसान, याज्ञिक—इन सबों के स्वामी चन्द्र n।।६-८।।

गिरिदुर्गं पर्वतदुर्गम्। सलिलदुर्गं जलदुर्गम्। कोशला जनाः। भरुकच्छाः। समुद्राः सागराः। रोमकाः। तुषाराः। वनवासिनः। तङ्गणाः। हलाः। स्त्रीराज्यम्। महार्णवद्वीपा वडवामुखद्वीपाः।

मधुररसं यत्किञ्चित् कुसुमानि फलानि सर्वाणि। सलिलं जलम्। लवणं सैन्धवम्। मणयः। शङ्खाः। मौक्तिकम्। अब्जाः सलिलसम्भवाः पद्मप्रभृतयः। शालयो धान्यानि। यवाः। औषधयः। गोधूमाः। सोमपा याज्ञिकाः। आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहान्तरितो राजा। विप्रा ब्राह्मणाः।

सितं श्वेतवर्णं यत्किञ्चित् रूप्यं वा। सुभगाः सर्वजनप्रियाः। तुरगा अश्वाः। रतिकराः कामिनः। युवतयः स्त्रियः। चमूनाथाः सेनापतयः। भोज्यं प्रसिद्धम्। वस्त्राण्यम्बराणि। शृङ्गिणः प्रसिद्धाः प्राणिनः। निशाचरा रात्रिचराः। कार्षकाः कृषिकाराः। यज्ञविदो यज्ञसूत्रज्ञाः। एतेषां चाधिपश्चन्द्रः शशी। तथा च काश्यपः—

पर्वता जलदुर्गाश्च कोशलास्तङ्गणा हलाः।
स्त्रीराज्यं भरुकच्छश्च तुषारा वनवासिनः।।
मौक्तिकं मणिशङ्खाब्जमौषधं कुसुमं फलम्।
द्वीपा महार्णवे ये च मधुरा लवणादयः।।
गोधूमाः शालयः शृङ्गिकार्षकाश्च यवा अपि।
सोमपा ब्राह्मणा ये च यज्ञज्ञास्तु सुरासवम्।।
स्त्रीसौभाग्यसमेताश्च लास्यहास्येक्षितानि च।
निशाचराधिपश्चन्द्रो हृष्टानां च प्रकीर्तितः।। इति।।६-८।।

अथ भौमस्याह—

शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः।
निर्विन्ध्या वेत्रवती सिप्रा गोदावरी वेणा ।।९।।

मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः।
उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः ।।१०।।

द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापरकौङ्कणाः समन्त्रिषिकाः।
कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करिणः ।।११।।

(नासिक्यभोगवर्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः ।
ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतीसलिलम् ॥)

नागरकृषिकरपारतहुताशनाजीविशस्त्रवार्तानाम् ।
आटविकदुर्गकर्वटवधिकनृशंसावलिप्तानाम् ॥१२॥

नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम् ।
रक्तफलकुसुमविद्रुमचमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥१३॥

कोशभवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम् ।
शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः ॥१४॥

शोण, नद, नर्मदा नदी और भीमरथा नदी के पश्चिम भाग में स्थित देश, निर्विन्ध्या, वेत्रवती, सिप्रा, गोदावरी, वेणा, गंगा, पयोष्णी, सिन्धु, मालती और पारा नदी, उत्तर पाण्ड्य, महेन्द्र पर्वत, विन्ध्याचल और मलयगिरि के समीपगत देश, चोल, द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापर, कौङ्कण, समन्त्रिषिक, कुन्तल, केरल, दण्डकारण्य, कान्तिपुर, म्लेच्छ, सङ्कर जाति, (नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचल के समीपस्थ देश, तापी और गोमती नदी के मधुर जल पीने वाले) नागर जन, किसान, पारत, अग्निहोत्री, सोनार, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, वनवासी, दुर्ग, कर्वटदेशवासी जन, वधिक, पापी, कामों में असंलग्न, राजा, बालक, हाथी, दाम्भिक, बालकों को मारने वाले, पशुपालक, रक्त फल, रक्त पुष्प, प्रवाल, सेनापति, गुड, मदिरा, तीक्ष्ण (निम्ब आदि), कोश, भवन, अग्निहोत्री, धातुओं की खान, शाक्य (रक्तपट), भिक्षु, चोर, शठ (परकार्य से विमुख), दृढ़द्वेष, अधिक भोजन—इन सबों का स्वामी मङ्गल है।।९-१४।।

शोणो नदः। नर्मदा नदी। भीमरथा च नद्येव। शोणस्य तथा नर्मदाया भीमरथायाश्च ये पश्चिमार्द्धस्था पश्चिमभागे समवस्थिता देशाः। तथा निर्विन्ध्या नदी। वेत्रवती। सिप्रा। गोदावरी। वेणा।

मन्दाकिनी गङ्गा। पयोष्णी महानदी। सिन्धुमालतीपारा एताः सर्वा एव नद्यः। उत्तरपाण्ड्या जनाः। महेन्द्राद्रिर्महेन्द्रपर्वत एव। विन्ध्यो मलयश्च। एतेषु ये उपगाः समीपस्थिता जनाः। तथा चोला जनाः।

द्रविडाः। विदेहाः। अन्ध्राः। अश्मकाः। भासापराः। कौङ्कणाः। समन्त्रिषिकाः। कुन्तलाः। केरलाः। दण्डकं दण्डकारण्यम्। कान्तिपुरम्। म्लेच्छाः। सङ्करिणः सङ्करजातयः।

नागरा जनाः। कृषिकराः कार्षकाः। पारताः। हुताशनाजीविनः सुवर्णकारप्रभृतयः। शस्त्रवार्ताः शस्त्रवृत्तयः। आटविका अटव्यां ये निवसन्ति। दुर्गः कोटः। कर्वटा जनाः। वधिका वधरताः। नृशंसाः पापाः। अवलिप्ताः कार्येष्वस्थिराः।

नरपतयो राजानः। कुमारा बालकाः। कुञ्जरा हस्तिनः। दाम्भिका दम्भरता मिथ्या-

ध्वजधर्मिण:। डिम्भाभिघात:। अशस्त्र: कलहो डिम्भस्तत्राभिघात:। अथवा डिम्भानां बालानां योऽभिघातं करोति। पशुप: पशुपाल:। रक्तं लोहितवर्णं यत्किञ्चित् फलम्। रक्तं च कुसुमम्। विद्रुमा: प्रवालका:। चमूप: सेनापति:। गुड इक्षुविकार:। मद्यं मदिरा। तीक्ष्णं निम्बादि।

कोशभवनं भाण्डगृहम्। अग्निहोत्रिका अग्निहोत्रसेविन:। धात्वाकरो धातूनां गैरिकादीनामाकर: स्थानं सुवर्णादीनां वा। शाक्यो रक्तपटिक:। भिक्षुर्यति:। चौरस्तस्कर:। शठ: परकार्यविमुख:। दीर्घवैरो दृढद्वेष:। बह्वाशी बहुभुक्। एतेषां सर्वेषां वसुधासुतोऽङ्गारकोऽधिपति: स्वामी। तथा च काश्यप:—

महेन्द्रविन्ध्यमलया: सिप्रा वेणा महानदी।
गोदावर्या नर्मदाया भीमाया: पश्चिमा दिश:।।
चेदिका: कौङ्कणा दुर्गा द्रविडा वेत्रवन्नदी।
मन्दाकिनी पयोष्णी च मालती सिन्धुपारका:।।
पाण्ड्याश्चोत्तदेशस्था विदेहान्ध्राश्मकास्तथा।
भासापरा: कुन्तलाश्च केरला दण्डकास्तथा।।
नागरा: पौरवाश्चैव कार्षका: शस्त्रवृत्तय:।
हुताशनाजीविनो ये कुञ्जरा: पशुपास्तथा।।
सांग्रामिका नृशंसाश्च सङ्कराश्चोपघातका:।
कुमारा भूमिजस्योक्ता दाम्भिकास्तस्करास्तथा।। इति।।९-१४।।

अथ बुधस्याह—

लोहित्य: सिन्धुनद: सरयूर्गाम्भीरिका रथाख्या च।
गङ्गाकौशिक्याद्या: सरितो वैदेहकाम्बोजा: ।।१५।।

मथुराया: पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्था:।
सौराष्ट्रसेतुजलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिण: ।।१६।।

उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविद:।
आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञा: ।।१७।।

चरपुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचाररता:।
दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन्त्रेन्द्रजालज्ञा: ।।१८।।

आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि।
व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ।।१९।।

लोहित्य और सिन्धु नद, सरयू, गाम्भीरिका, रथाख्या, गङ्गा, कौशिकी, विपाशा, सरस्वती और चन्द्रभागा नदी, मथुरा के पूर्वार्ध भाग, हिमालय पर्वत, गोमन्त पर्वत और

चित्रकूट पर्वत के प्रान्त में स्थित मनुष्य, सौराष्ट्र देश स्थित मनुष्य, सेतु (पुल) के आश्रय में रहने वाले, जलमार्ग के आश्रय में रहने वाले, पण्यवृत्ती, बिल में निवास करने वाले, पर्वत पर रहने वाले, वापी, कूप, तड़ाग आदि, यन्त्र को जानने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, मणि के लक्षण को जानने वाले, रंगरेज, सुगन्धि द्रव्य बनाने वाले, चित्रकार, वैयाकरण, ज्यौतिषी, आयुष्य (रसायन-वाजीकरण आदि को जानने वाले), शिल्पी, गुप्तचर, कुहक (प्रसेन आदि के दर्शन से जीवनयात्रा चलाने वाले), बालक, कवि, शठ (परोपकार से विमुख), चुगलखोर, अभिचार (वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण आदि को जानने वाले), दूत, नपुंसक, हँसी उड़ाने वाले, भूत-प्रेत के तन्त्र को जानने वाले, इन्द्रजाल को जानने वाले, रक्षक, नाचने वाले, घृत, तेल, स्नेह (तिल-अक्षोट आदि), बीज, तिक्त (निम्बादि), व्रती (ब्रह्मचारी आदि), रसायन को जानने वाले, वेसर (अश्वविशेष)—इन सबों का स्वामी बुध है।।१५-१९।।

लोहित्यो नदः। सिन्धुनदश्च। सरयूर्नदी गाम्भीरिका रथाख्या च। गङ्गा जाह्नवी। कौशिकी। आदिग्रहणाद्विपाशा सरस्वती चन्द्रभागा च ज्ञेया। एताः सरितो नद्यः। वैदेहा जनाः। काम्बोजा जनाः।

मथुरायाः पूर्वमर्द्धम्। हिमवान् पर्वतः। गोमन्तो गोमिनः पर्वतो वा। चित्रकूटश्च पर्वतः। एतेषु ये स्थिता जनाः। सौराष्ट्रा जनाः। सेत्वाश्रयिणः सेतुगामिनः। जलमार्गाश्रयिणो जलमार्गेण ये गच्छन्ति। पण्याश्रयिणः पण्यवृत्तयः। बिलाश्रयिणो बिलनिवासिनः। पर्वताश्रयिणः पर्वतवासिनः।

उदपानं वापीकूपतडागादि। यन्त्रविदो यन्त्रज्ञाः। गान्धर्वविदो गेयज्ञाः। लेख्यविदो लेख्यज्ञाः। मणिविदो मणिलक्षणज्ञाः। रागयुक्तिविदो रागो रञ्जनं तद्युक्तिज्ञाः। गन्धयुक्ति-विदो गन्धयुक्तिज्ञाः। आलेख्यं चित्रकर्म तज्ज्ञाः। शब्दज्ञा वैयाकरणाः। गणितज्ञाः। एषां प्रसाधका निरताः। आयुषो हितमायुष्यं रसायनवाजीकरणादि तज्ज्ञाः। शिल्पज्ञास्तक्षकार-लेखकलेपकरकुम्भकारायस्कारकर्मविदः।

चरपुरुषा गूढार्थवेदिनः। कुहकजीवकाः कुहकेनाद्भुतेन प्रसेनादिदर्शनेन ये जीवन्ति। शिशुर्बालः। कविः काव्यकर्ता। शठः परकार्यविमुखः। सूचकः पिशुनः। अभिचारो वश्यो-च्चाटनविद्वेषणमारणादिकस्तत्र ये रताः। दूता गमागमिनः। नपुंसकाः क्लीबाः। हास्यज्ञा उपहासकुशलाः। भूततन्त्रज्ञाः। इन्द्रजालज्ञाः।

आरक्षको रक्षाधिकृतः। नटाः प्रसिद्धाः। नर्तको नर्तनं शिल्पमस्य स नर्तकः। घृतमाज्यम्। तैलं प्रसिद्धम्। स्नेहस्तिलाक्षोटादि। बीजानि प्रसिद्धानि। तिक्तं निम्बादि। व्रतचारिणो ब्रह्मचारिप्रभृतयः। रसायनकुशला रसायनसाधने शक्ताः। वेसरा अश्वविशेषाः। एते सर्वे चन्द्रपुत्रस्य बुधस्य। तथा च काश्यपः—

चित्रकूटगिरी रम्यो हिमवान् कौशिकी तथा।
मथुरायाश्च पूर्वार्द्धं लोहित्यः सिन्धुरेव च।।

गाम्भीरिका च सरयू रथाख्या गण्डकी नदी।
गान्धर्वा लेखहाराश्च तथोदाराश्च कृत्रिमाः।।
वैदेहाः सर्वजलजाः काम्बोजाश्च सुराष्ट्रिकाः।
गन्धयुक्तिविदो ये च सौगन्धिपदलेपनाः।।
सुवर्णरजतं रत्नं मातङ्गतुरगादि यत्।
पौरा जनपदाः सौम्याः सोमपुत्रवशे स्थिताः।। इति।।१५-१९।।

अथ गुरोराह—

सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्द्धभरतसौवीराः।
स्रुघ्नौदीच्यविपाशासरिच्छतद्रू रमठशाल्वाः ।।२०।।
त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारता वाटधानयौधेयाः।
सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ।।२१।।
हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः।
कारुण्यसत्यशौचव्रतविद्यादानधर्मयुताः ।।२२।।
पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः।
मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च ।।२३।।
शैलेयकुष्ठमांसीतगररससैन्धवानि वल्लीजम्।
मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य ।।२४।।

सिन्धु नद के पूर्व भाग, मथुरा के पश्चिमार्द्ध, भरत, सौवीर, स्रुघ्न, उत्तर दिशा में रहने वाले, विपाशा नदी, शतद्रू नदी, रमठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, अर्जुनायन और मत्स्य देशों के ग्राम और राष्ट्र का आधा भाग, हाथी, घोड़ा, पुरोहित, राजा, मन्त्री, मङ्गल कार्य (विवाह, उपनयन आदि) में सक्त, पौष्टिक कार्य में संलग्न, दयालु, सत्य भाषण करने वाले, शौचयुत (शुद्ध = दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), तपस्वी, विद्वान्, दानी, धर्मी, ग्राम में उत्पन्न होने वाले, वैयाकरण, अर्थ को जानने वाले, वेद को जानने वाले, अभिचारज्ञ, नीतिशास्त्र को जानने वाले, राजा के उपकरण (आयुध, सन्नाह आदि), छत्र, ध्वजा, चामर आदि, सुगन्ध द्रव्य, कुष्ठ, मांसी, तगर, रस (बोल), नमक, मूंग आदि, मधुर रस, मधूच्छिष्ट (सिक्थक = मोम), चोरक, सुगन्ध द्रव्य—इन सबों का स्वामी गुरु है।।२०-२४।।

सिन्धुनदस्य पूर्वभागः। मथुरायाः पश्चार्द्धम्। भरता जनाः। सौवीराः। स्रुघ्नो देशः। औदीच्या उत्तरदिङ्निवासिनो जनाः। विपाशा सरिन्नदी। शतद्रूः। रमठा जनाः। शाल्वाः।।

त्रैगर्ताः। पौरवाः। अम्बष्ठाः। पारताः। वाटधानाः। यौधेयाः। सारस्वताः। अर्जुनायनाः। मत्स्या जनास्तद्विषयाद् ग्रामराष्ट्रार्द्धम्।

हस्ती। अश्वस्तुरगः। पुरोहितो नृपाचार्यः। भूपो राजा। मन्त्री सचिवः। मङ्गलकार्येषु विवाहोपनयनादिषु पौष्टिकेषु य आसक्ता रताः। कारुण्ययुता अनुकम्पाशीलाः। सत्ययुताः सत्यभाषिणः। शौचयुताः शौचरताः परधनादिष्वलुब्धाः। व्रतयुतास्तपस्विनः। विद्यायुताः। दानयुताः। धर्मयुताः।

पौराः पुरे भवाः। महाधना ईश्वराः। शब्दविदुषो वैयाकरणाः। अर्थविदुषः पण्डिताः। वेदविदुषो वेदज्ञाः। अभिचारज्ञाः। नीतिज्ञा नीतिशास्त्रविदः। मनुजेश्वरोपकरणं मनुजेश्वरो राजा तदुपकरणमायुधसन्नाहादि। छत्रमातपत्रम्। ध्वजो बहुपटविनिर्मितं चिह्नम्। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणात्तालवृन्तादिकम्।

शैलेयं सुगन्धद्रव्यम्। कुष्ठम्। मांसीतगरम्। रसं वोलम्। सैन्धवं लवणम्। वल्लीजं मुद्गादि। मधुरा ये च रसाः। मधूच्छिष्टं सिक्थकम्। चोरकं सुगन्धद्रव्यम्। एते सर्व एव जीवस्य गुरोः। तथा च काश्यपः—

त्रैगर्तसिन्धुसौवीराः शतद्रूमथुरे अपि।
स्रुघ्नौदीच्यविपाशाश्च पारताम्बष्ठकास्तथा।।
राजा पुरोहितो मन्त्री माङ्गल्यं पौष्टिकं व्रतम्।
कारुण्यं कर्म सिद्धानां विद्याशौचतपस्विनाम्।।
मत्स्याश्च वाटधानाश्च यौधेयाश्चार्जुनायनाः।
सारस्वताश्च रमठा हस्त्यश्वध्वजचामराः।।
शब्दार्थविदुषः पौरा नीतिज्ञाः शीलसंयुताः।
मांसीतगरकुष्ठं च शैलेयं लवणं रसाः।।
मधुरस्वादवल्लीजं विप्राणां चाधिपो गुरुः। इति।।२०-२४।।

अथ शुक्रस्याह—

तक्षशिलमर्तिकावतबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः ।
प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णोशीनराः शिबयः ॥२५॥

ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं चन्द्रभागसरितं च।
रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः ॥२६॥

सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः।
वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥२७॥

उद्यानसलिलकामुकयशःसुखौदार्यरूपसम्पन्नाः ।
विद्वदमात्यवणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफलाः ॥२८॥

कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकरोध्रपत्रचोचानि ।
जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥२९॥

तक्षशिला नगरी, मार्तिकावत देश, बहुगिरि, गान्धार, पुष्कलावतक, प्रस्थल, मालव, कैकय, दाशार्ण, उशीनगर, शिवि, वितस्ता, ऐरावती और चन्द्रभागा नदी के जल पीने वाले, रथ, चान्दी, आकर (अर्थोत्पत्ति स्थान), हाथी, घोड़ा, महामात्र (हस्ती के अधिप), धनी, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, चन्दन, मणि (पद्मराग आदि), वज्र (हीरक), भूषण, अम्बुरुह (कमल आदि), शय्या, प्रधान, युवा, स्त्री, कामोपकरण (पुष्प, धूप, माला, चन्दन आदि), मृष्ट (शोधित) अन्न का भोजन करने वाले, मधुर भोजन करने वाले, उद्यान, जल, कामी, यशस्वी, सुखी, दाता, सुन्दर, विद्वान्, मन्त्री, क्रय-विक्रय से जीवनयात्रा चलाने वाले, कुम्भार, चित्राण्डज (नाना प्रकार के पक्षी), फलत्रय (एला, लवङ्ग, कक्कोल), कौशेयपट (नेत्रपट), कम्बल, पत्रौर्णिक (धौतकौशेय), रोध्र (एक प्रकार का सुगन्ध द्रव्य), पत्र (सुगन्ध पत्र), चोच (नारिकेल), जातीफल (जायफल), अगुरु, वचा (वच), पिप्पली (पीपल), चन्दन—इस सबों का स्वामी शुक्र है।।२५-२९।।

तक्षशिला नगरी। मार्तिकावतो देशः। बहुगिरिः। गान्धारा जनाः। पुष्कलावतको देशः। प्रस्थलाः। मालवाः। कैकयाः। दाशार्णाः। उशीनराः। शिबयः।

ये च पिबन्ति वितस्तां नदीम्। तथैरावतीं ये च पिबन्ति। चन्द्रभागसरितं चन्द्रभागां सरितं ये च पिबन्ति। रथा गन्त्र्यः। रजतं रूप्यम्। आकरमर्थोत्पत्तिस्थानम्। कुञ्जरा हस्तिनः। तुरगा अश्वाः। महामात्रा हस्त्यधिपतयः। धनयुक्ता ईश्वराः।

सुरभिः सुगन्धद्रव्यम्। कुसुमानि पुष्पाणि। अनुलेपनं समालम्भनम्। मणयः पद्मरागप्रभृतयः। वज्रं हीरकम्। विभूषणान्यलङ्करणानि। अम्बुरुहः पद्मादि। शय्या आस्तरणम्। वराः प्रधानाः। तरुणा यौवनोपेताः। युवतयः स्त्रियः। कामोपकरणं मदनोपयोग्यं यद्वस्तु पुष्पधूपमाल्यानुलेपनादि। मृष्टान्नभुजो ये नराः। तथा मधुरभुजः।

उद्यानमुपवनम्। सलिलं जलम्। कामुकाः कामिनः। यशःसम्पन्ना यशस्विनः। सुखसम्पन्नाः सुखिनः। औदार्यसम्पन्ना दातारः। रूपसम्पन्नाः सुरूपाः। विद्वांसः पाठकाः। अमात्या मन्त्रिणः। वणिग्जनाः क्रयविक्रयजीविनः। घटकृत् कुम्भकारः। चित्राण्डजा नानाप्रकाराः पक्षिणः। त्रिफलाः फलत्रयमेलालवङ्गकक्कोला इति।

कौशेयपट्टो लोके नेत्रपट्ट इति प्रसिद्धः। कम्बल और्णिकः। पत्रौर्णिकं धौतकौशेयम्। रोध्रं प्रसिद्धं सुगन्धद्रव्यम्। पत्रं सुगन्धपत्रम्। चोचं मलिनपत्रं नारिकेलं च। जातीफलं प्रसिद्धम्। अगुरु सुगन्धद्रव्यम्। वचा प्रसिद्धा। पिप्पल्यः कणाः। चन्दनं मलयजम्। एतद् भृगोः शुक्रस्य। तथा च काश्यपः—

चन्द्रभागां वितस्तां चैरावतीं च पिबन्ति ये।
पुष्करावतकैकेया गान्धारप्रस्थलास्तथा।।
दशार्णा मालवास्तक्षशिला मौक्तिकमेव च।
धनाढ्याः कुञ्जरा अश्वाः प्रस्थलं च विलेपनम्।।

सुरूपसुभगोद्यानकामुका: कामचारिण:।
वेसरा मधुरा हृद्या: सलिलाशयजीविन:।।
तरुणा योषित: क्रीडाविदुषो जनगोष्ठिका:।
चित्राण्डजाश्च कौशेयं पत्रौर्णं काशिकौशिका:।।
पिप्पल्यश्चन्दनं जातीफलमामलकानि च।
गन्धपत्रस्य लोध्रस्य शुक्रश्चाधिपति: स्मृत:।। इति।।२५-२९।।

अथ शनैश्चरस्याह—

आनर्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतका: ।
नष्टा यस्मिन् देशे सरस्वती पश्चिमो देश: ।।३०।।
कुरुभूमिजा: प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीतटजा: ।
खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वा: ।।३१।।
बान्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरूपवृद्धसौकरिका: ।
गणपूज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरिहीना: ।।३२।।
कटुतिक्तरसायनविधवयोषितो भुजगतस्करमहिष्य: ।
खरकरभचणकवातलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ।।३३।।

आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीर, शूद्र, रैवतक, सरस्वती नदी जहाँ पर अलक्षित हुई है—वह प्रदेश (पश्चिम प्रदेश), कुरुभूमि में उत्पन्न मनुष्य (स्थानेश्वर में निवास करने वाले), प्रभास क्षेत्र, विदिशा नगरी, वेदस्मृती नदी, मही नदी के तट में उत्पन्न मनुष्य, खल, मलिन, नीच, तेली, निर्बल, नपुंसक, बन्धन-स्थानस्थित, पक्षियों को मारने वाले, अशुचि में रत (अपवित्र), धीवर, कुरूप, वृद्ध, सूअर पालने वाले (डोम), सङ्घियों में प्रधान, नियम को नहीं पालन करने वाले, शबर, पुलिन्द (म्लेच्छ जाति), दरिद्र, कटु द्रव्य (मरीच आदि), तिक्त (निम्ब आदि), रसायन, विधवा स्त्री, सर्प, चोर, महिषी (भैंस), गदहा, ऊँट, चना, वातल (मटर-राजमाष आदि), धान्य—इन सबों का स्वामी शनि है।।३०-३३।।

आनर्ता जना:। आर्बुदा:। पुष्करा:। सौराष्ट्रा:। आभीरा:। शूद्रा:। रैवतका:। यस्मिन् देशे सरस्वती नष्टा अदर्शनं गता। स पश्चिमो देश:।।

कुरुभूमिजा जना:। स्थानेश्वरे ये निवसन्ति। प्रभासं स्थानम्। विदिशा नगरी। वेदस्मृती नदी। महीनदीतटे ये जाता:। खला दुर्जना:। मलिना मलोपेता:। नीचा अधमकर्मकरा:। तैलिका: प्रसिद्धा:। विहीनसत्त्वा नि:सत्त्वा:। उपहतपुंस्त्वा उपहतो नष्ट: पुम्भावो येषां षण्ढप्राया इत्यर्थ:।

बान्धना बन्धनपाला बन्धनस्थाश्च। शाकुनिका: पक्षिघातका:। अशुचिरता:। कैवर्ता

नाविका धीवराश्च। विरूपा दुराकृतयः। वृद्धाः स्थविराः। सौकरिकाः सूकरबन्धकाः। गणपूज्या गणप्रधानाः। स्खलितव्रताश्चलितनियमाः। शबरा जनाः। पुलिन्दाश्च। अर्थ-परिहीना दरिद्राः।

कटुद्रव्यं मरिचादि। तिक्तं निम्बादि। रसायनं प्रसिद्धम्। विधवयोषितो भर्तृहीनाः स्त्रियः। भुजगाः सर्पाः। तस्कराश्चौराः। महिष्यः प्रसिद्धाः। खराः गर्दभाः। करभा उष्ट्राः। चणकाः प्रसिद्धाः। वातला राजमाषप्रभृतयः। निष्पावाः शालयः। एते सर्व एव अर्कपुत्रस्य शनैश्चरस्य। तथा च काश्यपः—

अर्बुदो रैवतगिरिः सौराष्ट्राभीरकास्तथा।
सरस्वतीपश्चिमाशा प्रभासं कुरुजाङ्गलम्।।
आनर्तशूद्रा विदिशा खलतैलिकनीचकाः।
वेदस्मृती सौकरिकाः मलिनश्च महीतटम्।।
दुःशीलशाकुना हीनाः पशुबन्धनकास्तथा।
पाखण्डिनश्च वैतण्डा निर्ग्रन्थाः शबराः कृशाः।।
विरूपाः कटुतिक्तानि रसायनविषादिनः।
पुलिन्दास्तस्कराः सर्पा महिषोष्ट्रखराः शुनी।।
चणका वातला वल्लाः पुंस्त्वसत्त्वविवर्जिताः।
काकगृध्रशृगालानां वृकाणां च प्रभुः शनिः।। इति।।३०-३३।।

अथ राहोराह—

गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः।
गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गा ॥३४॥

कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च।
खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्त्ताश्रया नीचाः ॥३५॥

उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे।
धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चार्कशशिशत्रोः ॥३६॥

पर्वत के शिखर, कन्दरा (पर्वतीय निम्न स्थान) और दरी (गुहा) में रहने वाले, म्लेच्छ जाति, शूद्र, सियार को खाने वाले, शूलिक, वोक्काण, अश्वमुख, अङ्गहीग मनुष्य, कुल में कलङ्क लगाने वाले, क्रूर, कृतघ्न (उपकार को नहीं मानने वाले), चोर, मिथ्या व्यवहार करने वाले, शौचरहित, कृपण, गदहा, गुप्तचर, बाहुयुद्ध को जानने वाले, अति क्रोधी, गर्त में रहने वाले, नीच, उपहत (कुत्सित पुरुष), मिथ्याधर्मी, राक्षस, अधिक सोने वाले सभी जन्तु, धर्महीन, उड़द, तिल—इन सबों का स्वामी राहु है।।३४-३६।।

गिरिशिखरेषु पर्वतशृङ्गेषु। कन्दरेषु गिरिखातासु नीचस्थानेषु। दरीषु गुहासु च ये

विनिविष्टाः स्थिता म्लेच्छजातय एकवर्णाः। शूद्राः। गोमायुभक्षाः शृगालादाः। शूलिका जनाः। वोक्काणाः। अश्वमुखाः। विकलाङ्गा अङ्गहीनाः।

कुलपांसनाः कुलकलङ्ककारिणः। हिंस्राः क्रूराः। कृतघ्ना अनुपकारशीलाः। चौरास्तस्कराः। निःसत्याः सत्यरहिताः। निःशौचाः शौचरहिताः। निर्दानाः कदर्याः। खरा गर्दभाः। चराश्वरपुरुषाः। नियुद्धविदो बाहुयुद्धज्ञाः। तीव्ररोषा अतिक्रोधिनः। गर्ताश्रया गर्तस्थाः। नीचा अधमकर्मकराः।

उपहताः कुत्सिताः। दाम्भिका मिथ्याधर्मिणः। राक्षसा रक्षोजातयः। ये च निद्राबहुलाः सर्व एव जन्तवः। धर्मेण च सन्त्यक्ता रहिताः। तथा माषतिलाः। एते सर्वे अर्कशशिशत्रो राहोः। तथा च काश्यपः—

बुभुक्षितास्तीक्ष्णरोषा विभिन्नाः कुलपांसनाः।
नीचा म्लेच्छोत्सादकाश्च गर्तस्थाः पारदारिकाः।।
सत्यधर्मविहीनाश्च गिरिस्थाः कन्दराश्रिताः।
प्रतापसत्यहीनाश्च शृगालादा महाशनाः।।
तिलाश्च बाहुयुद्धज्ञा माषाश्चौराः खराश्वराः।
यज्ञान् हिंसन्ति ये नित्यं राहुस्तेषामधीश्वरः।। इति।।३४-३६।।

अथ केतोराह—

गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः।
प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः॥३७॥

परदारविवादरताः पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः।
मूर्खाधार्मिकविजिगीषवश्च केतोः समाख्याताः॥३८॥

गिरिदुर्ग, पह्लव, श्वेत, हूण, चोल, आवगाण, मरुभूमि, चीन, गुहा में निवास करने वाले, धनी, महेच्छ (उदार), व्यवसायी, पराक्रमी, परस्त्रीगामी, विवादी, दूसरे का दोष सुनने के लिये उत्कण्ठित, मत्त (पागल), मूर्ख, अधार्मिक, जीतने की इच्छा रखने वाला—इन सबों का स्वामी केतु है।।३७-३८।।

गिरिदुर्गः पर्वतदुर्गः। पह्लवा जनाः। श्वेताः। हूणाः। चोलाः। आवगाणाः। मरुभूः। चीनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। धनिन ईश्वराः। महेच्छा विपुलाशाः। व्यवसायोपेता निपुणाः। पराक्रमोपेता बलिनः।

परदाररताः। विवादरताः। पररन्ध्रे कुतूहलो विस्मयो येषां ते पररन्ध्रकुतूहलाः। मदोत्सिक्ता मत्ताः। मूर्खा अज्ञाः। अधार्मिका धर्मरहिताः। विजिगीषवो विजेतुमिच्छवः। एते सर्व एव केतोः शिखिनः समाख्याता उक्ताः। तथा च काश्यपः—

प्राकाराभ्युच्छ्रिताः शृङ्गगिरिस्था विजिगीषवः।
प्रत्यन्तवासाभिरताः परच्छिद्रविशारदाः।।

मूर्खा विज्ञानहीनाश्च निर्मर्यादा नरास्तथा।
परदाररता नीचाः केतोरिति विनिर्दिशेत्।।

तथा च समाससंहितायाम्—

भानोरङ्गकलिङ्गवङ्गयमुनाः श्रीपर्वताः पारता
बाह्लीकोत्कटसुह्मशोणमगधाः प्राङ्नर्मदार्धांशकाः।
कौशाम्बी शबरान्ध्रपौण्ड्रयवना याम्याश्रिता मेकला-
श्चीनोदुम्बरवर्धमानविकटाश्चम्पेक्षुमत्याश्रिताः ।।

जलपर्वतदुर्गकोशला वनिताराज्यतुषारतङ्गणाः।
वनवासहलाः सरस्वती शीतांशोर्भरुकच्छरोमकाः।
क्षितिजस्य महानदी पयोष्णी वेणा वेत्रवती च मालती।
मलयद्रविडाश्मकान्ध्रचोला भीमार्धे त्वपरे च ये स्थिताश्च।।
पारेविन्ध्यं पश्चिमः शोणभागो गोदावर्याः कूलमद्रिर्महेन्द्रः।
सिप्रा सिन्धुर्भूमिजस्येति देशा वैदेहाख्याः कोङ्कणाः केरलाश्च।।
सौम्यस्य सौराष्ट्रिकभोजदेशा गङ्गाश्रिताश्चोत्तरकूलनद्यः।
विन्ध्यार्धमन्त्यं मथुरापुरस्तात् सुवास्तुसिन्ध्वद्रिगुहाश्रिताश्च।।
जीवस्य सारस्वतमत्स्यशाल्वाः प्राक्सिन्धुभागो मथुरापरार्धम्।
स्रुघ्नः शतद्रू रमठा विपाशा त्रैगर्तयौधेयकपारताश्च।।
देशा भृगोस्तक्षशिला वितस्ता गान्धारकाः कैकयमालवाश्च।
दाशार्णकौशीनरचन्द्रभागाश्चेद्याह्वसिप्रास्थलकालकाख्याः ।।
सरस्वती यत्र गता प्रणाशं वेदस्मृती मालवकाः सुराष्ट्राः।
पाश्चात्त्यदेशा विदिशा मही च सौरेः स्मृताः पुष्करमर्बुदश्च।।
राहोः कृतघ्नकुलपांसननीचशूद्रा वोक्काणशूलिकनियुद्धविदुग्रकोपाः।
गोमायुभक्षगिरिदुर्गनिवासिनश्च गर्भस्थहिंस्रपरदाररताः खलाश्च।।
शिखिनो वनसंस्थितावगाणा मरुभूपह्लवचोलहूणचीनाः।
व्यवसायपराक्रमोपपन्नाः परदारानुरता मदोत्कटाश्च।। इति।।३७-३८।।

अथैतेषां प्रयोजनमाह—

उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो
यदि च न हतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः।
स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः
स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥३९॥

उदय समय में निर्मल, विपुल, स्वभावस्थित, निर्घात, उल्का, धूलि तथा ग्रहयुद्ध से अहत, अपनी राशि में स्थित, उच्चगत या शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) से दृष्ट ग्रह जिनका स्वामी हो, उनके लिये शुभ करने वाला होता है।।३९।।

यो ग्रह उदयसमये क्षितिजात् प्रत्युद्गमकाले स्निग्धांशुर्निर्मलरश्मिर्दृश्यते। महान् विस्तीर्णबिम्बः। प्रकृतिस्थितः स्वभावस्थः। यदि वा निर्घातेन न हतो न चोल्कया न च रजसा न ग्रहयुद्धेन हतः। तथा यश्च स्वभवने स्वराशौ गतः प्राप्तः। स्वोच्चे आत्मीयोच्चराशौ च प्राप्तः। शुभग्रहैः सौम्यग्रहैः शशिबुधजीवशुक्राणामन्यतमेन वीक्षितो दृष्टः स ग्रहो येषां प्रभुः स्वामी परिकीर्तित उक्तस्तेषां शिवः श्रेयस्करो भवति।।३९।।

अन्यदप्याह—

अभिहितविपरीतलक्षणे क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः।
डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ॥४०॥

यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा।
भवति जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥४१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रह-
भक्तियोगाध्यायः षोडशः ॥१६॥

जो ग्रह पूर्वोक्त शुभ लक्षणों से विपरीत लक्षण वाला हो, वह अपने परिग्रह वर्ग का शस्त्रयुद्ध और रोग से नाश करता है तथा राजाओं को दुःखी करता है। इस तरह के उत्पात होने पर यदि राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या निश्चित करके मन्त्री का भय न हो तो उनका तथा लोगों को अवृष्टि होने के कारण अपूर्व पुर, पर्वत और नदियों में गमन होता है। अर्थात् इस तरह के उत्पात होने पर राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या मन्त्री का भय अवश्य होता है। यदि किसी तरह इन आपत्तियों से मुक्ति हो जाय तो भी प्राप्त अवृष्टि के कारण अन्न, शाक, जल के लिये जहाँ पर कभी नहीं गया था, उन पुर, पर्वत और नदियों में जाना पड़ता है।।४०-४१।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहभक्तियोगाध्यायः षोडशः ॥१६॥

उदयसमये यः स्निग्धांशुरित्यनेन यल्लक्षणमभिहितमुक्तं तस्मिन् विपरीतलक्षणे दृष्टे तत्परिग्रहस्तस्य ग्रहस्य यः परिग्रह उक्तः स क्षयमुपगच्छति विनाशं प्राप्नोति। तथा जना लोका डमरगदभयातुराः। डमरः शस्त्रकलहः। गदो रोगः। भयं भीतिः। एतैरातुराः पीडिता भवन्ति। तथा नरपतयो राजानो दुःखिताश्च भवन्ति।

एवंविधे उत्पाते सति नृपाणां राज्ञां यदि रिपुकृतं भयं न भवति स्वसुतकृतमात्मीयपुत्रकृतं वा नियमान्निश्चयादमात्यजं मन्त्रिकृतं वा भयं न भवति। यतोऽस्मिन् ग्रहोत्पाते दृष्टे एत एवोपसर्गा नृपाणामाशङ्क्यन्ते। एषां मध्यादन्यतमो न भवति तदा जनपदस्य लोकस्यापि यथा तथा भयं न भवति। तदा अवृष्ट्या अवर्षणेन। पुरेषु नगरेषु। अद्रिषु पर्वतेषु। निम्न-

गासु नदीषु। अपूर्वं गमनं भवति। यत्र न कदाचिज्जनपदो गतस्तत्र गच्छति। एतदुक्तं भवति—अवृष्ट्या सर्वमुत्साद्यते। अतो हेतोरन्नशाकजलार्थी जनोऽपूर्वपुराद्रिनिम्नगामुपगच्छति यत्र न कदाचिदपि गत इति। तथा च गर्गः—

स्निग्धरश्मिविशालश्च प्रकृतिस्थश्च यो ग्रहः।
ग्रहयुद्धरजोधूमनिर्घातोल्काघनाहतः ।।
स यदा स्वोच्चराशिस्थो मित्रभे स्वगृहेऽपि वा।
स्थितः शुभग्रहैर्दृष्टः स पुष्णाति परिग्रहम्।।
स्वमन्यथा हन्ति वर्गं जननाशं करोति च।
नृपाणां भयदः प्रोक्तस्त्ववृष्टिभयकारकः।। इति।।४०-४१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ ग्रहभक्तियोगोनाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अथ ग्रहयुद्धाध्यायः

अथ ग्रहयुद्धाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवोपोद्धातमाह—

युद्धं यथा यदा वा भविष्यमादिश्यते त्रिकालज्ञैः ।
तद्विज्ञानं करणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्ते ॥१॥

जिस समय जिस प्रकार से ताराग्रहों का युद्ध त्रिकालज्ञों ने कहा है, उसको सूर्यसिद्धान्त से लेकर मैंने करण (पञ्चसिद्धान्तिका) में कहा है।।१।।

यदा यस्मिन् काले यथा वा येन प्रकारेण वा ताराग्रहाणां युद्धं जयपराजयं त्रिकालज्ञैस्त्रिकालविद्भिरतीतवर्तमानानागतकालज्ञैर्भविष्यं भावि यदादिश्यते कथ्यते तद्विज्ञानं तस्य ग्रहयुद्धस्य विज्ञानं यथा ज्ञायते तथा मया करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां सूर्यसिद्धान्ते कृतमिति। केचित् सूर्यसिद्धान्तादिति पठन्ति। सूर्यसिद्धान्ताद् भगवद्रविप्रणीतात् सिद्धान्तादानीय कृतमिति।।१।।

अथ युद्धकारणमाह—

वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् ।
अतिदूराद् दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम् ॥२॥

आसन्नक्रमयोगाद् भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः ।
युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥३॥

आकाश में चलते हुये, ऊपर-ऊपर अपने-अपने मार्ग में स्थित, अत्यन्त दूर से देखने के कारण समान की तरह प्रतीत होने वाले ग्रहों के पराशर आदि मुनियों ने आसन्न-क्रम योग के भेद से भेद, उल्लेख, अंशुमर्दन, अपसव्य—ये चार प्रकार के ग्रहयुद्ध कहे हैं।

विशेष—अधःस्थित बिम्ब से ऊर्ध्वस्थित बिम्ब के आच्छादित होने से भेद, एक बिम्वपरिधि से दूसरे की बिम्बपरिधि का स्पर्श करे तो उल्लेख, आसन्नस्थित दोनों ग्रहों के परस्पर किरण का संयोग होने से अंशुमर्दन और ठीक दक्षिणोत्तर में स्थित होने से अपसव्य नामक ग्रहयुद्ध होता है।।२-३।।

ग्रहाणां भौमादीनां वियत्याकाशे चरतां गच्छतामुपर्युपर्युर्ध्वाधः स्थित्या आत्ममार्गे स्ववर्त्मनि प्रतिमण्डलवशेन संस्थितानां दृग्विषये दृष्टिगोचरे अतिदूरादत्यासन्ननिकृष्टत्वात् समतां तुल्यतामिव सम्प्रयातानां प्राप्तानाम्।

आसन्नक्रमयोगात्। आसन्नोऽतिनिकटः। क्रमोऽनुपरिपाटी। आसन्नक्रमाद्यो योगस्तस्माद्युद्धं भवति। तच्च युद्धं पराशराद्यैर्मुनिभिः पराशरगर्गकाश्यपवज्रादिभिश्चतुष्प्रकारं

चतुर्विधमुक्तं कथितम्। कैर्भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः। भेदेनोल्लेखेनांशुमर्दनेनापसव्येन। यत्र ग्रहद्वयमप्येकबिम्बमिव लक्ष्यते स भेदः। अधःस्थेनोर्ध्वस्थश्छाद्यत इति यावत्। यत्र ग्रहस्य ग्रहेण बिम्बपरिधिसंस्पर्शः क्रियते स उल्लेखः। अंशवो रश्मयस्तेषामंशूनां किरणानां परस्परं मर्दनम्। मृद् क्षोदे। भेदोल्लेखस्य व्यतिरेकेण आसन्नयोर्द्वयोर्ग्रहयोः परस्परं रश्मयः संयुक्ता विहन्यमाना इव लक्ष्यन्ते तदंशुमर्दनं कथ्यते। अपसव्यः प्रदक्षिण उच्यते समं कृत्वा दक्षिणोत्तरावस्थानमपसव्यमुच्यते। आचार्येण चन्द्रग्रहसमागमे अपसव्य-लक्षणं कृतम्—'शशिनि फलमुदक्स्थे यद् ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्' इति। एतदुक्तं भवति—ग्रहस्योत्तरदिक्स्थे शशिनि क्वचित्—

हस्तमात्रं भवेद्युद्धं बाहुमात्रं समागमः।
वितस्तिमात्रमुल्लेखो भेदश्चैव निरङ्गुलः।। इति।

नियतफलमपसव्ये दक्षिणदिक्स्थे तदेव फलं विपरीतम्। अमुमेवार्थमृषिपुत्र आह—

दक्षिणेनापसव्यं स्यादुत्तरेण प्रदक्षिणम्।
ग्रहाणां चन्द्रमा ज्ञेयो नक्षत्राणां तथैव च।।

ननु ग्रहाणां नक्षत्राणां च चन्द्रमाः प्रदक्षिणश्चापसव्यश्च पठितो न परस्परं ग्रहाणामपसव्यता प्रदक्षिणता च। अत्र वृद्धगर्ग आह—

ग्रहाणां विजये भङ्गे नक्षत्राणां च संश्रये।
कथं प्रदक्षिणं ज्ञेयमपसव्यं तथैव च।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा तूत्तरगः शशी।
तत्प्रदक्षिणमित्याहुर्भवेत् क्षेमसुवृष्टये।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा दक्षिणतो व्रजेत्।
अपसव्यं तदैव स्यादवृष्टिभयलक्षणम्।।

सर्वेषां सामान्यमपसव्यलक्षणमपसव्ये वायं न भवति। अपसव्येऽर्थे यदेवापसव्यं तदेव सव्यमिति। भेदश्चोल्लेखश्चांशुमर्दनं चाऽसव्यं च भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यानि, तैश्च-तुर्भिर्गतिविशेषैर्ग्रहाणां चतुष्प्रकारमेव युद्धं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तं पराशरगर्गकाश्यपवज्र-वसिष्ठैरभिहितम्।

पराशराद्यैरित्यनेन मुनीनां वचनभेदं प्रदर्शयति। यथा ऋषिपुत्रादिभिर्ग्रहयुद्धपञ्चदश-प्रकारमुक्तम्।

पाराशरादीनामेव यन्मतं तच्चाऽऽचार्यस्यापि स्वसिद्धान्ते येन स्थानस्थानेष्वाह—गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतदिति। तथा च पराशरः—

भेदनमारोहणमुल्लेखनं रश्मिसंसर्गश्चेति ग्रहयुद्धं चतुर्विधमाचक्षते कुशलाः। तेषां पूर्वात् पूर्वो गरीयान्। तथा च गर्गः—

छादनं रोधनं चैव रश्मिमर्दस्तथैव च।
अपसव्यं ग्रहाणां च चतुर्धा युद्धमुच्यते।।

तथा च काश्यपः—

सर्वग्रहेभ्यः शीघ्रेन्दुस्ततस्तस्यैव चात्मजः।
भार्गवो रविभौमौ च जीवो मन्दः शनैश्चरः।।
शीघ्रगा मन्दगाश्चैते काले त्वेकर्क्षगामिनः।
ततो योगो भवेदेषां यतोऽशत्वैकमाश्रिताः।।
उपर्युपरिसंस्थास्ते दृश्यन्ते युगपत् स्थिताः।
भेदोल्लेखांशुमर्दाश्चापसव्यश्च तथापरः।।
चतुष्प्रकारः संयोगो युद्धे तु दिविचारिणाम्।। इति।

एवमन्योन्यापेक्षयाऽपसव्यमुच्यते।।२-३।।

अथ चतुष्प्रकारस्य युद्धस्य प्रत्येकं फलमाह—

भेदे वृष्टिविनाशो भेदः सुहृदां महाकुलानां च।
उल्लेखे शस्त्रभयं मन्त्रिविरोधः प्रियान्नत्वम् ।।४।।

अंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः।
युद्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति युद्धानि भूपानाम् ।।५।।

यदि भेदयुद्ध हो तो वर्षा का नाश तथा मित्र और उत्तम कुलोत्पन्न मनुष्यों में परस्पर भेद होता है। उल्लेखयुद्ध हो तो शस्त्रभय, मन्त्रियों में विरोध और दुर्भिक्ष होता है। अंशुविरोधयुद्ध हो तो राजाओं में परस्पर युद्ध, शस्त्र, रोग और क्षुधाओं से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है तथा अपसव्ययुद्ध (कोई ग्रह किसी ग्रह के दक्षिण पार्श्व से आगे होकर वाम पार्श्वगत हो तो) राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।।४-५।।

भेदसंज्ञिते युद्धे वृष्टिविनाशोऽवर्षणं भवति। सुहृदां मित्राणां महाकुलानां च प्रधानानां परस्परं भेदो भवति। उल्लेखे उल्लेखसंज्ञिते युद्धे शस्त्रभयं शस्त्राद्भयम्। मन्त्रिविरोधः सचिवविग्रहः। प्रियान्नत्वं दुर्भिक्षभयमित्यर्थः।

अंशुविरोधसंज्ञिते युद्धे भूभृतां राज्ञां युद्धानि भवन्ति। तथा शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः। अवमर्दशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। शस्त्रेण रुग्भिश्च क्षुधा चावमर्दा भवन्ति। एतैर्जना उपताप्यन्ते। अवमर्दोऽतीव पीडा इत्यर्थः। **युद्धे चापसव्य इति**। न केवलमंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां भवन्ति यावदपसव्ये च ग्रहयुद्धे भूपानां युद्धान्येव भवन्ति। नन्वपसव्यसंज्ञितं युद्धं तदतिरिच्यते यस्माद्भेदोल्लेखयोर्यदन्यत्तदंशुमर्दनं भेदोल्लेखांशुमर्दनान्येव त्रयो गतिविशेषा अवगम्यन्ते। तस्मात् त्रय एव युद्धभेदा वक्तव्या इति। अत्रोच्यते—ग्रहाद् ग्रहस्य दक्षिणदिक्स्थतता परुषता कम्पनं विवर्णता विकृतता अधिरूढता सूक्ष्मता प्रतिनिवर्तनमिति पराभवलिङ्गानि। उत्तरदिक्स्थतता स्निग्धता वैपुल्यादीनि जयलिङ्गानि। दक्षिणदिक्स्थतोऽपि यदा वैपुल्यस्निग्धतादिभिर्विजयलिङ्गैर्युक्तो भवति स जेता कल्प्यते। यदा दक्षिणदिक्स्थो जेता भवति तदा किमुत्तरदिक्स्थते ग्रहे जेतरि यत्फलम् 'शुक्रे बृहस्पतिजिते

यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति' इत्येवमादिकं तदेव फलमुत चन्द्रग्रहसमागमोक्तेन 'शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्'। यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तदित्यनेन न्यायेन फलं वैपरीत्येन कल्प्यत इत्याचार्याऽऽर्यभटोपनिबद्धाप-सव्यसंस्थाने च ग्रहयुद्धस्यापसव्यसंज्ञितस्य फलं कल्प्यत इति। आचार्याऽऽर्यभटश्च प्राग्दक्षिणपरोत्तरानुक्रमेण द्रष्टुर्ग्रहाणां परिभ्रमो यस्तमपसव्यमाह—

देवाः पश्यन्ति भगोलार्द्धमुदङ्मेरुसंस्थिताः सव्यम्।
अपसव्यगं तथार्द्धं दक्षिणवडवामुखे प्रेताः।। इति।

एतैरनेकाकारैराचार्याणां दर्शनैर्मन्दधियां शिष्याणां खिलीभूतचित्तानां विकल्पिता-विकल्पमाशङ्क्याऽऽचार्येणेदमपसव्यसंज्ञितं चतुर्थं युद्धभेदं कल्पयित्वा फलमुक्तं परा-शरादिभिर्बहुभिरुक्तं न स्वमनीषया यथा यदेवोत्तरे स्थिते ग्रहे जेतरि फलं दक्षिणदिक्स्थे-ऽप्यपसव्यसंज्ञिते ग्रहे जेतरि तदेव फलम्। किमत्राप्येवं मन्यसे यथा सव्यापसव्यमाचा-र्येणानियमेनैवाभिहितम्। तथा चाह—

गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम्।
दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये।।

वामपार्श्वस्थे अरिभयं जयः सव्ये। लोके च वामपार्श्वं यत्तत्सव्यमुच्यते। तथा च भगवान् व्यास आह—

युध्यतः प्राङ्मुखस्यास्तु सुपर्णोऽयं ममाग्रतः।
सव्ये पार्श्वे च प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणो भवान्।।

तथा च बादरायणः—

तत्रापि हरेर्नयनं दक्षिणमर्कः शशी सव्यम्।

'वामेऽरिभयं जयः सव्ये' इत्यस्यान्य एवार्थ उच्यते—क्षितिस्थानामन्यथा सव्याऽप-सव्यं ग्रहर्क्षाणामन्यथा। प्राचीं दिशं गच्छतां यियासूनामुत्तरदिक्स्थः शकुनः प्राचीं दिशमा-सादयन् दक्षिणं पर्येति यः स प्रदक्षिण उच्यते। सव्यश्च प्रदक्षिणम्। सव्याऽपसव्ययोरभेद एवाऽऽचार्य आह—

ऐन्द्रांनलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः।
कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्।। इत्यादि।

आचार्यार्यभटेन सव्यापसव्यं भूगतानां सत्त्वानामुक्तमतः कस्माद् ग्रहर्क्षाणामुक्तमप्यु-च्यते। मेरुमूलनिवासीनि यानि सत्त्वानि तानि मिथुनान्तगमप्यर्कं क्षितिजलेखासन्नमेव पश्यन्ति तथैव वडवामुखनिवासीनि। अत्रोक्तमेवाऽऽचार्येण—

यन्मात्रं भूवृत्तात् क्षणद्वयेनोन्नतिं व्रजत्यर्कः।
तन्मात्रान्तरचारिणममराः पश्यन्ति नोर्ध्वमधः।।

तस्मात् क्षितिजलेखासन्नव्यवहारमेवाङ्गीकृत्याऽऽचार्याऽऽर्यभटेनोक्तम्।

सर्व एव शकुनादयो यातुर्वामपार्श्वादग्रत आगत्य दक्षिणपार्श्वेन क्रामन्ति यत्तत्प्रदक्षिणं सव्यं च। एतद्विपरीतं दक्षिणपार्श्वाद्वामपार्श्वगमनं यत्तदपसव्यमेष निश्चयः। 'वामेऽरिभयं जयः सव्ये' तदुक्तं प्रदक्षिणेन जयः। आचार्येणेदं प्रदर्शितमेव 'प्रदक्षिणं तु यात्रायां जयदं नेष्टमन्यथा' इति। वामेऽरिभयमिति सव्याद्यदन्यथा वामं विपरीतं ग्रहाणां सव्यापसव्यता। उत्तरदिक्स्थः प्रदक्षिणो दक्षिणदिक्स्थो जेता यदा तदा तदपसव्यमिति। नन्वनुक्तं कथमवगम्यते इदम्? अत्रोच्यते—उक्तमेवेदम्। यतोऽनुलोमेन प्रतिलोमेन वा गत्या भेदेन ग्रहाणां फलं प्रतिभेदात्र प्रदर्शितम्। तत्र एकमेव फलं तथा चानुलोमगः प्रतिलोमगो वा दक्षिणेनोत्तरेण वोल्लेखं करोति। तत्राप्येकमेव फलम्। तथांशुविमर्दस्याप्यनुलोमेन प्रतिलोमेनापि फलस्याभेदः। एवं संस्थानत्रयं चैतद्यदंशुमर्दनस्य फलमपसव्यसंज्ञितस्य तदेव फलम्—

एतदुक्तं भवति—यस्य ग्रहस्योत्तरदिक्स्थस्य यत्फलमभिहितं तस्य ग्रहस्य दक्षिणदिक्स्थस्यापसव्यसंज्ञितस्य जयसंयुक्तस्य तदेव फलम्। तस्मादपसव्यनिर्देशो यः स नातिरिच्यत इति।।४-५।।

अधुना ग्रहाणां यायिनागराक्रन्दसंज्ञा आह—

रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वेऽपरे स्थितो यायी।
पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दः ।।६।।

केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते हता घ्नन्ति।
आक्रन्दयायिपौरान् जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ।।७।।

सूर्य मध्याह्न समय में आक्रन्द, पूर्व में पौर और पश्चिम में यायी होता है। बुध, बृहस्पति और शनि सदा पौर, चन्द्र आक्रन्द तथा केतु, मंगल, राहु और शुक्र यायी संज्ञक हैं। ये ग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द, यायी और पौरों का नाश करते हैं; जैसे यदि आक्रन्दसंज्ञक ग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द (रक्षक आदि = 'आरावे रुदिते त्रातर्य्याक्रन्द' इत्यमरः) का, यायीसंज्ञक पीड़ित हो तो यायी (गमन करने वालों) का और पौरसंज्ञक ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासियों का नाश करता है तथा विजयी हों तो अपने वर्ग की विजय करते हैं।।६-७।।

रविः सूर्यो मध्ये मध्याह्नसमये आक्रन्दसंज्ञो भवति। यातुः पश्चात् स्थितः पार्ष्णिग्राहस्तस्य पश्चात् स्थित आक्रन्दः। पौरः स एव पूर्वे पूर्वाह्णे दिनस्य प्रथमत्रिभागे रविः पौरो नागरो भवति। अपरे अपराह्णे दिनस्य पश्चिमत्रिभागे यायी भवति। यायी यो यातव्यस्याग्रतो याति। बुधगुरुरविजाः सौम्यजीवसौरा नित्यं सर्वकालं पौरा नागराः। शीतांशुश्चन्द्रः सर्वकालमाक्रन्दः।

केतुकुजराहुशुक्रा यायिनः। केतुः शिखी। कुजोऽङ्गारकः। राहुः सैंहिकेयः। शुक्रो भार्गवः। एते ग्रहा यायिनः। एत एव हता घ्नन्ति आक्रन्दयायिपौरान्। आक्रन्दयायिपौरा ग्रहा हताः पराजिता आक्रन्दयायिपौरान्नृपान् घ्नन्ति। एत एव जयिनः स्ववर्गस्यात्मीयवर्गस्य जयदा भवन्ति।।७।।

अत्रैव विशेषमाह—

पौरे पौरेण हते पौराः पौरान् नृपान् विनिघ्नन्ति ।
एवं याय्याक्रन्दा नागरयायिग्रहाश्चैव ॥८॥

यदि पौर ग्रह से पौर ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासी राजाओं से पुरवासी राजा का नाश होता है। इसी तरह यायी ग्रह से आक्रन्द ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से आक्रन्द मनुष्य का और आक्रन्द ग्रह से यायी पीड़ित हो तो आक्रन्द से यायी का नाश होता है तथा नागर ग्रह से यायी पीड़ित हो तो नागर मनुष्य से यायी का और यायी ग्रह से नागर ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से नागर मनुष्य का नाश होता है।।८।।

पौरेण नागरेण ग्रहेण पौरे ग्रहे हते विजिते सति पौरा नृपाः पौरान् नृपानेव विनिघ्नन्ति नाशयन्ति। एवमनेन प्रकारेण याय्याक्रन्दाः परस्परं विनिघ्नन्ति। नागरयायिग्रहाश्चैवमपि जिताः परस्परं विनिघ्नन्ति। तथा च पराशरः—

तेषां तज्जयाद्विजयो वधाद् वधोऽन्योन्यभेदाद्भेदः साम्यात् साम्यम्।।८।।

अथ जितलक्षणमाह—

दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः ।
अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥९॥

दक्षिण दिशा में स्थित, रूक्ष, कम्पायमान, दूसरे ग्रह के पास में नहीं जाकर लौटने वाला, सूक्ष्म बिम्ब वाला, अन्य ग्रह से आक्रान्त, विकारयुत, किरणरहित, विवर्ण—इन लक्षणों से युत ग्रह पराजित होते हैं।।९।।

यो ग्रहो दक्षिणदिक्स्थो याम्याशास्थः। परुषो रूक्षो निःस्नेहः। वेपथुः सकम्पः। अन्यग्रहमप्राप्य सन्निवृत्तो निवर्तितः। विपरीतां गतिमापन्नः। अणुः सूक्ष्मः। अधिरूढोऽन्येनाऽऽक्रान्तः। विकृतो विकारं गतः। निष्प्रभो दीप्तिरहितः। विवर्णो विगतवर्णः। **स जित इति**। तथा च पराशरः—

'दशभिर्लक्षणैर्ग्रहं जितं विन्द्यात्। विवर्णः परुषः सूक्ष्मो याम्याशामार्गस्थोऽधिरूढो निष्प्रभो विकृतोऽभिहतोऽप्राप्य निवृत्तो वेपनश्च। अन्यथा विजयी'। तथा च गर्गः—

अरश्मिर्लोहितः श्यामः परुषः सूक्ष्म एव च।
अपसव्यगतो यश्च चक्रान्तःपतितस्तथा।।
च्युतः स्थानाद्धतो यश्च प्रतिस्तब्धस्तथैव च।
निष्प्रभो विकृतश्चापि जवेनाभिहतश्च यः।।
अप्राप्य वा निवृत्तो यो वेपनः कृष्ण एव च।
लक्षणैः सप्तदशभिर्ग्रहं विन्द्यात् पराजितम्।।९।।

अथ जयिनो लक्षणमाह—

उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्देश्यः ।
विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥१०॥

पूर्वोक्त लक्षण से विपरीत लक्षणयुत (उत्तर दिशा में स्थित, स्निग्ध, कम्पन से रहित, दूसरे ग्रह को प्राप्त करने वाला, ऊपर में स्थित और तेजस्वी) हो तथा दक्षिण में स्थित होने पर भी यदि विपुल, निर्मल, कान्तियुत बिम्ब वाला ग्रह हो तो विजयी होता है।

दक्षिणदिक्स्थः परुष इत्यादिना ग्रन्थेन यल्लक्षणमुक्तं तस्माद्विपरीतलक्षणसम्पन्नः। तद्यथोत्तरदिक्स्थः स्निग्धोऽवेपथुः सम्यक्प्राप्तो विपुल उपरिस्थितः। अविकृतस्तेजस्वी स जययुक्तः। तथा च गर्गः—

द्युतिमान् रश्मिसम्पन्नः प्रसन्नो रजतप्रभः।
बृहद्रूपधरश्चैव यः समेत्य ग्रहो भवेत्।।
प्रभावर्णाधिको यश्च ग्रहमावृत्य तिष्ठति।
तादृशं जयिनं विन्द्याद् ग्रहं ग्रहसमागमे।।

एवंविधो ग्रहो जयगतो विनिर्देश्यो वक्तव्यः। तथा यो विपुलो बृहद्बिम्बः। स्निग्धो निर्मलः। द्युतिमान् कान्तियुक्तः। स दक्षिणस्यां दिशि स्थितोऽपि जययुक्त इति। एतत् शुक्रस्य प्रायः सम्भवति। तथा च पुलिशाचार्यः—

सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयो शुक्रः।। इति।।१०।।

अन्यदप्याह—

द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः ।
तत्रान्योन्यं प्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥११॥

यदि समागम-समय में दोनों ग्रह किरणयुक्त, विपुल या स्निग्ध हों तो दोनों ग्रहों के वर्गों में प्रीति और विपरीत हों तो अपने-अपने पक्षों का नाश करते हैं।।११।।

द्वावपि ग्रहौ मयूखयुक्तौ रश्मिजालेन महता संयुक्तौ। विपुलौ विस्तीर्णौ। स्निग्धौ निर्मलौ। यदि समागमे संयोगे भवतः। तत्र तस्मिन् समागमे। अन्योन्यं परस्परं प्रीतिस्थौ ग्रहौ येषामुक्तौ रविराक्रन्दो मध्य इत्यनेन तेषां प्रीतिर्मैत्री भवति। तावेव ग्रहौ विपरीतौ रश्मि-रहितौ। अल्पौ रूक्षौ। यदि समागमे भवतस्तदात्मीयपक्षघ्नौ स्वं-स्वं पक्षं हतः।।११।।

अत्रापि विशेषमाह—

युद्धं समागमे वा यद्यव्यक्तौ स्वलक्षणैर्भवतः ।
भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं विनिर्देश्यम् ॥१२॥

युद्ध (भौम आदि ग्रहों का परस्पर युद्ध) और समागम (चन्द्र के साथ सम्मेलन) यदि अपने-अपने उक्त लक्षणों से अव्यक्त (अप्रकाशित) हो (जैसे युद्ध में कौन ग्रह

विजयी और कौन ग्रह पराजित है—इसका ज्ञान न होता हो) तथा समागम में ग्रह से चंन्द्रमा न उत्तर न दक्षिण; किन्तु मध्य में होकर गमन करता हो, तो पृथ्वी पर राजाओं को भी अव्यक्त (सन्दिग्धात्मक) फल कहना चाहिये।।१२।।

युद्धं ताराग्रहाणां भौमादीनां परस्परम्। समागम एषामेव चन्द्रमसा सह। युद्धं समागमो वा यदि स्वलक्षणैर्युद्धसमागमोक्तैरव्यक्तावलक्ष्यौ भवतः। युद्धमात्रं जयपराजय-रहितमित्यर्थः। यथा द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ विपरीतलक्षणस्थितौ वा तत्र न ज्ञायते को जितः कश्च जयी। समागमे ग्रहाणां चन्द्रे ग्रहादुत्तरगते दक्षिणदिग्गते वा यच्छुभाशुफलमुक्तं तत्र यद्यव्यक्तः समागमो भवति। एतदुक्तं भवति—ग्रहाच्चन्द्रो नोत्तरेण न च दक्षिणेन वा याति मध्येन गमनं करोति तदा तत्र भेदफलं वक्तव्यं न समागमोक्तं फलं तदव्यक्तं समागमस्य। तथा तेनैव प्रकारेण भूमौ भूभृतां राज्ञामव्यक्तमलक्षमेव फलं विनिर्देश्यं वक्तव्यम्। जये सत्यव्यक्तो जय आदेश्यः। पराजये पराजयः। एवं चन्द्रस्योत्तर-गमनेन शुभं फलं वक्तव्यम्। दक्षिणेनाशुभं मध्येन मध्यफलमिति।।१२।।

अथ भौमस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्ताश्च।
शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गशाल्वाश्च पीड्यन्ते ।।१३।।
सौरेणारे विजिते जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति।
कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापश्च शुक्रजिते ।।१४।।

यदि मङ्गल बृहस्पति से पराजित हो तो बाह्लीक देश में निवास करने वाले, विजय की इच्छा करने वाले, अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले—ये सब पीड़ित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो सूरसेन, कलिङ्ग और शाल्व देश में रहने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि शनैश्चर से पराजित हो तो नगरों में निवास करने वाले विजयी और प्रजागण दुःखी होते हैं। यदि शुक्र से पराजित हो तो कोष्ठागार (अन्तर्गृह = 'पुंसि कोष्ठोऽन्तर्जठरं कुसूलोऽन्तर्गृहन्तथा' इत्यमरः), म्लेच्छ जाति और क्षत्रिय पीड़ित होते हैं।।१३-१४।।

अवनिसुतेऽङ्गारके गुरुणा बृहस्पतिना जिते पराजिते पराभूते बाह्लीका जनाः। यायिनो जिगमिषवः। अग्निवार्ताः सुवर्णकारप्रभृतयः। एते पीड्यन्ते उपताप्यन्ते। शशिजेन बुधेन जिते भौमे शूरसेना जनाः। कलिङ्गाः शाल्वाश्च पीड्यन्ते।

सौरेण शनैश्चरेणाऽऽरेऽङ्गारके विजिते पौरा नागरा जयन्ति विजयं प्राप्नुवन्ति। प्रजाश्च सीदन्त्यवसादयन्ति। शुक्रजिते भौमे कोष्ठागाराणामवलम्बग्रामाणां म्लेच्छानां क्षत्रियाणां च तापः सन्तापो भवति। पीडा भवतीत्यर्थः।।१३-१४।।

अथ बुधस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः।
उत्तरदिक्स्थाः क्रतुदीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति ।।१५।।

गुरुणा जिते बुधे म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः ।
त्रैगर्तपार्वतीयाः पीड्यन्ते कम्पते च मही ॥१६॥

रविजेन बुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जसधनगर्भिण्यः ।
भृगुणा जितेऽग्निकोपः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः ॥१७॥

यदि मङ्गल से बुध पराजित हो तो नदी, तपस्वी, अश्मक देश में निवास करने वाले, राजा, उत्तर दिशा में निवास करने वाले और यज्ञ में दीक्षित मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि बृहस्पति से पराजित हो तो म्लेच्छ जाति, शूद्र जाति, चोर, धनी, पुरों में रहने वाले, त्रिगर्त देश में रहने वाले और पर्वत पर निवास करने वाले पीड़ित होते हैं तथा भूकम्प होता है। यदि शनैश्चर से पीड़ित हो तो नाव चलाने वाले, योध (शत्रु वृत्ति वाले), जल से उत्पन्न वस्तु, धनी और गर्भिणी स्त्री पीड़ित होती है। यदि शुक्र से पराजित बुध हो तो अग्नि का प्रकोप, धान्य, मेघ और गमन करने वाले राजाओं का नाश होता है।।१५-१७।।

शशिजे बुधे भौमेनाङ्गारकेण हते वृक्षास्तरवः। सरितो नद्यः। तापसास्तपस्विनः। अश्मका जनाः। नरेन्द्रा राजानः। उत्तरदिक्स्थाः सौम्याशानिवासिनो जनाः। क्रतुदीक्षिताः सम्यग्यज्ञयाजिनः। एते एर्व एव सन्तापं पीडामायान्ति प्राप्नुवन्ति।

गुरुणा बृहस्पतिना जिते पराजिते बुधे म्लेच्छा जनाः। शूद्राः शूद्रजातयः। चौरास्त-स्कराः। अर्थयुक्ताः सधनाः। पौरजनाः पुरवासिनः। त्रैगर्ता जनाः। पार्वतीयाः पर्वतवासिनः। एते सर्व एव पीड्यन्ते उपताप्यन्ते। मही भूश्च कम्पते चलति।

रविजेन शनैश्चरेण बुधे ध्वस्ते विजिते नाविकाः कैवर्ताः। योधाः शत्रुवृत्तयः। अब्जाः जलजाः। सधना ईश्वराः। गर्भिण्यः सगर्भाः स्त्रियः। एते सर्व एव पीड्यन्ते। भृगुणा शुक्रेण विजिते बुधे। अग्निकोपो वह्निप्रकोपः। सस्यानां धान्यादीनामम्बुदानां च मेघानां यायिनां यियासूनां च विध्वंसो विनाशो भवति।।१५-१७।।

अथ जीवस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया मद्राः ।
शाल्वा वत्सा वङ्गा गावः सस्यानि पीड्यन्ते ॥१८॥

भौमेन हते जीवे मध्यो देशो नरेश्वरा गावः ।
सौरेण चार्जुनायनवसातियौधेयशिबिविप्राः ॥१९॥

शशितनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यशस्त्रभृतः ।
उपयान्ति मध्यदेशश्च संक्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥२०॥

यदि शुक्र से बृहस्पति पराजित हो तो कुलूत, गान्धार, कैकय, मद्र, शाल्व, वत्स और वङ्ग देश में निवास करने वाले मनुष्य, गौ तथा धान्य पीड़ित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो मध्य देश, राजा और गौ पीड़ित होती है। शनि से पराजित हो तो

अर्जुनायन, वस, यौधेय, शिबि—इन देशों में निवास करने वाले और ब्राह्मण पीड़ित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो म्लेच्छ जन, सत्य भाषण करने वाले, शस्त्र धारण करने वाले और मध्य देश का नाश होता है तथा गुरुभक्ति के फल (ग्रहभक्तियोगाध्यायोक्त गुरुभक्तिफल) का भी नाश होता है।।१८-२०।।

जीवे बृहस्पतौ शुक्राभिहते कुलूता जनाः। गान्धराः। कैकयाः। मद्राः। शाल्वाः। वत्साः। वङ्गा। गावो धेनवः। सस्यानि धान्यादीनि पीड्यन्ते।

भौमेनाङ्गारकेण हते जीवे मध्यो देशः। तथा नरेश्वरा राजानः। गावो धेनवश्च पीड्यन्ते। सौरेण शनैश्चरेण हते जीवे अर्जुनायना जनाः। वसातयः। यौधेयाः। शिबयः। विप्रा ब्राह्मणाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते।

शशितनयेन बुधेन जिते बृहस्पतौ गुरौ। अपिशब्दः स्वार्थे। म्लेच्छा जनाः। सत्यभृतः सत्यवादिनः। शस्त्रभृतः शस्त्रवृत्तयः। मध्यदेशश्च। एते सर्वे संक्षयं विनाशमुपयान्ति। अन्यच्च गुरुभक्तिफलं यत्प्रागुक्तं तच्चापि संक्षयं याति।।१८-२०।।

अथ शुक्रस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

शुक्रे बृहस्पतिजिते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति।
ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति॥२१॥

कोशलकलिङ्गवङ्गा वत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः।
महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः शूरसेनाश्च॥२२॥

कुजविजिते भृगुतनये बलमुख्यवधो नरेन्द्रसंग्रामाः।
सौम्येन पार्वतीयाः क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च॥२३॥

रविजेन सिते विजिते गुणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम्।
जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत्॥२४॥

यदि बृहस्पति से शुक्र पराजित हो तो यायी (नायक) और प्रधान जनों का नाश, ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर विरोध, अवृष्टि, कोशल, कलिङ्ग, वङ्ग, वत्स, मत्स्य और मध्य देश में निवास करने वाले मनुष्य, नपुंसक तथा शूरसेन देश में स्थित मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो सेनापति का मरण और राजाओं में परस्पर युद्ध होता है। यदि बुध से पराजित हो तो पर्वत पर निवास करने वालों का नाश, गौओं के दूध का नाश और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि शनैश्चर से पराजित शुक्र हो तो सङ्घियों में प्रधान, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, क्षत्रिय वर्ग और जल में उत्पन्न वस्तु पीड़ित होती है। तथा सामान्य भक्तिफल और स्वभक्तिफल का भी नाश करता है।।२१-२४।।

बृहस्पतिजिते शुक्रे यायी नायकः। श्रेष्ठः प्रधानो विनाशं क्षयमुपयाति प्राप्नोति। तथा ब्रह्मक्षत्रविरोधः। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च विरोध उपद्रवः। वासव इन्द्रः सलिलं जलं न त्यजति। न वर्षतीत्यर्थः।

तथा कोशला जनाः। कलिङ्गाः। वङ्गाः। वत्साः। मत्स्याश्च। एत एव मध्यदेशयुता मध्यदेशेन समन्विता महतीं पीडां व्रजन्ति प्राप्नुवन्ति। नपुंसकाः क्लीबाः। शूरसेनाश्च जना महतीं पीडां व्रजन्ति।

भृगुतनये शुक्रे कुजविजिते भौमहते बलमुख्यः सेनापतिस्तस्य वधो मरणं भवति। नरेन्द्राणां राज्ञां संग्रामा युद्धानि भवन्ति। सौम्येन बुधेन जिते शुक्रे पार्वतीयाः पर्वतवासिनो नाशमायान्ति। गवां च क्षीरविनाशो भवति। अल्पा वृष्टिश्च भवत्येव।

रविजेन शनैश्चरेण सिते शुक्रे विजिते गणमुख्या गणप्रधानाः। शस्त्रजीविनः शस्त्रवृत्तयः। क्षत्रं क्षत्रियवर्गः। जलजा जलोद्भवाश्च। निपीड्यन्ते पीडामुपयान्ति। तद्विशेषफलम्। सामान्यं भक्तिफलमन्यत्। अन्यदपरं यत्स्वभक्तिफलमुक्तं तदपि हन्ति।।२१-२४।।

अथ सौरस्य ग्रहविजितस्य फलमाह—

असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा।
क्षितिजेन तङ्गणान्ध्रोड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥२५॥
सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः।
सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ॥२६॥

यदि शुक्र से पराजित शनि हो तो सभी द्रव्यों में मौल्य की वृद्धि, सर्प, पक्षी और मानियों को पीड़ा होती है। यदि मङ्गल से पराजित हो तो तङ्गण, आन्ध्र, उड्र, काशी और बाह्लीक देश में निवास करने वालों को पीड़ा होती है। यदि बुध से पराजित हो तो अङ्ग देश में निवास करने वाले, क्रय-विक्रय से आजीविका चलाने वाले, पक्षी, पशु और हाथी पीड़ित होते हैं। यदि गुरु से पराजित शनि हो तो अधिक स्त्री वाला देश, महिषक देश में रहने वाले और शक देश में रहने वाले पीड़ित होते हैं।।२५-२६।।

असिते सौरे सितेन शुक्रेण निहते विजिते अर्घवृद्धिर्भवति सर्वद्रव्याणां सुलभत्वं भवति। अहीनां सर्पाणां विहगानां पक्षिणां मानिनां मानयुक्तानां जनानां च पीडा भवति। क्षितिजेनाङ्गारकेण सौरे विजिते सति तङ्गणा जनाः। अन्ध्राः। उड्राः। काशयः। बाह्लीकाः। एतेषां जनानां ये देशास्तेषां पीडा भवति।

सौम्येन बुधेन मन्दे शनैश्चरे पराभूते। अङ्गा जनाः। वणिजः क्रयविक्रयजीविनः। विहङ्गा पक्षिणः। पशवश्चतुष्पदाः। नागा हस्तिनः। एते सन्ताप्यन्ते पीड्यन्ते। तथा गुरुणा बृहपतिना जिते सौरे स्त्रीबहुला ये देशाः। महिषकशकाश्च जनाः। सन्ताप्यन्ते पीड्यन्ते।।२५-२६।।

अत्रैव विशेषमाह—

अयं विशेषोऽभिहितो हतानां
कुजज्ञवागीशसितासितानाम् ।

फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्य-
द्यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥२७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
ग्रहयुद्धाध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के ये विशेष फल कहे गये हैं, अवशिष्ट फल ग्रह की भक्ति से कहना चाहिये। जिस तरह व्यक्त या अव्यक्त रूप से ग्रह पीड़ित होते हैं, उसी प्रकार व्यक्त या अव्यक्त रूप से अपनी भक्ति का भी नाश करते हैं।।२७।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहयुद्धाध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

कुजोऽङ्गारकः। ज्ञो बुधः। वागीशो बृहस्पतिः। सितः शुक्रः। असितः शनैश्चरः। एषां हतानां जितानामयं विशेषोऽभिहित उक्तः। अन्यदपरं यत्फलं तद्ग्रहस्य भक्तितो वाच्यम्। यथा येन प्रकारेण व्यक्तेनाऽव्यक्तेन वा हता जितास्तथा तेनैव प्रकारेण व्यक्तमव्यक्तं वा कृत्वा स्वभक्तीर्घ्नन्ति विनाशयन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

ग्रहस्य ये यस्य हताः स्वदेशाः पीडांशमृच्छन्ति त एव तस्य।
सम्प्राप्तवीर्यस्य जये समर्था भवन्ति तस्यर्द्धिचतुष्पदाढ्याः।। इति।।२८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
ग्रहयुद्धंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ शशिग्रहसमागमाध्यायः

अथ शशिग्रहसमागमाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव चन्द्रमसो गतिलक्षणमाह—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिणं तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥१॥

यदि नक्षत्र या ग्रहों के निकटवर्ती होकर चन्द्रमा प्रदक्षिण क्रम से उत्तर तरफ होकर गमन करे तो राजाओं का शुभ और दक्षिण तरफ होकर गमन करे तो अशुभ करने वाला होता है।

विशेष—यह समागम जिन नक्षत्रों का शर चन्द्रशर से अल्प या तुल्य है, उन्हीं का होता है। जैसे—कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, शतभिषा, रेवती—इन नक्षत्रों का शर चन्द्रशर से अल्प होने के कारण चन्द्र के साथ समागम होता है। जिन नक्षत्रों का उत्तरशर चन्द्रशर से अधिक है, उनके सदा दक्षिण तरफ होकर और जिनका दक्षिण शर चन्द्रशर से अधिक है, उनके सदा उत्तर होकर चन्द्र गमन करता है।।१।।

शशाङ्कश्चन्द्रः। भानां नक्षत्राणां यथासम्भवमुत्तरेण यातो गतः। यथासम्भवमिति निकटवर्तिनं प्रदर्शयति। येषां चन्द्रविक्षेपादूनो विक्षेपस्तत्तुल्यो वा तेषां प्रायेण सम्भवति। यथा कृत्तिकारोहिणीपुष्यमघाचित्राविशाखानुराधाज्येष्ठशतभिषग्रेवतीनां सम्भवति। अन्येषां कदाचित् सम्भवति दूरवर्तिनामुत्तरेण तस्य गमनं न सम्भवति। यथा स्वातिश्रवणधनिष्ठादिषु। स्वातेः सप्तत्रिंशद् भागा उत्तरो विक्षेपः। चन्द्रस्य सार्द्धाश्चत्वारस्तस्य सर्वकालं दक्षिणेन याति चन्द्रः। तेषां चन्द्रविक्षेपादधिक उत्तरतो विक्षेपस्तेषां सदैव दक्षिणेन याति। येषां चन्द्रविक्षेपादधिको दक्षिणो विक्षेपस्तेषां सदैवोत्तरेण याति चन्द्रः। एवं भौमादीनां यथा-सम्भवमपि योज्यम्। एवं येषां सम्भवति तेषां योज्यम्। ग्रहाणां भौमादीनां वोत्तरेण यातः प्रदक्षिणं कृत्वा। तच्च प्रदक्षिणगमनं नृपाणां राज्ञां शुभं श्रेयस्करम्। याम्येन दक्षिणेन शशाङ्को यातो न शिवो न शुभद इत्यर्थः। ग्रहाणामपि यथासम्भवं योज्यम्। तथा च ऋषिपुत्रः—

दक्षिणेनापसव्यं स्यादुत्तरेण प्रदक्षिणम्।
ग्रहाणां चन्द्रमा ज्ञेयो नक्षत्राणां तथैव च।।

तथा च वृद्धगर्गः—

नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा तूत्तरगः शशी।
तत्प्रदक्षिणमित्याहुर्भवेत् क्षेमसुवृष्टये।।

नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा दक्षिणतो व्रजेत्।
अपसव्यं तदेव स्यादवृष्टिभयलक्षणम्।। इति।।१।।

अथाङ्गारकस्योत्तरगते चन्द्रे फलमाह—

चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक् पार्वतीयबलशालिनां जयः ।
क्षत्रियाः प्रमुदिताः सयायिनो भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा ॥२॥

यदि मङ्गल के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पर्वत पर निवास करने वाले और बलशालियों की विजय होती है, यायी मनुष्यों के साथ क्षत्रियगण प्रमुदित होते हैं तथा पृथ्वी अधिक धान्यों से युत होती है।।२।।

कुजस्याङ्गारकस्य चन्द्रमाः शशी यद्युदगुत्तरेण याति गच्छति तदा पार्वतीयानां पर्वतनिवासिनाम्। बलशालिनां बलेन ये शालन्ते श्लाघ्यन्ते तेषां च जयो भवति। तथा च सयायिनो यायिभिः सहिताः क्षत्रियाः प्रमुदिता हृष्टा भवन्ति। तथा च वसुन्धरा भूः। भूरिधान्येन बहुधान्येन मुदिता हृष्टा भवति।।२।।

अथ बुधस्याह—

उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च ।
सस्यचयं कुरुते जनहार्दिं कोशचयं च नराधिपतीनाम् ॥३॥

यदि बुध के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी राजाओं की विजय, सुभिक्ष, धान्यों की वृद्धि, लोगों को आन्तरिक तुष्टि और राजाओं के कोश की वृद्धि होती है।।३।।

शशाङ्कश्चन्द्रः। स्वसुतस्यात्मीयपुत्रस्य बुधस्योत्तरत उत्तरेण यदि याति तदा पौराणां नृपाणां जयाय भवति सुभिक्षं च करोति। तथा च सस्यानां चयमुपचयं जनानां लोकानां च हार्दिं तुष्टिं नराधिपतीनां राज्ञां कोशचयं भाण्डागारवृद्धिं च करोति।।३।।

अथ गुरोराह—

बृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम् ।
धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ॥४॥

यदि बृहस्पति के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, पण्डित, धर्म, मध्यदेश—इन सबों की वृद्धि, सुभिक्ष और सम्पूर्ण प्रजा हर्षयुत होती है।

शशाङ्के चन्द्रे वृहस्पतेरुत्तरगे उत्तरस्यां दिशि स्थिते पौराणां जनानां द्विजानां ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां राजन्यानां पण्डितानां विदुषां तथा धर्मस्य मध्यमस्य च देशस्य मध्यमदेशाख्यस्य वृद्धिर्भवति। सुभिक्षं च भवति। तथा सर्वाः प्रजा मुदिता हृष्टा भवन्ति।।४।।

अथ शुक्रस्याह—

भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः ।
यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ॥५॥

यदि शुक्र के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो कोश, हाथी और घोड़ों की वृद्धि, धनुर्धारी, पापी और जीतने की इच्छा रखने वालों की विजय तथा धान्यों की अच्छी उत्पत्ति होती है।।५।।

भार्गवस्य शुक्रस्य शशी चन्द्रो यद्युदगुत्तरेण याति तदा कोशयुक्तानां सञ्चितभाण्डागाराणां गजानां वाजिनामश्वानां च वृद्धिप्रदो भवति। तथा धनुष्मतां धनुर्भृतां यायिनां च जिगमिषूणां विजयो भवति। सस्यानामपि चोत्तमा तदा तस्मिन् काले सम्पद्भवति। अपिशब्दोऽत्रातीवार्थे।।५।।

अथ सौरस्याह—

रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत्पुरभूभृतां जयः।
शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवा मुदभाजो यवनैः समन्विताः ॥६॥

यदि शनैश्चर के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी और राजाओं की विजय तथा शक, वाह्लिक, सैन्धव और पह्लवदेशवासी मनुष्य हर्षयुत होते हैं।।६।।

रविजस्य शनैश्चरस्य शशी चन्द्रः प्रदक्षिणमुत्तरगमनं चेद्यदि कुर्यात्तदा पुरभूभृतां पुरनिवासिनां राज्ञां जयो भवति। तथा शका जनाः। बाह्लिकाः। सैन्धवाः। पह्लवाः। एते सर्वे यवनैः समन्विताः मुदभाजो भवन्ति। मुदं हर्षं भजन्ते सेवन्ते। प्रहृष्टा भवन्तीत्यर्थः।।६।।

अत्रैव विशेषमाह—

येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च।
तद्द्रव्यपौरेतरभक्तिदेशान् पुष्णाति याम्येन निहन्ति तानि ॥७॥

जिन नक्षत्रों या ग्रहों के उत्तर तरफ होकर उत्पातरहित चन्द्र गमन करे उन नक्षत्रों या ग्रहों के द्रव्यों की पुष्टि और दक्षिण तरफ होकर गमन करे तो हानि करता है।।७।।

येषां भानां नक्षत्राणां ग्रहाणां च भौमादीनां प्रालेयरश्मिर्हिमदीधितिश्चन्द्रः। उदगुत्तरेण निरुपद्रव उत्पातरहितो गच्छति याति। तद्द्रव्याणि तेषां भग्रहाणां द्रव्याणि यान्युक्तानि ग्रहभक्तिमध्ये नक्षत्रव्यूहे च। तथा ग्रहाणां मध्याद्ये पौरा नागरा ये चेतरे यायिनस्तांस्तथा तद्भक्तिदेशांस्तेषां ग्रहाणां ये स्वभक्तौ देशा उक्तास्तांश्च पुष्णाति पुष्टिं नयति। याम्येन दक्षिणेन गतस्तान्येव द्रव्यादीनि निहन्ति विनाशयति।।७।।

अत्रैव पुनरपि विशेषमाह—

शशिनि फलमुदक्स्थे यद् ग्रहस्योपदिष्टं
भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्।
इति शशिसमवायाः कीर्तिता भग्रहाणां
न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शशिग्रहसमागमाध्यायोऽष्टादशः ॥१८॥

ग्रहों के उत्तरगत चन्द्र के जो फल कहे गये हैं, उनके विपरीत फल ग्रहों के दक्षिणगत चन्द्र के होते हैं। इस तरह चन्द्र के साथ ग्रहों या नक्षत्रों के रहने को समागम, रवि के साथ अस्त और कुजादि ग्रहों के परस्पर संयोगादि को युद्ध कहते हैं।।८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शशिग्रहसमागमाध्यायोऽष्टादशः ॥१८॥

शशिनि चन्द्रमसि ग्रहस्योदक्स्थे उत्तरस्यां दिशि स्थिते यत्फलमुपदिष्टमुक्तम्— 'चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक्' इत्यादिकम्, तत्सर्वमेव निःशेषमपसव्ये दक्षिणदिक्स्थे चन्द्रे प्रतीपं विपरीतं भवति। इत्येवंप्रकारा भग्रहाणां भानां नक्षत्राणां ग्रहाणां च शशिसमवायाश्चन्द्रसंयोगाः कीर्तिता उक्ताः खलु। खल्वित्ययं शब्दो निश्चयार्थे। इन्दोश्चन्द्रस्य ग्रहैर्भौमादिभिर्ऋक्षैर्नक्षत्रैश्च साकं सह युद्धं न भवतीति किल सूर्यस्य ग्रहैः सह समागमोऽस्तमयशब्दवाच्यः, चन्द्रेण सह समागमशब्दवाच्यः। भौमादीनां परस्परं युद्धशब्दवाच्य इत्ययमस्मिन् शास्त्रे सिद्धान्तः। तथाऽऽचार्यविष्णुचन्द्रः—

दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम्।
कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्।। इति।

यैश्चोक्तमादित्यस्य जयपराजयं ते गोलवासनाबाह्याः।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शशिग्रहसमागमो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ ग्रहवर्षफलाध्यायः

अथ ग्रहवर्षफलाध्यायो व्याख्यायते। कस्य ग्रहस्य कस्मिन् वर्षे कीदृशानि शुभाशुभानि फलानि भवन्तीति। यत आचार्येण पूर्वमेव प्रतिज्ञातमासीत्—

वर्षे यद्ग्रस्य फलं मासे च मुनिप्रणीतमालोक्य।
तत्तद्वृत्तैर्वक्ष्ये होरातन्त्रोत्तरविधाने।। इति।

तत्रादावेवादित्यस्य वर्षफलमाह—

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि
दैवाद् बिभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि।
नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्रवन्ति
रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ।।१।।

तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले
नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः।
नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च
सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ।।२।।

हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता
बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति।
घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान्
संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे ।।३।।

सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयङ्कर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुःखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं।।१-३।।

दिनकरस्यादित्यस्य संवत्सरे वर्षे दिने वा तद्वारे मासे वा ईदृशानि फलानि भवन्ति। तथा च यवनेश्वरः—

अब्दाश्रयं लक्षणमीरितं यद् ग्रहस्वभावप्रभवं जनानाम्।
तदेव तन्मासदिनर्तुषूक्तं तदीश्वरस्थानविकल्पितं च।।

एवं वर्षजं फलं मासदिवसहोरास्वपि बोद्धव्यम्।

तत्र रविवर्षे मासे दिने वा कीदृशानि फलानि? सर्वत्र सर्वस्मिन् देशे भूरवनिर्विरलैस्तनुभिः स्वल्पैः सस्यैर्धान्यादिभिर्युता संयुक्ता भवति। तथैव वनानि अरण्यानि दंष्ट्रिभिः सर्पवराहादिभिः समावृतानि संयुक्तानि भवन्ति। कीदृशैर्दंष्ट्रिभिः? दैवाद्दैवहेतोर्ये बिभक्षयिषवो भक्षयितुमिच्छवस्तथाभूतैः। दैवशब्देन प्राक्कर्मोच्यते। तथा चोक्तम्—

प्राग्जन्मनि कृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
दैवशब्देन निर्दिष्टमिह जन्मनि तद्बुधैः।। इति।

तस्माद्वनानि दैवाद् बिभक्षयिषुर्दंष्ट्रिसमावृतानि भवन्ति। नद्यः सरितः प्रचुरं प्रभूतं पयो जलं न स्रवन्ति न स्यन्दन्ति। रुजां रोगाणामुपशमार्थं यानि च भैषजानि द्रव्याणि तानि न तथा तेनैव प्रकारेणातिबलान्वितानि वीर्ययुक्तानि भवन्ति। रोगोपशान्तिं सम्यग् न कुर्वन्तीत्यर्थः।

तथा अदितिज आदित्यः। शिशिरेऽपि काले माघफाल्गुनमासयोः शीतकालेऽपि तीक्ष्णमतिचण्डं तपति सन्तापयति। अम्बुदा मेघा अचलसन्निकाशाः पर्वताकारा अपि नातिजलमुचो न प्रभूतं जलं मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा नभ आकाशं कीदृशं नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरम्, नष्टप्रभो विगतकान्तिर्ऋक्षगणो नक्षत्रसमूहः शीतकरश्चन्द्रमा यत्र तत्। तापसकुलानि तपस्विनां वंशाः। सगोकुलानि गोकुलेन सहितानि सीदन्त्यवसादयन्ति।

तथा नृपा राजानो युधि संग्रामे नृपानुचरैः सचिवैर्लोकपालैः सह साकं देशान् विषयान् घ्नन्तो जिघांसन्तो विचरन्ति गच्छन्ति। कीदृशा नृपाः? हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेताः। हस्तिनो गजाः। अश्वास्तुरगाः। पत्तयः पदातयो विद्यन्ते येषु बलेषु तानि। तथाभूतैः हस्त्यश्वपत्तिमद्भिरसह्यैरनभिभवनीयैर्बलैः सैन्यैरुपेताः संयुक्ताः। तथा बाणासनासिमुशलातिशयाः। बाणा अस्यन्ते क्षिप्यन्ते येन तद्बाणासनं धनुः। असिः खड्गः। मुशल आयुधविशेषो मुशलाकार एव। तेषु अतिशयो यत्नो येषां ते तथाभूताः। तथा च यवनेश्वरः—

दिवाकराब्दे रणविग्रहोग्रक्षितीश्वरस्तीव्रविषज्वराग्निः।
अवर्षशुष्कद्रुमशुष्कसस्यप्रचण्डवह्न्युग्रविषाक्षिरोगाः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

तीक्ष्णोऽर्कः स्वल्पसस्यश्च गतमेघोऽतितस्करः।
बहूरगव्याधिगणो भास्कराब्दो रणाकुलः।।१-३।।

अथ चन्द्रमस आह—

व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशै-
र्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिः पयोदैः।
गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भि-
रुत्कण्ठितेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ।।४।।

तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव
फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि ।
गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा
रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान् ॥५॥

गोधूमशालियवधान्यवरेक्षुवाटा
भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या ।
चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा
संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ॥६॥

चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (महिषशृङ्ग) के समान निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरवयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली), गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती है।।४-६।।

शिशिरगोः शीतरश्मेः संवत्सरे वर्षे अभिसम्प्रवृत्ते वर्तमाने मासे दिवसे वा ईदृशानि फलानि भवन्ति। कैः? पयोदैर्मेघैर्नभ आकाशं व्याप्तमाच्छादितं भवति। कीदृशैः पयोदैः? प्रचलिताचलसन्निकाशैः। प्रचलिता ये अचलाः पर्वताः तत्सन्निकाशैः तत्सदृशैः। तथा व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिः। व्यालाः सर्पाः। अञ्जनं प्रसिद्धं कज्जलम्। अलिर्भ्रमरः। गवलं महिशृङ्गं तद्वच्छविः कान्तिर्येषां तैः। किं कुर्वद्भिः? अमलाभिर्निर्मलाभिरद्भिर्जलैर्गां भूमिमखिलां निःशेषां पूरयद्भिराप्यायमानैः। तथा ध्वनितेन गर्जितेन चाशा दिशः पूरयद्भिः। कीदृशेन? उत्कण्ठितेन विरहिणामौत्सुक्यजननेन। गुरुणा गौरवसंयुक्तेन दुःसहेनेत्यर्थः।

तोयानि जलान्यतीवात्यर्थम्। पद्मकुमुदोत्पलवन्ति। पद्मानि कुमुदानि उत्पलानि च विद्यन्ते येषां तानि। तथाभूतानि उपवनानि उद्यानानि। फुल्लद्रुमाणि फुल्लाः कुसुमिता द्रुमा वृक्षा येषु तानि। अलिभिर्भ्रमरैर्नादितानि कृतशब्दानि। तथा गावो धेनवः प्रभूतपयसो बहुक्षीराः। रामाः स्त्रियः। अविरतमविरामं सन्ततं रामान् वल्लभान् पुरुषान् रतैः सुरतै रमयन्ति क्रीडयन्ति। कीदृश्यो रामाः? नयनाभिरामाः। नयनाभ्यां नेत्राभ्यामाभिमुख्येन रम्यन्ते यास्ताः, तथाभूताः। तथा भूरवनिः। नृपतिभी राजभिः पाल्यते अभिरक्ष्यते। कीदृशी भूः? गोधूमैः शालिभिर्यवैर्धान्यवरैः कलमशालिप्रभृतिभिरिक्षुवाटैश्च संयुक्ता। तथा नगराकराढ्या। नगरैः पत्तनैराकरैराकरोत्पत्तिस्थानैराढ्या बहुला। चित्यङ्किता। चितिरग्निस्थानम्। ताभिरङ्किता चिह्निता। क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा। क्रतुवरा यज्ञश्रेष्ठाः। इष्टयः पुत्रकाम्यादयस्तेषु विघुष्टो

घोषितो यो नादो वेदशब्दस्तेन संयुता। तथा च यवनेश्वरः—

सम्पन्नसस्यक्षुपशष्पशालिप्ररूढगुल्मो बहुवर्षधारः।
रत्नौषधिस्नेहपटुप्रसेकश्चान्द्रो रतिस्त्रीसुखवर्धनोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

बहुवर्षातिसस्यश्च गवां क्षीरप्रदायकः।
चन्द्राब्दः कामिनामिष्टश्चित्यङ्कितमहीतलः।। इति।।४-६।।

अथ भौमस्य वर्षफलमाह—

वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो
ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः।
हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति
निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्घाः ।।७।।

अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि
मुञ्चन्ति कुत्रचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं
निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ।।८।।

भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः
पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः।
एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं
संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ।।९।।

मङ्गल के संवत्सर, मास या दिन में वायु से सञ्चालित ग्राम, वन और नगरों को दग्ध करने की इच्छा रखने वाली भयङ्कर अग्नि चलती है। चोरों से निर्धन किये हुये पीड़ित मनुष्यगण हाहाकार करते हैं। आकाश में संगठित मूर्ति वाले मेघ कहीं भी अधिक वृष्टि नहीं करते। निम्न स्थान में उत्पन्न धान्य सूख जाते हैं तथा पके हुये धान्य भी वज्रपात आदि उत्पातों से नष्ट हो जाते हैं। राजा लोग धर्मपालन में तत्पर नहीं रहते हैं। पैत्तिक रोगों की अधिकता होती है। सर्पों से लोगों को पीड़ा होती है। इस तरह मङ्गल के स्वामित्व में प्रजागण पीड़ित और धान्यों का नाश होता है।।७-९।।

अवनिसुतस्याङ्गारकस्य संवत्सरे वर्षे मासे दिवसे वा फलानीदृशानि भवन्ति। कीदृशानि? वह्निरग्निर्वातेन मारुतेनोद्धतः सञ्चार्यमाणोऽतिप्रचण्डो दुःसहश्चरति। कीदृशः? ग्रामान् वनानि नगराणि पत्तनादि च सन्दिधक्षुः सन्दग्धुमिच्छुः। तथा भुवि भूमौ मर्त्यसङ्घा मनुष्यसमूहाः। दस्यूनां चौराणां ये गणाः समूहास्तेषां पातैर्हताः परिपीडिताः सन्तो हाहेति रटन्ति रणन्ति हाहाशब्दं कुर्वन्ति। कीदृशाः? निःस्वीकृता निर्द्धनीकृताः। विपशवो विगताः पशवश्चतुष्पदा येभ्यः।

तथा पयोदा मेघा वियत्याकाशे अभ्युन्नताः अभिमुख्येनोच्चाः। संहतमूर्तयो घनदेहा अपि कुत्रचिदपो जलं प्रचुरं बहु मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा सीम्नि जलप्रवेशमार्गेऽपि प्रजातम्। निम्ने प्रजातमिति केचित् पठन्ति। निम्ने प्रजातमुत्पन्नं सस्यं धान्यादिकं शोषं नीरसत्वमुपैति प्राप्नोति। तथा निष्पन्नमपि सञ्जातमपि सस्यमपरे अन्ये शत्रव उत्पाता वा अविनयादनीत्या अशनिप्रपातादिना वा हरन्त्यपनयन्ति।

तथा भूपा राजानः सम्यग्धर्मेणाभिपालने रक्षणे सक्तचित्तास्तत्परा न भवन्ति। तथा पित्तोत्थानां रुजां रोगाणां प्रचुरता बाहुल्यं भवति। भुजगेभ्यः प्रकोपो लोकानां पीडा भवति। एवंविधैरीदृशैर्दोषैरियं प्रजा जनसमूहा उपहता पीडिता भवति। तथा विपन्नसस्या च। तथा च यवनेश्वरः—

रणप्रचण्डः क्षितिपोऽल्पसस्यो विशुष्कवारिद्रुमशष्पशीर्णः।
अङ्गारकाब्दः प्रचुरोरगाग्निरातङ्कचौर्यक्षुदवृष्टिदृष्टः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

अग्नितस्कररोगाढ्यो नृपविग्रहदायकः।
गतसस्यो बहुव्यालो भौमाब्दो बालहा भृशम्।। इति।।७-९।।

अथ बुधस्याह—

मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां
गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः।
पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि
दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः ॥१०॥

वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च
सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः।
अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधियोऽपि केचि-
दान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः ॥११॥

हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां
युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च।
हार्दिं करोति मृगलाञ्छनजः स्वकेऽब्दे
मासेऽथवा प्रचुरता भुवि चौषधीनाम् ॥१२॥

बुध के वर्ष, मास या दिन में प्रपञ्चों में कुशल, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाले, आश्चर्य देखने वाले, अर्थोत्पत्तिस्थान को जानने वाले, नगरों में रहने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, गणितज्ञ और अस्त्र विद्या जानने वाले उन्नतियुत होते हैं। राजा लोग परस्पर प्रीति बढ़ाने की इच्छा से आश्चर्यजनक और हर्षोत्पादक द्रव्य परस्पर एक-दूसरे

को देने की इच्छा करते हैं। वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) अवितथा (सफल) होती है। त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) का अत्यधिक पाठ होता है। मनु राजा से रचित दण्डनीति नामक पुस्तकोक्त नीति की तरह नीति चलती है अर्थात् जिस तरह मनु राजा प्रजारक्षण करते थे, उसी तरह उस वर्ष के राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं। कोई अध्यात्म विद्या (योगशास्त्र) में और कोई आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) में विरत होते हैं। हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु (स्थल), जल और पर्वत पर निवास करने वाले प्रसन्न होते हैं तथा पृथ्वी पर ओषधियों की अधिकता होती है।।१०-१२।।

मृगलाञ्छनश्चन्द्रस्तस्माज्जातो बुधः स च स्वके आत्मीये अब्दे वर्षे मासे दिवसे वा ईदृशानि फलानि करोति। कीदृशानि? मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणाम्। मायाविनां प्रपञ्चकुशलानाम्। इन्द्रजालज्ञानां विस्मयदर्शिनाम्। कुहकविदामाश्चर्यदर्शकानाम्। आकरे अर्थोत्पत्तिस्थाने कुशलानाम्। नागराणां नगरवासिनाम्। गान्धर्वविदां गेयज्ञानाम्। लेख्यविदां चित्रज्ञानाम्। गणितविदां गणितप्रवीणानाम्। अस्त्रविदामायुधज्ञानां तद्वर्षे वृद्धिर्भवति। नृपतयो राजानः पिप्रीषया परितोषेच्छया परस्परस्नेहोत्पादनेन अद्भुतदर्शनान्याश्चर्यवन्ति दर्शनानि परस्परेभ्योऽन्योन्यं दित्सन्ति दातुमिच्छन्ति। कीदृशानि? तुष्टिजनननानि हर्षोत्पादकानि।

वर्तनं वर्ता कृषिः पशुपाल्यं वाणिज्यं चेति। वार्ता जगति लोके अवितथा सत्यस्वरूपा सफला भवन्ति। तद्वृत्तीनां प्रभूतलाभा भवन्तीति यावत्। त्रयी ऋग्यजुःसामलक्षणा एषा चाविकला सम्पूर्णा भवति। लोकेऽत्यर्थं वेदाः पठन्ति। सम्यग्यथागमं शास्त्रविहिता दण्डनीतिर्मनोरिव चरति। प्रजारक्षणं दण्डनीतिः। मनुर्नाम राजा अभूत्। तत्प्रणीता दण्डनीतिः सम्यक् चरति। तेन यथा प्रजारक्षणं कृतं तथा तद्वर्षेऽपि राजा करोति। उक्तं च—

गोरक्षा कृषिवाणिज्यं सेवावर्जं परिग्रहम्।
वर्तनं जीवनं वार्ता जीवा तूज्जीवनं स्मृतम्।।
ऋजो यजूंषि सामानीत्येषा त्रय्यभिधीयते।
त्रय्यां धर्मस्थितिर्वृत्तौ दण्डनीत्यां च रक्षणम्।।

केचिदन्ये अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधियः। अक्षरं परमात्म, तदधिकृत्य कृतं शास्त्रमध्यक्षरं तत्र स्वभिनिविष्टा अभियुक्ता धीर्बुद्धिर्येषां ते तथाभूताः। केचिदप्यध्यात्मविद्यासु योगशास्त्रेषु सक्ताः। अध्यक्षराः स्वभिनिविष्टधियोऽपि केचिदित्यन्ये पठन्ति। तथा अन्ये आन्वीक्षिकीषु तर्कविद्यासु च परं प्रकृष्टं पदं स्थानं मोक्षाख्यमीहमाना वाञ्छां कुर्वाणास्तर्कनिरता भवन्ति।

तथा हास्यज्ञानामुपहासविदां विदग्धानाम्। दूतानां गमागमिकानाम्। कवीनां पण्डितानां काव्यज्ञानाम्। बालानां शिशूनाम्। नपुंसकानां क्लीबानाम्। युक्तिज्ञानां युक्तिविदां प्रयोगज्ञानाम्। सेतुवासिनां स्थलवासिनां सेतौ ये वसन्ति। जलवासिनां जलसमीपस्थितानाम्। पर्वतवासिनां हार्दिं चित्ते तुष्टिं करोति। तथा भूवि भूमौ औषधीनां प्रचुरता बाहुल्यं भवति। तथा च यवनेश्वरः—

सन्धानदानप्रयत: क्षितीश: स्वाध्यायतीर्थाध्वरभीर्द्विजौघ:।
निराधिरुङ्मध्यमसस्यवर्षो बौध: सुहृत्स्नेहविवर्धनोऽब्द:।।

तथा च समाससंहितायाम्—

ब्रह्मक्षत्रस्य सस्यानां जनानां च कलाविदाम्।
वृद्धिप्रदोऽब्दो बौधस्तु भूपसाम्यकर: क्षितौ।। इति।।१०-१२।।

अथ गुरोर्वर्षफलमाह—

ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन्।
विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम्।।१३।।
क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या।
क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति।।१४।।
विविधैर्वियदुन्नतै: पयोदैर्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भि:।
सुरराजगुरो: शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता।।१५।।

गुरु के शुभ वर्ष, मास या दिन में यज्ञों में रात्रिवर्जित काल में श्रेष्ठ ब्राह्मण से उच्चरित, विस्तीर्ण, स्वर्ग तक पहुँचने वाली, यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों के मन को भेदन करने वाली और इन्द्रादि के मन को प्रसन्न करने वाली वेदध्वनि होती है। राजाओं से अच्छी तरह परिरक्षित, उत्तम धान्य, बहुत हाथी, पदाति, घोड़ा, धन और विस्तृत गोकुलों से पृथ्वी परिपूर्ण होती है। देवता के समान मनुष्य होते हैं। सदा भूमि को जल से परिपूर्ण करते हुये उन्नत, विविध मेघों से आकाश व्याप्त होता है तथा बहुत तरह के धान्य और समृद्धि से युत पृथ्वी होती है।

विशेष—यहाँ पर शुभ वर्ष इसलिये कहा गया है कि बृहस्पतिचारोक्त पिङ्गल-कालयुत और रौद्रनामक बृहस्पति के वर्ष अशुभ हैं। अत: इस वर्ष का स्वामी होने पर वृहस्पति का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता; किन्तु प्रभव, शुक्ल, प्रमोद आदि वर्षों का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।।१३-१५।।

सुरराज इन्द्र:। तस्य गुरुर्जीव:। तस्य सुरराजगुरो: शुभे शोभने वर्षे मासे दिवसे वा फलान्येतानि भवन्ति। नन्वत्र सर्वग्रहाणां वर्षफलानि सामान्येनाभिहितानि भवन्ति। अत्र तु किमर्थं शुभग्रहणमित्यत्रोच्यते—अथैकदेशे पिङ्गलकालयुक्तरौद्रसंज्ञानि वर्षाण्यशुभ-फलान्युक्तानि। तेषु सत्यपि गुरौ वर्षपतित्वे न तथा फलानि परिपूर्णानि भवन्ति। यदा तु पुन: प्रभवविभवशुक्लप्रमोदवर्षाणि शुभानि भवन्ति, तदा तेषु गुरौ वर्षपतित्वे सत्येतानि परिपूर्णानि भवन्त्यत उक्तम्—**शुभे तु वर्ष इति**। कीदृशानि तानि फलानि? **ध्वनिरुच्चरित इति**। द्विजोत्तमानां ब्राह्मणप्रधानानामध्वरे यज्ञे ध्वनि: शब्द उच्चरित उद्घोषो विपुलो विस्तीर्ण:। अनिशं रात्रिवर्जितम्। द्युगामी स्वर्गामी। विचरति गच्छति। कीदृशो ध्वनि:?

यज्ञमुषां यज्ञविघ्नकर्तॄणां राक्षसानां मनांसि चेतांसि भिन्दन् विदारयन्। तथा अध्वरांशभाजां यज्ञभागिनामिन्द्रादीनां हृदये चेतसि आनन्दकरः।

क्षितिर्भूः। क्षितिपैर्भूम्यधिपतिभिः। अभिमुख्येन सम्यक् पालनेन रक्षणेन प्रवृद्धा वृद्धिं गता विभाति शोभते। तदा तस्मिन् वर्षे। कीदृशी? उत्तमसस्यवती। उत्तमानि प्रधानानि सस्यानि धान्यादीनि विद्यन्ते यस्याम्। अनेकैर्बहुभिर्द्विपैर्गजैः। पत्तिभिः पदातिभिः। अश्वैस्तुरगैः। धनैर्वित्तैः। उरुभिर्विस्तीर्णैः। गोकुलैर्गोवाटैराढ्या समृद्धा भवति। तथा द्युचर-स्पर्द्धिजना। द्युचरा देवास्तेषां स्पर्द्धिनः सदृशा जना यस्याम्।

वियदाकाशं पयोदैर्मेघैः। विविधैर्नानाकारैरुन्नतैरुच्चैर्वृतं व्याप्तम्। किं कुर्वद्भिः? उर्वीं भूमिं पयसा जलेन अभि सामस्त्येन विशेषेण तर्पयद्भिः प्रीणयद्भिः। अनवरत-कालानुवर्षणात्। तथा क्षितिर्भूमिर्बहुसस्या प्रभूतधान्या। उत्तमर्द्ध्या प्रधानया समृद्ध्या च युक्ता भवति। तथा च यवनेश्वरः—

सुवर्षयज्ञोत्सवसम्प्रदानो नीरुग्व्यथो धर्मपरोऽवनीशः।
स्फीतानुपानैर्बहुसस्यकर्मा गुरोः स्वकर्मप्रयतप्रजोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

बहुयज्ञोऽतिसस्यश्च गोगजाश्वहितस्तथा।
पुरन्दरगुरोरब्दो बहुसस्यप्रदः शिवः।। इति।।१३-१५।।

अथ शुक्रस्याह—

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभ-
धाराधरोज्झितपयःपरिपूर्णवप्रा।
श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा
योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी ।।१६।।

क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्ष-
मुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम्।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गा
गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढ्याम् ।।१७।।

व्रेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभि-
र्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न-
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः ।।१८।।

शुक्र के वर्ष, मास या दिन में शाली और इक्षु (ईख = गन्ना) से युत, पर्वत के समान मेघों से गिरे हुये जल से परिपूर्ण तट वाली, सुन्दर कमल और जल से परिपूर्ण

तालाब से व्याप्त; अतः विविध वर्णों से युत पृथ्वी सम्पूर्ण भूषणों से युत स्त्री की तरह शोभित होती है। पृथ्वी पर शत्रुपक्ष के बहुत सेनाओं को नाश करने से उद्घोषित जयशब्दों से सभी दिशाओं को पूर्ण करने वाले राजवर्ग होते हैं। आनन्दयुत सज्जनगण, विनष्ट दुर्जन-गण और अर्थोत्पतिस्थानों से युत पृथ्वी होती है। वसन्त समय में स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक बार-बार मद्यपान करती हैं, बाँसुरी और वीणा के साथ श्रवणसुखद गीत गाती हैं, अभ्यागत, मित्र और बन्धुओं के साथ बार-बार भोजन करती हैं तथा सब जगह कामदेव का जय-जयकार होता है।।१६-१८।।

सितस्य शुक्रस्य अब्दे मासे दिने वा फलानीदृशानि भवन्ति। कीदृशानि? **शालीक्षुमत्यपीति।** धरा भूरभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी योषा स्त्रीव भाति शोभते। अभिनवैर्नूतनैराभरणैरलङ्करणैरुज्ज्वलान्युपशोभितानि अङ्गान्यवयवानि यस्या योषायाः सा। कीदृशी धरा? शालीक्षुमत्यपि शालयो धान्यादीनि। इक्षवश्च विद्यन्ते यस्यां तथाभूता सती। धरणीधराणां पर्वतानां सदृशी तुल्या आभा आकृतिर्येषां ते तथाभूता ये धाराधरा मेघास्तैर्यदुज्झितं त्यक्तं पयो जलं तेन परिपूर्णा वप्रास्तटा यस्याः। श्रीर्विद्यते येषां सरोरुहाणां पद्मानां तानि श्रीमन्ति। तैः श्रीमत्सरोरुहैः। तथा ततं विस्तीर्णं यदम्बु जलं तच्च येषां तडागानां तैः कीर्णा संयुक्ता अत एव विचित्रवर्णत्वाद्योषेव भाति। अभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी योषा धरा-साम्येनोपमानम्।

तथा क्षत्रं राजवर्गः क्षितौ भूमौ कीदृशं भवति? क्षपितभूरिबलारिपक्षम्। क्षपितं विनाशितं भूरिबलं प्रभूतवीर्यमरिपक्षः शत्रुपक्षश्च येन। तथा योऽसौ उद्घुष्ट उद्घोषितोऽनेको बहुप्रकारो यो जयशब्दस्तेन विराविताः कृतशब्दा आशाः दिशो यस्य तत् तथाभूतम्। तथा गां भूमिमवनिपा राजानः पालयन्ति रक्षन्ति। कीदृशीम्? संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गाम्। संहृष्टः प्रहर्षितः शिष्टजनः साधुलोको यस्याम्। तथा दुष्टानामसाधूनां विशेषेण नष्टो वर्गः समूहो यस्याम्। तथा नगरैः पत्तनैराकरैरर्थोत्पत्तिस्थानैश्चाढ्यां समृद्धाम्।

पेपीयत इति। मधौ वसन्ते मधु मद्यं पानविशेषः कामिनीभिर्विलासिनीभिः पेपीयते अत्यर्थं पीयते पुनः पुनर्वा पीयते। वेणुर्वंशः। वीणा वल्लकी। ताभ्यां सह सवेणुवीणं श्रवणहारि कर्णसुखकारि जेगीयते। अत्यर्थं पुनः पुनर्वा गीयते। अतिथिभिरागतैः सुहृद्भिर्मित्रैः स्वजनैर्बन्धुजनैः सह साकमन्नं भोजनं बोभुज्यते। अत्यर्थं पुनः पुनर्वा भुज्यते। मदनस्य कामस्य जयावघोषो जयशब्दोद्घोषणम्। अतीव कामासक्ता भवन्तीत्यर्थः। तथा च यवनेश्वरः—

पर्याप्रसौख्यस्फुटसस्यमेघाः प्ररूढवल्लीवरशष्पपुष्पः।
कामप्रकामः क्षितिपो मुदाढ्यः शौक्रोऽङ्गनाहर्षवसुप्रदोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

सस्याढ्यो धर्मबहुलो गतातङ्को बहूदकः।
कामिनां कामदः कामं सिताब्दो नृपशर्मदः।। इति।।१६-१८।।

अथ सौरस्याह—

उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि।
रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ॥१९॥

वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्ष-
मारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा
तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः ॥२०॥

जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाश-
मृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रु-
र्वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥२१॥

शनि के वर्ष, मास या दिन में चोरों से सम्बन्धित युद्धों से व्याप्त, पशु और धानों से रहित, संग्राम में बन्धुजनों के मरण से बार-बार रोते हुये वंशों से युत, प्रधान रोग तथा क्षुधा से व्याकुल राष्ट्र होते हैं, वायु से उड़ाये गये मेघों से रहित आकाश होता है, अनेक तरह से नष्ट वृक्षों से युत पृथ्वी होती है, सूर्य और चन्द्रकिरणों से रहित आकाश होता है, धूलियों से स्थगित वापी, कूप और तालाब होते हैं तथा नदियों में अत्यन्त कम जल होता है। इन्द्र अल्प वर्षा करता है, इसलिये कहीं-कहीं पर जल के विना धान्य नष्ट हो जाते हैं और कहीं-कहीं पर जल से सिक्त होकर पुष्ट होते हैं।।१९-२१।।

दिनकरसुतस्य सौरस्य वर्षे अब्दे प्रवृत्ते वर्तमाने मासे दिवसे वा सदा सर्वकालमेतानि फलानि भवन्ति। कीदृशानि? उद्धतदस्युगणभूरिरणाकुलानि। उद्धत उद्गतो योऽसौ दस्युगणो दस्यूनां चौराणां समूहस्तेन भूरि बहुप्रकारा ये रणाः संग्रामास्तैराकुलानि सोद्यमानि राष्ट्राणि नृपकुलानि भवन्ति। तथा अनेके प्रभूता ये पशवश्चतुष्पदाः। वित्तानि धनानि। तैश्च विना-कृतानि वर्जितानि रहितानि। हताः संग्रामे बन्धुजना येषां जनानां ते हतबन्धुजना रोरूय-माणा अत्यर्थं रोदमानाश्च ते जनास्तैस्तथाभूतैर्जनैश्चाकुलानि सोद्यमानि कुलानि वंशाः। तथा रोगोत्तमैर्गदप्रधानैर्बुभुक्षया क्षुधा वाऽऽकुलानि भवन्ति।

तथान्तरिक्षमाकाशं वातोद्धताम्बुधरवर्जितम्। वातेनोद्धताश्चालिता येऽम्बुदा मेघास्तै-र्वर्जितं रहितम्। धरातलं भूतलम्। आरुग्णनैकविटपम्। आरुग्णा भग्ना नैका बहुप्रकारा विटपाः शाखिनश्च यत्र धरातले तत्तथाभूतम्। द्यौराकाशम्। नष्टार्कचन्द्रकिरणा नष्टा अदर्शनं गता अर्कचन्द्रयोः सूर्यशशिनोः किरणा रश्मयो यस्याम्। अतिरजसा सन्ततपांशुना अव-नद्धा स्थगिता तोयाशया जलाधारा वापीकूपतडागादयः। विजला जलरहिताः सरितो नद्यस्तन्व्यः स्वल्पजलाश्च भवन्ति।

अपिशब्दोऽत्र चार्थे। वृत्रशत्रुरिन्द्रः स्वल्पमभिवर्षति। केचित् सप्तम्यन्तं पठन्ति।

वृत्रशत्राविन्द्रे मन्दं स्वल्पमभिवर्षति सति कुत्रचिज्जातान्युत्पन्नानि सस्यान्यतोयतया जलेन विना विनाशमृच्छन्ति यान्ति। तथा अपराण्यन्यानि जलोक्षितान्युदकसिक्तानि पुष्टिं वृद्धिमृच्छन्ति। तथा च यवनेश्वरः—

तुष्टाल्पवर्षः प्रबलानिलाग्निर्विपन्नसस्यश्चलितक्षितीशः।
मृत्युक्षुधातङ्कभयोपजुष्टः शनैश्चरोऽब्दः पशूशूद्रगोघ्नः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

दुर्भिक्षमरकं रोगान् करोति पवनं तथा।
शनैश्चरोऽब्दो दोषांश्च विग्रहांश्चैव भूभुजाम्।।
संवत्सरोक्तं सकलमृतुमासायनेषु च।
फलं ग्रहस्य वक्तव्यं बलयुक्तस्य नान्यथा।। इति।।१९-२१।।

अत्रैव वर्षफलविशेषप्रदर्शनार्थमाह—

अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा
न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः।
यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः
शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योन्यतायाम्॥२२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रह-
वर्षफलाध्याय एकोनविंशः॥१९॥

जो ग्रह सूक्ष्म, अस्पष्ट किरण वाला, नीच स्थानस्थित या ग्रहयुद्ध में पराजित हो, वह सम्पूर्ण फल देने वाला नहीं होता है। इससे विपरीत लक्षणयुत होने से सम्पूर्ण फल देने वाला होता है। अशुभ वर्ष में रवि, मंगल और शनि के अशुभ मासफल की वृद्धि होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अशुभ ग्रह के वर्ष में अशुभ ग्रह का मासाधिपतित्व होने पर अत्यन्त अशुभ फल होता है तथा वर्षाधिप, मासाधिप—दोनों शुभग्रह हों तो शुभ फल की वृद्धि और एक शुभ एवं दूसरा अशुभ हो तो याप्य (अल्प फल) होता है।।२२।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहवर्षफलाध्याय
एकोनविंशतितमः॥१९॥

यो ग्रहोऽणुः सूक्ष्मो नभसि दृश्यते। अपटुमयूखोऽस्पष्टरश्मिः। नीचगो नीचराशिस्थितः। अन्यैर्ग्रहैर्वा ग्रहयुद्धे जितः पराजितः। स ग्रहो निःशेषाणां सकलानां फलानां शुभानां दाता न भवति। अतोऽन्यथा अस्मादुक्तात् प्रकाराद्यो विपरीतस्थः। स पुष्टिदः पुष्टिं ददाति। वर्षफलानां शुभानां परिपूर्णानां दाता भवति। एतदुक्तं भवति—विस्तीर्णबिम्बः स्फुटमयूख

उच्चस्थ: स्वगृहत्रिकोणमित्रक्षेत्राणामन्यतमस्थो जया च परिपूर्णान्युक्तानि शुभानि फलानि ददाति। अन्यथा अनिष्टानि फलानि ददाति। **यदशुभमित्यादि** । अशुभेऽब्दे अशुभे वर्षे रविभौमसौराणामन्यतमे यन्मासजं मासाधिपतेर्ग्रहस्याशुभं फलं तस्य फलस्य वृद्धिर्भवति। एतदुक्तं भवति—अशुभग्रहवर्षम् अशुभस्यैव ग्रहस्य मासाधिपतित्वं यदा भवति तदा तस्मिन् मासे अतीवाशुभं फलं स ग्रहो ददाति। शुभफलमपि चैवम्। मासाब्दयो: शुभत्वे मासजस्यैव शुभस्य वृद्धिर्भवति। याप्यमन्योन्यतायाम्। अन्योन्यतायां मासाब्दयोरेकस्य शुभत्वे अन्यस्याशुभत्वे याप्यमल्पफलं वाच्यमिति। तथा च देवल:—

बली वर्षपति: पुष्टं फलं यच्छति शोभनम्।
विबलश्च तथानिष्टं वर्षमासदिनात्मकम्।। इति।।२२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ ग्रहवर्षफलं नामैकोनविंशतितमोऽध्याय: ॥१९॥

अथ ग्रहशृङ्गाटकाध्यायः

अथ ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव दिक्फलप्रतिपादनार्थमाह—

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे।
भवति भयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥१॥

जिस दिशा में सभी ताराग्रह (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) दिखाई दें तथा जिस दिशा में रवि में प्रविष्ट (अस्त) हों, उस दिशा में शस्त्रकोप, क्षुधा (दुर्भिक्ष) और आतङ्क (उपद्रव) का भय होता है।।१।।

यस्यां दिशि यत्राशायां सर्वे एव ताराग्रहा भौमबुधगुरुसितसौरा दृश्यन्ते लोकैरवलोक्यन्ते। तथा रविमादित्यं प्रति यस्यां दिशि विशन्ति अस्तमयं यान्ति तस्यां दिशि भयं भवति। कैः आयुधकोपक्षुधातङ्कैः। आयुधकोपेन शस्त्रकोपेन, क्षुधा दुर्भिक्षेण, आतङ्कैरुपद्रवैः। तथा च काश्यपः—

भूमिपुत्रादयः सर्वे यस्यामस्तमिते रवौ।
दृश्यन्तेऽस्तमये वापि यत्र यान्ति रवेस्ततः।।
दुर्भिक्षं शस्त्रकोपं च जनानां मरकं भवेत्।
अन्योन्यं भूमिपाः सर्वे विनिघ्नन्ति प्रजास्तथा।। इति।।१।।

अधुना तेषामेव ग्रहाणां संस्थानप्रदर्शनार्थमाह—

चक्रधनुःशृङ्गाटकदण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः।
क्षुदवृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥२॥

यदि ग्रहसंस्थान (ग्रह की आकृति) चक्र, धनु, शृङ्गाटक (त्रिकोण), दण्ड, पुर, प्रास (आयुधविशेष), कुन्त, वज्र या मध्य में कृश और दोनों तरफ विस्तीर्ण हो तो पृथ्वी पर सब जगह दुर्भिक्ष, अवृष्टि एवं मनुष्यों में और राजाओं में युद्ध होता है।।२।।

चक्रं चक्राकारम्। धनुश्चापम्। शृङ्गाटकं त्रिकोणम्। दण्डं दण्डाकारम्। पुरं पुराकारमेव प्रासादसदृशम्। प्रासमायुधविशेषः कुन्ताकारम्। वज्रं वज्राकारं मध्यक्षाममुभयाग्रविस्तीर्णम्। एवं चक्रादिसंस्थानां ग्रहाः। संस्थानमाकृतिः। लोके सर्वत्र जनपदे क्षुदवृष्टिकराः। क्षुद् दुर्भिक्षमवृष्टिं च कुर्वन्ति। तथा मानवेन्द्राणां राज्ञां समराय संग्रामाय च भवन्ति। अर्थादेवोक्त-संस्थानं विना यथा तथा स्थितानां शुभं फलं कुर्वन्तीति। तथा च काश्यपः—

विहायोक्तं च संस्थानं दृश्यन्ते वै ग्रहा यदा।
तदा न तत्फलं ब्रूयाल्लोके नाशुभदाश्च ते।। इति।।२।।

अथान्तरिक्षप्रविभागेनाशुभं फलमाह—

यस्मिन् खांशे दृश्या ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते।
तत्राऽन्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान्॥३॥

सूर्य के अस्तसमय में जिस देश के आकाशभाग में ग्रहमाला दिखाई दे, वहाँ पर अन्य राजा का आगमन और दूसरे राजा का उपद्रव होता है॥३॥

दिनकरे सूर्ये दिनान्तगते दिवसस्य पर्यन्तं प्राप्ते अस्तमित इत्यर्थः। तस्मिन् खांशे यत्राकाशभागे ग्रहमाला ग्रहपङ्क्तिर्दृश्या भवति, तत्र तस्मिन्नेव भूभागे अन्यो द्वितीयो नृपो राजा भवति। तथा महानतीव परचक्रोपद्रवश्च भवति। अपरनृपापमर्दस्तत्र भवतीत्यर्थः।

अथ ग्रहाणां नक्षत्रस्थितानां फलमाह—

तस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः।
अविभेदिनः परस्परममलमयूखाः शिवास्तेषाम्॥४॥

जिस नक्षत्र के साथ ग्रहों का समागम होता है, उस नक्षत्र के नक्षत्रकूर्म और नक्षत्रव्यूह में उक्त जनों का नाश करता है। यदि वे दोनों (ग्रह, नक्षत्र) परस्पर निर्मल किरण वाले हों तो उनका कुशल करते हैं॥४॥

यस्मिन्नृक्षे यत्र नक्षत्रे ग्रहाः समागमं सम्प्रयोगं कुर्युस्तस्य नक्षत्रस्य ये जना नक्षत्रकूर्मेण नक्षत्रव्यूहेन च कथितास्तान् हन्युर्नाशयेयुः। यदा च त एव ग्रहाः परस्परमन्योन्यमविभेदिनश्छाद्यच्छादकभावेन स्थिता अमलमयूखा निर्मलरश्मयस्तेषामेव जनानां शिवाः श्रेयस्करा भवन्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

सर्वे यदा दिनकरं विशन्ति कुर्युर्ग्रहास्तदा पीडाम्।
क्षुच्छस्त्रभयातङ्कैरपरैश्च परस्पराघातैः॥
प्रत्यर्चिषः प्रसन्नाः सम्भृतकिरणाः प्रदक्षिणावर्ताः।
सुस्निग्धामलतनवः क्षेमसुभिक्षावहास्ते स्युः॥४॥

अथ योगषट्कस्य नामान्याह—

ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः।
कोशश्चेत्येतेषामभिधास्ये लक्षणं सफलम्॥५॥

ग्रहसंवर्त, ग्रहसमागम, ग्रहसम्मोह, ग्रहसमाज, ग्रहसन्निपात और ग्रहकोश—ये छः योग हैं। अब इनका लक्षण और फल कहते हैं॥५॥

ग्रहसंवर्तेति। ग्रहशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। ग्रहसंवर्त एकः। ग्रहसमागमो द्वितीयः। ग्रहसम्मोहस्तृतीयः। ग्रहसमाजश्चतुर्थः। ग्रहसन्निपातः पञ्चमः। ग्रहकोशः षष्ठः। इत्येवंप्रकाराः षड्योगाः। एषां सफलं फलसहितं लक्षणमभिधास्ये कथयिष्ये॥५॥

तच्च लक्षणं सफलमाह—

एकर्क्षे चत्वारः सह पौरैर्यायिनोऽथवा पञ्च।
संवर्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुतः स सम्मोहः ॥६॥

पौरः पौरसमेतो यायी सह यायिना समाजाख्यः।
यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा कोशः ॥७॥

उदितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्यः।
अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥८॥

एक नक्षत्र में पौर के साथ पापी ग्रह मिल कर चार या पाँच संख्यक हों तो संवर्त्त, केतु या राहु हो तो सम्मोह, पौरग्रह के साथ पौरग्रह या पापी ग्रह के साथ पापी ग्रह हो तो समाज, शनैश्चर और गुरु के संयोग में कोई दूसरा ग्रह आ जाय तो कोश, एक ग्रह पश्चिम दिशा में और दूसरा पूर्व दिशा में उदित होकर दोनों एक नक्षत्रगत हों तो सन्निपात तथा उक्त पाँचों लक्षणों से भिन्न लक्षणयुक्त होने से समागम होता है। इस समागम में ताराग्रह निर्विकार शरीर वाले, निर्मल और विपुल बिम्ब वाले शुभ होते हैं; अन्यथा अशुभ होते हैं।।६-८।।

एकस्मिन् ऋक्षे नक्षत्रे चत्वारो ग्रहाः स्थिता भवन्ति पञ्च वा, ते यदि यायिनः पौरैश्च सह समेता भवन्ति तदा संवर्तो नाम योगो भवति। तत्रैव यदि शिखी केतू राहुर्वा भवति तदा योगः सम्मोहो नाम भवति।

पौरो ग्रहः पौरेण ग्रहेण समेतः संयुक्तो यदि यायी यायिना वा सह यद्येकस्मिन्नृक्षे भवति तदा स समाजाख्यो योगो भवति। समाजेत्याख्या यस्य। यमः सौरो जीवो गुरुः। अनयोः सङ्गमे संयोगे यद्यन्यः कश्चिद् ग्रह आगच्छेत्तदा कोशाख्यो योगः।

एको ग्रहः पश्चात् पश्चिमायां दिश्युदितः। आदित्यमण्डलान्निर्गतः। अन्यो द्वितीयः प्राक् च पूर्वस्यां दिशि अर्कमण्डलादेवोद्गतस्तौ तथाभूतौ यद्येकर्क्षं गतौ भवतस्तदा स सन्निपाताख्यो योगः। एतेषां पञ्चानां संस्थानानामभावे यो ग्रहसंयोगः समागम इति ज्ञेयः। तत्र च समागमे सर्व एव ताराग्रहा अविकृततनवो निर्विकारशरीराः स्निग्धा निर्मला विपुला विस्तीर्णाश्च धन्याः शुभाः अन्यथा अशुभा इति। तथा च समाससंहितायाम्—

ग्रहकोशसन्निपातौ संवर्तसमागमौ समाजश्च।
सम्मोहश्चेति तेषां लक्षणमस्तात् समादेश्यम्।।
सूर्यजगुरुसंयोगे द्वावप्येकोऽपरः समागच्छेत्।
स हि भवति कोशसंज्ञो दुर्भिक्षभयावहो लोके।।
एक उदितः प्रतीच्यामपरः प्राच्यां ग्रहोदितो यदि च।
अन्योन्यमथोस्राभिर्विलिखेत् स हि सन्निपाताख्यः।।

सह पौरेण च पौरो यायी सह यायिना ग्रहो यश्च।
दृश्येत समायुक्तः स समाजाख्यः समुद्दिष्टः।।
अथ यायिनागराख्याश्चत्वारः पञ्च वा सह भवेयुः।
एकर्क्षे संवर्तः शिखिराहुयुतः स सम्मोहः।।

अन्यथा समागमो यतः पूर्वमेवोक्तम्—

प्रत्यर्चिषः प्रसन्नाः सम्भृतकिरणाः प्रदक्षिणावर्ताः।
सुस्निग्धामलतनवः क्षेमसुभिक्षावहास्ते स्युः।।६-८।।

अथैतेषां फलान्याह—

समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशौ भयदौ प्रजानाम्।
समाजसंज्ञे सुसमा प्रदिष्टा वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते॥९॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो विंशः॥२०॥

सम्मोह और कोश में प्रजाओं को भय, समाज में सुसम (पूर्व से पश्चात् अधिक फल) और सन्निपात में परस्पर द्वेष होता है।।९।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो विंशः॥२०॥

संवर्तसमागमाख्यौ द्वौ योगौ समौ। न शुभं नाप्यशुभं कुर्वाते इत्यर्थः। यादृशा भावाः पूर्वमभूवंस्तादृशा एव संवर्तसमागमयोरिति। सम्मोहकोशौ प्रजानां लोकानां भयदौ भयं ददतः। समाजसंज्ञे समाजाख्ये सुसमा सुशोभना समा प्रदिष्टा उक्ता। तद्वर्षं शोभनं भवतीत्यर्थः। केचिद्बहुवचनं पठन्ति। सुसमाः प्रदिष्टा इति। सुसमा भावाः प्रदिष्टा उक्ताः। यादृशाः पूर्वमभूवन् तदधिका भवन्तीत्यर्थः। सन्निपाते वैरप्रकोपः। लोकानां परस्परं वैरं भवति। खलुशब्द आगमद्योतनार्थः। तथा च काश्यपः—

संवर्तसङ्गमौ मध्यौ सम्मोहो भयदः स्मृतः।
कोशश्चानिष्टफलदः समाजाख्यः सुमध्यमः।
सन्निपाते महावैरमन्योन्यमुपजायते।।

तथा च समाससंहितायाम्—

संवर्तसमागमयोः साम्यं मोहे भयानि कोशे च।
सुसमा समाजसंज्ञे वैराण्यथ सन्निपाताख्ये।।

तथा चात्रायं विशेषः समाससंहितायाम्—

दुर्भिक्षरोगतस्करशस्त्रावृष्टिक्षुधं ग्रहाः कुर्युः।
आनलवीथ्यां ज्ञेया अजवीथ्यां नेत्रपरिहानिः।।
शस्त्रभयं मृगवीथ्यां जारद्गव्यां क्षुधं च रोगांश्च।
पशुनाशं गोवीथ्यामृषभाख्यायां च नृपपीडा।।
सुसुभिक्षमिरावत्यां गजवीथ्यां च क्रतूत्सवामोदाः।
अतिजलमोक्षं कुर्युर्नामाख्यायां च सर्वे तु।।
ग्रहोदये प्रवासे च सोमसूर्यग्रहे तथा।
विचार्य वीथीमार्गांश्च लोके ब्रूयाच्छुभाशुभम्।। इति।।९।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
ग्रहशृङ्गाटकंनाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ गर्भलक्षणाध्यायः

अथ गर्भलक्षणं नामाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनदर्शनार्थमाह—

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥१॥

संसार का प्राण अन्न है, वह अन्न वर्षा ऋतु के अधीन है; अतः यत्नपूर्वक वर्षा ऋतु की परीक्षा करनी चाहिये।।१।।

जगतो विश्वस्यान्नं प्राणा असवः। यतः प्राणिनामन्नैर्विना प्राणा न वर्तन्ते। तच्चान्नं प्रावृट्कालस्य वर्षासमयस्यायत्तमाधीनं यस्मादतोऽस्माद्धेतोः प्रयत्नेनातिशयेन प्रावृट्कालः परीक्ष्यो विचार्य इत्यर्थः।।१।।

अथ तल्लक्षणानि वक्ष्यामीत्याह—

तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निबद्धानि तानि दृष्ट्वेदम्।
क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवज्रादिरचितानि ॥२॥

गर्ग, पराशर, काश्यप, वज्र आदि मुनियों के द्वारा निबद्ध गर्भलक्षण को देखकर मैं वर्षाकाल का लक्षण कर रहा हूँ।।२।।

तस्य प्रावृट्कालस्य यानि लक्षणानि विज्ञानकारणानि मुनिभिर्वसिष्ठादिभिर्निबद्धानि रचितानि तानि दृष्ट्वा अवलोक्य, तथा गर्गपराशरकाश्यपवज्रादिभिर्यानि रचितानि विरचितानि। आदिग्रहणाद्बादरायणाऽसितदेवला गृह्यन्ते। तानि सर्वाणि दृष्ट्वा मयेदं प्रावृट्काललक्षणं क्रियत इति।।२।।

अथ गर्भलक्षणज्ञस्य दैवविदः प्रशंसार्थमाह—

दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥३॥

जो दैवज्ञ रात-दिन गर्भलक्षण में अविक्षिप्त चित्त होकर लगे रहते हैं, मुनि की तरह उनकी वाणी वृष्टि-ज्ञान में मिथ्या नहीं होती है।।३।।

यो दैववित् कालज्ञोऽविहितचित्तोऽविक्षिप्तचित्तः, न विहितं चित्तं यस्य, अनन्यमनाः, तत्पर इत्यर्थः। केचिदवहितचित्त इति पठन्ति। अविक्षिप्तचित्तो द्युनिशमहोरात्रं यो गर्भलक्षणे भवति तस्याम्बुनिर्देशे वृष्टिकथने मुनेर्ऋषेरिव वाणी गीर्मिथ्या निष्फला न भवति; अपि तु सत्यस्वरूपा भवति। यस्मिन् दिने यस्यां वेलायां स वृष्टिमादिशति तत्र सत्यस्वरूपा भवतीत्यर्थः।।३।।

अथ शास्त्रप्रशंसार्थमाह—

किं वातः परमन्यच्छास्त्रज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव।
प्रध्वंसिन्यपि काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति ॥४॥

इस ज्योतिषशास्त्र से कौन शास्त्र अच्छा है? अर्थात् कोई नहीं; जिसको जानकर इस विनाशी कलिकाल में भी मनुष्य त्रिकालदर्शी होते हैं।।४।।

अतोऽस्माद् गर्भलक्षणशास्त्राज्ज्योतिःशास्त्राद्वा अन्यदपरं शास्त्रं ज्यायः प्रशस्ततरं किं वास्ति विद्यते। यच्छास्त्रं ग्रन्थं ज्ञात्वा कलौ युगे प्रध्वंसिन्यपि सर्वशास्त्रविनाशकर्तरि सत्यपि। यतः सर्वशास्त्राणां कलौ दिनानुदिनं ध्वंसोऽस्ति। तथाभूतेऽपि त्रिकालदर्शी भूत-भविष्यद्वर्तमानकालस्य वेत्ता भवतीत्यर्थः।।४।।

अथात्रै परमतं स्वमतं चाह—

केचिद्वदन्ति कार्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसा स्युः।
न च तन्मतं बहूनां गर्गादीनां मतं वक्ष्ये ॥५॥

किसी का मत है कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। यह सबका मत नहीं है; अतः अब गर्ग आदि आचार्यों का मत कहते हैं।।५।।

केचिदाचार्याः सिद्धसेनप्रभृतयः कार्तिकमासस्य शुक्लान्तं शुक्लपक्षावसानं पौर्णिमान्तं समतीत्यातिक्रम्य गर्भदिवसाः स्युर्भवेयुरिति वदन्ति कथयन्ति। तथा च सिद्धसेनः—

शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत्।
गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम्।।

न च तन्मतं बहूनामिति। यदेतत्प्रागुक्तं कार्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युरिति, तच्च बहूनां प्रभूतानां मुनीनां न मतम्। तस्माद् गर्गादीनां गर्गवसिष्ठपराशरऋषि-पुत्रकश्यपानां मतं वक्ष्ये कथयिष्य इति।।५।।

तच्चाह—

मार्गशिरःसितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम्।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ॥६॥

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित हो, उस समय से गर्भों का लक्षण जानना चाहिये। (यहाँ पर 'वा' शब्द चार्थक है)।।६।।

मार्गशीर्षमासस्य सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति शुक्लपक्षप्रतिपदारभ्य क्षपाकरे चन्द्रे अषाढां पूर्वां वा समुपगते पूर्वाषाढां प्राप्ते। वाशब्दोऽत्र चार्थे। मार्गशीर्षशुक्लपक्षे यदा पूर्वा-षाढास्थश्चन्द्रमा भवति तदारभ्य गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयं ज्ञातव्यमिति। तथा चात्र गर्गः—

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाव्यवस्थिते।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्।।

कश्यपोऽपि—

सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा।
पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत्।। इति।।६।।

अथ धृतस्य गर्भस्य प्रसवकालज्ञानमाह—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ।।७।।

चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती है, चन्द्र के कारण १९५वें दिन में उसका प्रसव होता है।

विशेष—चान्द्रमान से १९५ दिन ग्रहण करने से उस दिन वह नक्षत्र नहीं आता है; अतः सावन मान से १९५ वाँ दिन ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि सावन मान से १९५ वें दिन में ठीक वही नक्षत्र आता है।।७।।

यो गर्भो यन्नक्षत्रमुपगते यस्मिन्नक्षत्रे व्यवस्थिते चन्द्रे भवेत् स गर्भश्चन्द्रवशाच्चन्द्रयुक्तनक्षत्रवशात् प्रसवमायाति। कियता कालेनेत्याह—

पञ्चनवते दिनशते अतिक्रान्ते। सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गतैस्तत्रैव तस्मिन्नेव नक्षत्रे प्रसवमायाति प्रसूयत इति। एतदुक्तं भवति—यन्नक्षत्रमुपगते चन्द्रे गर्भः सम्भूतस्तस्मात् पञ्चनवते दिनशते अतीते तन्नक्षत्रस्थिते चन्द्रे प्रसवमायाति। नन्वत्र यदुक्तं चन्द्रवशात् प्रसवमायाति तत्किमत्र चान्द्रमानमासे निर्दिष्टम्? चान्द्रमानवशात् पञ्चनवते दिनशते प्रसवं याति। एतन्न। चन्द्रवशादित्यनेनेदं प्रदर्शयति यन्नक्षत्रे चन्द्रे गर्भः सम्भूतः स सावनमानवशात्तन्नक्षत्रस्थे प्रसवं याति। नन्वत्र चन्द्रवशादित्युक्तं कथं सावनं मानमवगम्यत इति; उच्यते। 'तत्रैव प्रसवमायाति' इतिवचनाद्युगयातदिवसेषु गर्भदिवसात् पञ्चनवतिशतंयुक्तेष्वहर्गणे कृते तन्नक्षत्रगतश्चन्द्रमा भवति। अन्यथा पञ्चनवते दिनशते चन्द्रः पुनर्गर्भनक्षत्रे न भवत्येव। तस्मान्निश्चीयते स चन्द्रवशाच्चन्द्रकृतगर्भलक्षणवशात्तत्रैव व्यवस्थिते चन्द्रे गर्भः प्रसवं याति। सावनं मानं प्रागस्माभिर्विशेषेण प्रदर्शितम्। संख्योपदिष्टानि यानि तानि सावनमानेनादेष्टव्यानि। सावनान्याचार्येण प्रदर्शितानि—'युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रमि'त्यादि। तथा चाचार्येण समाससंहितानिबन्धे स्पष्टतरमुक्तम्—

पौषासितपक्षाद्यैः श्रावणशुक्लादयो विनिर्देश्याः।
सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गर्भविपाकः स नक्षत्रे।।

तस्मादेवं स्थितं सावनमानवशाद् गर्भप्रसव इति।।७।।

अथ पुनरपि गर्भाणां धृतानां प्रसवकालज्ञानमाह—

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तम्प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम् ।।८।।

यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्ण पक्ष में, कृष्ण पक्ष में हो तो शुक्ल पक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में, पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।। ८।।

सितपक्षभवाः शुक्लपक्षसम्भूता गर्भाः पुरतः पञ्चनवते दिनशते गते कृष्णपक्षे प्रसवमायान्ति। एवं कृष्णपक्षोद्भवाः शुक्लपक्षे। द्युसम्भवा दिनसम्भवा गर्भा रात्रौ प्रसवं-मायान्ति। नक्तम्प्रभवा रात्रिसम्भवाश्चाहनि दिवसे प्रसवमायान्ति। सन्ध्याजाताः सन्ध्यायामेव व्यत्ययाद्भवन्ति। प्राक्सन्ध्यासम्भूता अपरसन्ध्यायामपरसन्ध्यासम्भूताः प्राक्सन्ध्यायामिति। तथा च गर्गः—

दिवा भवति यो गर्भो रात्रौ स इति पच्यते।
शुक्लपक्षे समुद्भूतः कृष्णे पक्षे च वर्षति।।
पौर्णमास्यामथोत्पन्नः सोऽमावास्यां प्रवर्षति।
अमावास्यां समुद्भूतः पूर्णमास्यां प्रवर्षति।।
पूर्वसन्ध्यासमुद्भूतः पश्चिमायां प्रवर्षति।
पश्चिमायां समुद्भूतः पूर्वसन्ध्यां प्रवर्षति।।
पूर्वाह्णे यः समुद्भूतः पश्चाद्रात्रौ प्रवर्षति।
निशायां पश्चिमे यश्च स पूर्वाह्णे प्रसूयते।।
दिनार्द्धे तु समुत्पन्नः स निशार्द्धे प्रसूयते।। इति।।८।।

अथ गर्भाणां विशेषलक्षणं कालनिर्देशं चाह—

मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च ।
पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छ्रावणस्य सितम् ।।९।।
माघसितोत्था गर्भाः श्रावणकृष्णे प्रसूतिमायान्ति ।
माघस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेद् भाद्रपदशुक्लम् ।।१०।।
फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः ।
तस्यैव कृष्णपक्षोद्भवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले ।।११।।
चैत्रसितपक्षजाताः कृष्णेऽश्वयुजस्य वारिदा गर्भाः ।
चैत्रासितसम्भूताः कार्तिकशुक्लेऽभिवर्षन्ति ।।१२।।

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द फल (अल्प वृष्टि) देने वाला होता है। यहाँ पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से मास का ग्रहण करना चाहिये। जैसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख कृष्ण अमान्त तक एक मास, वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से ज्येष्ठ कृष्ण अमान्त तक दूसरा मास इत्यादि। यदि पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्र शुक्ल में, फाल्गुन

शुक्ल में गर्भ हो तो भाद्र कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुल्क में प्रसव (वृष्टि) होता है।।९-१२।।

मृगशीर्षौ मार्गशीर्षस्तदाद्याः प्रथमपक्षजाता गर्भा मन्दफलाः स्वल्पवर्षदा भवन्ति। प्रथमः पक्षः शुक्लपक्षस्तत्र जाताः सम्भूताः। तथा पौषशुक्लजाताश्च गर्भा मन्दफला एव। अस्मिन् गर्भलक्षणे चैत्रसिताद्या मासा विज्ञातव्याः। यथा चैत्रस्य शुक्लपक्षो वैशाखस्य कृष्णपक्ष इत्येष चैत्रमासः। एवमन्येषां मासानामपि परिकल्पना कार्या। एवमेतच्चान्द्रमानम्।

पौषस्य कृष्णपक्षेण श्रावणस्य सितं शुक्लपक्षं निर्दिशेद् वदेत्। एतदुक्तं भवति—पौषकृष्णपक्षसम्भूतो गर्भः श्रावणशुक्लपक्षे प्रसूयते इति।

एवं माघसितोत्था गर्भा माघशुक्लपक्षे सम्भूताः श्रावणस्य कृष्णपक्षे प्रसूतिमायान्ति प्राप्नुवन्ति। तथा माघस्य कृष्णपक्षेण भाद्रपदशुक्लपक्षं निर्दिशेत्।

फाल्गुनशुक्लपक्षसम्भूता गर्भा भाद्रपदस्यासिते कृष्णपक्षे विनिर्देश्या वक्तव्याः। तस्यैव फाल्गुनस्य ये तु कृष्णपक्षोद्भवा गर्भास्तेऽश्वयुजः शुक्लपक्षेऽभिवर्षन्ति।

चैत्रसितपक्षजाताश्चैत्रशुक्लपक्षसम्भूता ये गर्भास्तेऽश्वयुजस्य कृष्णपक्षे वारिदा वृष्टिदाः। चैत्रासितसमुद्भूताश्चैत्रकृष्णोद्भवाः कार्तिकशुक्लपक्षेऽभिवर्षन्ति। तथा च गर्गः—

माघेन श्रावणं विन्द्यान्नभस्यं फाल्गुनेन तु।
चैत्रेणाश्वयुजं प्राहुर्वैशाखेन तु कार्तिकम्।।
शुक्लपक्षेण कृष्णं तु कृष्णपक्षेण चेतरम्।
रात्र्यह्नोश्च विपर्यासं कार्यं काले विनिश्चयम्।। इति।

पराशरस्याप्येवं मतम्।।९-१२।।

अथ मेघानां वायोश्च लक्षणमाह—

पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः।
शेषास्वपि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ।।१३।।

यदि गर्भकाल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसव काल में पश्चिम दिशा में, पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में हो तो उत्तर दिशा में, उत्तर दिशा में हो तो दक्षिण दिशा में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैर्ऋत्य कोण में और गर्भकाल में नैर्ऋत्य कोण में मेघ हो तो प्रसव काल में ईशान कोण में मेघ होता है। इसी तरह वायु का भी दिग्वैपरीत्य समझना चाहिये। जैसे गर्भकाल में पूर्व तरफ की वायु हो तो प्रसव काल में पश्चिम तरफ की वायु होगी—इत्यादि समझना चाहिये।।१३।।

जीमूता मेघा गर्भकाले ये पूर्वस्यां दिशि समुद्भूतास्ते प्रसवकाले पश्चात् पश्चिमायां

दिशि सम्भवन्ति। ये चापरोत्था गर्भकाले पश्चिमायां दिशि सम्भूतास्ते प्रवर्षणे प्राक्पूर्वस्यां दिशि सम्भवन्ति। शेषास्वन्यास्वपि दिक्ष्वेवमनेन प्रकारेण विपर्ययो विपरीतो भवति। तद्यथा—दक्षिणा उत्तरस्याम्, उत्तरा दक्षिणस्याम्। आग्नेया वायव्याम्, वायव्या आग्नेय्याम्। ऐशानीसम्भूता नैर्ऋत्याम्, नैर्ऋतीसम्भूता ऐशान्यामिति।

वायोरनिलस्य चाप्येवमेव विपर्ययो विपरीतो वाच्यः। यथा मेघानां दिग्व्यत्यय उक्तस्तथा वायोरपि वाच्यः। यथा पूर्वोद्भूताः पश्चात्तथा पूर्वोद्भूतो गर्भकाले वायुः प्रवर्षण-काले पश्चिमायां दिशि भवतीत्येवं सर्वत्र योज्यम्। तथा च पराशरः—

'अथ माघेन श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वयुजं वैशाखेन तु कार्तिकं शुक्लेन कृष्णं कृष्णेन शुक्लं दिवसेन रात्रिं रात्र्या दिवसं गर्भाः प्रवर्षन्ति' इति।।१३।।

अधुना गर्भसम्भवलक्षणान्याह—

ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुतो वियद्विमलम्।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिममयूखार्कौ ॥१४॥

पृथुबहुलस्निग्धघनं घनसूचीक्षुरकलोहिताभ्रयुतम्।
काकाण्डमेचकाभं वियद्विशुद्धेन्दुनक्षत्रम् ॥१५॥

सुरचापमन्द्रगर्जितविद्युत्प्रतिसूर्यका शुभा सन्ध्या।
शशिशिवशक्राशास्थाः शान्तरवाः पक्षिमृगसङ्घाः ॥१६॥

विपुलाः प्रदक्षिणचराः स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः।
तरवश्च निरुपसृष्टाङ्कुरा नरचतुष्पदा हृष्टाः ॥१७॥

गर्भाणां पुष्टिकराः सर्वेषामेव योऽत्र तु विशेषः।
स्वर्त्तुस्वभावजनितो गर्भविवृद्ध्यै तमभिधास्ये ॥१८॥

गर्भ-स्थितिकाल में आह्लादजनक, सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध श्वेत परिवेष से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृत और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुराकार और लोहित मेघों, काक के अण्डे के समान, मयूर के कण्ठ के समान, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनु, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा सन्ध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में स्थित पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग में होकर निर्मल उत्पातरहित ग्रहों का गमन, बाधारहित वृक्षों का अङ्कुर, मनुष्य और पशु हर्षित—इन सब गुणों से युत गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख के अन्त तक गर्भ की परीक्षा करनी चाहिये। गर्भ की वृद्धि के लिये ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों को अब आगे कहता हूँ।।१४-१८।।

गर्भग्रहणकाले ईदृशानि लक्षणानि शुभफलानि भवन्ति। तद्यथा—मारुतो वायुर्ह्लादिरा-

ह्लादक:। मृदु: सुखस्पर्श:। उदगुत्तरा। शिवदिगैशानी। शक्रदिक् पूर्वा। असामन्यतम: सम्भूत:। तथा वियदाकाशं विमलं निर्मलम्। हिममयूखश्चन्द्र:। अर्क आदित्य:। तौ स्निग्धेनारूक्षेण सितेन शुक्लेन बहुलेन घनेन परिवेषेण परिवृतौ व्याप्तौ।

वियदाकाशं पृथुबहुलस्निग्धघनम्। पृथवो विस्तीर्णा:, बहुला घना:, स्निग्धा अरूक्षा घना मेघा यस्मिन्। तथा घनसूची मेघ एव सूच्याकार:। क्षुरक: क्षुराकारो मेघ:। लोहिताभ्राणि लोहितवर्णा मेघास्तैर्युतं संयुक्तम्। वियत्काकाण्डमेचकाभं काकाण्डो वायसाण्डो नीलवर्ण:, मेचको बर्हिकण्ठसमवर्ण:। काकाण्डमेचकवदाभा कान्तिर्यस्मिन्। विशुद्धो निर्मल इन्दुश्चन्द्रो नक्षत्राणि भानि च यस्मिन्।

तथा सन्ध्या पूर्वापरा वा सुरचापेनेन्द्रधनुषा मन्द्रेण मधुरेण गर्जितेन। गर्जितं मेघ-शब्द:, विद्युत्तडित्, प्रतिसूर्यो द्वितीयोऽर्क:, एतैर्युक्ता शुभा शस्ता। तथा पक्षिणां विहङ्गा-नाम्, मृगाणामारण्यपशूनां च सङ्घा: समूहा:। शशिशिवशक्राशास्था:। शशिन आशा उत्तरा दिक्, शिवाया ऐशानी, शक्राशा पूर्वा, एतास्वाशासु स्थिता:। ते च शान्तरवा मधुर-स्वना:, अनर्काभिमुखाश्च।

तथा ग्रहा विपुला विस्तीर्णबिम्बा:। प्रदक्षिणचरा नक्षत्राणामुत्तरेण मार्गेण चरन्ति। एतत्पूर्वमेवोक्तम्।

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्क:।
प्रदक्षिणं तत्..।। इति।

अत: प्रदक्षिणचरा:। स्निग्धमयूखा निर्मलरश्मय:। निरुपसर्गा निरुत्पाता:। तथा तरवो वृक्षा:। निरुपसृष्टाङ्कुरा:। निरुपसृष्टा निर्बाधा अङ्कुराश्च येषाम्। नरचतुष्पदा हृष्टा:। नरा मनुष्या:। चतुष्पदा गवादय:। एते हृष्टा: प्रमुदिता:।

गर्भाणामिति। एवमनेन प्रकारेण ये गुणा उक्तास्ते सर्वेषामेव गर्भाणां पुष्टिकरा:। एते च मार्गशिर:सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति वैशाखान्तं यावल्लक्षणीया:। अत्रास्मिन् गर्भलक्षणे योऽन्यो विशेष: स्वर्तुस्वभावजनित:। स्वेनात्मीयेन ऋतुस्वभावेन जनित उत्पादितस्तं गर्भविवृद्ध्यै गर्भाणां विवृद्धये विशेषमभिधास्ये कथयिष्ये। तथा च पराशर:—

'अथ गर्भसंस्थासु माघादिषु चतुर्षु मासेषु या शुचौ धारणा। नभो नभस्यौ प्रावृट् तस्या अनु वर्षा येषु प्रसवन्ति। तत्र चापाभ्रविद्युत्स्तनयित्नुवर्षाणि 'गर्भास्तांल्लक्षयेत् प्रशस्तानप्रशस्तांश्च। प्रशस्ताभाश्च यस्मिन् काले सूर्येन्दुनक्षत्राश्रयाणां वर्षालिङ्गानां प्रादुर्भाव:। पञ्चरूपता गर्भाणां धारणा मासेन शुद्धि:' इति।।१४-१८।।

अधुना तल्लक्षणमाह—

पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदा: सपरिवेषा:।
नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपात: ।।१९।।

माघे प्रबलो वायुस्तुषारकलुषद्युती रविशशाङ्कौ ।
अतिशीतं सघनस्य च भानोरस्तोदयौ धन्यौ ॥२०॥

फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽभ्रसम्प्लवाः स्निग्धाः ।
परिवेषाश्चासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥२१॥

पवनघनवृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेषाः ।
घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ॥२२॥

पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्या रक्त और परिवेषयुत मेघ शुभ होता है तथा मार्गशीर्ष में अल्प शीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता है। माघ मास में प्रबल भयङ्कर वायु, सूर्य और चन्द्र हिमयुक्त होकर मलिन कान्ति वाले, अति शीत और मेघरहित सूर्य का उदयास्त शुभ है। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयङ्कर वायु, मेघों का उदय, सूर्य और चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेष, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ है। चैत्र मास में वायु, वृष्टि और परिवेषयुत गर्भ शुभ होता है। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत् और मेघ के गर्जनयुत गर्भ शुभ होता है।।१९-२२।।

पौषे मासे समार्गशीर्षे मार्गशीर्षसहिते। सन्ध्यारागः सन्ध्ययो रक्तत्वम्। अम्बुदा मेघाः सपरिवेषाः परिवेषयुक्ताः। तथा मार्गशीर्षे मासि नार्थं नातिबहु शीतम्। पौषे नातिहिमपातः शुभः।

माघे मासि प्रबलश्चण्डो वायुः। तथा रविशशाङ्कावर्कचन्द्रौ तुषारकलुषद्युती। तुषारद्युतिर्हिमकान्तिः सूर्यः। कलुषद्युतिरनिर्मलकान्तिश्चन्द्र इत्यर्थः। अतिशीतमत्यर्थं शीतम्। भानोरादित्यस्य सघनस्य समेघस्यास्तोदयौ धन्यौ द्वावपि शुभावित्यर्थः।

फाल्गुनमासे पवनो वायू रूक्षः परुषः। चण्डोऽतिवेगः। अभ्राणां मेघानां सम्प्लवा उद्गमाः। स्निग्धाः सूर्याचन्द्रमसोः परिवेषाः। असकला अखण्डाः। रविरादित्यः कपिलः कपिलवर्णस्ताम्रस्ताम्रवर्णश्च शुभः प्रशस्तः।

चैत्रे मासि गर्भाः पवनेन वायुना घनैर्मेघैर्वृष्ट्या वर्षणे च युक्ताः सपरिवेषाः परिवेषसहिताः शुभाः। वैशाखे मासि घनैर्मेघैः। पवनेन वायुना। सलिलेन जलेन। विद्युता तडिता। स्तनितेन गर्जितेन च युक्ता गर्भा हिताय भवन्ति। तथा च कश्यपः—

शीतमभ्रं तथा वायुश्चन्द्रार्कपरिवेषणम्।
माघे मासि परीक्षेत श्रावणे वृष्टिमादिशेत्।।
फाल्गुने चात्र सङ्घातं वृष्टिस्तनितमेव च।
पुरोवाताश्च ये प्रोक्ता मासि भाद्रपदे शुभम्।।
बहुपुष्पफला वृक्षा वाताः शर्करवर्षिणः।
शीतवर्षं तथाभ्राणि चैत्रेणाश्वयुजं वदेत्।।

वहन्ति मृदवो वाताः पुरः शीघ्रं प्रदक्षिणाः।
वैशाखे तानि रूपाणि कार्तिके मासि वर्षति।।

तथा च समाससंहितायाम्—

शस्तानि मृगान्मासाच्छीतहिमवायुमेघकृतानि।
स्तनिततडिज्जलमारुतघनतापान्यतिशयं तु वैशाखे।।
कृष्णेन शुक्लपक्षः सितेन कृष्णो निशा दिनोत्थेन।
रात्र्याहः सन्ध्यायां सन्ध्यादिग्व्यत्ययाज्जलदाः।। इति।।१९-२२।।

अथ गर्भकाले मेघानां लक्षणमाह—

मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः ।
जलचरसत्त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥२३॥

तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः।
रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले ॥२४॥

मोती या चाँदी के समान श्वेत अथवा तमाल वृक्ष, नील कमल या अञ्जन के समान अति कृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले गर्भकालिक मेघ हों तो बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अति भयङ्कर सूर्यकिरण से तापित, अल्प वायु से युत गर्भकालिक मेघ १९५वें दिन (प्रसवकाल) में रुष्ट की तरह होकर धाराप्रवाह अतिवृष्टि करते हैं।।२३-२४।।

ये घना मेघा मुक्तारजतनिकाशा मुक्ताफलानां रजतस्य रौप्यस्य निकाशाः सदृशाः। अतिशुक्ला इत्यर्थः। अथवा तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः। तमालवृक्षस्य नीलोत्पलस्याञ्जनस्य च सदृशवर्णाः। अतिकृष्णा इत्यर्थः। जलचरसत्त्वाकाराः। जलचरा ये सत्त्वा जलप्राणिनः। झषमकरमत्स्यनक्रकूर्मशिशुमारप्रभृतयः। एवंविधा गर्भेषु घना दृष्टाः प्रभूतजला बहुवर्षदाः।

तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता इति। ये मेघास्तीव्रैः प्रचण्डैर्दिवाकरकिरणैरर्करश्मिभिरभितापिता दग्धदेहाः। मन्दमारुताः स्वल्पपवना जलदा मेघाः। एवंविधा ये गर्भकाले दृश्यन्ते ते प्रसवकाले पञ्चनवते दिवसशते काले अम्भः पानीयं रुषिता रुष्टाः क्रुद्धा इव धाराभिर्विसृजन्त्युत्सृजन्ति। अतिवृष्टिदा भवन्तीत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

पृथुघनबहुला जलदा जलचरसत्त्वान्विताः शुभा गर्भाः।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिमकरोष्णकरौ।।
नृखगमृगा मुदिता निरुपहतास्तरवः।
स्निग्धतडित्प्रतिसूर्यकमत्स्यशक्रधनुःप्रथमापरमध्ये ।
शान्तरवा मृगपक्षिमनुष्या शक्रशशीश्वरदिक्पवनाश्च।। इति।।२३-२४।।

अधुना गर्भोपघातलक्षणमाह—

गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातदिग्दाहाः ।
क्षितिकम्पखपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥२५॥

रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्शनं राहोः।
इत्युत्पातैरेतैस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥२६॥

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत्, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन, भूकम्प, गन्धर्व नगर, नाभस, कीलक आदि केतुओं का दर्शन, ग्रहयुद्ध, निर्घात (शब्द), रुधिर आदि (रुधिर, मांस, वसा, घृत, तैल आदि) की विकारयुत वृष्टि, परिघ (४९वें अध्याय के १९ वें श्लोक में वर्णित परिघ का लक्षण), इन्द्रधनु, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन गर्भ का नाश करने वाले होते हैं।।२५-२६।।

इमानि वक्ष्यमाणानि गर्भाणामुपघातलिङ्गानि विनाशचिह्नानि। एतैर्गर्भो वृतो विनश्यति। तद्यथा—उल्कापातः। अशनिर्विद्युत्। पांशुपातः पांशुवर्षणम्। दिग्दाहो दिशां दाहः। क्षितिकम्पो भूचलनम्। खपुरं गन्धर्वनगरम्। कीलकस्तामसकीलकः। केतुः शिखी। ग्रहयुद्धम्। निर्घातो निर्घातशब्दः।

तथा वृष्टौ वर्षणे। रुधिरादिवैकृतं विकारः। रक्तमांसवसाघृततैलादिवर्षणम्। परिघलक्षणं वक्ष्यति—'परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा' इति। तस्य परिघस्येन्द्रधनुषः सुरचापस्य दर्शनम्। राहोर्दर्शनं चन्द्रार्कग्रहणदर्शनम्। इत्येवं प्रकारैरुत्पातैरन्यैस्त्रिविधैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैरुत्पातैर्गर्भो हतो नष्टो वाच्यः। एतदुक्तं भवति—गर्भे दुष्टे यदि पश्चादुक्तानामुत्पातानामन्यतमो भवति तदा गर्भो हतो यस्य समनन्तरं पश्चादुत्पातसम्भवो नान्य इति। तथा च गर्गः—

अश्ववर्षं तमोवर्षं मांसशोणितवर्षणम्।
उल्कानिर्घातकम्पश्च वज्रपातस्तथैव च।।
परिवेषाः परिधयो वासवस्य धनूंषि च।
अनभ्रस्तनितं वर्षं दिशां दाहस्तथैव च।।
अनार्तवं पुष्पफलं वारणीयेषु वर्षणम्।
ग्रहयुद्धेषु घोरेषु हतान् गर्भान् विनिर्दिशेत्।।

तथा च पराशरः—'तेषां ग्रहाणामुदयास्तमयोल्कानिर्घाताशनिपातगन्धर्वनगरदिग्दाहार्करश्मिवर्णविकारभूचलनप्रादुर्भावो वर्षास्ववर्षाय' इति।।२५-२६।।

पुनरपि विशेषमाह—

स्वर्तुस्वभावजनितैः सामान्यैर्यैश्च लक्षणैर्वृद्धिः।
गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥२७॥

ऋतुओं के स्वभावजनित ('पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः' इत्यादि पद्योक्त) और सामान्य ('ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुत' इत्यादि पद्योक्त) लक्षणों से युत गर्भ की वृद्धि; अन्यथा हानि होती है।।२७।।

'पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः' इति स्वभावजनितानि गर्भाणां

लक्षणानि। तथा—'ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुत:' इत्यादीनि सामान्यलक्षणानि। एवं स्वर्तुस्वभावजनितैर्यैश्च सामान्यैर्लक्षणैर्गर्भाणां वृद्धिरुक्ता तैरेव विपरीतैर्विपर्ययस्थै-र्विपर्ययो विपरीतो गर्भाणां हानिरिति। अर्थादेवं मध्यमैर्मध्यमं फलं वक्तव्यमिति।।२७।।

अथ येषु नक्षत्रेषु गर्भ: सम्भूतो बहुतोयदो भवति तान्याह—

भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु ।
सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ॥२८॥

सभी ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, रोहिणी— इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसवकाल में अधिक वृष्टि करता है।। २८।।

भद्रपदाद्वयं पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे। विश्वेदेव उत्तराषाढा। अम्बुदेव: पूर्वाषाढा। पैतामहो रोहिणी। एतेषु पञ्चसु नक्षत्रेषु सर्वेष्वप्यृतुषु वृद्धो गर्भ: 'पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदा:' इत्यादिभिर्गुणै: पुष्ट: प्रवर्षणे बहुतोयद: प्रभूतवर्षदो भवति।।२८।।

साम्प्रतं येषु नक्षत्रेषु गर्भ: सम्भूतो बहून्यहानि वर्षति तान्याह—

शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुत: शुभो गर्भ: ।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधै: ॥२९॥

शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती या मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता है तथा उक्त पाँचों नक्षत्रों में बढ़े हुए गर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से हत हों, उतने दिन तक वर्षा नहीं होती है।।२९।।

शतभिषगाश्लेषा आर्द्रा स्वातिर्मघा:। एभ्य: शतभिषगादिभ्य: पञ्चभ्य: सम्भूतो गर्भ:। एतेषां मध्यादेकतमेन नक्षत्रेण शुभ: शुभफलो भवति। स च बहून् दिवसान् पुष्णाति प्रभूतान्यहानि पुष्टिं नयति। पुष्टिनिमित्तान्यभिहितानि—'ह्लादिमृदूदक्' इत्यादीनि। **हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैरिति**। एष्वेव नक्षत्रेषु विवृद्धो गर्भस्त्रिविधैरुत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौ-मैर्हतो हन्त्यात्मानं विनाशयतीत्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—हतस्तावन्त्येव दिनानि न वर्षति। 'गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातदिग्दाहा:' इत्याद्युक्तानि। त्रिविधमुत्पातलक्षणमाचार्येण समाससंहितानिबन्धने स्पष्टतरमुक्तम्—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च।
दिग्दाहोल्कामारुतपरिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्।।

तथा च गर्ग:—

प्राजापत्यं मघा श्लेषा रौद्रं चानिलवारुणम्।
आषाढाद्वितयं चैव तथा भद्रपदाद्वयम्।।
नक्षत्रदशकं चैतद्यदि स्याद् ग्रहदूषितम्।
न गर्भा: सम्पदं यान्ति योगक्षेमं न कल्पते।।

उल्कयाभिहतं वापि केतुना वाप्यधिष्ठितम्।
न गर्भाः सम्पदं यान्ति वासवश्च न वर्षति।। इति।।२९।।

अधुनानन्तरोक्ताया दिवससंख्याया नियमं करोति—

मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता।
विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ॥३०॥

उक्त पाँच नक्षत्रों से किसी एक नक्षत्र में मार्गशीर्ष में गर्भ की वृद्धि हो तो प्रसवसमय से ८ दिन, पौष में ६ दिन, माघ में १६ दिन, फाल्गुन में २० दिन, चैत्र में २० दिन और वैशाख में ३ दिन तक वृष्टि होती है।।३०।।

मृगमास आदिर्येषां मासानां ते मृगमासादयस्तेषु मृगमासादिषु प्राक्पठितानां पञ्चानामन्यतमेन नक्षत्रेण यदा गर्भो विवृद्धस्तदा यथासंख्यमेते दिवसा योजनीयाः। यदोक्तनक्षत्राणामन्यतमेन नक्षत्रेण मार्गशीर्षे मासि गर्भः सम्भूतस्तदा पञ्चनवते दिवसशतेऽतिक्रान्ते अष्टौ दिवसान् प्रवर्षति देवः। एवं पौषे षट्। माघे षोडश। फाल्गुने चतुर्युक्ता विंशतिश्चतुर्विंशतिः। चैत्रे विंशतिः। अथानन्तरं वैशाखे दिवसत्रयमिति। एवं शतभिषगादिभ्यः पञ्चभ्यो मध्यादेकतमर्क्षेण वृष्टिप्रमाणम्। अमुमेवार्थमृषिपुत्र आह—

माघे षोडशसंख्यास्तु षोडशाष्टौ च फाल्गुने।
विंशतिश्चैत्रमासे तु त्रयश्चेन्द्राग्निदैवते।।
अष्टौ सौम्येऽथ षट् पौषे संख्यास्तासु च वर्षति।

एवमेतावन्ति दिनानि पञ्चनवते दिवसशते गतेऽतिक्रान्ते प्रवर्षतीत्यर्थः। गर्भो बहुतोयदो भवत्यनेन वातिदिष्टं यथा प्रवर्षणे एतावती पानीयसंख्या अध्वसंख्या वाचार्येण समाससंहितानिबन्धने उक्ता—

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्याऽतः।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद् रूपेणैकेन यो गर्भः।। इति।

निमित्तानि पश्चाचार्यो वक्ष्यति—

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः।
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः।। इति।

निमित्तान्येकोत्तरवृद्ध्या मार्गशीर्षमासादिषु परिपठितानि। पौषे समार्गशीर्ष इत्यादि। तथा मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफला इत्यनेन ग्रन्थेन मार्गशीर्षजातानां गर्भाणां पौषशुक्लजातानां मन्दफलतोक्ता, तदपवादमाह—

सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवतीति। तेन पञ्चनिमित्तसंयुक्तो गर्भः पुष्टो बहुतोयदो भवति। गर्भाणां पुष्टिनिमित्तान्यभिधाननिमित्तानि च प्राक्प्रदर्शितानि। विशेषनिमित्तैर्युक्तो गर्भो बहुतोयदो भवति।।३०।।

तान्याह—

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्याऽतः।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भः ॥३१॥

वक्ष्यमाण पाँच निमित्तों (इसी अध्याय के सैतींसवें श्लोकोक्त निमित्तों) से युत गर्भ प्रसवकाल में सौ योजन तक बरसता है। चार निमित्तों से युत गर्भ पचास योजन तक, तीन निमित्तों से युत गर्भ पच्चीस योजन तक, दो निमित्तों से युत गर्भ साढ़े बारह योजन तक और एक निमित्त से युत गर्भ पाँच योजन तक प्रसवकाल में बरसता है।।३१।।

पञ्चभिर्निमित्तैः संयुक्तो गर्भ आसमन्ताद्योजनशतं वर्षति। तदर्द्धार्द्धम्। तदित्यनेन तस्यैव योजनशतस्य परामर्शं करोति। पञ्चानां निमित्तानामेकैकनिमित्तहानौ सामान्येनैवाशेष-विधिक्रमेणार्द्धमत्र योजनीयम्। चतुर्निमित्तस्तदर्धं शतार्धं पञ्चाशद्योजनानि वर्षति। त्रिनिमित्तो गर्भस्तदर्धं पञ्चविंशतियोजनानि। द्विनिमित्तो गर्भस्तदर्द्धं सार्द्धानि द्वादशयोजनानि वर्षति। **पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भ इति।** पञ्चानां निमित्तानामन्यतमरूपेणैकेन यः संयुक्तो गर्भः समन्तात्पञ्चयोजनानि वर्षति। पञ्चसंख्याग्रहणं निर्दिष्टार्द्धक्रमनिर्देशव्युदासार्थमिति।

प्रत्येकनिमित्तसंयुक्तानां गर्भाणां पानीयसंख्यामाह—

द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन।
षड् विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥३२॥

पाँचों निमित्तों से युत गर्भ एक द्रोण बरसता है। वायु से युत गर्भ तीन आढ़क, विद्युत् से युत गर्भ छः आढ़क, मेघों से युत गर्भ नौ आढ़क और मेघों के गर्जन से युत गर्भ प्रसवकाल में बारह आढ़क बरसता है।।३२।।

वृष्टेराढकद्रोणप्रमाणपरिज्ञानं पराशर आह—

आढकांश्चतुरो द्रोणमपां विन्द्यात् प्रमाणतः।
धनुष्प्रमाणं मेदिन्या विन्द्याद् द्रोणातिवर्षणम्।।
समे विंशाङ्गुलानाहे द्विचतुष्काङ्गुलोच्छ्रिते।
भाण्डे वर्षति सम्पूर्णं ज्ञेयमाढकवर्षणम्।।

तथा चाचार्य आह—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम्।। इति।

द्रोणः पञ्चनिमित्तैः पञ्चनिमित्तसंयुक्ते गर्भे द्रोणः प्रवर्षति। षड् विद्युता। आढकानीत्यनु-वर्तते। विद्युता संयुक्ते गर्भे आढकानि षड् वर्षति। नवाभ्रैर्मेघैः संयुक्ते गर्भे नवाढकानि वर्षति। स्तनितेन द्वादश प्रसवे। स्तनितेन गर्जितेन द्वादशाढकानि प्रसवकाले वर्षति। प्रसवकालेऽभिहित एव। पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

वाते तु आढकं विन्द्यात् स्तनिते द्वादशाढकम्।
नवाढकं तथाभ्रेषु द्योतितेषु षडाढकम्।।
निमित्तपञ्चकोपेते द्रोणं वर्षति वासवः।। इति।।३२।।

अत्रैव विशेषमाह—

क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः।
शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥३३॥

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युत हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती है। यदि वहाँ पर (गर्भकालिक नक्षत्र में) चन्द्र या रवि स्थित होकर शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो तो बहुत वर्षा देने वाला गर्भ होता है।

गर्भनक्षत्रे क्रूरग्रहसंयुक्ते पापग्रहाधिष्ठिते गर्भाः करकाशनिमत्स्यवर्षदाः। करका उपलवृष्टिः, अशनिर्विद्युत्, मत्स्या मीनास्तैः संयुक्तं वर्षं ददति। शशिनि चन्द्रे रवावादित्ये वा तत्र स्थिते तस्मिंश्च शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन संयुक्ते ईक्षिते दृष्टे च। संयुतश्चासौ ईक्षितश्च तस्मिंस्तथाभूते भूरिवृष्टिकरा बहुवर्षदा गर्भाः।।३३।।

अथ गर्भसम्भवे सति विशेषलक्षणमाह—

गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता।
द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ॥३४॥

यदि गर्भसमय में निमित्तरहित अति वृष्टि हो तो गर्भ का नाश होता है तथा यदि पच्चीस पल या उससे अधिक वृष्टि हो तो गर्भस्राव हो जाता है।।३४।।

गर्भसमये गर्भग्रहणकाले निर्निमित्तकृता अतिवृष्टिः। निमित्तं कारणं यथा—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चान्द्रौ।। इति।

एवं निमित्तरहिता अतिवृष्टिर्गर्भाभावाय गर्भविनाशाय भवति। द्रोणः पलशतद्वयं तस्याष्टांशः पलानां पञ्चविंशतिः। तदधिके वृष्टे गर्भः स्रुतः परिस्रुतो भवति। न जलप्रद इत्यर्थः।।३४।।

अत्रैव विशेषमाह—

गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः।
आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥३५॥

पुष्ट गर्भ ग्रहोपघात आदि (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) कारणों से जलप्रद न हो तो आत्मीय गर्भ (फिर द्वितीय गर्भग्रहण) काल में उपलमिश्रित वृष्टि करता है।।३५।।

यो गर्भो ग्रहणकाले पुष्टः प्रसवे प्रसवकाले पञ्चनवते दिनशते ग्रहोपघातादिभिरुत्पातैः। ग्रहोपघातः कश्चिद्ग्रहस्तत्कालमेव जलप्रदो भवति। यथा भौमः—'प्राजापत्ये श्रवण'

इति। आदिग्रहणाद्दिव्यान्तरिक्षभौमैरुत्पातैर्यदि न वृष्टः स चात्मीयगर्भसमये पुनः पुरस्ताद् द्वितीयगर्भग्रहणकाले। अम्भः पानीयं करकामिश्रमुपलसंयुक्तं ददाति।।३५।।

अत्रैव दृष्टान्तरमाह—

काठिन्यं याति यथा चिरकालधृतं पयः पयस्विन्याः ।
कालातीतं तद्वत् सलिलं काठिन्यमुपयाति ॥३६॥

जिस तरह बहुत समय तक रखा हुआ गौओं का दूध कठिन हो जाता है, उसी तरह बहुत समय बीतने पर जल भी कठिन होकर उपल के रूप में हो जाता है।।३६।।

यथा पयस्विन्याः सक्षीराया धेनोः पयः क्षीरं चिरकालधृतं प्रभूतकालमुषितं काठिन्यं कठिनतां याति गच्छति। तद्वत्तथा कालातीतं सलिलं जलं काठिन्यमुपयाति प्राप्नोति। सलिलं तूपलतां प्रतिपद्यत इति।।३६।।

अथ गर्भस्य पुष्टिलक्षणमाह—

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताऽभ्रान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः ।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥३७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
गर्भलक्षणाध्याय एकविंशः ॥२१॥

यदि वायु, जल, विद्युत्, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ हो तो प्रसवकाल में बहुत वृष्टिप्रद होता है। इस तरह के गर्भसमय में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती।।३७।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां गर्भलक्षणाध्याय एकविंशः ॥२१॥

पवनो वायुः। सलिलं जलम्। विद्युत् तडित्। गर्जितं मेघशब्दः। अभ्राणि मेघाः। एतैः पञ्चभिर्यो गर्भोऽन्वितो युक्तः स बहुतोयो बहुजलप्रदः, यतः स गर्भः पञ्चरूपाभ्युपेतः। पञ्चभी रूपैः संयुक्तोऽतो बहुतोयदो भवति। एवंविधो गर्भो गर्भकाले यद्यतिभूरि तोयं प्रभूतपानीयं विसृजत्युत्सृजति, तदा प्रसवसमयं मेघवर्षकालमित्वा प्राप्य पञ्चनवते दिन-शतेऽतीते शीकराम्भः करोति जलबिन्दून् ददाति। न प्रभूतं वर्षतीत्यर्थः।।३७।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
गर्भलक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ गर्भधारणाध्यायः

अथ गर्भधारणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तासां लक्षणमाह—

ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुधारणा दिवसाः।
मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥१॥

ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक गर्भधारण के दिन होते हैं। इन दिनों में सुखस्पर्श, शुभ (उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न) वायु और निर्मल मेघयुत आकाश शुभ होते हैं।।१।।

ज्यैष्ठसिते ज्येष्ठशुक्लपक्षे अष्टम्याद्याश्चत्वारो ये दिवसास्ते वायुधारणा दिवसाः। वायुर्धारणा येषाम्, ते दिवसा वायुना धार्यन्ते यथा तेषां प्रसवो न भवति। ते च दिवसा मृदुशुभपवनाः शस्ताः। मृदुः सुखसंस्पर्शः। शुभ उदक्शिवशक्रादिसम्भवः। पवनो वायुः। तथा स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च शस्ता एव। स्निग्धैररूक्षैः, घनैर्मेघैः स्थगितं छन्नं गगनमाकाशं येषु दिवसेषु।।१।।

अथ तास्वेव विशेषमाह—

तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥२॥

यदि ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती आदि चार नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा) में वृष्टि हो तो क्रम से श्रावण आदि चार मासों (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक) में अवृष्टि होती है। जैसे ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती में वृष्टि हो तो श्रावण में, विशाखा में वृष्टि हो तो भाद्रपद में, अनुराधा में वृष्टि हो तो आश्विन में और ज्येष्ठा में वृष्टि हो तो कार्तिक में वृष्टि का अभाव होता है।।२।।

तत्रैव तस्मिन्नेव ज्यैष्ठसिते स्वात्याद्ये स्वातिपूर्वके भचतुष्टये नक्षत्रचतुष्टये स्वाति-विशाखाऽनुराधाज्येष्ठाख्ये वृष्टे क्रमात् परिपाट्या श्रावणपूर्वाश्चत्वारो मासा ज्ञेयाः। श्रावण-भाद्रपदाश्वयुजकार्तिकाख्याः। ताश्च धारणाः परिस्रुताः स्युर्भवेयुः। न जलप्रदा भवन्ति। एतदुक्तं भवति—स्वातौ वृष्टायां श्रावणे त्ववृष्टिः। विशाखायां भाद्रपदे। अनुराधायामाश्वयुजे। ज्येष्ठायां कार्तिक इति। तथा च काश्यपः—

ज्येष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां तु नक्षत्रे भगदैवते।
चत्वारो धारणाः प्रोक्ता मृदुवातसमीरिताः।।
नीलाञ्जननिभैर्मेघैर्विद्युत्स्थगितमारुतैः।
विस्फुलिङ्गरजोधूम्रैश्छन्नौ शशिदिवाकरौ।।

एकरूपाः शुभा ज्ञेया अशुभा सान्तराः स्मृताः।
अनार्यैस्तस्करैर्घोरैः पीडा चैव सरीसृपैः।।
ततः स्वात्यादिनक्षत्रैश्चतुर्भिः श्रवणादयः।
परिपूर्णाः शुभास्ताः स्युः सौम्याः शिवसुभिक्षकाः।।
स्वातौ तु श्रावणं हन्याद्वृष्टेऽथेन्द्राग्निदैवते।
भाद्रपदे त्ववृष्टिः स्यान्मैत्रे चाश्वयुजे स्मृता।।
ऐन्द्रे तु कार्तिके त्वेवं वृष्टे वृष्टिं निहन्ति च।
एतेषु यदि नो वृष्टिस्तदा सौभिक्षलक्षणम्।। इति।।२।।

पुनरपि विशेषलक्षणमाह—

यदि ताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय।
तस्करभयदाश्चोक्ताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ॥३॥

यदि वे चारों गर्भधारण के दिन एक रूप के हों तो शुभ और असमान हों तो चोरों को भय देने वाले होते हैं। आगे इसी अर्थ को पुष्ट करने वाले वसिष्ठ के पद्य लिखते हैं।।३।।

ता धारणा यद्येकरूपाश्चतुर्ष्वपि दिवसेषु सदृशाः स्युर्भवेयुस्ततः शुभाः। सान्तराः सविशेषा विसदृशा न शिवाय श्रेयसे भवन्ति। ताश्च तस्करभयदाश्चौरभीतिप्रदाश्चोक्ताः कथिताः। अत्रास्मिन्नर्थेऽप्यमी वासिष्ठाः श्लोकाः वसिष्ठमहर्षिणा उक्ताः कथिता लिख्यन्ते।

अथ तांश्चाह—

सविद्युतः सपृषतः सपांशूत्करमारुताः।
सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥४॥

यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः।
तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥५॥

सपांशुवर्षाः सापश्च शुभा बालक्रिया अपि।
पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥६॥

रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः।
वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यार्थसाधिका ॥७॥

मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः।
तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्याभिवृद्धये ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
गर्भधारणाध्यायो द्वाविंशः ॥२२॥

यदि विद्युत्, जलकण, धूलियों से युत वायु, मेघाच्छन्न रवि-चन्द्र और उत्तर, ईशान कोण या पूर्व दिशा की विद्युत् युत गर्भधारण के दिन हों तो सभी धान्यों की वृद्धि पण्डितों को कहनी चाहिये। धूलि की वृष्टि, जल, बालकों की सुन्दर चेष्टायें, पक्षियों के मधुर शब्द, धूलि या जल में उनकी क्रीडा और स्निग्ध, विकाररहित, परिवेषसहित रवि-चन्द्रों से युत गर्भधारण के दिन हों तो सभी धान्यों को सिद्ध करने वाली वृष्टि होती है। स्निग्ध, सघन और प्रदक्षिण करके (पूर्व दिशा से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व) में गमन करने वाला मेघ गर्भधारण दिन में हो तो शुभ होता है।।४-८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गर्भधारणाध्यायो द्वाविंशः ॥२२॥

एवंविधा धारणा शुभा धारणा भवन्ति। कीदृश्यः? सविद्युतो विद्युत्तडित्तया सहिताः। सपृषतः सजलकणाः। सह पांशूत्करेण पांशुसमूहेन यो मारुतो वायुर्वर्तते तेन सहिताः। सहार्कचन्द्राभ्यां परिच्छन्नाभ्यां परिवर्तते, मेघावृतत्वाद्रविचन्द्रौ स्थगितौ यासु।

यदा तु श्रेष्ठाः शोभना विद्युतस्तडितो भवन्ति, ताश्च शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः। शुभा या आशा दिश उदक्शिवशक्रदिशस्ताभ्यः प्रत्युपस्थिता उत्पन्नास्तदाऽपि विचक्षणः पण्डितः सर्वसस्यानामशेषधान्यानां वृद्धिं सम्पत्तिं ब्रूयाद् वदेत्।

सपांशुवर्षा इति। सपांशुवर्षेण वर्तन्ते यास्ताः सपांशुवर्षाः। साप: अद्भिः सहिताः। अथवा बालानां शिशूनां शुभाः क्रियाः शोभनाश्चेष्टाः। शुभेन कर्मणा जनशुभप्रदेन क्रीडनेन। पक्षिणां पतत्रिणां सुस्वराः शोभनशब्दा मधुरं वाक् सम्भाषणम्। तथा पांशुजलादिषु क्रीडा क्रीडनम्। पांशुना जलेन वा। आदिग्रहणाद् गोमयकर्दमादिना।

रविचन्द्राभ्यां सूर्यशशिभ्यां परिवेषाः। स्निग्धा अरूक्षा नात्यन्तदूषिता नातिविकृताः; तथापि सर्वसस्यार्थसाधिका वृष्टिर्विज्ञेया। यया वृष्ट्या सर्वसस्यानामर्थवृद्धिर्भवति। सर्वाणि सस्यानि निष्पद्यन्त इत्यर्थः।

मेघाः स्निग्धा इति। यद्येवंविधा मेघा घना दृश्यन्ते तदा सर्वसस्याभिवृद्धये निःशेषसस्यानामभिवर्द्धनाय महती प्रभूता वृष्टिः स्याद्भवेत्। कीदृशा मेघाः? स्निग्धा अरूक्षाः, संहता घनाः, प्रदक्षिणगतिक्रिया येषाम्। यथा पूर्वस्यां स्थिता दक्षिणां व्रजन्ति। दक्षिणस्यां पश्चिमाम्। पश्चिमायामुत्तराम्। उत्तरस्यां पूर्वामिति।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
गर्भधारणोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ प्रवर्षणाध्यायः

अथ प्रवर्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्र तावल्लक्षणमाह—

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः॥१॥

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा बीत जाने पर पूर्वाषाढ़ा आदि सभी नक्षत्रों में वृष्टि हो तो जल का शुभाशुभ परिमाण कहना चाहिये। अर्थात् वृष्टि हो तो शुभ और अवृष्टि हो तो अशुभ कहना चाहिये।।१।।

ज्येष्ठमासस्येयं पौर्णमासी ज्यैष्ठी, तस्यां समतीतायामतिक्रान्तायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन पूर्वाषाढामादितः कृत्वा सर्वेषु नक्षत्रेषु सम्प्रवृष्टेन प्रवर्षितेन तज्ज्ञैः पण्डितैरम्भसो जलस्य परिमाणं शुभमशुभं वा वाच्यं वक्तव्यम्। वृष्टौ शुभमवृष्टावशुभमिति। तथा च गर्गः—

ज्येष्ठे मूलमतिक्रम्य मासि प्रतिपदग्रतः।
वर्षासु वृष्टिज्ञानार्थं निमित्तान्युपलक्षयेत्।। इति।।१५।।

अधुना जलप्रमाणार्थमाह—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम्॥२॥

एक हाथ तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्त्तुलाकार कुण्ड से वृष्टि के जल का मापन करना चाहिये, जल से पूर्ण इस कुण्ड में पचास पल (एक आढ़क) तुल्य जल होता है। पचास पल का एक आढ़क और चार आढ़क का एक द्रोण होता है।।२।।

हस्तविशालं हस्तविस्तीर्णं कुण्डकं समपरिवर्तुलमधिकृत्य कृत्वा अम्बुप्रमाणनिर्देशो जलप्रमाणकथनं कार्यम्। पञ्चाशत्पलमाढकमनेन प्रमाणेन पतितं जलं पानीयं मिनुयान्मापयेत्। एतदुक्तं भवति—हस्तविशालं कुण्डकं वर्षति देवे संस्थाप्य तत्र यज्जलं पतितं तन्मापयेत्। तद्यदि पलशतद्वयं भवति तदा द्रोणो वृष्टः। यत उक्तम्—'पञ्चाशत्पलमाढकं चतुर्भिराढकैर्द्रोणः' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

ज्येष्ठस्य पौर्णमासीमतीत्य भूमुद्रया यथा वृष्टे।
आप्याद्यैर्जलमानं मागधमानेन हस्तमिते।।

यदुक्तम्—

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः।। इति।।२।।

तत्र वर्षप्रमाणमाह—

येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दवस्तृणाग्रेषु।
वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम्॥३॥

जिस वृष्टि से पृथ्वी पर धूलि मिट जाय या तृणाग्र में जलकण दिखाई दें, उससे जल का प्रमाण कहना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस नक्षत्र में वृष्टि हो, उसी नक्षत्र के परिणाम (इसी अध्याय के छठे श्लोक से उक्त) तुल्य वृष्टि कहनी चाहिये।।३।।

येन वृष्टेन धरित्री मुद्रा भूर्मुद्रा जनिता विगतधूली जाता। अथवा तृणानामग्रेषु प्रान्तेषु बिन्दवो जलकणा दृश्यन्ते। तेन वृष्टेन पूर्वाषाढादौ प्रथममादौ वारिणो जलस्य प्रमाणं वाच्यम्। एतदुक्तं भवति—पूर्वाषाढादौ प्रथमं येन नक्षत्रेण वर्षणं भवति तेनैव जलप्रमाणं लोके वक्तव्यम्, नापरेण नक्षत्रेण। वर्षेऽपि सति भवत्स्वपि गर्भेषु धारणास्वपि सत्सु यदि प्रवर्षणकाले न वर्षति तदा प्रसवकाले वृष्टिर्न स्यादित्यतो गर्भेष्विदमुच्यते परिमाणं चाम्भसः प्रसवकाले वाच्यमिति।।३।।

अत्रैव मतान्तरमाह—

केचिद्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये।
गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद् द्वादशान्न परम्॥४॥

कोई-कोई मुनि (कश्यप आदि) का मत है कि प्रवर्षणकाल (ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर पूर्वाषाढ़ा आदि सत्ताईस नक्षत्रयुत काल) में किसी एक प्रदेश में भी वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है। अन्य (देवल आदि) का मत है कि यदि प्रवर्षणकाल में कम से कम दश योजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है। गर्ग, वसिष्ठ और पराशर का मत है कि प्रवर्षणकाल में बारह योजन तक वृष्टि होने से वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है।।४।।

केचिन्मुनयः कश्यपप्रभृतयो यथाभिवृष्टं यावत्तावन्मात्रं वृष्टं कथयन्ति। प्रवर्षणकाले यथा तथैकस्मिन्नपि प्रदेशे वृष्टे वर्षाकाले शोभनं वर्षं पूर्वाषाढादि ग्राह्यम्। तथा च कश्यपः—

प्रवर्षणे यथा देशं वर्षणं यदि दृश्यते।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति।।

अन्ये देवलादयो दशयोजनमण्डलं वृष्टं वदन्ति। प्रवर्षणकाले योजनदशके वृष्टे वर्षाकाले अम्बुकथनं नास्मादून इति। तथा च देवलः—

प्रवर्षणे यदा वृष्टं दशयोजनमण्डलम्।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति।।

गर्गवसिष्ठपराशराणामेतन्मतं यथा द्वादशाद्योजनात् परम्। प्रवर्षणकाले योजनद्वादशके वृष्टे वर्षाकाले अम्बुकथनं कार्यं नास्मादून इति। तथा च गर्गः—

आषाढादिषु वृष्टेषु योजनद्वादशात्मके।
प्रवृष्टे शोभनं वर्षं वर्षाकाले विनिर्दिशेत्।। इति।।४।।

पुनरपि विशेषमाह—

येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः।
यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः।।५।।

प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में फिर वृष्टि होती है। यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है।।५।।

येषु च पूर्वाषाढादिषु भेषु नक्षत्रेष्वभिवृष्टं प्रवर्षणकाले भूयः पुनस्तेष्वेव नक्षत्रेषु प्रायो बाहुल्येन वर्षति। प्रसवकाले आप्यादिषु पूर्वाषाढादिषु सप्तविंशेष्वपि नक्षत्रेषु यदि न प्रवृष्टं तदा त्वनावृष्टिः प्रसवकाले भवतीति।।५।।

अधुना नक्षत्राणां वृष्टिप्रमाणमाह—

हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः।
शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश।।६।।

श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः।
फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः।।७।।

ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे च विंशतिः सार्पभे दश त्र्यधिकाः।
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः।।८।।

पञ्चदशाजे पुष्ये च कीर्तिता वाजिभे दश द्वौ च।
रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेते।।९।।

हस्त, पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्र में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में सोलह द्रोण वृष्टि होती है। इसी तरह शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाती में चार द्रोण; कृत्तिका में दश द्रोण; श्रवणा, मघा, अनुराधा, भरणी और मूल में चौदह द्रोण; पूर्वफाल्गुनी में पच्चीस द्रोण; पुनर्वसु में बीस द्रोण; विशाखा और उत्तराषाढ़ा में बीस द्रोण; आश्लेषा में तेरह द्रोण; उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी और रोहिणी में पच्चीस द्रोण; पूर्वभाद्रपदा और पुष्य में पन्द्रह द्रोण; अश्विनी में बारह द्रोण तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अट्ठारह द्रोण वृष्टि होती है।।६-९।।

विशेष—यदि नक्षत्र निरुपद्रव हों तो उक्त द्रोणतुल्य वृष्टि समझनी चाहिये।

हस्तः, आप्यं पूर्वाषाढा, सौम्यं मृगशिराः, चित्रा, पौष्णं रेवती, धनिष्ठा—एतेष्वेकतमे प्रवर्षणकाले यदि वर्षति तदा प्रसवकाले षोडश द्रोणा वर्षन्ति। एवं शतभिषक्, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, स्वातिः—एतेषु चत्वारो द्रोणा वर्षन्ति। कृत्तिकासु दश द्रोणाः।

श्रवणे, मघा, अनुराधा, भरणी, मूलम्—एतेषु दश चतुर्युक्ताश्चतुर्दश द्रोणाः। फल्गुन्यां पूर्वफल्गुन्यां पञ्चकृतिः पञ्चविंशतिर्द्रोणाः। पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः। ऐन्द्राग्न्याख्ये विशाखायाम्, वैश्वे उत्तराषाढायाम् विंशतिर्द्रोणाः। सार्पभे आश्लेषायां दश त्र्यधिकास्त्रयोदश द्रोणाः। आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायाम्, अर्यम्णे उत्तरफल्गुन्याम्, प्राजापत्ये रोहिण्याम्—एतेषु पञ्चकृतिः पञ्चविंशतिर्द्रोणाः। अजे पूर्वभद्रपदायाम्, पुष्ये च पञ्चदश द्रोणाः कीर्तिता उक्ताः। वाजिभे अश्विन्याम्, दश द्वौ च द्वादश द्रोणाः। रौद्रे आर्द्रायाम्, अष्टादश द्रोणाः कथिता उक्ताः। एते प्रवर्षणकाले द्रोणा नक्षत्रेषूक्तास्ते निरुपद्रवेषूपद्रवरहितेषु वाच्या इति। तथा च समाससंहितायाम्—

दश युक्ता द्विकृतखतिथिरसाष्टदिग्विषयरामजलतिथिभिः।
तिथिरसरसैश्च विरसाः सदशकृताः षड्विहीनाश्च।।
जलषट्कदशकसहिता जलरसयुक्ताः षडूनाश्च।
विषयतिथिषट्कसहिताश्चाश्विन्यादिषु जलद्रोणाः।। इति।।६-९।।

अत्रैव विशेषमाह—

रविरविसुतकेतुपीडिते भे
क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च।
भवति च न शिवं न चापि वृष्टिः
शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च।।१०।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणाध्यायस्त्रयोविंशः।।२३।।

सूर्य, शनैश्चर, केतु, मङ्गल या त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से यदि नक्षत्र पीडित हों तो अमङ्गल और वृष्टि का अभाव होता है। यदि उपद्रवरहित होकर बुध, बृहस्पति या शुक्र से युत नक्षत्र हो तो मङ्गल कृति और वृष्टि होती है।।१०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां प्रवर्षणाध्यायस्त्रयोविंशः।।२३।।

रविरादित्यः। रविसुतः सौरः। केतुः शिखी। एतेषामन्यतमे भे नक्षत्रे उपहते तत्र स्थित इत्यर्थः। तथा क्षितितनयेनाङ्गारकेणाहतेऽभिघातिते। वक्रातिवक्रमध्यगमनयोगतारकभेदानामन्यतमेन। तथा त्रिविधेनाद्भुतेनोत्पातेन दिव्यान्तरिक्षभौमेन चाहते न शिवं श्रेयो न चापि वृष्टिर्भवति। शुभसहिते बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन संयुक्ते। निरुपद्रवे अन्योत्पातरहिते प्रवर्षणं शिवं श्रेयश्च भवति। तथा च गर्गः—

सूर्यसौराहते वाच्यं नक्षत्रे भौमघातिते। उत्पातैस्त्रिविधैर्वापि राहुणा केतुनापि वा।।
अवृष्टिमशुभं विन्द्याद्विपरीते शुभं वदेत्।। इति।।१०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ प्रवर्षणंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

अथ रोहिणीयोगाध्यायः

अथ रोहिणीयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासङ्गिमधुकरानुरुते ।
बहुविहगकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ॥१॥

सुरनिलयशिखरिशिखरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह ।
गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च यान् शिष्यसङ्घेभ्यः ॥२॥

तानवलोक्य यथावत् प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् ।
अल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ॥३॥

सुवर्ण-पाषाण के समुदाय में उत्पन्न वृक्षों के पुष्पों पर बैठे हुये भ्रमरों के शब्दों से संयुत, नाना प्रकार के पक्षियों के आलाप से मिश्रित विद्याधरियों के गीत से उत्पन्न मधुर शब्दों से युत और सुमेरु पर्वत पर स्थित उपवन में नारद के लिए बृहस्पति तथा अपने शिष्यों के लिये गर्ग, पराशर, काश्यप और मयासुर ने रोहिणी-चन्द्रसमागम के सम्बन्ध में जो कहा है, उसको थोड़े पद्यों के द्वारा कहने के लिये मैं उद्यत हुआ हूँ।।१-३।।

यान् प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान्। प्राजापत्यं रोहिणी तस्या इन्दुना चन्द्रेण सह सम्प्रयोग: समागमस्तत्र यानर्थान् शुभाशुभान् बृहस्पति: सुरगुरुर्नारदायाह। नारदो नाम मुनिस्तस्मै प्रोक्तवान्। कस्मिन् स्थाने? सुरनिलयशिखरिशिखरे, सुरनिलयशिखरी मेरु:, सुरा देवास्तेषां निलय: स्थानम्, सुरनिलयश्चासौ शिखरी पर्वतस्तस्य शिखरे पृष्ठे यदुपवनमुद्यानं तस्मिन्। कीदृशे उपवने? कनकशिला: सुवर्णपाषाणास्तासां क्षय: सञ्चयस्तत्र यानि विवराणि छिद्राणि तेषु ये जातास्तरवो वृक्षास्तेषु यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषु च मधुकराणां भ्रमराणां य आसङ्ग आसक्ति: संश्लेषस्तेनानुरुतं शब्दो यस्मिन्नुपवने, तथा बहवो नानाप्रकारा ये विहगा: पक्षिणस्तेषां कलह आलापस्तेन, तथा सुरयुवतयो देवस्त्रियो विद्याधर्यस्तासां च गायमानानां गीते योऽसौ मन्द्रो मधुर: स्वन: शब्द: स योगानाहोक्तवान्, तान् सर्वानिवावलोक्य विचार्य यथावत्संस्फुटमल्पग्रन्थेनाहं तानेव प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् वक्तुं गदितुमभ्युद्यतोऽस्मीति।।१-३।।

अथ स रोहिणीयोग: कस्मिन् काले विचार्य इत्येतदाह—

प्राजेशमाषाढतमिस्रपक्षे क्षमाकरेणोपगतं समीक्ष्य ।
वक्तव्यमिष्टं जगतोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद् ग्रहचिन्तकेन ॥४॥

योगो यथानागत एव वाच्य: स धिष्ण्ययोग: करणे मयोक्त: ।
चन्द्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गैरुत्पातवातैश्च फलं निगद्यम् ॥५॥

आषाढ के कृष्णपक्ष में रोहिणी-चन्द्र का समागम देखकर ग्रहचिन्तक दैवज्ञों को शास्त्र में कथित प्रकार के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये। भूत के प्रयोजनाभाव होने के कारण आगे का ही रोहिणीयोग कहना चाहिये, यह योग पञ्चसिद्धान्तिका में मैंने (वराहमिहिर ने) कह दिया है। चन्द्रबिम्बप्रमाण, चन्द्र की कान्ति, चन्द्र का वर्ण, चन्द्र का मार्ग, अनेक तरह के उत्पात और वायु के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये।।४-५।।

आषाढमासस्य तमिस्रपक्षे कृष्णपक्षे प्राजेशं रोहिणीं क्षपाकरेण चन्द्रेणोपगतं संयुक्तं समीक्ष्य दृष्ट्वा ग्रहचिन्तकेन दैवज्ञेन शास्त्रोपदेशाद् ग्रन्थागमाज्जगतो जनस्येष्टं शुभमशुभमनिष्टं वा वक्तव्यं कथनीयम्।

योगो यथेति। यथा येन प्रकारेण योगो रोहिणीयोगोऽनागतो भावी एव वाच्यो वक्तव्योऽत्र स धिष्ण्ययोगो नक्षत्रयोग: करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां मयोक्त: कथित:। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

बुद्ध्वा शशिविक्षेपं कृत्वा ताराशशाङ्कविवरं च।
संसाध्य च वक्तव्य: पश्चात्तारासमायोग:।।

इत्यादिना ग्रन्थेनेति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

ध्रुवकादून: पश्चादधिक: प्राग्वत् कृतो यथा योग:।
अन्यद् ग्रहमेलकवत्.......................................।। इति।

चन्द्रप्रमाणेति। चन्द्रस्य प्रमाणेन बिम्बपरिमाणेन। द्युत्या कान्त्या। वर्णेन सितादिकेन। मार्गेण यथा पूर्वाद्यास्वष्टासु दिक्षु संस्थित्या। एतैस्तथोत्पातैस्तत्कालजातैरुल्कापातादिभिर्वातैश्चानिलै: शुभाशुभफलं निगद्यं वक्तव्यमिति।। ४-५।।

अथ तत्र विधानमाह—

पुरादुदग्यत्पुरतोऽपि वा स्थलं त्र्यहोषितस्तत्र हुताशतत्पर: ।
ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत्सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ।।६।।

सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितै: सुपूजितै: ।
अकालमूलैर्कलशैरलंकृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद् द्विज: ।।७।।

नगर से उत्तर या पूर्व दिशा में ब्राह्मण हवन करते हुये तीन दिन उपवास करे। बाद में अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ सूर्य आदि नव ग्रहों को लिखकर धूप, पुष्प और बलि से उनका पूजन करे। रत्न, जल और औषधि से पूर्ण, पल्लव से आच्छादित, अनेक तरह से पूजित, अकाल मूल (अग्निपाक के द्वारा श्याम वर्ण से रहित अधोभाग वाले) कलशों से अलंकृत चारों दिशायें और कुशों से आच्छादित स्थण्डिल पर बैठे।।६-७।।

पुरान्नगरादुदगुत्तरस्यां दिशि यत्स्थलं तत्र तस्मिन् स्थले द्विजो ब्राह्मण:, त्र्यहोषितो दिनत्रयं स्थितस्तत्र च कृतोपवासो हुताशतत्पर:, अग्निहवनपर:। तथा च गर्ग:—

नगरादुपनिष्क्रम्य दिशं प्रागुत्तरां शुचिः।
विविक्ते प्रस्थले देशे देवतायतनेऽपि वा।।
राज्ञा नियुक्तो दैवज्ञः कृतशौचो जितेन्द्रियः।
निमित्तकुशलो धीरः शुक्लाम्बरसमावृतः।।
उपवासमथातिष्ठेदष्टमीं संयतव्रतः।
ततोऽष्टम्याः परे यस्मिन् दिने संयुज्यते शशी।।
प्राजापत्येन च ततो निमित्तान्युपलक्षयेत्।।

ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत्। तस्मिन् स्थले ग्रहानादित्यादीन् सनक्षत्रगणा-न्नक्षत्रसमूहेन सहितान् समालिखेत् सम्यगालिखेत्, तानखिलान् सधूपपुष्पैर्धूपपुष्पसहितै-र्बलिभिरुपहारैः पूजयेदर्चयेत्।

तथैवंविधं स्थण्डिलं द्विज आवसेदधिवसेत् सह रत्नैर्मणिभिस्तोयैर्जलैरौषधिभिः सुगन्धद्रव्यैः सह ये वर्तन्ते कलशा उदकुम्भास्तैश्चतुर्दिशमलंकृतं शोभितम्। अन्यैश्च किम्भूतैः? तरुप्रवालापिहितैः, तरूणां वृक्षाणां प्रवालाः पल्लवास्तैरासमन्ताद्ये पिहिता आच्छादितास्तैः। तथा सुपूजितैः शोभनं कृत्वा चन्दनादिभिश्चर्चितैः। अकालमूलैः, अका-लानि मूलानि येषाम्, अग्निपाकेन कृष्णवर्णाभासा अधो न सन्ति। कीदृशं स्थण्डिलम्? कृशास्तृतम्, दर्भैराच्छादितमिति।।६-७।।

ततस्तत्र किं कुर्यादित्याह—

आलभ्य मन्त्रेण महाव्रतेन बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे।
प्लाव्यानि चामीकरदर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुणसोममन्त्रैः ॥८॥

बाद में महाव्रत नामक मन्त्र से अभिमन्त्रित सभी चीजों को कलश में डालकर सुवर्ण और कुशायुत जल से परिपूर्ण करे तथा वायु, वरुण और चन्द्र के मन्त्र से हवन करे।।८।।

ततः सर्वाणि बीजानि महाव्रतेन महाव्रतनाम्ना मन्त्रेणाऽऽलभ्याभिमन्त्र्य कुम्भे निधाय विनिक्षिप्य प्लाव्यानि मज्जनीयानि। कैः? तोयैर्जलैः। कीदृशैः? चामीकरं सुवर्णं दर्भाः कुशाश्च विद्यन्ते येषु तैस्तोयैः। तथा होमोऽग्निहोमो मरुद्वारुणसोममन्त्रैः, मरुद्वायुः, वरुणो यादसां पतिः, सोमश्चन्द्रः, एषां मन्त्रैर्होमः कार्यः। केषाञ्चित् पाठे होमश्चरुर्वारुणसौम्य-मन्त्रैः। चरुः स्थालीपाको वारुणसौम्यमन्त्रैर्होमो होतव्य इति।।८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रिताञ्च।
आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान् ग्राह्यस्तया योगगते शशाङ्के ॥९॥

बारह हाथ ऊँचे बाँस पर पतली और दण्डप्रमाण (चार हाथ लम्बी) पताका बाँधे। पहले दिग्ज्ञान करके रोहिणीयोग में स्थित चन्द्र के समय में उस पताका द्वारा किस तरफ की वायु है—इसका ज्ञान करना चाहिये।।९।।

श्लक्ष्णां सूक्ष्मतन्तुकृतां पताकां वैजयन्तीमसितां कृष्णवर्णां विदध्यादुच्छ्रयेत्। तां च दण्डप्रमाणां चतुर्हस्तसम्मिताम्। चतुर्हस्तो दण्ड:। तथा च पुराणे—

..............................चतुर्हस्तो धनु: स्मृत:।
धनुर्दण्डो युगं नाली तुल्यान्येतान्यथाङ्गुलै:।। इति।

एवं चतुर्हस्तां पताकां त्रिगुणोच्छ्रितां द्वादशहस्तोच्छ्रितामित्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—द्वादशहस्तोच्छ्रिते काष्ठे तां निबध्नीयादिति। आदौ प्रथमं दिग्ग्रहणे दिक्साधने कृते तया पताकया नभस्वान् वायु: शशाङ्के चन्द्रे रोहिणीयोगगते ग्राह्यो ग्रहीतव्य इति। कस्यां दिशि वहतीति। तत्र दिक्साधनमाचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तद्यथा—

शङ्कुचतुर्विस्तारे वृत्ते छायाप्रवेशनिर्गमनात्।
अपरैन्द्रीदिक्सिद्धिर्यवाच्च याम्योत्तरे साध्ये।।

सलिलसमीकृतायामवनौ मध्ये चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणेन सूत्रेन कर्कटकेन वा वृत्तमालिखेत्। तस्य वृत्तस्य विष्कम्भोऽष्टाचत्वारिंशदङ्गुलानि भवन्ति, तस्मिन् शङ्कुचतुर्विस्तारे वृत्ते मध्यप्रदेशे शङ्कुर्देय:। तत: पूर्वकपालस्थे सवितरि तस्यैव शङ्कोश्छाया तद्वृत्तपरिधौ यत्र प्रवेशं करोति तत्र बिन्दुर्देय:, सापरा पश्चिमा दिग्भवति। ततो परकपालस्थे सवितरि तस्यैव शङ्कोश्छाया तद्वृत्तपरिधौ यत्र निर्गमं करोति तत्र बिन्दुर्देय:; सा ऐन्द्री पूर्वा दिग्भवति। एवं छायाप्रवेशनिर्गमनादपरैन्द्री दिक्सिद्धिरिति। तत: तयोर्बिन्द्वोर्मस्तकावगाहि सूत्रं प्रसार्य रेखां कुर्यात्; सा प्राच्यपररेखा भवति। यवाच्च याम्योत्तरे साध्ये, याम्योत्तरे दक्षिणोत्तरे च यवात् साध्ये। यवस्य साधनं प्रदर्श्यते—तत्रैकं बिन्दुं मध्ये कृत्वा द्वितीय-बिन्दुं पाटयता सूत्रेण वृत्तमालिखेत्। एवं द्वितीयं बिन्दुं मध्ये कृत्वा परबिन्दुं पाटयता सूत्रेणापरं वृत्तं लिखेत्। एवं वृत्तद्वयस्य परस्परानुप्रवेशान्मध्ये यवाकार उत्पद्यते, तस्य सममध्यगता रेखा कार्या; सा च याम्योत्तरा। एवं दिक्चतुष्टयसिद्धि:। तत: स्वबुद्ध्या विदिश: साध्या:। एवं दिक्साधनं कृत्वा कृते दिग्ग्रहणे तन्मध्ये पताकां निधापयेत्। तया रोहिणीयोगगते शशाङ्के चन्द्रे वायुर्ग्राह्य:, कस्यां दिश्युद्गत: कां च यातीति।।९।।

अथ वातेन शुभाशुभमाह—

तत्रार्द्धमासा: प्रहरैर्विकल्प्या
वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशै:।
सव्येन गच्छन् शुभद: सदैव
यस्मिन् प्रतिष्ठा बलवान्स वायु: ॥१०॥

वहाँ वर्षा के निमित्त प्रहर से पक्ष और प्रहरांश से दिन की कल्पना करनी चाहिये। जैसे रोहिणीगत चन्द्र के दिन सूर्योदय से लेकर अग्रिम सूर्योदय तक आठ प्रहरों में से प्रथम प्रहर से लेकर स्थापित पताका द्वारा वायु की परीक्षा करे। यदि दिन के प्रथम प्रहर में सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में चले तो श्रावण शुक्ल में, तृतीय

प्रहर में वायु चले तो भाद्र कृष्ण में, चतुर्थ प्रहर में वायु चले तो भाद्र शुक्ल में, रात्रि के प्रथम प्रहर में वायु चले तो आश्विन कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में वायु चले तो आश्विन शुक्ल में, तृतीय प्रहर में वायु चले तो कार्तिक कृष्ण में और चतुर्थ प्रहर में सुन्दर वायु चले तो कार्तिक शुक्ल में सुन्दर वृष्टि होती है। यदि सूर्योदय से आधे प्रहर तक सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्णादि के साढ़े सात दिन, उसके आधे काल तक में सवा चार दिन इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये। कोई पक्ष की जगह मास का ग्रहण करते हैं। अतः आधे प्रहर की जगह पक्ष और उसके आधे की जगह साढ़े सात दिन इत्यादि ग्रहण करना चाहिये। यदि पताका सव्य होकर चले तो सदा शुभ करने वाली होती है। जिस वायु में स्थिरता हो, उसी से शुभाशुभ फल कहना चाहिये।।१०।।

तत्र तस्मिन् रोहिणीयोगे प्रहरैरहोरात्राष्टभागैरर्द्धमासाः पक्षा विकल्प्या विकल्प्यानीयाः। किमर्थम्? वर्षानिमित्तं वर्षासमयज्ञानार्थम्। एतदुक्तं भवति—यस्मिन्नहोरात्रे रोहिण्या सह चन्द्रमा युज्यते तत्र सूर्योदयात्प्रभृति प्रथमं प्रहरं यावच्छोभनो वातो वहति तदा श्रावणस्य प्रथमपक्षे देवो वर्षति। अशुभेन वातेनावृष्टिस्तत्र वक्तव्या। एवं द्वितीयप्रहरे शोभनो वातो वहति तदा श्रावणस्य द्वितीयपक्षे देवो वर्षति। तृतीये भाद्रपदस्य प्रथमपक्षे वर्षति। चतुर्थे भाद्रपदस्य द्वितीयपक्षे वर्षति। तथा रात्रौ प्रथमप्रहरे शोभनवाते आश्वयुजः प्रथमपक्षे वर्षति, द्वितीयप्रहरे द्वितीयपक्षे। तृतीयप्रहरे कार्तिकप्रथमपक्षे चतुर्थे द्वितीयपक्षे वर्षति। अशुभे वातेऽनावृष्टिः। एवं यथासम्भवं योज्यम्।

दिवसास्तदंशैरिति। तदंशैः प्रहरांशैर्दिवसा वाच्याः। प्रहरेण यदि पक्षं तत्प्रहरार्धेन सप्त सार्धानि दिनानि। प्रहरचतुर्भागेन पादोनानि चत्वार्येवमादि। केचित् 'तेनात्र मासाः प्रहरैर्विकल्प्याः' इति पठन्ति। तेनानन्तरोक्तेन नभस्वता। अत्र योगे प्रहरैर्मासा विकल्प्या विकल्पनीया निश्चयीकर्तव्या इत्यर्थः।

वर्षानिमित्तं वर्षासमयनिमित्तं दिवसास्तदंशैस्तस्य प्रहरस्यांशैर्भागैर्दिवसा विकल्प्या विकल्पनीयाः। प्रहरस्य त्रिंशत्तमो भागो दिवस इति। यदि तत्र दिने सूर्योदयात्प्रभृति प्रहरं यावच्छोभनो वातो वहति तदा श्रावणसमग्रं मासं वर्षति। एवं द्वितीयप्रहरे भाद्रपदम्। तृतीये आश्वयुजम्। चतुर्थे कार्तिकमिति। एवमशोभनवाते नानावृष्टिः।

तदंशैर्दिवसा वाच्याः— इत्येतस्यैतदेव व्याख्यानं शोभनं यस्मादनन्तरमुक्तमाचार्येण गर्गपराशरमतं वच्मि। गर्गादीनां च मतम्—'तेनात्र मासाः प्रहरैर्विकल्प्याः' इति। नार्द्धमासाः प्रहरैः। तथा च गर्गः—

तदहश्चोदयादूर्ध्वं चतुर्धाहो विभज्य च।
हिताहितार्थं मासानां चतुर्णामुपलक्षयेत्।।

आचार्येण च रोहिणीयोगेनैवाषाढीयोगस्यास्यातिदेशः कृतः। गर्गोक्ते च वातचक्रे प्रहरैर्मासाः। तथा च गर्गः—

दिनार्द्धमथवा वायुर्द्वौ मासौ तत्र वर्षति।
चतुर्भागेन मासं तु शक्रोऽत्यर्थं प्रवर्षति।।
पूर्वे चैवार्द्धदिवसे पूर्वौ मासौ तु वर्षति।
अह्नस्तु पश्चिमे भागे पश्चिमौ द्वौ तु वर्षति।।
अथ पूर्वं व्यतिक्रम्य भागं तत्पश्चिमं तत:।
मध्याह्ने वाति चेद्वायुर्मध्यौ मासौ तु वर्षति।।
भाद्रपदोऽश्वयुक् चैव मासावेतौ तु मध्यमौ।
एतयोरपि निर्देश्या वर्षारात्रस्य सम्पद:।।

तथा च ऋषिपुत्र:—

दिनार्द्धं वाति चेद्वायु: पूर्वं पश्चिममेव वा।
मासद्वयं तदा वर्षो विभाग: पूर्वपश्चिमे।।
समग्रं दिवसं वायुर्यदि वाति सुलक्षण:।
मासास्तु श्रावणाद्या ये तेषां सम्पद्विनिर्दिशेत्।।

'तस्मात्तेनात्र मासा:' इति शोभन: पाठ:।

सव्येन गच्छन्निति । नभस्वान् सव्येन प्राग्दाक्षिण्येन गच्छन् व्रजन् सदैव सर्वकालं शुभद:। यथा पूर्वस्यां स्थित्वा आग्नेयीं याति, ततो दक्षिणाम्, ततो नैर्ऋतीम्, तत: पश्चिमामित्यनेन क्रमेणेति। अर्थादेवापसव्येन गच्छन्न शुभद:।

यस्मिन् प्रतिष्ठेति । यस्मिन् वायौ प्रतिष्ठा स्थैर्यमाधिक्यं भवति स एव बलवांस्तेन शुभाशुभं वदेत्। केचिदेवं व्याचक्षते—आदित्यास्तमये यो वायु: सा प्रतिष्ठेत्येतन्न शोभनम्। तथा च ऋषिपुत्र:—

वायन्तं मारुतं चापि यो वायु: प्रतिवायति।
तत्र यो बलवान् वायुस्तस्यैव फलमादिशेत्।। इति।।१०।।

अन्यच्छुभाशुभमाह—

वृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि यानि सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे ।
येषां तु योंऽशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विवृद्धिं समुपैति नान्य: ।।११।।

रोहिणी में स्थित चन्द्र के समय घड़े में दिये हुये बीजों में से जिनके जितने अंश अङ्कुरित हों, उतने की उस वर्ष में वृद्धि होती है।।११।।

रोहिण्या सह शशिनो योगे वृत्ते यानि बीजानि कुम्भे निहितानि प्राक्स्थापितानि तेषां यान्यङ्कुरितानि तान्येवास्मिन् वर्षे सन्ति भवन्ति। हि यस्मादर्थे। येषामपि कुम्भस्थितानां योंऽशो भागोऽङ्कुरितस्तदंशस्तद्भागस्तेषामेव वृद्धिं समुपैति प्राप्नोति नान्य इति।।११।।

अथ रोहिणीयोगे यद्यच्छस्यते तत्तदाह—

शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनिन्दितोऽनिलः ।
शस्यते शशिनि रोहिणीगते मेघमारुतफलानि वच्म्यतः ॥१२॥

शान्त, मधुर बोलने वाले पक्षी और जंगली जानवरों से शब्दायमान दिशा, निर्मल आकाश और सुन्दर वायु शुभ है। अब इसके अनन्तर मेघ और वायु का फल कहते हैं।

शशिनि चन्द्रे रोहिणीगते रोहिणीयोगं गते इदमिदं शस्यते स्तूयते शान्तैरनर्काभिमुखैर्मधुरस्वनैश्च पक्षिभिर्विहगैर्मृगैश्चारण्यपशुभिर्दिश आशा राविताः शब्दं कारिताः। वियदाकाशं निर्मलं विमलम्। वायुरनिन्दितोऽकुत्सितः। तथा च गर्गः—

योगे ह्यनुद्धता वाता ह्लादयन्तः सुखप्रदाः।
प्रदक्षिणाः श्रेष्ठतमाः पूर्वपूर्वोत्तरा इति।।

मेघमारुतफलानि वच्म्यत इति । अतोऽस्मादनन्तरं मेघानामभ्राणां मारुतस्य च वायोः फलानि वच्मि कथयामि।।१२।।

अधुना तान्येवाह—

क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः ।
वलितजठरपृष्ठमात्रदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥१३॥
विकसितकमलोदरावदातैररुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः ।
छुरितमिव वियद्घनैर्विचित्रैर्मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः ॥१४॥

पेट की तरफ से कुण्डलाकार होने के कारण पृष्ठमात्र दिखाई देने वाले सर्पों की तरह; अतः कहीं पर कृष्ण-श्वेत, कहीं-कहीं पर केवल श्वेत, कहीं पर केवल कृष्ण विशाल और चमकती हुई बिजली के समान जीभ वाले, विकसित कमल के अन्दर के समान स्वच्छ कान्ति वाले, प्रान्त भाग में लोहित वर्ण की तरह कान्ति वाले तथा भ्रमर, कुङ्कुम और पुष्प की तरह स्वच्छ कान्ति वाले मेघों से युत आकाश रोहिणी-योग के समय में शुभ होता है।।१३-१४।।

वियदाकाशमम्बुवाहैर्मेघैर्विशालैर्विस्तीर्णैर्वृतं व्याप्तम्। कीदृशैरम्बुवाहैः? भुजगैः सर्पैरिव। किम्भूतैः सर्पैः? वलितजठरपृष्ठमात्रदृश्यैः, वलितानां स्वकायपरिवेष्टितावयवानां जठरपृष्ठमात्रं दृश्यं येषां भुजगानाम्। क्वचिज्जठरैकदेशं क्वचित्पृष्ठैकदेशमित्यसित-सितानामत्रोपमानम्; यतः सर्पाणामुदरं श्वेतवर्णं भवति, पृष्ठं कृष्णवर्णमतः क्वचिदसितसितैः कृष्णैः शुक्लैश्च व्यामिश्रवर्णैः, क्वचिच्च सितैः शुक्लवर्णैरिव क्वचिच्चासितवर्णैः कृष्ण-वर्णैर्वियन्मेघैर्वृतम्। तडितो विद्युतस्ता एव स्फुरिताश्चलिता रसना जिह्वा येषां तैः।

तथा विकसितकमलोदरावदातैः, विकसितं प्रफुल्लं कमलं पद्मं तस्योदरं गर्भस्तद्वद्ये अवदाताः शुद्धास्तैः। तथारुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः, अरुणकराणामरुणरश्मीनां लोहित-

कान्तीनां या द्युतिः कान्तिस्तया रञ्जितानि सरागाण्युपकण्ठानि कण्ठसमीपान्तानि येषां तैः। विचित्रैर्नानावर्णैर्मेघैर्घनैर्वियदाकाशं छुरितं रञ्जितमिव। किम्भूतैः मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः, मधुकरा भ्रमराः। कुङ्कुमं प्रसिद्धम्। किंशुकः पुष्पविशेषः। तद्वदवदातैः शुद्धैः, तद्वद्वर्णैरिति।।१३-१४।।

अन्यच्च—

असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥१५॥

बिजली, इन्द्रधनु और कृष्ण वर्ण के मेघों से युत होने के कारण विचित्र वर्ण का आकाश मानो दावाग्नि, हाथी और भैंसों से आकुलित वन की तरह रोहिणी योग के समय में शुभ होता है।।१५।।

अथवाऽम्बरमाकाशं वनमरण्यमिव दावपरीतम्, दावो दावाग्निस्तेन परीतं व्याप्तमिव। यतोऽसितैः कृष्णैर्घनैर्मेघैर्निरुद्धं स्थगितम्, तथा चलिताभिस्तडिद्भिः स्फुरद्विद्युद्भिः सुरचापेनेन्द्रधनुषा विचित्रितं नानावर्णतामुपगतम्। कीदृशम्? उत्प्रेक्ष्यते—द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव, मेघानां तत्सादृश्यं द्विपकुलैर्हस्तिसमूहैर्महिषकुलैश्चाकुलीकृतं सोद्यमं तैः संयुक्तमतो दावपरीतं वनमिवोत्प्रेक्ष्यते।।१५।।

अन्यदप्याह—

अथवाञ्जनशैलशिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् ।
हिममौक्तिकशङ्खशशाङ्ककरद्युतिहारिभिरम्बुधरैरथवा ॥१६॥

अथवा अञ्जन पर्वत के काले पत्थरों के समान मेघों से युत या हिम, मोती, शंख और चन्द्र-किरण की कान्ति को हरण करने वाले मेघों (श्वेत वर्ण के मेघों) से युत आकाश रोहिणी योग के समय में शुभ होता है।।१६।।

अथवाञ्जनशैलस्याञ्जनपर्वतस्य शिलानां पाषाणानां यो निचयः समूहस्तत्प्रतिरूपधरैस्तादृशैरम्बुधरैर्मेघैः स्थगितमाच्छादितं गगनमाकाशम्, कृष्णैरित्यर्थः। अथवा हिमस्य तुषारस्य मौक्तिकस्य मुक्ताफलानां शङ्खस्य कम्बुनः। शशाङ्ककराणां चन्द्ररश्मीनां द्युतिहारिभिः कान्तिं चोरयद्भिरम्बुधरैर्मेघैः श्वैतवर्णैः स्थगितमाकाशमित्यर्थः।।१६।।

अन्यच्च—

तडिद्धैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः ।
विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः ॥१७॥

बिजली रूप मध्यबन्धन (करधनी), हंसपंक्ति रूप आगे के दाँत, गिरते हुये जलरूप मद, चलते हुये अग्रभागरूप हाथ, विचित्र इन्द्रधनु के समान ऊँची ध्वजा वाले, तमाल वृक्ष और भ्रमर की तरह काले हाथी की तरह मेघों से व्याप्त आकाश रोहिणी के समय में शुभ होता है।।१७।।

अब्दा मेघास्त एव नागा हस्तिनस्तैर्वियदाकाशं वृतं व्याप्तम्। तडिता विद्युतस्ता एव हैमकक्ष्या: सौवर्णानि मध्यबन्धनानि येषाम्। बलाका हंसपङ्क्तिविशेषास्ता एवाग्रदन्ता: पुरोवर्तिनो रदा: शुक्लत्वाद्येषाम्। स्रवद्वारि वर्षजलं तदेव दानं मदजलं येषाम्। चलन्ति प्रान्तान्यग्राणि यानि तान्येव हस्ता: करा येषाम्। विचित्रं नानावर्णमिन्द्रचापं सुरेन्द्रधनुस्तदेव ध्वजोच्छ्रायशोभा येषाम्। उच्छ्रितं चोपरि ध्वजं नृपजनानां भवति। तमालो वृक्ष: कृष्ण-वर्ण:। अलिर्भ्रमरस्तद्वन्नीलत्वं येषां तैस्तथाभूतै:।।१७।।

अन्यच्च मेघवर्णनमाह—

सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम्।
वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य कान्तिं हरेश्चोरयतां यदा वा ॥१८॥

जिस आकाश में सन्ध्याकालिक राग से रंगे, नील कमल के समान मानो पीताम्बर पहने हुए विष्णु भगवान् की कान्ति को चुराने वाले मेघ हैं।। १८।।

घनानां मेघानां नभस्याकाशे सन्ध्यानुरक्ते सन्ध्यारागरञ्जिते लोहिते स्थितानां सन्तिष्ठ-ताम्। कीदृशानाम्? इन्दीवरश्यामरुचाम्, इन्दीवरं नीलोत्पलं तद्वत् श्यामा रुक् कान्तिर्येषां तथाभूतानाम्। वृन्दानि समूहा:। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—हरेर्भगवतो नारायणस्य पीताम्बर-वेष्टितस्य पीतवस्त्रप्रावृतशरीरस्य कान्तिं दीप्तिं चोरयतां मुष्णतां यदा यस्मिन्नभसि।।१८।।

अन्यमेघवर्णनमाह—

सशिखिचातकदर्दुरनि:स्वनैर्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वना: ।
खमवतत्य दिगन्तविलम्बिन: सलिलदा: सलिलौघमुच: क्षितौ ॥१९॥

मयूर, चातक और मेढक के शब्दों से युत मधुर शब्द वाले, आकाश को व्याप्त कर दिगन्त तक लटके हुये तथा पृथ्वी पर अधिक वृष्टि करने वाले मेघ।।१९।।

एवं यदा सलिलौघमुचो मेघा: सलिलस्य जलस्यौघं समूहं मुञ्चन्ति परित्यजन्ति ये ते क्षितौ भूतौ सलिलदा जलं ददतीत्यर्थ:। अथ चैवंविधा: सलिलदा मेघा: क्षितौ भूमौ सलिलौघमुचो भवन्तीति योजना। कीदृशा:? शिखिनो मयूरा:, चातका: सारङ्गा:, दर्दुरा मण्डूका:, तेषां नि:स्वना: शब्दा:। सशिखिचातकानां दर्दुराणां ये नि:स्वनास्तैर्विमिश्रिता मन्द्रा मधुरा: पटवश्चतुरा: स्वना: शब्दा येषां ते तथाविधा:। तथा खमाकाशमवतत्य व्याप्य यदि दिगन्तविलम्बिनो दिगन्तेष्वाशापर्यन्तेषु ये विलम्बन्ते ते तथाविधा:।।१९।।

अन्यच्चाह—

निगदितरूपैर्जलधरजालैस्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाह: ।
यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भू: ॥२०॥

तीन या दो दिन तक पूर्वोक्त स्वरूप वाले मेघों से युत आकाश हो तो सुभिक्ष, आनन्दयुत मनुष्य और पृथ्वी पर अधिक वृष्टि होती है।।२०।।

यदि वियदाकाशं निगदितरूपै: कथितरूपैर्जलधराणां मेघानां जालैर्वृन्दैस्त्र्यहं दिनत्रयमवरुद्धं स्थगितम्। द्व्यहं दिनद्वयं वाऽहर्दिनमेकम्। अनेन प्रकारेण सुभिक्षं भवति। तथा भूरवनिर्मुदितजना प्रहृष्टलोका प्रचुरजला भूरितोया च भवति। तथा च गर्ग:—

दधिरौप्यामलक्रौञ्चताम्राभारुणसन्निभा: ।
शुककौशेयमाञ्जिष्ठास्तपनीयसमप्रभा: ।।
अच्छिन्नमूला: सुस्निग्धा: पर्वताकारसन्निभा:।
घना घना: प्रशस्यन्ते विद्युत्स्तनितसङ्कुला:।।

तथा च पराशर:—'रोहिणीयोगे पुन: प्रदक्षिणो मृदुर्मारुत: स्नेहवन्ति चाभ्राणि विद्युच्छक्रचापालंकृतानि स्वादुसुरभिविमलशिशिरतावृद्धिश्चाम्भसां वृष्टिक्षेमसुभिक्षाय। यावतो दिवसान् निमित्तप्रादुर्भावानुबन्धस्तावद्वर्षाणि सुभिक्षक्षेमम्। आसप्तरात्राद्बिलवासिनां बिलेभ्यो निष्क्रमणं स्त्रीपुरुषबालानां प्रमोद: पक्षिणां क्षीरपुष्पफलवृक्षसेवनं तरूणामच्छिद्रपत्रता पुरपौरहिताय' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

आषाढबहुलपक्षे शिशिरकरे रोहिणीसमायुक्ते।
यदि गगनममलमत्यन्ततीक्ष्णरश्मि: सहस्रांशु:।।
सलिलगुरुनभ्रजलधरतडिल्लतालोलरञ्जितदिगन्त: ।
अमितमलभेकचातककादम्बविमिश्रमाकाशम् ।।
क्षितितनयरविजरहित: स्फटिकनिभश्चन्द्रमा निरुत्पात:।
मरुतश्च पूर्वपूर्वोत्तरोत्तरा: शान्तमृगविहगा:।। इति।।२०।।

अथाशुभानां मेघानां लक्षणमाह—

रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैरुष्ट्रध्वाङ्क्षप्रेतशाखामृगाभै: ।
अन्येषां वा निन्दितानां स्वरूपैर्मूकैश्चाब्दैर्नो शिवं नापि वृष्टि: ॥२१॥

रूक्ष, अल्प, वायु से प्रेरित, ऊँट, कौआ, मुर्दा, वानर या अन्य निन्दित जीवों (कुत्ता, विल्ली, राक्षस आदि) की तरह कान्ति वाले और शब्दरहित मेघ अशुभ और अवृष्टि करने वाले होते हैं।।२१।।

एवंविधैरब्दैर्मेघैर्नो शिवं श्रेय:, न चापि वृष्टिर्वर्षणं भवति। कीदृशै: ? रूक्षैरस्निग्धै:। अल्पैर्लघुभि:। मारुतेन वायुना आसमन्तात्क्षिप्ता: प्रेरिता देहा: शरीराणि येषां तै:। उष्ट्र: करभ:। ध्वाङ्क्ष: काक:। प्रेत: शव:। शाखामृगो मर्कट:। एतेषां सदृशी आभा सादृश्यमाकृत्या च येषां तैस्तथाभूतै:। अन्येषामपरेषां वा प्राणिनां निन्दितानां कुत्सितानां श्वमार्जारराक्षसानां स्वरूपै: सदृशैर्मूकैर्नि:शब्दैश्च। तथा च गर्ग:—

छिन्नमूलाश्च वृक्षाश्च शुष्का वाष्पाकुलाकृता:।
पापसत्त्वानुकाराश्च मेघा: पापफलप्रदा:।। इति।।२१।।

अन्यच्छुभलक्षणमाह—

विगतघने वा वियति विवस्वानमृदुमयूखः सलिलकृदेवम्।
सर इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै ॥२२॥

यदि मेघरहित आकाश में सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तथा रात्रि में निर्मल नक्षत्रों से युत आकाश, खिली हुई कुमुदिनियों से युत सरोवर की तरह हो तो सुन्दर वृष्टि होती है।

अथ विवस्वानादित्यो वियत्याकाशे विगतघने मेघरहिते अमृदुमयूखश्चण्डरश्मिर्भवति तदैवमनेन प्रकारेण सलिलकृज्जलं करोति। तथा खमाकाशं निशि रात्रावुडुविशुद्धं निर्मल-नक्षत्रं कुमुदाढ्यं कुमुदबहुलं सर इव फुल्लं विकसितं यदि दृश्यते तदा सुवृष्ट्यै शोभन-वृष्ट्ये भवति।।२२।।

अथ दिग्भागेन मेघफलान्याह—

पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः।
याम्ये सस्यं क्षीयते नैर्ऋतेऽर्द्धं पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥२३॥

वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः।
श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि ॥२४॥

पूर्व दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण में उत्पन्न मेघों से अग्नि का भय, दक्षिण दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य का नाश, नैर्ऋत्य कोण में उत्पन्न मेघों से धान्य की आधी निष्पत्ति, पश्चिम दिशा में उत्पन्न मेघों से सुन्दर वृष्टि, वायव्य कोण में उत्पन्न मेघों से कहीं-कहीं पर वायुयुत वृष्टि (सर्वत्र नहीं), उत्तर दिशा में उत्पन्न मेघों से पूर्ण वृष्टि और ईशान कोण में उत्पन्न मेघों से उत्तम धान्य होता है। दिशाओं के अनुसार वायु का भी इसी तरह फल समझना चाहिये।।२३-२४।।

अब्दैर्मेघैः पूर्वोद्भूतैः पूर्वस्यां दिशि सम्भूतैः सस्यानां निष्पत्तिः सम्पद् भवति। एवमाग्नेयाशासम्भूतैरनलदिक्स्थैरग्निकोपो वह्निकोपः। याम्ये दक्षिणदिगुत्थैः सस्यं क्षीयते क्षयं याति। नैर्ऋते नैर्ऋतदिगुत्थैरब्दैरर्द्धं क्षीयते। अर्द्धनिष्पत्तिं याति। पश्चाज्जातैः पश्चिमायां दिश्युत्पन्नैरब्दैर्मेघैः शोभना वृष्टिर्भवति। वायव्योत्थैर्वातयुक्ता वृष्टिर्भवति, सा क्वचित् क्वचिच्च न सर्वत्र। सौम्यकाष्ठासमुत्थैरुत्तरदिक्सम्भूतैः पुष्टा परिपूर्णा वृष्टिर्भवति। स्थाणु-दिगैशानी। तत्सम्प्रवृद्धैस्तदुत्पन्नैः श्रेष्ठं सस्यं भवति। एवमनेन प्रकारेण यथा मेघाः शुभा-शुभफलप्रदा उक्तास्तथैव वायुर्मारुतः फलानि धत्ते ददाति। एतदुक्तं भवति—यथा पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैरेवं पूर्वोद्भूतेन वायुनापि सस्यनिष्पत्तिर्भवतीत्यादि योज्यम्।।२३-२४।।

अथैषामप्युत्पातानामतिदेशार्थमाह—

उल्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः।
नादा मृगाणां सपतत्त्रिणाञ्च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥२५॥

रोहिणी योग के समय दिशाओं के अनुसार मेघों के फल (पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्ति-रित्यादि पद्योक्त फल) की तरह दिशाओं के अनुसार उल्कापात, विद्युत्, दिग्दाह, आकाश में शब्द, भूकम्प, पक्षी और वन-जन्तुओं के शब्द का फल कहना चाहिये।।२५।।

उल्कानिपाताः। तडितो विद्युतः प्रघाताः। अशनिपाताः। आसां लक्षणानि पुरस्तादाचार्य एवं वक्ष्यति। दिग्दाहो दिशां दाहः। निर्घातो नभःशब्दा। महीप्रकम्पो भूमिकम्पः। मृगाणा-मरण्यप्राणिनां सपतत्त्रिणां पक्षिसहितानां नादाः शब्दा यथा येन प्रकारेणाम्बुधरास्तथा तेनैव प्रकारेण ग्राह्या गृहीतव्याः। पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैरिति न्यायेन।।२५।।

अथ ये पूर्वं चतसृषु दिक्षु कुम्भाः स्थापितास्तैः शुभाशुभज्ञानमाह—

नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः।
पूर्णैः स मासः सलिलस्य दाता स्रुतैरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥२६॥

रोहिणी योग के दिन वृष्टि होने पर उत्तर आदि चारो दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से श्रावण आदि चार मासों का नाम अङ्कित करके चार घड़ों का स्थापन करे। जिस मास का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय, वह मास फल देने वाला, घड़े से बिलकुल जल निकल जाय तो अवृष्टि और थोड़ा जल हो तो अपनी बुद्धि से तारतम्य करके वृष्टि की कल्पना करनी चाहिये। जैसे आधे में आधा, चौथाई में चौथाई इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये।।२६।।

तैः कुम्भैरुदगादिस्थैरुत्तराद्यासु दिक्षु प्रदक्षिणं प्रादक्षिण्येन व्यवस्थितैस्तैश्च श्रावण-मासचतुष्टयपरिकल्पितैः। एतदुक्तं भवति—उदक्कुम्भः श्रावणमासः परिकल्प्यः। प्राग्भाद्र-पदः। दक्षिण आश्वयुजः। पश्चिमस्थः कार्तिकः परिकल्प्य इति। तैः पूर्णैः स मासः सलि-लस्य दाता भवति। तेषां चतुर्णां मध्याद्यः कुम्भः परिपूर्णो यस्मिन् मासे परिकल्पितः स मासः सलिलस्य दाता भवति। तस्मिन् मासे देवो वर्षतीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति—उदक्कुम्भे परिपूर्णे श्रावणे वृष्टिर्वक्तव्या। प्राक्कुम्भे भाद्रपदे। दक्षिणे आश्वयुजे। पश्चिमे कार्तिक इति। सर्वेषु परिपूर्णेषु चतुर्ष्वपि मासेषु वृष्टिर्वक्तव्या। द्वयोर्मासद्वयोरपि। तैरेव कुम्भैः परिस्रुतै रिक्तीभूतैरवृष्टिरवर्षणम्। ऊनैः स्वबुद्ध्या परिकल्पनीयम्। अर्द्धस्रुतैर्मध्यमा वृष्टिरन्तरेऽनुपाताद्वाच्यम्। तथा च गर्गः—

सौम्ये तु श्रावणं विन्द्यात् पूर्वे भाद्रपदं वदेत्।
दक्षिणेऽश्वयुजो ज्ञेयः पश्चिमे कार्तिकं विदुः।।
सर्वे कुम्भाः सुपूर्णाः स्युरभग्नाः कान्तिसंयुताः।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वान् वर्षति वासवः।।
सर्वस्रुतैरवृष्टिः स्यादर्द्धैर्मध्यमवर्षणम्।
द्रवैस्तथाविधा वृष्टिर्वक्तव्या जलमानतः।। इति।।२६।।

अन्यदप्याह—

अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्देशाङ्कितैश्चाप्यपरैस्तथैव।
भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥२७॥

रोहिणी योग के समय वृष्टि होने पर उत्तर आदि चार दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से उत्तर आदि दिशाओं में स्थित राजा, देश और ब्राह्मण आदि चार वर्णों का नाम अङ्कित करके पूर्ववत् चार घड़ों का स्थापन करे। बाद में जिस दिशा का घड़ा नष्ट हो जाय, उस दिशा के राजा, देश और वर्णों का नाश; जिस दिशा के घड़ा से सब जल बह जाय उस दिशा के राजा आदियों में उपद्रव; जिस दिशा के घड़ा में थोड़ा जल शेष रहे उस दिशा के राजा आदियों को मध्यम फल और जिस दिशा का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय उस दिशा के राजा आदियों को अति शुभ फल होता है।।२७।।

अन्यैरपरैरपि कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्नृपाणां राज्ञां नाम्ना संज्ञया चिह्नैरुपलक्षितैस्तथा तेनैव प्रकारेणापरैरन्यैर्देशाङ्कितैर्देशनाम्ना चिह्नितैः। एतदुक्तं भवति—तत्र बहव उदकुम्भा नृपदिग्देशचातुर्वर्ण्यैश्चिह्निताः शुभाशुभज्ञानार्थं स्थाप्याः। तैश्च भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्यथानुरूपं यथासादृश्यं भाग्यानि शुभाशुभानि वाच्यानि वक्तव्यानि। एतदुक्तं भवति—तैः कुम्भैः परिपूर्णैरतिशुभम्। भग्नैर्नष्टैः स्रुतैरुपद्रवाः। ऊनजलैर्मध्यमं फलम्। तथा च काश्यपः—

अन्यदेशाङ्किताः कुम्भा भिद्यन्ते च स्रवन्ति च।
बन्धहीना वितोयाश्च तेऽभियोज्या नृपेण वै।। इति।।२७।।

अथ रोहिण्याश्चन्द्रसंस्थाने विशेषेण शुभाशुभफलमाह—

दूरगो निकटगोऽथवा शशी दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः।
रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत्॥२८॥

यदि दूर स्थित या समीप स्थित चन्द्रमा रोहिणी के दक्षिणगत होकर संयोग करे तो संसार को दुःखी करने वाला होता है।।२८।।

शशी चन्द्रो यथा येन प्रकारेण तथा तेन प्रकारेण दूरगो विप्रकृष्टस्थो निकटगः समीपस्थो वा दक्षिणे पथि दक्षिणस्यां दिशि स्थितो यदि रोहिणीं प्राजापत्यं युनक्ति संयोगं याति तदा जगतो जनपदस्य कष्टमशुभं दुर्भिक्षजनमरकादिकं विनिर्दिशेद् वदेत्।।२८।।

अन्यदप्याह—

स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्कस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गा।
असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः करोति वृष्टिं विपुलां शिवञ्च॥२९॥

यदि रोहिणी के दक्षिण में स्पर्श करते हुये उत्तर तरफ होकर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों में अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं। यदि रोहिणी को स्पर्श नहीं करते हुये उत्तर तरफ होकर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों का शुभ करने वाला होता है।।२९।।

रोहिण्याः स्पृशन्नेव दक्षिणेन स्पर्शं कृत्वा यद्युत्तरेण शशाङ्को याति गच्छति तदा बहुलोपसर्गा प्रभूतोपद्रवा बहुभिर्दोषैर्युक्ता सुवृष्टिः शोभनवृष्टिर्भवति। लोकानामुपद्रवा भवन्ति,

यथा कालोचिता वृष्टिर्भवतीत्यर्थः। अथवा रोहिण्या योगमसंस्पृशन्नादावुदक्समेत उत्तरेण गतस्तदा सुवृष्टिं शोभनवृष्टिं विपुलां विस्तीर्णां करोति। शिवं श्रेयश्च भवति।।२९।।

अथ रोहिण्याः शकटमध्यगते चन्द्रे फलमाह—

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः।
क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ॥३०॥

यदि रोहिणी शकट (छः तारा होने के कारण रोहिणी शकट कहते हैं) के मध्य स्थित होकर चन्द्रमा गमन करे तो आश्रयरहित, बच्चों के लिये भोजन माँगते हुये, सूर्य किरण से अत्यन्त उष्ण जल पीते हुये लोग (प्रजागण) अनिश्चित स्थान पर गमन करते हैं।।३०।।

शकटभेदलक्षणं गणित उक्तम्। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विक्षेपोंऽशद्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः।। इति।

चन्द्रमसि रोहिण्याः शकटमध्यसंस्थिते जना लोका अशरणीकृता निःशरणीभूताः क्वापि यान्ति कुत्रापि गच्छन्ति। केचित् प्रजा इति पठन्ति। प्रजाः क्वापि यान्ति। कीदृशाः शिशुयाचिताशनाः, शिशवो बालास्तेषामशनं भोजनं याचमानाः प्रार्थ्यमानाः। तथा सूर्येणाऽऽदित्येन पिठरे भाण्डविशेषे तप्तं परितापितं यदम्बु पानीयं तत्पायिनस्तत्पानशीलाः। अनेन जलाभाव उक्तः। षट्तारकत्वाद्रोहिण्याः शकटः समूहः।।३०।।

अथ रोहिण्याः पश्चिमदिक्स्थे चन्द्रमसि फलमाह—

उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी।
शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामवशेन संस्थिताः ॥३१॥

पहले चन्द्र का उदय होकर पश्चात् चन्द्र के पश्चिम दिशा में रोहिणी उदित होकर गमन करे तो लोगों में अनेक प्रकार के शुभ होते हैं तथा कामातुर स्त्रीगण पति के वश में हो जाती हैं।।३१।।

शीतदीधितिं चन्द्रं प्रथममादौ यद्युदितमभ्युद्गतं तस्य च पृष्ठतः पश्चाद्रोहिणी एत्यागच्छति समुदेति, तदा शुभमेव शोभनं लोके। प्रमदाः स्त्रियः स्मरातुराः कामार्ताः कामवशेन संस्थिताः कामुकानां वशवर्तिन्यो भवन्ति।।३१।।

अथ रोहिण्याः पूर्वस्यां दिशि स्थिते चन्द्रे फलमाह—

अनुगच्छति पृष्ठतः शशी यदि कामी वनितामिव प्रियाम्।
मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः ॥३२॥

जैसे प्रिया स्त्री के पीछे कामी पुरुष गमन करता है, उसी तरह यदि रोहिणी के पीछे चन्द्र गमन करे तो काम के बाण से खेदित होकर मनुष्यगण स्त्री के वश में हो जाते हैं।

रोहिण्याः शशी चन्द्रो यदि पृष्ठतः पश्चादनुगच्छत्युदेति प्रियां वनितां वल्लभां स्त्रियं कामिनीं कामी कामुको यथा अनुगच्छति। तदा प्रमदानां स्त्रीणां तस्मिन् वर्षे नराः पुरुषा मकरध्वजबाणखेदिताः कामशरपीडिताः सन्तो वशगा भवन्ति।।३२।।

अथ रोहिण्याः शेषासु दिक्षु स्थिते चन्द्रे फलमाह—

आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गो महान्
नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः।
प्राजेशानिलदिक्स्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्चयो
याते स्थाणुदिशं गुणाः सुबहवः सस्यार्घवृष्ट्यादयः ॥३३॥

जिस वर्ष में रोहिणी के आग्नेय कोण में चन्द्रमा स्थित हो, उस वर्ष में बहुत उपद्रव, नैर्ऋत्य कोण में चन्द्रमा स्थित हो तो अति वृष्टि आदि ईतियों से पीड़ित होकर धान्य का नाश, वायव्य कोण में स्थित चन्द्र हो तो मध्यम धान्य और ईशान कोण में स्थित चन्द्र हो तो उस वर्ष धान्यों के मूल्य में अल्पता, सुन्दर वृष्टि आदि बहुत गुण होते हैं।।३३।।

प्राजेशस्य ब्राह्मण इयं प्राजेशी रोहिणी, तस्यामाग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि यदि चन्द्रमाः शशी भवेत् स्यात्तदा तत्र तस्मिन् वर्षे महानतीवोपसर्ग उपद्रवो भवति। तथा नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि स्थिते चन्द्रमसि सस्यानि ईतिभिरतिवृष्ट्यादिभिरुपद्रवैः समुपद्रुतानि उपतप्तानि निधनं नाशं यान्ति प्राप्नुवन्ति। हिमकरे चन्द्रेऽनिलदिक्स्थिते वायव्यां पश्चिमोत्तरस्यां दिशि स्थिते समाश्रिते सस्यस्य धान्यादेर्मध्यश्चयो मध्यमं सङ्कटनं भवति। तथा स्थाणुदिशमैशानीमुत्तरपूर्वामाशां याते प्राप्ते चन्द्रे सुबहवः सुप्रभूता गुणा भवन्ति। के ते सस्यार्घवृष्ट्यादयः सस्यानि चार्घवृष्टयश्च ताः सस्यार्घवृष्टयः। आदिग्रहणा-द्योगक्षेमनीरोगता गृहीतव्याः। तथा च समाससंहितायाम्—

उदगपि च तुहिनकिरणः पूर्वोत्तरतोऽथवा स्थितः प्राच्याम्।
यदि भवति तदा वसुधा भवति विवृद्धा प्रहृष्टजना।।
उपसर्गोऽनलदिक्स्थे याम्याशासंस्थिते शकटके च।
किं कष्टैस्तैरुक्तैः श्रुतमात्रैर्यैः कृशो भवति।।
क्रिमिशुकशलभादिभयं नैर्ऋत्यां नातिपुष्टिरपरेण।
वायव्याशासंस्थे मध्यं सस्यं कुमुदनाथे।। इति।।३३।।

अथ योगतारोपतापे छादने च फलमाह—

ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति वपुषा यदापि वा।
ताडने भयमुशन्ति दारुणं छादने नृपबधोऽङ्गनाकृतः ॥३४॥

यदि चन्द्रमा रोहिणी की योगतारा को भेदित (शृङ्ग के एक देश से स्पर्श) करे या अपने विम्ब से उसको आच्छादित करे तो भेदित करने से कठोर भय और छादित करने से स्त्री के द्वारा राजा का मरण होता है।।३४।।

योगतारकां प्रधानतारकाम्। तथा चोक्तम्—

सतारागणमध्ये तु या तारा दीप्तिमुत्तरा।
योगतारेति सा प्रोक्ता नक्षत्राणां पुरातनैः।।

तां च योगतारकां यदि ताडयेद् भिन्द्यात् शृङ्गैकदेशेन स्पृशतीत्यर्थः। अथवा वपुषा शरीरेणावृणोत्याच्छादयति, तदा ताडने दारुणं तीव्रं भयं भीतिमुशन्ति कथयन्ति। तथा छादने अङ्गनाकृतः स्त्रीकृतो नृपस्य राज्ञो बधः मरणमुशन्ति।।३४।।

अन्यदपि शुभाशुभज्ञानमाह—

गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः।
भूरि वारि शबले तु मध्यमं नो सितेऽम्बुपरिकल्पनापरैः ॥३५॥

यदि गो-प्रवेश (पश्चिम सन्ध्या) समय में वन से आये हुये पशुओं में आगे बैल या काला पशु हो तो उस वर्ष बहुत वृष्टि होती है। यदि शबल (कृष्ण-श्वेत) पशु आगे हो तो मध्यम फल, उसमें कालापन ज्यादा हो तो वृष्टि, सफेदी ज्यादा हो तो थोड़ी वृष्टि और बिलकुल सफेदी हो तो अवृष्टि होती है।।३५।।

गोप्रवेशसमये गवामरण्यादागतानां प्रवेशकाले पश्चिमसन्ध्यायां यद्यग्रतः पुरतो वृषो बलीवर्दो भवति पुरद्वारे, अथवा पुरोऽग्रतः कृष्णोऽसितः पशुश्छागादिको भवति, तदा तद्वर्षं भूरि वारि बहु जलं भवति। शबले तु मध्यमम्। शबलः कृष्णश्वेतः पशु-स्तस्य यदा द्वौ वर्णौ समौ भवतस्तदा मध्यमं फलम्। तस्यैव कार्ष्ण्येऽधिके भूरि वारि, शौक्ल्येऽधिके ऊनम्। सिते श्वेतवर्णे न किञ्चिदम्बु भवति।

अपरैर्वर्णैरम्बुपरिकल्पना स्वबुद्ध्या कार्या। शुक्लवर्णवर्जैरन्यैर्वर्णैः किञ्चित् किञ्चिद् भवतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

प्राक् प्रवेशे तु यूथस्य पुरतो वृषभो यदा।
प्रवेशे कृष्णवर्णो वा पशुर्बहुजलप्रदः।।
कृष्णा तु गौः सुभिक्षाय क्षेमारोग्याय चोच्यते।
गौर्यामथ च नीलायां मध्याः सस्यस्य सम्पदः।।
अनावृष्टिकरी श्वेता वाताय कपिला स्मृता।
पाटला सस्यनाशाय रोगाय करटा स्मृता।।
एकदेशाय शबला चित्रं चित्रा तु वर्षति।
पाण्डुरा मध्यमाङ्गी वा ग्रीष्मधान्यविवर्द्धिनी।।
कपिला पश्चिमं वर्षं शोणा त्वग्रे प्रवर्षति।

तथा च पराशरः—'अथास्तमयवेलायां पुरद्वारमभिगम्य निमित्तान्युपलक्षयेत्। तत्र गोगजाश्वरथप्रथमप्रवेशे पुरविजयो वानरखरोष्ट्रनकुलमार्जारप्रवेशे विद्रवो नेत्राङ्गहीनप्रवेशे त्वशनिभय' इति।।३५।।

अथादर्शने चन्द्रमसः फलमाह—

दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते ।
रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ॥३६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रोहिणी-
योगाध्यायश्चतुर्विंशः ॥२४॥

मेघ से ढके हुये आकाश में रोहिणी योग के समय यदि चन्द्र नहीं दिखाई दे तो उस वर्ष में अतिशय रोग का भय होता है तथा पृथ्वी बहुत धान्य और वृष्टि से युत होती है।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां रोहिणीयोगाध्यायश्चतुर्विंशः ॥२४॥

यदि नभस्याकाशे तोयदावृते मेघच्छन्ने चन्द्रमा रोहिणीयुतो न दृश्यते लोके तदा तस्मिन् वर्षे महदतीव रुग्भयं रोगभयमुपस्थितं प्राप्तं वदेत्। भूश्च भूमिर्भूरिजलसस्यसंयुता बहुभिस्तोयैः सस्यैश्च युक्ता भवतीति।।३६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ रोहिणी-
योगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ स्वातीयोगाध्याय:

अथ स्वातियोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव रोहिणीयोगोक्तस्य फलस्यातिदेशं कालनिर्देशं चाह—

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावषाढासहिते च चन्द्रे।
आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥१॥

रोहिणी योग में उक्त सभी फलों की तरह आषाढ़ शुक्ल में स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के समस्त फलों का विचार करना चाहिये तथा इस (स्वाती योग) में जो विशेष फल हैं, उन्हें मैं कहता हूँ।।१।।

रोहिणीसहिते चन्द्रे यद्योगफलं प्रागुक्तं तदेव स्वातिसहिते चन्द्रे आषाढासहिते फलं निखिलं नि:शेषं विचिन्त्यं विचारणीयम्। किन्त्वाषाढशुक्ले शुचौ शुक्लपक्ष एतद्योगद्वयं विचार्यम्। एतदुक्तं भवति—मेघानां वायोश्चोत्पातानां च यत्फलं रोहिणीयोग उक्तं तत्सर्वं स्वात्याषाढास्थे चन्द्रमसि ज्ञातव्यम्। तदा दूरगो निकटगोऽथवा शशी इत्यादि। यथासम्भवं समागमफलं यदुक्तं तत्सर्वमत्रैव वेदितव्यम्। तथा गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृष इत्यादिकं सर्वमपि वेदितव्यम्। तथा च पराशर:—'सर्व एते योगा मास्याषाढे भवन्ति। तान् दैवज्ञ: प्रयत: शुचिरवधारयेत्, स्वातिसंयुते चन्द्रमसि घनस्निग्धस्तनितविद्युन्मालैरम्भोदैर्नभसोऽवच्छादनं सुभिक्षक्षेमाय तद्वत्सर्ववातप्रादुर्भाव इति। उल्कानिर्घातकम्पोपघातैश्च विपर्यय:' इति।

योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये इति। अस्मिन् स्वातियोगे रोहिणीयोगाद्यो विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये कथयिष्य इति।।१।।

अथ तत्र रात्रौ दिवसे च वृष्टे शुभाशुभलक्षणमाह—

स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम्।
भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्मं तृतीयेऽस्ति न शारदानि ॥२॥

वृष्टेऽह्निभागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वद् द्वितीये तु सकीटसर्पा।
वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टेनिश्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥३॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के समय रात-दिन दोनों के तीन-तीन भाग करे। यदि रात्रि के प्रथम भाग में वृष्टि हो तो सब धान्यों की वृद्धि, द्वितीय भाग में तिल, मूंग और उड़द की वृद्धि, तृतीय भाग में ग्रीष्म ऋतु के धान्य की उत्पत्ति और शारदीय धान्य का अभाव, दिन के प्रथम भाग में सुन्दर वृष्टि, द्वितीय भाग में कीड़े और साँपों से युत वृष्टि तथा तृतीय भाग में वृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है। यदि सम्पूर्ण दिन और रात में वृष्टि हो तो वर्षाकाल में दोषरहित वृष्टि होती है।।२-३।।

स्वातौ स्वातियोगे प्रथमे निशांशे आद्यरात्रित्रिभागे वृष्टे सर्वाणि निःशेषाणि सस्यानि वृद्धिमुपयान्ति गच्छन्ति। द्वितीये रात्रित्रिभागे वृष्टे तिलमुद्गमाषा वृद्धिमुपयान्ति। तृतीये त्रिभागे वृष्टे ग्रैष्ममस्ति ग्रीष्मधान्यानि भवन्ति। न शारदानि शरत्सस्यानि न भवन्ति।

अह्नि दिवसे प्रथमे आद्ये त्रिभागे वृष्टे सुवृष्टिः शोभना वृष्टिर्भवति। द्वितीये दिन-त्रिभागे वृष्टे तद्वत्सुवृष्टिर्भवति, किन्तु सकीटसर्पा कीटैः क्रिमिभिः सर्पैर्भुजङ्गैश्च सहिता वृष्टिर्भवति। अपरभागे तृतीये दिनत्रिभागे वृष्टिर्मध्यमा भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा। द्युनिशं प्रवृष्टे समग्रमहोरात्रं प्रवृष्टे निश्छिद्रा छिद्ररहिता निर्दोषा वृष्टिर्भवति। सर्वत्र कालोचितं वर्षतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

स्वातियोगे यदा युक्ते पूर्वरात्रे प्रवर्षति।
ग्रीष्मशारदसम्पन्नां तां समामभिनिर्दिशेत्।
रात्रेर्द्विभागमाश्रित्य स्वातियोगेऽभिवर्षति।
सम्पदो मुद्गमाषाणां तिलानां चावधारयेत्।।
त्रिभागशेषे शर्वर्याः स्वातियोगेऽभिवर्षति।
ग्रैष्मं सम्पद्यते सस्यं शारदं तु विनश्यति।।
अह्नस्तु प्रथमे भागे वर्षाक्षेमसुवृष्टये।
द्वितीये शोभना वृष्टिर्बहुसस्यसरीसृपाः।।
अह्नस्तृतीये भागे तु मध्यमां कुरुते समाम्।
अहोरात्रं यदा वर्षं स्वातियोगे पुरन्दरः।।
तदा तु चतुरो मासान् सर्वान् वर्षति वासवः।। इति।।२-३।।

अथापांवत्सनिकटस्थे चन्द्रमसि शुभाशुभमाह—

सममुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः।
तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति ।।४।।

चित्रा के उत्तर में अपांवत्स नामक तारा है, उसके समीप में यदि स्वाती के साथ चन्द्र का संयोग हो तो शुभ होता है।।४।।

चित्रायाः सममुत्तरेण समं कृत्वा उत्तरेण तिर्यग् या तारा स्थिता सापांवत्स इति कीर्त्यते कथ्यते। तस्यापांवत्सस्याऽऽसन्ने निकटस्थे चन्द्रे स्वातेर्योगश्चन्द्रसंयोगः शिवः श्रेयस्करो भवति।।४।।

अथ स्वातियोगस्य कालयोगमाह—

सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे
वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्त्रम्।
विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचन्द्रार्कतारं
विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ।।५।।

यदि माघ कृष्ण सप्तमी में स्वाती नक्षत्रगत चन्द्र होने के समय हिम गिरे, भयङ्कर वायु चले, जलयुत मेघ गर्जे, विद्युन्माला से व्याप्त आकाश रहे तथा मेघाच्छन्न होने के कारण चन्द्र, सूर्य और तारा न दिखाई दे तो वर्षाकाल में आनन्दित और सब धान्यों से युक्त जनपद जानना चाहिये।।५।।

माघमासस्यान्धकारे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ स्वातिनक्षत्रयुक्ते चन्द्रे हिमं तुहिनं यदि पतति, वायुर्मारुतो वा चण्डवेग: परुषो महास्वनो वहति अथवा सजलो जलेन पानीयेन सहितो जलधरो मेघोऽजस्रमनवरतं वापि गर्जति शब्दं करोति। अथवा नभ आकाशं विद्युन्मालाभिराकुलं सौदामिनीनां पंक्तिभिर्व्याप्तम्, नष्टचन्द्रार्कतारं नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्र-तारकार्का: सोमतारकसूर्या यत्र मेघच्छन्नमित्यर्थ:, तदैषा प्रावृड् वर्षा मुदितजनपदा प्रहृष्टलोका सर्वैर्नि:शेषै: सस्यैरुपेता संयुक्ता विज्ञेया विज्ञातव्या।।५।।

अन्यदपि शुभाशुभलक्षणमाह—

तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा।
स्वातियोगं विजानीयादाषाढे च विशेषत: ॥६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्वति-
योगाध्याय: पञ्चविंश: ॥२५॥

इसी तरह फाल्गुन, चैत्र और वैशाख के कृष्ण पक्ष में स्वाती योग का विचार करे; किन्तु आषाढ मास में विशेष रूप से इसका विचार करना चाहिये।। ६।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्वातियोगाध्याय: पञ्चविंश: ॥२५॥

यथा सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिममित्याद्युक्तं तथैव फाल्गुने मासि स्वातौ भवति। चैत्रे वैशाखमासस्यासिते कृष्णपक्षेऽपि स्वातियोगं विजानीयाद्विन्द्याद्विचारयेत्। विशेषत आषाढस्य य: स्वातियोगस्तं विचारयेदिति। अनार्षोऽयं श्लोक:।।६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
स्वातियोगोनाम पञ्चविंशोऽध्याय: ॥२५॥

अथाषाढीयोगाध्यायः

अथाषाढीयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्र तावद्रोहिणीयोगफलं यदुक्तं तत्सर्वमुत्तराषाढायुक्ते चन्द्रमसि विज्ञातव्यं तथाषाढपौर्णमास्यां विचारयेत्। तथा च पराशरः—

'अतोऽनन्तरमाषाढासंयुक्ते शशिन्यादानविसर्गान्तर्भागेषु निमित्तानि प्रावृष्याद्यन्तमध्येषु फलन्ति। तत्र सुरभिरनुकूलः स्पर्शवान् मारुतः पूर्वपूर्वोत्तरोऽतिवर्षसस्यकरो नैर्ऋताग्नेययाम्यवारुणवायव्या मध्यसस्यकराः। विपर्ययो विपरीतेषु। वैदूर्यरजतमधुहेमप्रभा सन्ध्या स्निग्धाभ्रवृक्षप्रादुर्भावश्च प्रावृड्वृद्धये। प्राङ्मध्यपश्चाद्भागेष्वाषाढानां योगः शशिनो वर्षासु तत्कालमेव वर्षाय। वैश्वदेवादुत्तरतः शशी वर्षकरो न दक्षिणतः। निर्घातोल्काशनिभूचलनदण्डान्यावग्रहोपतापे सस्यवधो भवति। भवति चात्र—

सोदकं सातपं साभ्रं सविद्युत् स्तनयित्नुमत्।
प्रवातं च निवातं च प्रशस्तं तदहः स्मृतम्।। इति।

अथाषाढीयोगे यत्कर्तव्यं तदाह—

आषाढ्यां समतुलिताधिवासिताना-
मन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम्।
तद्वृष्टिर्भवति न जायते यदूनं
मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥१॥

आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्तराषाढा नक्षत्रगत चन्द्र के समय बराबर सब धान्यों को अभिमन्त्रित तराजू से अलग-अलग तौल कर रख दे। दूसरे दिन उन सबों को फिर तोले। जो धान्य बढ़ जाय उसकी उस वर्ष में वृद्धि और जो कम हो जाय उसकी हानि होती है। तुला को अभिमन्त्रित करने के लिये समाससंहिता में मन्त्र दिया गया है, जो भट्टोत्पलविवृति में द्रष्टव्य है।।१।।

आषाढस्येयं पौर्णमासी आषाढी। उत्तराषाढायुक्तेत्यर्थः। तथा च गर्गः—

वायव्यवैश्वदेवाभ्यां प्राजापत्यस्य चैव हि।
एषामप्यधिकं चापि रोहिणी नाम याप्यते।। इति।

तस्यामाषाढ्यां सर्वबीजानां समतुलिताधिवासितानां समं कृत्वोनातिरिक्तवर्जं यानि बीजानि धान्यादीनि तुलितानि तुलया परिच्छिन्नानि तेषां तथाभूतानामधिवासितानाम्। अधिवाससा महाव्रतमन्त्रेणाभिमन्त्र्य रात्रिमेकामुषितानि। ततोऽन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि द्वितीयदिवसे यद्बीजं तुलितमधिकतामुपैत्याधिक्यं गच्छति तद्वृद्धिस्तस्य धान्यादेस्तस्मिन् वर्षे वृद्धिर्भवति। यदूनं भवति तन्न जायते नोत्पद्यते। मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय। अस्मिंस्तुलाकर्मणि

तुलाभिमन्त्रणाय मन्त्रो भवति येन तुलाभिमन्त्र्यते इत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

तुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकं भवति बीजम्।
आषाढपौर्णमास्यां तद्वृद्धिस्तत्र मन्त्रोऽयम्।। इति।।१।।

अथ तं मन्त्रमार्षमाह—

स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती।
दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ।।२।।

येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा।
उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ।।३।।

यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत्सत्यं ब्रह्मवादिषु।
यत्सत्यं त्रिषु लोकेषु तत्सत्यमिह दृश्यताम् ।।४।।

ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता।
काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला ।।५।।

मन्त्रयोग से सत्यरूपा सरस्वती देवी की उपासना करनी चाहिये। हे सत्यरूपे सरस्वति! जो परमार्थरूप वस्तु है, उसको तुम ही दिखा सकती हो; क्योंकि तुम सत्य व्रत वाली हो। जिस सत्य से चन्द्र, सूर्य, कुजादि ग्रह और नक्षत्रगण पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम में अस्त होते हैं, जो सत्य सब वेदों में है, जो सत्य ब्रह्मवादियों में है और जो सत्य तीनों लोकों में है, उसको दिखा दो। तुम ब्रह्मा जी की पुत्री हो; पर आदित्या (अदिति की पुत्री) कहलाती हो, गोत्र से कश्यप गोत्र की हो और तुला के नाम से विख्यात हो।।२-५।।

स्तोतव्येति। सा तुला अनेन मन्त्रयोगेन सह स्तोतव्या स्तवनीया। सत्या सत्यरूपा सरस्वती देवी। हे सत्ये सत्यरूपे यत्सत्यं परमार्थं दर्शयिष्यसि यस्मादसि त्वं सत्यव्रता। सत्यमेव व्रतं यस्याः।

चन्द्रार्कौ शशिसूर्यौ ग्रहाश्चान्ये भौमादयः। तथा ज्योतिर्गणाः। ज्योतिषां ताराणां गणाः समूहा येन सत्येन पूर्वेण पूर्वस्यां दिश्युत्तिष्ठन्ति उदयं यान्ति इहास्मिंल्लोके तथा पश्चात्पश्चिमायां दिश्यस्तं व्रजन्ति अस्तमयं यान्ति।

तथा सर्वेषु वेदेषु यत्सत्यं तत्सत्यं ब्रह्मवादिषु परं ब्रह्म ये वदन्ति। त्रिषु लोकेषु भूर्भुवःस्वराख्येषु यत्सत्यं तत्सत्यमिहास्मिंस्तुलाकर्मणि दृश्यताम्।

त्वं ब्रह्मणः कमलजस्य दुहिता तनया असि भवसि, तथा आदित्या अदितेरपत्यमित्येवं प्रकारा प्रकीर्तिता कथिता। गोत्रतः काश्यपी कश्यपगोत्रा। नामतः संज्ञया तुला इति च विश्रुता ख्याता।।२-५।।

अथ तुलाया लक्षणमाह—

क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवस्त्रमस्याः।
सूत्रप्रमाणं च दशाङ्गुलानि षडेव कक्ष्योभयशिक्यमध्ये ।।६।।

दश अङ्गुल प्रमाण चार-चार सूत्रों से छः अङ्गुल प्रमाण शिक्यक वस्त्र (दोनों पलड़े के वस्त्रों) को बाँधे और दोनों पलड़ों के बीच में छः अङ्गुल प्रमाण कक्ष्य (डंडी) बाँधे।

अस्यास्तुलायाः शिक्यकवस्त्रं क्षौमं कार्यम्। यत्र स्थितानि द्रव्याणि परिच्छिद्यन्ते तच्छिक्यवस्त्रं तच्चतुःसूत्रकसन्निबद्धम्, चतुर्भिः सूत्रैस्तन्तुभिः सन्निबद्धं संलग्नं कार्यम्। तच्च शिक्यकवस्त्रं षडङ्गुलं षडङ्गुलप्रमाणम्। यः सूत्रैस्तद्बध्यते, तेषां प्रमाणं दशाङ्गुलानि। उभयशिक्यमध्ये शिक्यद्वयस्यान्तः कक्ष्यासूत्रं षडङ्गुलं कार्यम्। कक्ष्यासूत्रेण ग्रहणसूत्रमुच्यते।।६।।

कथं तत्र द्रव्याणि परिच्छेद्यानीत्याह—

याम्ये शिक्ये काञ्चनं सन्निवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैव।
तोयैः कौप्यैः सैन्धवैः सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ।।७।।

दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपाः शिक्थकेन द्विजाद्याः।
तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ।।८।।

दक्षिण तरफ के पलड़े पर सुवर्ण और उत्तर तरफ के पलड़े पर कूप, नदी या सरोवर के जल के साथ शेष द्रव्य का स्थापन करे। यदि प्रथम दिन की अपेक्षा द्वितीय दिन में कूप का जल बढ़ जाय तो अवृष्टि, नदी का जल बढ़ जाय तो मध्यम वृष्टि और सरोवर का जल बढ़ जाय तो उत्तम वृष्टि होती है। गजदन्त के प्रमाण से हाथी का, गौ, घोड़ा, आदि (गदहा, ऊँट, बकरी और भेड़) के लोम से क्रमशः उन सबों का, सुवर्ण से राजा का, मोम से ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का, देश, वर्ष, मास और दिशाओं का तथा अपने-अपने प्रमाण से शेष द्रव्यों का शुभाशुभ ज्ञान करना चाहिये।।७-८।।

याम्ये दक्षिणशिक्ये काञ्चनं सुवर्णं सन्निवेश्यं स्थापनीयम्। शेषाणि द्रव्याणि तथाम्बूनि पानीयानि उत्तरे शिक्ये सन्निवेश्यानि। एतदुक्तं भवति—सुवर्णं यदा परिच्छिद्यते तदा दक्षिणे शिक्ये विनिवेशयेत्। अन्यानि सर्वाण्युत्तर इति।

तोयैर्जलैः कौप्यैः कूपसम्भवैर्वृद्धिमद्भिर्हीना वृष्टिर्भवति। सैन्धवैर्नादेयैर्जलैर्वृद्धिमद्भिर्मध्यमा वृष्टिर्भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा। तथा सारसैः सरःसम्भवैर्वृद्धिमद्भिर्जलैरुत्तमा प्रधाना वृष्टिर्भवति। सर्वेषां वृद्धावतिमहती वृष्टिः, सर्वेषां हानाववृष्टिरिति। केचिद्वृद्धिर्हीना मध्यमा चोत्तमा चेति पठन्ति। सस्यानां वृद्धिर्भवत्ति न चैतच्छोभनम्।

दन्तैर्नागा इति। नागाः करिणो दन्तैर्हस्तिदन्तैः परिच्छेद्याः। गोहयाद्याश्च लोम्ना। गावः, हया अश्वाः, आदिग्रहणात् खरकरभच्छागमेषाः। एते सर्व एव लोम्ना। हेम्ना सुवर्णेन भूपा राजानः परिच्छेद्याः। शिक्थकेन मधूच्छिष्टेन द्विजाद्या ब्राह्मणाद्याश्चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः। देशा मध्यदेशप्रभृतयः। वर्षाण्येतानि यथेष्टानि। मासा वर्षान्तःस्थाः। दिशश्च पूर्वाद्याः। शुभाशुभज्ञानार्थं तद्वत् शिक्थकेनैव परिच्छेद्याः। शेषाण्यन्यान्यनुक्तानि यानि द्रव्याणि तान्यात्मरूपस्थितानि स्वयमेव परिच्छेद्यानि धान्यादीनीत्यर्थः।।७-८।।

अथ तुलालक्षणमाह—

हैमी प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खदिरेण कार्या।
विद्धः पुमान् येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥९॥

सुवर्ण का तुलादण्ड (डण्डी) श्रेष्ठ, चाँदी का मध्यम और इन दोनों के अलाभ में खैर की लकड़ी का तुलादण्ड बनाना चाहिये अथवा जिस बाण से कोई मनुष्य बेधित हुआ हो, उसका तुलादण्ड बनाना चाहिये। वह तुलादण्ड बारह अङ्गुल प्रमाण का होना चाहिये।

हैमी सुवर्णतुला प्रधानोत्तमा। रजतेन रौप्येण या क्रियते सा मध्यमा, न शुभा नाप्यशुभा। तयोः सुवर्णरौप्ययोरलाभे अभावे सति खदिरेण कार्या। खदिरकाष्टमयी कर्तव्या। अथवा येन शरेणेषुणा पुमान् पुरुषः कश्चिद्विद्धो भिन्नः सा वा तुला कार्या तस्माच्छरादित्यर्थः। सा च तुला प्रमाणेन वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला भवतीति।।९।।

अथ तुलितानां शुभाशुभफलज्ञानमाह—

हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम्।
एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥१०॥

दूसरे दिन में तोला हुआ द्रव्य अल्प हो तो उस वर्ष में उसका नाश, अधिक हो तो वृद्धि और समान हो तो मध्यम फल होता है। यह परम गोपनीय तुला का रहस्य मैंने कहा है। रोहिणी योगकाल में भी इसका विचार करना चाहिये।।१०।।

तुलायां तुलितस्य परिच्छन्नस्य द्रव्यस्य हीनस्य नाशः क्षयो वक्तव्यः। अभ्यधिकस्य वृद्धिः। तुल्येन समेन तुल्यं समम्। न हानिर्न च वृद्धिः। तथा च गर्गः—

येषां प्रणमते सारं ते भवन्ति च नासमम्।
येषां तु हीयते सारं तेषां नाशं विनिर्दिशेत्।।
समानि तु समानि स्युस्तुलया तुलितानि तु।।

तथा च पराशरः—

सारसेऽम्भसि सस्यानां राज्ञां च विजयोऽधिके।
नादेये मध्यमा सम्पत्कनीयस्य चलोदके।।
यस्यां दिशि भवेन्माल्यमम्लानं शुचिगन्धिमत्।
तस्यां दिशि विजानीयाद्राज्ञां शिवमनामयम्।। इति।

एतत्तुलाकोशरहस्यं तुलाभाण्डागाररहस्यं परमं गुह्यमुक्तं कथितम्। नरो मनुष्यः प्राजेशयोगेऽपि न केवलमाषाढयोगे तुलाकोशं विदध्यात् कारयेत्, यावत्प्राजेशयोगे रोहिणीयोगेऽपि कारयेत्।।१०।।

अन्यस्मिन् योगत्रयेऽपि पापग्रहा व्यवस्थिता न शुभदाः। अधिमासके सति योगे

विशेषविधानमाह—

स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः।
ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति॥११॥

स्वाती, उत्तराषाढा या रोहिणी नक्षत्रगत चन्द्र के साथ यदि पापग्रह (मंगल, शनि, राहु या केतु) का योग हो तो शुभ नहीं होता है।।११।।

स्वातौ स्वातिसंयुक्ते चन्द्रे। अषाढासूत्तराषाढासु युक्तं च। अथ रोहिणीसंयुक्ते चन्द्रे। एतेषु त्रिषु योगेषु पापग्रहा भौमसौरराहुकेतवो योगगतास्तत्र स्थिता न शुभदा न शस्ताः। तथा च गर्गः—

योगैः पापैरुपहतैः प्रजानामशुभं वदेत्।
दुर्भिक्षावृष्टिमरकान् सौम्यैः सौभिक्षमादिशेत्।।

तथा च पराशरः—

शुक्रबुधबृहस्पतिसंयोगे शूकधान्यतिलमुद्गविनाशः, सौरस्य मध्यदेशाभावः, भौमस्य शस्त्रकोपः, केतोर्भयदुर्भिक्षप्रादुर्भावावग्रहः, रोहिणीमध्यगमनमिन्दोः सुभिक्षक्षेमवृष्टिकरम्।

यदा यस्मिन् काले एतेषां योगानामधिमासो द्विगुणीकरोति द्वितीयोऽधिमासोऽषाढाख्यो भवति, तदा तस्मिन् काले योगद्वयं रोहिण्यषाढाख्यमुपोष्य भुक्त्वा ग्राह्यम्। एतदुक्तं भवति—यदा द्वावाषाढौ भवतस्तदोपोष्य मासद्वयेऽपि योगद्वयं ग्राह्यं द्वितीयस्मिन् योगे मलरूपत्वादनादरो न कार्य इत्यत उक्तं—**योगद्वयमपीति**। यदाधिमासो द्विगुणीकरोति द्वावधिमासकेन सह भवत इत्यर्थः। स्वातियोगस्य सामान्यविहितत्वाद्योगद्वयमित्युक्तमन्यथा योगत्रयं भवति।।११।।

अथात्र योगत्रयमध्याद्रोहिणीयोगस्य विशेषमाह—

त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन।
विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम्॥१२॥

तीनों (रोहिणी, स्वाती और आषाढी) योगों का फल या दो योगों का फल समान हो तो निःसन्देह वही फल कहना चाहिये। यदि तीनों का अलग-अलग फल हो तो अधिकतर रोहिणी योग का फल ही उस वर्ष में कहना चाहिये।।१२।।

त्रयोऽपि स्वात्यषाढारोहिणीति योगा यदा फलेन सदृशास्तुल्या भवन्ति, तदा शुभं फलमशुभं वा प्रधानत्वाद्योगद्वयजं फलं न बाधत इत्यष्टासु दिक्षु तदा शुभं फलमशुभं वा असंशयेन सन्देहं विहाय वाच्यं वक्तव्यम्। त्रिभिरेव शुभैः शुभमशुभैरत्यशुभमिति। फलानां वैसदृशे विपर्यये फलविपर्ययेऽन्यादृशे भिन्नफले सति यत्तु रोहिणीजं शुभं फलमशुभं वा असंशयेन सन्देहं विहाय तदेव निगद्यं वक्तव्यम्। प्रधानत्वाद्योगद्वयं फलं न बाधत इति।।१२।।

अथाष्टासु दिक्षु वातफलमाह—

निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा।
बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामाषाढी-
योगाध्यायः षड्विंशः ॥२६॥

उक्त तीनों योगों के समय यदि पूर्व दिशा की हवा चले तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण की हवा चले तो अग्निकोप, दक्षिण दिशा की हवा चले तो थोड़ी वृष्टि, नैर्ऋत्य कोण की हवा चले तो मध्यम वृष्टि, पश्चिम दिशा की हवा चले तो उत्तम वृष्टि, वायव्य कोण की हवा चले तो अधिक वृष्टि, उत्तर दिशा की हवा चले तो सुन्दर वृष्टि और ईशान कोण की हवा चले तो उत्तम वृष्टि होती है।।१३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामाषाढीयोगाध्यायः षड्विंशः ॥२६॥

पूर्वाद्यासु दिक्ष्वष्टसु पवनैर्वातैः क्रमेणैतानि फलानि। तत्र पूर्वस्यां दिशि यदा वातो वहति तदा निष्पत्तिः सस्यानां भवति। सस्यानि सर्वाणि निष्पद्यन्ते। अग्निकोपोऽग्निभयमाग्नेय्याम्। वृष्टिर्मन्दा अल्पा दक्षिणस्याम्। मध्यमा वृष्टिर्नैर्ऋत्याम्। श्रेष्ठा प्रधाना वृष्टिः पश्चिमायाम्। बहुजलपवना प्रभूतोदका प्रभूतवाता वायव्याम्। पुष्टा परिपूर्णा अतिशोभनोत्तरस्याम्। शुभा अतिश्रेयस्करी ऐशान्यां वृष्टिरिति। रोहिणीयोगे 'वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि' इत्युक्तत्वात्पुनः करणं 'निष्पत्तिरग्निकोप' इत्यादिकं शिष्यं भ्रान्तिनिराशाय कृतमिति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावाषाढी-
योगोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ वातचक्राध्यायः

अथ वातचक्रं व्याख्यायते। अतः परं केचिद्वातचक्रं पठन्ति। तच्च वराहमिहिरकृतं न भवति। यतः—

निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा।
बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः।।

इत्यनेन पौनरुक्त्यं भवति। बहुष्वादर्शेषु च दृश्यते। अतोऽस्माभिः सरसत्वाद् व्याख्यायते शिष्यहितार्थम्। तत्रादावैशान्यां दिशि स्थितस्य वातस्य लक्षणमाह—

आषाढपौर्णमास्यां तु यद्यैशानोऽनिलो भवेत्।
अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ।।१।।

यदि आषाढ के पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त काल में ईशान कोण की हवा चले तो पृथ्वी पर धान्य उत्तम रूप से होता है।।१।।

आषाढमासस्य पौर्णमास्यां तीक्ष्णांशावर्केऽस्तं गच्छति यद्यैशान ऐशान्यां दिशि अनिलो वातो भवेद्वहति तदा सस्यानां धान्यादीनां सम्पत्तिरुत्तमा प्रधाना भवति।।१।।

अथ पूर्वस्यामाह—

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णित-
श्चन्द्रार्कांशुसटाकलापकलितो वायुर्यदाकाशतः ।
नैकान्तस्थितनीलमेघपटला शारद्यसंवर्धिता
वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला सर्वा मही शोभते ।।२।।

जिस आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन पूर्वी समुद्र के तरङ्गाग्र भाग से चालित होने के कारण घूमती हुई तथा सूर्य और चन्द्र के किरणरूप जटा से शोभित वायु आकाश से चलती है, उस वर्ष में सब जगह नील वर्ण वाले मेघों से युत, शारदीय धान्यों की समृद्धि से मण्डित और वसन्त ऋतु के अति समृद्धियुत धान्यों से भूषित सारी पृथ्वी शोभित होती है।।२।।

तस्यामेवाषाढपौर्णमास्यां पूर्वो वायुः पूर्वस्यां दिशि यस्मिन् काले आकाशतो नभसो वहतीत्यर्थः। कीदृशो वायुः? पूर्वसमुद्रस्य प्रागुदधेर्ये वीचय ऊर्मयस्तेषां ये शिखरा अग्राणि तेषां प्रस्फालना चालनं तेन घूर्णितो भ्रमितः। तथा चन्द्रार्कयोः सूर्यशशिनोर्येंऽशवो रश्मयस्त एव सटाः स्कन्धावलम्बिनः केशा इव तेषां यः कलापो विस्तारस्तेन कलितो मिश्रितः। तदा मही कीदृशी भवति? **नैकान्तस्थितेति**। नैकान्तमत्यर्थमेव सर्वत्र ये स्थिता नीलवर्णानां मेघानां पटलाः समूहास्तैः शोभिता। तथा शारद्यसंवर्धिता। शारद्यैः

सस्यैर्धान्यादिभिः संवर्धिता समृद्धयुक्ता भवति। तथा वासन्तैर्वसन्तसम्भवैरुत्कटैरतिसमृद्धैः सस्यैर्मण्डितं भूषितं तलं पृष्ठं यस्याः सा तथाभूता। सर्वा निःशेषा मही भूः शोभते विराजते।।२।।

अथाग्नेय्यामाह—

यदा वह्नौ वायुर्वहति गगने खण्डिततनुः
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिङ्गिततला
स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम्।।३।।

यदि आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन अस्त समय में अप्रतिहत गति वाली आग्नेय कोण की वायु चले तो उस वर्ष में सर्वत्र अग्नि की ज्वाला से व्याप्त पृष्ठ वाली प्रज्वलित पृथ्वी अपने शारीरिक उष्ण उच्छ्वास के द्वारा भस्मों को वमन करती है अर्थात् पृथ्वी पर वृष्टि का अभाव, अग्नि का भय, प्रजाओं का नाश आदि उपद्रव होते हैं।।३।।

यदा यस्मिन् काले वायुः पवनो वह्नावाग्नेय्यां दिशि वहति। गगने आकाशे। कीदृशः? अखण्डिततनुः। अखण्डिता तनुर्यस्य अविहतगतिरित्यर्थः। प्लवति प्रवहति अस्मिन्नाषाढीयोगे। कदा भगवति पतङ्गे सूर्ये प्रवसत्यस्तमेति सति। तदा तस्मिन् वर्षे वसुधा भूर्नित्योद्दीप्ता सर्वकालमुज्ज्वलिता। ज्वलनशिखरालिङ्गिततला ज्वलनस्याग्नेर्ये शिखरा ज्वालाग्राणि तैरालिङ्गितं परिष्वक्तं तलं यस्याः। तथाभूता स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैः स्वगात्रादात्मीयदेहाद्य ऊष्मा स एवोच्छ्वासास्तैस्तथाभूतैर्बहुप्रकारैः स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्भस्मनिकरं भस्मसमूहं वमत्युद्गिरति।।३।।

अथ दक्षिणस्यामाह—

तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्
योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनिः सपरुषो वायुर्यदा दक्षिणः।
तद्वद्योगसमुत्थितस्तु गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः
कीनाशा इव मन्दवारिकणिका मुञ्चन्ति मेघास्तदा।।४।।

इस योग में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में तालपत्र, लताओं की विस्तृति और वृक्षों से वाहनों को नचाते हुये, कठोर शब्द वाले दक्षिण तरफ की हवा चले तो तालरूप अङ्कुश से ताड़ित हस्ती की तरह मेघ कृपण मनुष्य की तरह थोड़ी जलबिन्दु छोड़ता है, अर्थात् उस वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है।।४।।

अस्मिन् योगेऽषाढाख्ये यदा यस्मिन् काले दक्षिणो याम्याशास्थो वायुः पवनः प्लवति वहति। किं कुर्वंस्ताली वृक्षविशेषस्तस्य पत्राणि पर्णानि तथा लतावितानो लतानां विस्तारस्तरवो वृक्षाः। एतैश्चालितैः शाखामृगान् वानरान्नर्तयन् वहति। वातवेगात्तालादयश्चलन्ति तच्चलनात्तान्नर्तयन्निव। तथा तद्वत्तेनैव प्रकारेण योगे पौर्णमास्यां सूर्यास्तमये

समुत्थितो ध्वनिः शब्दः सपरुषोऽतिरूक्षः प्लवति वाति प्रभवति वा तदा तस्मिन् काले मेघा अम्बुदा गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः। यथा गजा इभाः। तालेनाहता अङ्कुशेन च यद्वद् घट्यन्ते रुद्यन्ते तद्वद् घट्टिता। कीनाशाः कदर्या इव मन्दस्य स्वल्पस्य वारिणो जलस्य कणिका बिन्दूनेव मुञ्चन्ति त्यजन्ति न प्रभूतं जलमिति।।४।।

अथ नैर्ऋत्यामाह—

सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे
भानोरस्तमये प्लवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः।
क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा
मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते ॥५॥

इस योग में 'आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में' समुद्र के समीप छोटी इलायची, लवली और लौंग के वृक्षों को घुमाते हुये यदि नैर्ऋत्य तरफ की हवा चले तो भूख, प्यास से मरे हुए मनुष्यों की हड्डियों के टुकड़े की विस्तृति के भार से व्याप्त पृथ्वी उन्मत्त और अति चञ्चल प्रेतवधू की तरह दिखाई देती है।।५।।

तस्यामाषाढपौर्णमास्यां भानोः सूर्यस्यास्तमयेऽस्तमयकाले नैर्ऋतो वायुर्दक्षिणपश्चिमाशास्थः। अविरतः सन्ततः प्लवति वहति। किं कुर्वन्। सूक्ष्मेलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन्। सूक्ष्मैला प्रसिद्धा। लवली प्रसिद्धा। लवङ्गानि प्रसिद्धानि। एतेषां निचयाः समूहास्तान् व्याघूर्णयंश्चालयन्। क्व? सागरे समुद्रसमीपे। तदा तस्मिन् वर्षे भूमिरवनिरेवंविधा लक्ष्यते दृश्यते। कीदृशी? क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा, क्षुद् बुभुक्षा, तृष्णा पिपासा, आभ्यामावृता व्याप्ता ये मानुषा जनास्तेषां मृतानामस्थिशकलैरस्थिखण्डैश्च यः प्रस्तारो विस्तारः स एव भारोऽतिबहुत्वात् स एव शुक्लत्वाच्छद आवरणं वस्त्रं यस्याः अत एव प्रेतवधूः प्रेतस्त्रीवोग्रचपला तीव्रा चापल्ययुक्ता च। मत्ता प्रमत्ता। इवातीव जनमरकत्वात्।।५।।

अथ पश्चिमायामाह—

यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटाटोपचपलः
प्रवातः पश्चाच्चेद्दिनकरकरापातसमये।
तदा सस्योपेता प्रवरनिकराबद्धसमरा
क्षितिः स्थानस्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा ॥६॥

इस योग में (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) धूलि को उड़ाने से चलित केशर के आक्षेप से चञ्चल और भयङ्कर हवा चले तो उस वर्ष में धान्यों से युत, प्रधानों (राजाओं) के युद्धों से व्याप्त, जगह-जगह पर निरन्तर वसा, मांस और रक्त से व्याप्त पृथ्वी होती है।।६।।

यदा यस्मिन् काले दिनकरकरापातसमये दिनकरस्यादित्यस्य करा ये रश्मयस्तेषामापातो विनाशस्तत्समये। सूर्यास्तमयकाल इत्यर्थः; पश्चाच्चेत् पश्चिमायां दिशि यदि प्रवातश्चण्डानिलो

वहति। कीदृशः? रेणूत्पातैर्धूलिसमुत्क्षेपणैः प्रविचलः। प्रकर्षेण चलमानो यः सटाटोपः सटाक्षेपस्तेन चपलश्चञ्चलः। तदा तस्मिन् वर्षे क्षितिर्भूः कीदृशी भवति सस्योपेता सस्यैर्बहुभिः संयुक्ता। तथा प्रवराणां प्रधानानां ये निकराः समूहास्तैराबद्धा रचिताः समराः संग्रामा यस्याम्। तथा स्थानस्थानेषु प्रदेशप्रदेशेषु। अविरतवसामांसरुधिरा, अविरतं सन्ततं कृत्वा वसामांसरुधिरैर्मेदपलशोणितैर्युक्तेति। अतिबहवो जनाः सङ्ग्रामे बध्यन्त इत्यर्थः।।६।।

अथ वायव्यामाह—

आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ
वायव्यो वृद्धवेगः पवनघनवपुः पन्नगार्द्धानुकारी।
जानीयाद्वारिधाप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठां
ससयोद्वासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ।।७।।

इस योग में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) सघन शरीर वाली (धूली के संयोग और सार्वदिक होने के कारण), सर्पों के टुकड़ों का अनुकरण करने वाली यदि वायव्य कोण की हवा चले तो उस वर्ष में जल की धारा से आनन्दित, अति शब्द करने वाले मेढकों से युत, धान्यों की बीजोत्पत्तिरूप चिह्नों से मण्डित पृथ्वी पर सुखों की अधिकता होने के कारण भाग्य सेना की तरह पृथ्वी को जानना चाहिये।।७।।

आषाढी पौर्णमासी सैव पर्व तस्य कालस्तस्मिन् यदि चेत् करणपतेः सूर्यस्यास्तकालोपपत्तावस्तमयसमयप्राप्तौ वायव्यो वातो वृद्धवेगश्चण्डशब्दो यदि वहति। कीदृशः? पवनघनवपुः पवनश्चासौ घनवपुः, घनं समन्ततो वपुः शरीरं यस्य। तथा पन्नगार्द्धानुकारी, पन्नगाः सर्पास्तेषामर्द्धानि खण्डान्यनुकरोति। रेणुसमायोगत्वात् सन्ततत्वाच्चेत्यर्थः। केषाञ्चित् पाठः पन्नगादानुकारी, पन्नगाः सर्पास्तानत्ति भक्षयति गरुडस्तदनुकारी। अतिवेगसमायुक्तत्वाद् गरुडवेग इव स वायुर्लक्ष्यते। तदा तस्मिन् वर्षे उर्वीं भूमिं कीदृशीं जानीयाद्विन्द्यात्। वारिधाराप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठामिति, वारिणो जलस्य या धारास्ताभिः प्रकर्षेणातिशयेन या मुद्धर्षमिता प्राप्ता तया मुदिता हृष्टा मत्ता ये मण्डूका भेकास्तेषामामुक्ता अतिशब्दाः कण्ठा गलाश्च यस्याम्। तथा सस्यानामुद्भासो बीजोत्पत्तिः स एकचिह्नं ललाटे यस्याम्। सुखानां बहुलतया सामग्र्या जनानामतिसुखितत्वाद् भाग्यसेनां भाग्यचमूमिव।।७।।

अथोत्तरस्यामाह—

मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ
वात्यामोदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः।
विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलना मत्तास्तदा तोयदा
उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ।।८।।

ग्रीष्म के अन्त में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन) मेरु से आच्छादित सूर्य के किरण होने पर (सूर्यास्त समय में) अति सुगन्ध वाले कदम्बपुष्पों के गन्ध से सुगन्धित उत्तर तरफ की हवा चले तो उस वर्ष में बिजली से उत्पन्न सम्पूर्ण कान्तियों का स्वरूप

ज्ञान होने के कारण उद्यम युत तथा उन्मत्त की तरह मेघ मेघों से नष्ट चन्द्रकिरण वाली पृथ्वी को जल से पूर्ण करता है।।८।।

ग्रीष्मावसाने आषाढपौर्णमास्यां रवावादित्ये मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले मेरुणा पर्वतेन ग्रस्तमुपसंहृतं मरीचिमण्डलतलं रश्मिसमूहपर्यन्तं यस्य रवेस्तथाभूते काले यदा वायुरनिल उत्तरः सौम्याशास्थो वाति वहति। कीदृशः? आमोदिनोऽतिसुगन्धा ये कदम्बास्तेषामेव कदम्बानां पुष्पविशेषाणां यो गन्धस्तेन सुरभिः सुवासितः, तदा तस्मिन् वर्षे तोयदा मेघा गां भूमिमम्बुभिर्जलैः पूरयन्ति। कीदृशा मेघाः? विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलनामत्ताः। विद्युत्तडित्तस्या भ्रान्तिः परिभ्रमणं तया समस्ता सकला या कान्तिः प्रभा तस्याः कलनमाकारज्ञानं येषां तस्मान्मत्ताः सोद्यमाः। तथा उन्मत्ता इवातिनादाश्चातिवृष्टिमुचः। कीदृशीं गाम्? नष्टचन्द्रकिरणाम्, नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्रकिरणाः शशिरश्मयो यस्यां तथाभूतामिति।

अथ भद्रपदायोगमाह—

वृत्तायामाषाढ्यां कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्क्षे।
यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चेन्न तदा ॥९॥

यदि आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में मेघ वृष्टि करे तो उस वर्ष में वर्षा अच्छी होती है। यदि वृष्टि नहीं करे तो अवृष्टि होती है।।९।।

आषाढपौर्णमास्यां वृत्तायामतीतायां पुरतः कृष्णचतुर्थ्यां तिथावजैकपादर्क्षे पूर्वभद्रपदानक्षत्रे यदि पर्जन्यो मेघो वर्षति तदा प्रावृड् वर्षाः शस्ता शुभप्रदा। न चेद्यदि न वर्षति तदा न शुभेति।।९।।

(ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत्
पुन्नागागरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः।
आपूर्णोदकयौवना वसुमती सम्पन्नसस्याकुला
धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो रक्षन्ति वर्णास्तदा ॥

आषाढ़ शुल्क पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में देवताओं के सेवनयोग्य, शीतल, भयङ्कर शब्द वाले, पुन्नाग, अगुरु और पारिजात के फूलों से सुगन्धित ईशान कोण की हवा चले तो उस वर्ष में पूर्ण जलरूप यौवन से युत और पके हुये धान्यों से व्याप्त पृथ्वी होती है तथा धर्मात्मा और शत्रुओं को वश में करने वाले राजा लोग ब्राह्मण आदि वर्णों की सुचारु रूप से रक्षा करते हैं।)

अन्यदप्याह—

नष्टचन्द्रार्ककिरणं नष्टतारं न चेन्नभः।
न तां भद्रपदां मन्ये यत्र देवो न वर्षति ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वातचक्राध्यायः सप्तविंशः ॥२७॥

यदि चन्द्र और सूर्य के किरणों से तथा ताराओं से रहित आकाश नहीं हुआ तो उसको भाद्रपद नहीं कहना चाहिये क्योंकि; उसमें मेघ वृष्टि नहीं करता है।।१०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां वातचक्राध्यायः सप्तविंशः ॥२७॥

यस्यां भद्रपदायां नभ आकाशं नष्टचन्द्रार्ककिरणं भवति। नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्रार्कयोः शशिसूर्ययोः किरणा यत्र तत्तथाभूतम्। मेघच्छन्नत्वात्। तथा नष्टतारम्, नष्टा अदर्शनं गतास्तारा नक्षत्राणि यत्र। यस्यां भद्रपदायां देवो न वर्षति न तां भद्रपदामिति मन्ये जाने इति। अनार्षाविमौ श्लोकौ।।१०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
वातचक्रंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ सद्योवर्षणाध्यायः

अथ सद्योवर्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्षपृच्छायां वर्षज्ञाने प्रश्नमाह—

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे।
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः
प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥१॥

कृष्ण पक्ष में वर्षा-सम्बन्धी प्रश्न करने पर यदि जलचर राशि में स्थित होकर चन्द्रमा लग्न में बैठा हो या शुक्ल पक्ष में जलचर राशि में स्थित होकर केन्द्र (चतुर्थ, सप्तम या दशम) में बैठा हो और इन दोनों योगों में यदि चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो बहुत जल्दी अधिक वृष्टि और पापग्रह से दृष्ट हो तो थोड़ी वृष्टि होती है।।१।।

वर्षाप्रश्ने वृष्टिपृच्छायां चन्द्रः शशी सलिलनिलयं जलाश्रयं राशिमाश्रित्य कर्कट-मकरमीनानामन्यतमं संश्रित्य लग्नं तात्कालिकं पृच्छालग्नं यातः प्राप्तस्तत्र व्यवस्थितः, एको योगो भवति। यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे प्रश्नकाले न लग्नगश्चन्द्रमा जलराशिस्थो-ऽप्यन्यस्मिन् केन्द्रे चतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमे भवति। किं सर्वदा। न हि, शुक्लपक्षे। तेनैतदुक्तं भवति—कृष्णपक्षे वर्षपृच्छायां यदि जलचरराशिव्यवस्थितश्चन्द्रमा लग्ने भवति शुक्ले पुनर्जलराश्याश्रित एव लग्नवर्जमन्यकेन्द्रगतो भवति, तदा द्वितीयो योगः। अस्मिन् योगद्वये प्रावृट्काले वर्षासमये न चिराच्छीघ्रमेवाम्भः पानीयं सृजति ददाति। अत्रैव जलस्याल्पत्वं प्रभूतत्वमाह—**सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमिति**। यथादर्शितयोगस्थः शशी सौम्यैः शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन दृष्टोऽवलोकितो भवति। तदा प्रचुरं प्रभूतमुदकं जलं सृजति। पापैरादित्यभौमसौराणामन्यतमेन दृष्टोऽल्पं स्तोकमम्भो जलं सृजति। अर्थादेव मिश्रदृष्टो मध्यमं जलं सृजति तदा प्रावृट्काले। प्रावृट्कालग्रहणमन्यकाल-व्युदासार्थम्। सृजति मुञ्चति न चिरात् तस्मिन्नहन्येव। चन्द्रवद्भार्गवोऽपि, भार्गवः शुक्रश्चन्द्र-वज्ज्ञेयः। एतदुक्तं भवति—वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य शुक्रो लग्नयातो भवति कृष्णपक्षे तथा शुक्लपक्षे केन्द्रगस्तत्र च योगद्वयोऽपि सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भो मिश्रदृष्टो मध्यमं जलं सृजति।

नन्वत्र यदुक्तम्—'लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे' इति तत्किमनेन लग्नग्रहणेन, केन्द्रग्रहणेनैव लग्नं परिगृहीतमेव। यस्मात् सञ्ज्ञाध्यायेऽभिहितम्—'कण्टककेन्द्रचतुष्टयसञ्ज्ञा सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम्' तस्माल्लग्नग्रहणमत्रातिरिच्यत इति। अत्रोच्यते—'भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे' इति यदुक्तं तदनेनैव विकल्पेनाचार्येण कृष्णपक्षे वर्षप्रश्नपरिज्ञानं सविकल्पनमभिहितम्, तेन शुक्लपक्षे लग्नादन्यतमे केन्द्रे वा

जलराशिव्यवस्थितश्चन्द्रमाः सौम्यैर्यदि दृश्यते तदा सुप्रभूतं पानीयं मुञ्चति, पापदृष्टोऽल्पम्, मिश्रदृष्टो मध्यमम्। कृष्णपक्षे पुनर्लग्न एव केन्द्रे यदि भवति तत्रस्थः सौम्यैर्दृश्यते तदा प्रचुरं पानीयं मुञ्चति, पापदृष्टोऽल्पम्, मिश्रदृष्टो मध्यमम्। अन्यकेन्द्रव्यवस्थिते शशिनि सौम्यग्रहदृष्टेऽपि पानीयं नास्त्येव। कुत एतन्निश्चीयते ननु। विकल्पादवगतं भवति। यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षेऽतोऽर्थादेवावगम्यते। लग्नकेन्द्रमुक्त्वा कृष्णपक्षेऽन्यकेन्द्रचिन्ता नास्त्येव। तस्मान्न लग्नग्रहणमत्रातिरिच्यत इति। तथा च समाससंहितायाम्—

वर्षाप्रश्ने प्रावृषि जलराशौ कण्टके शशी बलवान्।
भृगुजो वा शुभदृष्टो बहुजलकृत् स्वल्पदः पापैः।। इति।।१।।

अथ सामान्येनोक्तम्। अथान्यत्प्रश्नज्ञानमाह—

आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा
तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा।
प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥२॥

यदि वर्षासम्बन्धी प्रश्न में प्रश्नकर्ता गीली वस्तु, जल, जलसंज्ञक वस्तु (क्षीर, अब्ज इत्यादि) का स्पर्श करे, जल के समीप में स्थित हो, जलसम्बन्धी किसी कार्य में लगा हो या किसी अन्य के द्वारा जल शब्द सुनने में आवे तो निःसन्देह शीघ्र ही वृष्टि होती है।।२।।

अथवा प्रष्टा वर्षप्रश्नपृच्छकः। आर्द्रं द्रव्यं सरसं यत्किञ्चिद्वस्तुविशेषं स्पृशति। यदि वा वारि जलं स्पृशति। तत्संज्ञकं वारिसंज्ञकं यत्किञ्चित् स्पृशति। यथा क्षीरं पयःशब्दवाच्यत्वात्तत्संज्ञम्। अब्जा मुक्ताः। अम्बुबालकमित्येवमादि। अथवा प्रष्टा तोयासन्नो जलसमीपवर्ती यदि भवति। अथवा तोयकार्ये जलकार्ये उन्मुखो गन्तुं प्रवृत्तो भवति। तदा प्रष्टा एव वाच्यो वक्तव्यः, यथा सलिलं जलम्। अचिराच्छीघ्रमेव निःसंशयेन निर्विकल्पेनास्ति विद्यते। अथवा पृच्छाकाले वा प्रश्नसमये सलिलमिति शब्दो वा श्रूयते यत्र तत्र जलं निःसंशयेनास्तीति वक्तव्यम्। तथा च समाससंहितायाम्—

आर्द्रद्रव्यं सलिलं जलसंज्ञश्रवणदर्शनान्यथवा।। इति।।२।।

अथान्यद्वर्षज्ञानमाह—

उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या
द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैदूर्यकान्तिः।
तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान्
प्रतपति यदि चोच्चैः खं गतोऽतीव तीक्ष्णम् ॥३॥

वर्षासमय में उदयाचल पर्वत पर स्थित, अत्यन्त तीक्ष्ण किरण होने के कारण बड़ी कठिनता से देखने के लायक, गलित सुवर्ण के समान और निर्मल वैदूर्य मणि की तरह

कान्ति वाला सूर्य जिस दिन दिखाई दे, उसी दिन वृष्टि करता है तथा जिस दिन मध्याह्न काल में अति तीक्ष्ण किरण वाला सूर्य हो, उस दिन भी वर्षा करता है।।३।।

विवस्वानादित्य उदयशिखरिसंस्थः। उदयपर्वतमूर्ध्नि स्थितः। अतिदीप्त्या अतिकान्त्या दुर्निरीक्ष्यो निरीक्षितुं न शक्यते। द्रुतकनकनिकाशः, द्रुतस्य गलितस्य कनकस्य सुवर्णस्य निकाशस्तत्सदृशः। स्निग्धवैदूर्यकान्तिस्तथा स्निग्धस्य निर्मलस्य वैदूर्यस्य मणेः सदृशी कान्तिः। एवंविधो विवस्वान् तदहनि तस्मिन्नेव दिनेऽम्भस्तोयं कुरुते। तोयकाले वर्षासमये। तोयकालग्रहणमन्यकालव्युदासार्थम्। यदि चोच्चैः खमाकाशं गतो मध्याह्नस्थ इत्यर्थः। प्रतपत्यतितीक्ष्णं तपति तदापि तस्मिन्नहन्यम्भः कुरुते।।३।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो
लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः।
पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो
रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ।।४।।

स्वादरहित जल, गौ के नेत्र के समान या काक के अण्डे के समान आकाश, निर्मल दिशा, नमक में विकार (पानी आदि आ जाना), वायु का निरोध, अतिशय उछल-उछल कर जल से सूखे में मछलियों का आना, मेढकों का बार-बार शब्द करना—ये सब वृष्टि के कारण हैं।।४।।

इमे सर्वे जलागमहेतवः। पानीयागमनकारणानि। उदकं जलं विरसं स्वादुरहितम्। तथा गोनेत्राभं गोनयनसदृशं वियदाकाशम्। दिश आशा विमला निर्मलाः। लवणस्य सैन्धवस्य विकृतिर्विकारः। आर्द्रताप्रस्वेदः। नभ आकाशं च काकाण्डाभं वायसाण्डकान्तितुल्यं भवेत् स्यात्, श्वेतनीलमित्यर्थः। पवनविगमो वायोर्निरोधः। झषा मत्स्याः स्थलगामिनः स्थलगमनशीलाः। पोप्लूयन्ते अत्यर्थं प्लवन्ते। मण्डूकानां भेकानामसकृत् पुनः पुना रसनं शब्दः।।४।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो
लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः।
रथ्यायां शिशुरचिताश्च सेतुबन्धाः
सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ।।५।।

यदि बिल्ली बार-बार अपने नाखून से भूमि को खोदे, लोहों में विस्र (कच्चे मांस) की गन्ध से युत मल हो जाय या मार्ग में बालकों से रचित पुल दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होगी—ऐसा कहना चाहिये।।५।।

मार्जारा विडाला भृशमत्यर्थमवनिं भूमिं नखैः करजैर्लिखन्तो विलिखन्तः। तथा लोहानामायसभाण्डानां कांस्यानां वा मलनिचयो मलसमूहः। सविस्रगन्धः सह विस्रगन्धेन वर्तते। केचिन्मत्स्यसदृशगन्ध इतीच्छन्ति। एवं मलनिचयो विस्रगन्धसंहितस्तथा रथ्यायां पथि शिशुरचिता बालविरचिताश्च सेतुबन्धा यदि दृश्यन्ते तदा जलमुदकं सम्प्राप्तमागतमचिराच्छीघ्रमेव निवेदयन्ति कथयन्ति।।५।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा यदि वा बाष्पनिरुद्धकन्दराः।
कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशिनश्च वृष्टिदाः ।।६।।

यदि अञ्जनचूर्ण के समान पर्वत, वाष्प से भरी हुई गुफा, जल में रहने वाले मुर्गे के नेत्र के समान (अति लोहित) चन्द्रकिरण हो तो शीघ्र वृष्टि होती है।।६।।

गिरयः पर्वता अञ्जनचूर्णसन्निभाः कृष्णवर्णा यदि दृश्यन्ते। बाष्पेणोष्मणा निरुद्धाश्छन्नाः कन्दरा अवटा येषां तथाभूताः। शशिनश्चन्द्रस्य परिवेषा कृकवाकुविलोचनोपमाः। कृकवाकोर्जलकुक्कुटस्य यादृग्विलोचनं नयनं तदुपमास्तत्सदृशाः। अतिलोहिता इत्यर्थः। एते सर्व एव वृष्टिदाः।।६।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवायः।
द्रुमावरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतञ्च ।।७।।

यदि विना कारण चीटियाँ अपने अण्डों को एक जगह से दूसरी जगह ले जायँ, सर्पों का मैथुन हो, सर्प वृक्ष पर चढ़े या गौ विना कारण उछले हो तो शीघ्र वृष्टि होगी।।७।।

पिपीलिकानामुपघातेनोपसर्गेण विना तद्व्यतिरिक्तमण्डानामुपसंक्रान्तिरन्यदेशे नयनम्। तथाऽहीनां सर्पाणां व्यवायो मैथुनम्। भुजङ्गमानां सर्पाणां द्रुमावरोहो वृक्षावरोहणम्। तथा गवां सुरभीणां प्लुतं प्लवनम्। एतानि सर्वाणि वृष्टेर्निमित्तानि कारणानि।।७।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः।
यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण ।।८।।

यदि वृक्ष के शिखर पर स्थित होकर कृकलास (गिरगिट) आकाश की तरफ देखता हो और गायें ऊपर को दृष्टि करके सूर्य को देखती हों तो शीघ्र वृष्टि होती है।।८।।

कृकलासाः प्राणिनस्तरूणां वृक्षाणां शिखरोपगता मूर्द्धनि स्थिताः। तत्र गगनतले आकाशतले स्थितदृष्टिनिपाता नभस्येव निरीक्षन्ते। यदि च गवामुक्षणामूर्ध्वमुपरि रविवीक्षणं सूर्यावलोकनं भवति तदा न चिरेण शीघ्रमेव वारि जलं निपतति वर्षतीत्यर्थः।।८।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि।
पशवः पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥९॥

यदि पशु घर से बाहर होने की इच्छा न करें और कान तथा पाँव हिलावें तो वृष्टि कहनी चाहिये अथवा पशु की तरह कुत्ता चेष्टा करे तो भी वृष्टि कहनी चाहिये।।९।।

यदि पशवश्चतुष्पादा गवादयो गृहाद्वेश्मनो विनिर्गमं निष्क्रमणं नेच्छन्ति न वाञ्छन्ति, तथा श्रवणान् कर्णान् पादानपि धुन्वन्ति कम्पयन्ति, तदाम्भो जलं निपततीति निर्दिशेद्वदेत्। पशुवच्च कुक्कुराः। श्वानः पशुवत्। यथा पशवस्तथा कुक्कुरा अपि ज्ञेयाः। एतदुक्तं भवति—नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपीति कुक्कुराणामपि ज्ञेयम्।।९।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यदा स्थिता गृहपटलेषु कुक्कुरा
रुदन्ति वा यदि विततं वियन्मुखाः।
दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा
तदा क्षमा भवति समैव वारिणा ॥१०॥

जब घर के आच्छादन (छतों पर) पर स्थित होकर आकाश की तरफ देखता हुआ कुत्ता भूंके तथा ईशान कोण में बिजली दिखाई दे तब जल से पृथ्वी समाम हो जाती है अर्थात् अधिक वृष्टि होती है।।१०।।

यदा यस्मिन् काले कुक्कुराः श्वानो गृहपटलेषु स्थिताः। गृहपटलं गृहाच्छादनं तत्र स्थिता यदि वा विततं सततं कृत्वा वियन्मुखमाकाशं निरीक्षन्तो रुदन्ति शब्दं कुर्वन्ति। यदि च दिवा दिवसे तडिद् विद्युत् पिनाकिदिग्भवा ईशानदिगुत्था भवति, तदा क्षमा भूर्वारिणा जलेनैव समा निम्नोन्नता लक्ष्या न भवति। अतिवृष्टिर्भवतीत्यर्थः।।१०।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

शुककपोतविलोचनसन्निभो
मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः।
प्रतिशशी च यदा दिवि राजते
पतति वारि तदा न चिरेण च ॥११॥

जिस समय तोता या कबूतर के नेत्र के समान या शहद की तरह चन्द्र हो या आकाश में दूसरा चन्द्र दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होती है।।११।।

हिमदीधितिश्चन्द्रो यदा यस्मिन् काले शुककपोतविलोचनसन्निभः। शुककपोतौ प्रसिद्धौ पक्षिणौ तद्विलोचनसन्निभस्तन्नेत्रसदृशाभो लोहितकान्तिरित्यर्थः। मधुनिभश्च माक्षिक-सदृशवर्णो वा पीताभ इत्यर्थः। तथा प्रतिशशी द्वितीयश्चन्द्रो यदा च दिवि नभसि राजते दृश्यते तदा तस्मिन् काले न चिरेण शीघ्रमेव वारि पानीयं पतति वर्षतीत्यर्थः।।११।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि दण्डवत्स्थिताः ।
पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदाऽऽगमो भवेत् ॥१२॥

यदि रात में मेघ का गर्जन हो, दिन में रुधिर के समान दण्डाकार बिजली दिखाई दे तथा पूर्व दिशा की ठण्ढ़ी हवा चले तो वर्षा का आगम होता है।।१२।।

यदि निशि रात्रौ स्तनितं मेघशब्दो भवति तथा विद्युतस्तडितो दिवा दिवसे। कीदृश्यो विद्युतः। रुधिरनिभा अतिलोहितास्ताश्च दण्डवदूर्ध्वाधःस्थित्या स्थिताः। पवनो वायुः परतः पूर्वस्यां दिशि शीतलो वहति तदा सलिलस्य जलस्यागमो वृष्टिपातो भवेत् स्यात्।।१२।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः
स्नायन्ते यदि जलपांशुभिर्विहङ्गाः ।
सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्रा-
ण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः ॥१३॥

यदि लताओं के नये पत्ते ऊर्ध्वमुख के हों, जल या धूलि से पक्षी स्नान करें या सरीसृप (कृमिजाति = सांप आदि) तृण के प्रान्त भाग पर स्थित हों तो शीघ्र वर्षा होती है।।१३।।

वल्यः प्रसिद्धास्तासां प्रवाला अभिनवपत्राणि। गगनतलोन्मुखा ऊर्ध्वगामिनः। यदि च विहङ्गाः पक्षिणो जलपांशुभिर्जलेनोदकेन वा पांशुना धूल्या स्नायन्ते स्नानं कुर्वन्ति। सरीसृपाः कृमिजातयो यदि च तृणाग्राणि तृणप्रान्तानि सेवन्ते। तत्पृष्ठगता भवन्ति। तदा जलस्य पानीयस्य पात आसन्नो निकटो भवति। शीघ्रमेव वर्षतीत्यर्थः।।१३।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

मयूरशुकचाषचातकसमानवर्णा यदा
जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुषश्च सन्ध्याघनाः ।
जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः
प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः ॥१४॥

मयूर, तोता, चाष (नीलकण्ठ), चातक, जपापुष्प या कमल के समान कान्ति वाले तथा जल के आवर्त्त (भँवर), पर्वत, नक्र (नाक), कछुआ, सूअर या मछली के समान आकृति वाले मेघ हों तो शीघ्र वृष्टि करते हैं।।१४।।

एवंविधाः सन्ध्याकाले घना मेघा न तु चिरेण कालेन शीघ्रमेवापो जलं यच्छन्ति ददति। कीदृशाः। मयूरशुकचाषचातकाः सर्व एव पक्षिविशेषाः। एतेषां समानवर्णास्तुल्यभाः, अतिनीलकान्तय इत्यर्थः।

तथा जपाकुसुमुपङ्कजद्युतिमुषः, जपाकुसुमं पुष्पविशेषोऽतिलोहितः। पङ्कजं पद्मम्। पङ्के कर्दमे जायत इति। अनयोर्द्युतिं कान्तिं ये मुष्णान्ति अपहरन्ति, अतिलोहितत्वात्तथाविधाः। तथा जलोर्मिरुदकावर्तः, नगः पर्वतः, नक्रो जलप्राणी, कच्छपः कूर्मः, वराहः सूकरः, मीनो मत्स्यः, एषां सदृशाकृतयः। तथा प्रभूतपुटसञ्चयाः। प्रभूतो बहुप्रकारः पुटसञ्चयो येषाम्। उपर्युपरि स्थिता इत्यर्थः।।१४।।

अथान्यद्वर्षज्ञानमाह—

पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽञ्जनालित्विषः
स्निग्धा नैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः।
माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राग् वाम्बुपाशोद्भवा
ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि ॥१५॥

यदि चारो तरफ चूना या चन्द्र के समान श्वेत, मध्य में कज्जल या भ्रमर के समान कान्ति वाले, निर्मल, ऊपर-ऊपर स्थित, जलबिन्दु छोड़ते हुये और सीढ़ी की तरह स्थित मेघ पूर्व दिशा में उत्पन्न होकर पश्चिम की तरफ या पश्चिम में उत्पन्न होकर पूर्व दिशा की तरफ गमन करे तो पृथ्वी पर शीघ्र अधिक् वृष्टि करता है।।१५।।

एवंविधा ये वारिमुचो मेघास्ते न चिराच्छीघ्रमेव भुवि भूमावम्भो जलं प्रभूतं सुबहु त्यजन्ति विसृजन्ति। कीदृशाः। पर्यन्तेषु समन्ततः। सुधा मक्कोलः। शशाङ्कश्चन्द्रः। तद्वद्धवलाः शुक्लाः। तथा मध्ये मध्यभागेऽञ्जनालित्विषः। अञ्जनं कज्जलम्। अलिर्भ्रमरः। तद्वत्त्विट् कान्तिर्येषां ते तथाभूताः। तथा स्निग्धा निर्मलाः। नैकपुटा बहुभिः पुटैरुपलक्षिताः। उपर्युपरि स्थिता इत्यर्थः। क्षरज्जलकणाः, क्षरन्तस्त्यजन्तो जलकणा जलबिन्दवो येषां ते। सोपानविच्छेदिनः। सोपानवद्विच्छेदो येषां ते। सोपानपदपङ्क्तिन्यायेन स्थिता इत्यर्थः। माहेन्द्रीप्रभवाः पूर्वस्यां दिशि उत्पन्नाः। अपरतः पश्चिमायां दिशि प्रयान्ति गच्छन्ति। अम्बुपाशोद्भवाः। अम्बुपो वरुणस्तस्याशा वारुणी दिक् पश्चिमेत्यर्थः। तदुद्भवास्तत्सम्भूताः प्राग्वा पूर्वां वा दिशं यान्ति।।१५।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषः।
उद्गमास्तसमये यदि भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु ॥१६॥

यदि सूर्य के उदय या अस्त समय में इन्द्रधनु, परिघ (४७ वें अध्याय के १९ वें श्लोक में पठित), दूसरा सूर्य, रोहित (४७ अ॰ २० श्लोक) या सूर्य-चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो शीघ्र अधिक वृष्टि होती है।।१६।।

भानोरादित्ययोद्गमास्तसमये उदयकालेऽस्तमयकाले वा यद्येते दृश्यन्ते तदाशु शीघ्रमेव प्रचुरं प्रभूतमम्बु जलमादिशेद्वदेत्। के ते? शक्रचापपरिघप्रतिसूर्याः, शक्रचापमिन्द्रधनुः। परिघः सूर्योदयास्तमयसमये तिर्यक् स्थिता मेघरेखा, तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'परिघ

इति मेघरेखा'। प्रतिसूर्यो द्वितीयोऽर्कः। रोहितस्तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितम्' इति।

अथशब्दश्चार्थे। अथ तडितो विद्युतः। परिवेषः सूर्यशशिनोः। तस्य लक्षणं वक्ष्यति—'सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः' इति। एते सर्व एव।।१६।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः।
उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना न चिरेण जलम् ।।१७।।

यदि उदय या अस्तसमय तित्तिर के पंख के समान आकाश हो और आनन्दित होकर पक्षी गण शब्द करें तो क्रम से दिन और रात्रि में शीघ्र अति वृष्टि होती है। जैसे उदयकाल में उक्त लक्षण हो तो दिन में और अस्तकाल में हो तो रात्रि में अति वृष्टि होती है।।१७।।

यदि गगनमाकाशं तित्तिरपत्रनिभम्, तित्तिरः पक्षी तस्य पत्रं पक्षस्तन्निभमिति तद्वत्। आवृतत्वाद्विचित्रमित्यर्थः। अथ च पक्षिगणा विहङ्गसमूहा मुदिता हृष्टाः प्रवदन्ति शब्दं कुर्वन्ति सवितुः सूर्यस्योदयकालेऽस्तमयकाले वा। ते च यथासङ्ख्यं द्युनिशम्। उदये दिवसे अस्ते च रात्रौ घना मेघा न चिरेण शीघ्रमेव जलं विसृजन्त्युत्सृजन्ति। वर्षन्तीत्यर्थः। उदयकाले दिवा वृष्टिरस्तमयकाले रात्राविति। अनार्षोऽयं श्लोकः।।१७।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः।
भूसमं च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम् ।।१८।।

यदि हजार, अमोघ (३० अध्याय ११ वें श्लोक में पठित), अस्ताचल पर्वत के हाथ की तरह उन्नत सूर्य के किरण दिखाई दें और मेघ पृथ्वी के निकट आकर गर्जे तो वर्षा होने का उत्तम योग होता है।।१८।।

सहस्रं गवां रश्मीनां यस्य स सहस्रगुप्तस्य सहस्रगोरादित्यस्य यद्यमोघकिरणाः। अमोघाख्या रश्मयः। तेषां लक्षणं वक्ष्यति—'शुक्राः करा दिनकृतः' इति। एवंविधा अमोघकिरणा अस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः। अस्तभूधरस्यास्तमयपर्वतस्योच्छ्रिता उच्चीकृताः करा हस्ता इव लक्ष्यन्ते। उदयास्तमययोश्चैवंविधा दृश्यन्ते। वक्ष्यत्याचार्यः। उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते। तथाम्बुदो मेघो भूसमं क्षितितुल्यं रसते श्लिष्यते यदा तत्तस्मान्महद्वृष्टिलक्षणं भवति। अतिवृष्टिचिह्नं भवतीत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

पृच्छाकाले शान्ता वारुणदिक्स्था विहङ्गा वा।
दर्पणलोहकलङ्को लवणक्लेदोऽतितीक्ष्णकिरणोऽर्कः।।
पोप्लूयन्ते मत्स्या दिश्यैशान्यां तडिच्च दिवा।
उत्कर्णपुच्छवदना गावस्तापोऽम्भसां पवननाशः।।

अञ्जनपुञ्जश्यामा गिरयो वाष्पावृता यदि वा।
यदि जलपांशुस्नानं विहगानां मैथुनं द्विजिह्वानाम्।।
वृक्षारोहणमथवा पिपीलिकाण्डोपसङ्क्रान्तिः।
कृकवाकुशुककपोतकलविङ्कविलोचनोऽर्केन्द्वोः ।।
स्निग्धः परिवेषो वा वियदमलं बालकनिमित्तम्।
मधुसदृशः शीतांशुः प्रतिचन्द्रः शीतमारुतः पूर्वः।।
ऊर्ध्वाङ्कुराश्च वल्यः सद्योवर्षाय कीर्त्यन्ते।
स्निग्धाः समसितरेखा यथाभ्रवृन्दानि कल्पितान्येव।।
यच्छन्त्यपो मयूखा यदि चेन्दोर्वा रवेर्दीप्ताः।। इति।

अत्र यानि सद्योवर्षचिह्नानि उक्तानि तेषु बलवत्सु महद्वृष्टिं मध्येषु मध्यमामल्पेष्वत्यल्पां वदेत्। तथा च पराशरः—

बलवत्सु महद्वर्षमल्पेष्वल्पाम्बुशीकरम्।
मध्येषु मध्यमं ब्रूयान्निमित्तेषु निमित्तवत्।।
उल्कानिर्घातभूकम्पपांशुवर्षाणि केतवः।
अपसव्या ग्रहाश्चैव नित्यं वर्षासु वर्षदाः।। इति।।१८।।

अन्यद्वर्षलक्षणमाह—

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः।
सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलाऽऽगमनाय ।।१९।।

यदि वर्षाकाल में शुक्र से सप्तम राशि में स्थित होकर चन्द्रमा शुभग्रह से देखा जाता हो अथवा शनैश्चर से नवम या पञ्चम में स्थित होकर शुभग्रह से देखा जाता हो तो जल के आगमन के लिये होता है।।१९।।

प्रावृड्ग्रहणमन्यकालव्युदासार्थम्। प्रावृषि वर्षाकाले शीतकरश्चन्द्रो भृगुपुत्राच्छुक्रात् सप्तमराशिगतः सप्तमराशौ व्यवस्थितः। तत्र च शुभदृष्टः सौम्यग्रहावलोकितस्तदा जलाऽऽगमनाय वर्षाऽऽगमनाय भवतीति। अथवा सूर्यसुतात् सौरात् स एव चन्द्रो नवमगः पञ्चमगो वा सप्तमगश्च यदि भवति स च शुभदृष्टस्तदा जलाऽऽगमनाय वर्षाऽऽगमनाय भवतीति।।१९।।

अन्यद्वर्षलक्षणमाह—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ।।२०।।

ग्रहों के उदय या अस्तकाल में, चन्द्र के साथ समागम होने पर, मण्डल (शुक्रचारोक्त छः मण्डल) में प्रवेश होने पर, पक्ष के अन्त में, सूर्य के दक्षिणायनान्त और उत्तरायणान्त (कर्क और मकर संक्रान्ति) में तथा सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में स्थित होने पर निश्चय करके वृष्टि होती है।।२०।।

ग्रहाणामुदयकाले सूर्यमण्डलान्निर्गमे। तत्रैवास्तकालेऽस्तमये। एवमुदयास्तमयावत्र अर्कविप्रकर्षसन्निकर्षजौ ज्ञेयौ। तथा समागमे, समागमश्चन्द्रेण सह ताराग्रहाणाम्। मण्डल-सङ्क्रमे वा, मण्डलानि भरणीपूर्वमण्डलमित्यादि षण्मण्डलानि शुक्रचारोक्तानि तेषां संक्रमे प्रवेशे च। पक्षक्षयोऽमावस्यापौर्णमास्यन्तस्तस्मिन्। तीक्ष्णकरस्यादित्यस्यायनान्ते दक्षिणो-त्तरयोरयनयोः समाप्तौ। कर्कटकमकरसंक्रान्तावित्यर्थः। एतेषु सर्वेषु प्रायो बाहुल्येन वृष्टि-र्भवति। तथाऽर्के सूर्ये आर्द्रां गते रौद्रं नक्षत्रं प्राप्ते नियमेन निश्चयेन वृष्टिर्भवति।।२०।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे।
यमारयोः पवनहुताशजं भयं ह्यदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥२१॥

बुध-शुक्र, बुध-गुरु, गुरु-शुक्र और शनि-मंगल की युति हो तथा उस पर शुभग्रह की दृष्टि या योग न हो तो वायु और अग्नि का भय होता है।।२१।।

ज्ञो बुधः। शुक्रो भार्गवः। तयोर्ज्ञशुक्रयोः समागमे संयोगे जलं पानीयं पतति वर्षतीत्यर्थः। तथा ज्ञजीवयोर्बुधबृहस्पत्योः सङ्गमे संयोगे जलं पतति। गुरुसितयोर्जीवशुक्रयोः सङ्गमे जलं पतति। यमारयोः सौराङ्गारकयोः सङ्गमे पवनहुताशजं भयं भवति। पवनो वायुः। हुताशोऽग्निः। तज्जं भयं भवति। किं सर्वदा। न, इत्याह—अदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैरिति। सद्ग्रहा बुधबृहस्पतिशुक्राः। एतेषामन्यतमेनादृष्टयोरनवलोकितयोरसहित-योरसंयुक्तयोः पवनहुताशजं भयं भवति। युक्तदृष्टयोर्नेति।।२१।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः।
यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥२२॥

यदि सूर्य से मन्दगति ग्रह आगे और शीघ्रगति ग्रह पीछे हों तो पृथ्वी को जल से समुद्र की तरह कर देते हैं।।२२।।

सूर्यावलम्बिनो ग्रहाः सूर्यावलम्बनशीलाः। अस्तमयाभिलाषिण इत्यर्थः। अग्रतः पृष्ठतो वा भवन्ति। अग्रतः पुरस्तात्। पृष्ठतः पश्चात्। मन्दग्रहा अग्रतोऽस्तमयं यान्ति। शीघ्रग्रहाः पृष्ठतः। सूर्यस्य प्राक्पश्चाद्वा यद्यस्तमयं कुर्वन्ति, यदा यस्मिन् काले, तदा तस्मिन् काले महीं भूमिमेकार्णवां सर्वजलमयीं कुर्वन्तीत्यर्थः। बहुवचननिर्देशादयादयो ग्रहा ज्ञेया इति।।२२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सद्यो-वर्षलक्षणन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

प्रविशति यदि खद्योतो जलदसमीपेषु रजनीषु।
केदारपूरमधिकं वर्षति देवस्तदा न चिरात् ॥२३॥

वर्षत्यपि रटति यदा गोमायुश्च प्रदोषवेलायाम्।
सप्ताहं दुर्दिनमपि तदा पयो नात्र सन्देहः[१] ॥२४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
सद्योवर्षणाध्यायोऽष्टाविंशः ॥२८॥

यदि रात्रि में जुगनू मेघ के समीप तक जाय तो शीघ्र मेघ धान्य के क्षेत्रों को पूर्ण करने वाली वृष्टि करता है।

यदि प्रदोष समय में वर्षा हो या सियार भूंकें तो निश्चय करके सात दिन तक दुर्दिन और वृष्टि होती है।।२३-२४।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सद्योवर्षणाध्यायोऽष्टाविंशः ॥२८॥

---

१. पद्यद्वयमिदमविवृतित्वात्केनचित्प्रक्षिप्तमिति प्रतिभाति।